"इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि
के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

सन् 1989 ई०

प्रस्तुतकर्त्री:
कु० दीप कुमारी

BUNDELKHAND UNIVERSITY
JHANSI

निर्देशक :
द्वारका प्रसाद मीतल
एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०
अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी

CERTIFICATE

This is to certify:-

1- That the thesis embodies the work of the Candidate herself.

2- That the candidate worked under me for the period, required under the ordinance-7.

3- That She has put in the required attendance in my department during that period.

Date: 5/9/89

D.P. Mittal

द्वारका प्रसाद मीत्तल

Dr. D.P.Mittal एम.ए; पी-एच.डी.; डी.लिट.

Retd. Head of the Deptt. 'Hindi'

Bundelkhand Degree College,

Jhansi.

प्राक्कथन

उपन्यास मानव-जीवन से सम्बद्ध साहित्य की ऐसी विधा है जिसमें मानव-मन की जटिलताओं और तज्जन्य अनुभूति-धाराओं का यथार्थ चित्रांकन होता है। मनस्तत्व के विश्लेषण के कारण आज के बुद्धि-जीवी, यंत्रजीवी और स्वकेन्द्रित मानव के लिए 'उपन्यास' ने साहित्य की अन्य विधाओं से हटकर अल्प-समय में ही श्लाघ्य स्थान प्राप्त किया है।

'फ्रॉयड' के अनुसार मानव-मन का दशमांश ही हमें 'चेतन-मन' के रूप में दिखाई देता है, उसके मन का 9/10 भाग तो अगोचर है जिसको देखने और उघाड़ने के लिए सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि की आवश्यकता होती है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास ने मानव के इसी 9/10 भाग अगोचर 'अचेतन-मन' के अन्दर छिपी जटिल अनुभूतियों व उलझनभरी प्रवृत्तियों को सुलझाने के लिये आधुनिक मनोविज्ञान का आश्रय ग्रहण किया। वस्तुतः बाह्य जगत् के अधिकतम क्रियाकलाप व अधिकांश घटनायें, जिनकी प्रेरणा से साहित्य-मनीषी उपन्यास-सृजन करते हैं, व्यक्ति के 'मनस्तत्व' का ही प्रस्फुटन होती है। मानव-भावना के गहन गह्वरों में पैठने के लिए आधुनिक उपन्यासकारों ने आधुनिक मनोविज्ञान के विविध सिद्धान्तों, प्रविधियों का प्रयोग करके एक नूतन उपन्यास-धारा का सूत्रपात किया, जो उपन्यास जगत् में मनोवैज्ञानिक उपन्यास-धारा के नाम से प्रख्यात है।

'मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा' के जनकत्व का तथाकथित श्रेय तो जैनेन्द्र जी को ही मिला है लेकिन इस विचारधारा के पोषण व पथ-प्रदर्शन का गुरुतर कार्य उपन्यास-मनीषी श्री इलाचन्द्र जोशी ने किया है। उच्च-साहित्यिक परिवेश में पले-बढ़े साहित्य-साधक पण्डित इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से मानव-चेतना की अतल-कन्दराओं में प्रवेश करके वहाँ के यथार्थ नग्न चित्रों का आंकन किया है। अपने संघर्षमय जीवन से अनुभव बटोर-बटोर कर उन्हें पाश्चात्य मनोविज्ञान के सहारे अपने उपन्यासों में चित्रांकित करके मानवतावाद के पोषक मनोवैज्ञानिक-उपन्यास पुरोधा पण्डित इलाचन्द्र जोशी ने एक से एक उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की सर्जना की है।

व्यक्ति के 'अचेतन-मन' की चीरफाड़ और उसका मनोवैज्ञानिक साधन इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों का मूल स्वर है। एक सहज से दिखने वाले व्यक्ति के अन्तर में जो-जो विकृतियाँ, जो-जो कुण्ठायें कुण्डली मारे बैठी रहती है और अनुकूल परिस्थितियाँ पाते ही मानव के सहज व्यवहार को डँस-डँस कर विकृतिमय बना देती है, उन सब का विश्लेषण करने के बाद जोशी जी ऐसे मानव के व्यवहार का मनोवैज्ञानिक उपचार भी प्रस्तुत करते हैं, जिसके कारण उनके उपन्यास मात्र असमान्यताओं का घुरघुट बनकर नहीं रह गये हैं वरन् उदात्तीकरण और संश्लेषण की अनुपम प्रक्रिया के कारण वे जीवन के मंगलमय रूप की भी झांकी दिखाते हैं।

इलाचन्द्र जोशी की के उपन्यासों के अधिकांश कथानक इन्हीं मनोविश्लेषणात्मक क्रियाओं की स्थली बने है। 'सन्यासी', 'लज्जा' (छलावरी), 'जिप्सी' (त्याग लालसा), 'पर्दे की रानी' व 'प्रेत और छाया' जैसे उपन्यास मन्दीकशोर, राजु, पारसनाथ, नृपेन्द्ररंजन व इन्द्रमोहन जैसे असामान्य (दुर्बल प्रकृति) पुरुष पात्रों तथा शीला, जयन्ती, लज्जा, माँच्या, निरंजना व मंजरी जैसे नारी पात्रों के अन्तर्मन की अद्भुत कुण्ठाओं व द्वन्द्वमय स्थितियों को खोल-खोलकर उनके जीवन के उलझन पक्ष का भी वर्णन करते है ।

व्यक्ति के अन्दर निहित 'अहं' के भीषण विस्फोट के परिणाम के रूप में हम जयन्ती, मन्दीकशोर, इन्द्रमोहन, नृपेन्द्र रंजन व राजु जैसे पात्रों को पाते है । जोशी जी ने अपने लक्ष्य को पाने के लिए 'दुर्बल' व 'असामान्य' पात्रों को ही अधिकांशतः अपने उपन्यासों का उपजीव्य बनाया है। उनकी नारियाँ 'असामान्यता' की स्थिति से छुटकारा पाते ही क्रान्ति और विद्रोह का विगुल बजाती है तथा 'भविष्य की नारी' की भविष्यवाणी करती है। इलाचन्द्र जोशी की नारियाँ में मानसिक द्वन्द्वों से उबर-उबर कर तत्कालीन सामाजिक विश्लेषण की युग में ही 'आज की नारी' की स्थिति की घोषणा कर दी ।

अनुभवों की विस्तृत परिधि से होकर गुजरने वाला जोशी जी

का मनोवैज्ञानिक चित्रण ही, बारम्बार अनुसन्धित्सु जनों का प्रेरण-स्त्रोत बना है। जोशी जी के इसी चित्रण का 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का उनके अनुभवों की परिधि से गुजरे अधिकांश उपन्यासों के 'मनोविश्लेषण' का दिग्दर्शन कराने का प्रयास मैंने अपने 'शोध-प्रबंध' में किया है।

पण्डित इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए मैंने अपने 'शोध-प्रबन्ध' को सात अध्यायों में विभक्त किया है।

शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय 'उपन्यास और मनोविज्ञान' में मैंने 'उपन्यास' और 'मनोविज्ञान' के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। वस्तुतः उपन्यास मानव-मन का ही विश्लेषण है। अपने जन्म के साथ ही वह मानव-मन के मनोविज्ञान को अपने में समाहित किये था परन्तु बीसवीं सदी तक आते-आते मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनेकानेक सिद्धान्तों और विचार-धाराओं ने जन्म लिया जिनका प्रभाव उपन्यास-जगत् पर भी पड़ा। हिन्दी उपन्यासों में यह परम्परा किस प्रकार पाश्चात्य उपन्यासों, विशेषकर आंग्ल उपन्यासों से होकर बंगला उपन्यासों से होती हुई आयी, इसका विस्तृत विवेचन मैंने इस अध्याय में किया है।

शोध-प्रबंध के द्वितीय अध्याय 'मनोविज्ञान, उसके सम्प्रदाय एवं

विशिष्टताएं और उनका हिन्दी उपन्यासों में समावेश" में मैंने मनोविज्ञान के अर्थ एवं उसके क्षेत्र को संक्षेप में दर्शाकर मनोविज्ञान के सम्प्रदायों मुख्यतया 'मनोविश्लेषण सम्प्रदाय' पर व्यापक दृष्टि डालते हुए उपन्यासों में समाविष्ट होने वाले मनोवैज्ञानिक तत्वों पर प्रकाश डाला है। प्रेमचन्द युगीन और प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मनोविज्ञान का क्या स्वरूप रहा है, इसका विश्लेषण कराने का प्रयास मैंने इस अध्याय में किया है।

शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय 'इलाचन्द्र जोशी जी का जीवन, कृतियां और उनका 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' में इलाचन्द्र जोशी जी के जीवन-वृत्त को प्रस्तुत करने के बाद मैंने उनकी कृतियों का कालक्रमानुसार विवरण देते हुए उनके उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय भी दिया है। अध्याय के अन्त में, इलाचन्द्र जोशी जी के औपन्यासिक दृष्टिकोण को समझने के लिए मैंने उनके 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' को स्पष्ट किया है, जिसमें उनके मनस्तत्व सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण है।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय 'इलाचन्द्र जोशी जी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का शिल्प विधान' में मैंने जोशी जी के पूर्ववर्ती उपन्यासों के शिल्प पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए जोशी जी के उपन्यासों के मनोवैज्ञानिक धरातल को छूने का प्रयास किया है। जोशी जी के उपन्यासों की कथावस्तु क्षणिक घटनाओं, क्षणिक कुण्ठाओं को मूल में रखकर आगे बढ़ी है।

कथातन्तु 'अचेतन-मन' में ही छोटी-छोटी दमित वृत्तियों के विस्फोट द्वारा उपजे हैं जिनके विश्लेषण और संश्लेषण द्वारा कथानकों के कलेवर बुने गये हैं। 'संवाद-योजना' के क्षेत्र में जोशी जी ने कुछेक उपन्यासों में अन्तर्विवादों (इन्टीरियर मोनोलॉग्स) का प्रयोग करके पात्रों के चरित्र का उन्हीं के स्वगत-कथनों द्वारा विश्लेषण कराया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में संवाद पात्रों के आन्तरिक मन की उठापटक, घात-प्रतिघात प्रस्तुत करते हैं, जोशी जी के उपन्यासों के संवाद मनोविज्ञान के इसी रंग में रंगे हुए हैं। इसी प्रकार मैंने जोशी जी के उपन्यासों की चरित्र-सृष्टि, देशकाल वातावरण, भाषा-शैली तथा उद्देश्य आदि में प्रयुक्त मनोविज्ञान का भी विश्लेषण किया है।

पंचम अध्याय "जोशी जी के उपन्यासों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण" में मैंने जोशी जी के पूर्ववर्ती उपन्यासों में पात्रों की अवतारणा को खोजते हुए इलाचन्द्र जोशी के पात्रों पर प्रकाश डाला है। जोशी जी के उपन्यासों में मुख्यतः किन-किन कोटियों के पात्रों का सृजन हुआ है इसका विस्तृत वर्णन व उनके उपन्यासों के प्रमुख पुरुष पात्रों व प्रमुख नारी पात्रों का उदाहरण सहित मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मैंने इस अध्याय में विस्तृत रूप से किया है।

शोध-प्रबंध का षष्ठ अध्याय जोशी जी के उपन्यासों की अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के उपन्यासों की तुलना से संबंधित है। इस अध्याय में मैंने प्रमुख रूप से 'प्रेमचन्द', 'जैनेन्द्र', 'अज्ञेय', 'भगवती प्रसाद वाजपेयी', 'डॉ० देवराज', और 'धर्मवीर भारती' की औपन्यासिक

शिल्प के विश्लेषण के साथ जोशी जी के उपन्यासों से उनकी तुलना की है। अध्याय के अंत में मैंने जोशी जी की तुलना उन आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों से की है, जिनकी कृतियों ने बिखरे, कटे एवं उलझे अंतर्वैयक्तिक क्षणों के मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करके जीवन के एकांश अंशों का ही अगाध चित्रण प्रस्तुत किया है।

शोध-प्रबन्ध का अंतिम अध्याय उपन्यास साहित्य को इलाचन्द्र जोशी जी की देन से सम्बन्धित है। मैंने इस अध्याय में मनस्तत्व के अग्रणी विश्लेषक, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा के प्रवर्तक एवं पथप्रदर्शक के रूप में जोशी जी का मूल्यांकन किया है साथ ही उनके उपन्यासों की सम्प्रेषणीयता व मूल्यांकन के साथ आगामी कथा साहित्य पर जोशी जी के प्रभाव पर भी प्रकाश डाला है।

मैं अपने शोध-निर्देशक आदरणीय डा० द्वारका प्रसाद मीतल, अवकाश प्राप्त हिन्दी विभागाध्यक्ष बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी की हार्दिक आभारिणी हूँ जिनके वज्रादपि कठोर और कुसुमादपि मृदु व्यक्तित्व ने पग-पग पर मुझे अपने कर्तव्यपथ पर चलने के लिए संकेत किया। उनके व्यस्त क्षणों के मध्य फलस्वरूप प्राप्त अमूल्य समय में मिले पांडित्यपूर्ण निर्देशन के कारण ही यह शोध-प्रबंध पूर्ण हो सका है। उनके प्रति शाब्दिक आभार मेरे अन्तःकरण की कृतज्ञता को अभिव्यक्ति देने में असमर्थ है। शोध-प्रबंध लिखने की प्रक्रिया में मिली विभिन्न विद्वानों एवं मित्रों की सहायता और परामर्श के प्रति मैं विनम्रतापूर्वक कृतज्ञ हूँ। अन्त में, झांसी के विभिन्न

पुस्तकालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों की मैं विशेष ऋणी हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे व्यापक पुस्तकीय सहयोग प्रदान किया। टंकक श्री इन्द्रगुप्त मीनाक्षी टाईपिंग इन्स्टीट्यूट, सीपरी, झांसी के टंकण सहयोग की मैं सदैव आभारिणी रहूँगी, जिन्होंने समय निकाल-निकाल कर मेरे शोध-प्रबंध का टंकण कार्य सम्पन्न कराया। अन्त में, मैं अपने समस्त परिजनों के स्नेह व प्यार के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिनकी वजह से मुझे, अनेक कठिनाईयों के बावजूद यह शोध-प्रबंध पूर्ण करने में सफलता मिली है। मेरे इस प्रयत्न की सफलता का निर्णय तो सुधी आलोचक ही कर सकेंगे।

कु० दीप कुमारी
एम०ए०, बी०एड०
हिन्दी अनुवादिका, युनाइटेड इंडिया
इंश्योरेन्स कंम्पनी लिमिटेड,
मंडल कार्यालय, ग्वालियर

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

उपन्यास और मनोविज्ञान :- पृष्ठ संख्या 1 — 30

उपन्यास और मनोविज्ञान 1 — 4

उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन 5 — 9

आंग्ल साहित्य में उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की परम्परा 9 — 18

हिन्दी साहित्य में उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की परम्परा 18 - 30

द्वितीय अध्याय

मनोविज्ञान, उसके सम्प्रदाय एवं विशिष्टताएं और उनका हिन्दी उपन्यासों में समावेश :- पृष्ठ संख्या 31 — 89

(अ) मनोविज्ञान

(अर्थ एवं परिभाषा) 31 — 33

मनोविज्ञान का क्षेत्र :- 33 — 40

1- समाज मनोविज्ञान 2- बाल मनोविज्ञान

3- वैयक्तिक मनोविज्ञान 4- प्रयोगात्मक मनोविज्ञान

5- सामान्य मनोविज्ञान 6- शारीरिक मनोविज्ञान

7- मनोविश्लेषण 8- व्यवहारिक मनोविज्ञान

9- शिक्षा मनोविज्ञान

(ब) मनोविज्ञान के सम्प्रदाय, विशिष्टतायें :- पृष्ठ संख्या 40-60

1- प्रकार्यवाद 2- संरचनावाद 3- व्यवहारवाद

4- गेस्टाल्टवाद 5- मनोविश्लेषणवाद

(स) मनोविज्ञान का हिन्दी उपन्यासों में समावेश :-

1- उपन्यासों में समाविष्ट होने वाले मनोवैज्ञानिक तत्व 61-74

2- प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में मनोविज्ञान 75-82

3- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मनोविज्ञान 82-89

तृतीय अध्याय

****

इलाचन्द्र जोशी जी का जीवन, कृतियां एवं उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण :- पृष्ठ संख्या 90-149

(अ) जीवन परिचय :- 90-111

1- जन्मतिथि 2- निवास स्थान 3- पूर्वज

4- व्यक्तित्व 5- स्नेही तथा परिचित

6- प्रकृति 7- पत्रकारिता क्षेत्र

8- शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान 9-व्यक्तिगत परिस्थितियां

10- परलोक गमन

(ब) कृतियां :-

काव्य संग्रह :- 111-112

चित्रवती

कहानी संग्रह :- पृष्ठसंख्या 112 - 113

1- धूपलता या धूपरेखा 2- दीवाली और होली 3- रोमांटिक छाया

4- आहुति 5- लण्डहर की आत्माएं 6- डायरी के नीरस पृष्ठ

7- कटीले फूल, लजीले कांटे

आलोचनात्मक कृतियां :- 113 - 114

1- साहित्य-सर्जना 2- विवेचना 3- विश्लेषण 4- साहित्य-चिंतन

5- देखा परखा

उपन्यास और उनका संक्षिप्त परिचय :- 114 - 141

1- लज्जा (घृणामयी)

2- सन्यासी

3- पर्दे की रानी

4- प्रेत और छाया

5- निर्वासित

6- मुक्तिपथ

7- सुबह के भूले

8- जिप्सी (त्याग का भोग)

9- जहाज का पंछी

10- ऋतु चक्र

11- कवि की प्रेयसी

(स) इलाचन्द्र जोशी का 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' 142 - 149

चतुर्थ अध्याय

जैनेन्द्र जोशी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का शिल्प विधान :- पृष्ठसंख्या 150 — 240

(अ) जोशी जी से पूर्व औपन्यासिक शिल्प :- 150 — 151

1- भारतेन्दु युग 151 — 153

2- प्रेमचन्द युग 153 — 159

3- प्रेमचन्दोत्तर युग 159 — 164

(ब) जोशी जी का मनोवैज्ञानिक उपन्यास शिल्प :- 164 — 166

1- कथावस्तु में मनोविज्ञान एवं उसका विश्लेषण 167 — 185

2- संवाद योजना में मनोविज्ञान एवं उसका विश्लेषण 186 — 198

3- चरित्र -सृष्टि में मनोविज्ञान एवं उसका विश्लेषण 198 — 214

4- देशकाल और वातावरण में मनोविज्ञान एवं उसका विश्लेषण 214-223

5- भाषा शैली में मनोविज्ञान एवं उसका विश्लेषण 224-236

6- उद्देश्य में मनोविज्ञान एवं उसका विश्लेषण 236- 240

पंचम अध्याय

जैनेन्द्र जोशी के उपन्यासों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण :- पृष्ठसंख्या 241 — 327

(अ) जोशी जी से पूर्व उपन्यासों के पात्र 241 — 249

(ब) जोशी जी के उपन्यासों के पात्र :- 250 - 253

1- उदात्तवृत्ति वाले आदर्श पात्र 253 — 257

2- सामान्य पात्र 257- 262

3- चित्त विकृतियों के शिकार पात्र 263 - 268

4- असामाजिकता के शिकार पात्र 268 - 271

(स) जोशी जी के उपन्यासों के पुरुष पात्र एवं उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण :- 271 - 297

न-दकिशोर, इन्द्रमोहन, डाक्टर कन्हैयालाल, पारसनाथ, महीप, ठाकुर लक्ष्मीनारायण, राबीव, नृपेन्द्ररंजन

(द) जोशी जी के उपन्यासों के नारी-पात्र एवं उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण :- 298 - 327

लज्जा, निरंजना, नंदिनी, सुनन्दा, मन्निया, गुलबिया, मंजरी, शांति

षष्ठ अध्याय

xxxxxxxxxxxx

आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों और जोशी जी के उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तुलना:- पृष्ठसंख्या 328 - 421

1- इलाचन्द्र जोशी एवं प्रेमचन्द्र 328 - 346

2- इलाचन्द्र जोशी एवं जैनेन्द्र 346 - 366

3- इलाचन्द्र जोशी एवं अज्ञेय 366 - 388

4- इलाचन्द्र जोशी एवं भगवती प्रसाद वाजपेई 388 - 393

5- इलाचन्द्र जोशी एवं डा० देवराज 394 - 403

6- इलाचन्द्र जोशी एवं धर्मवीर भारती 403 - 411

7- इलाचन्द्र जोशी एवं अन्य आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार 412 - 421

सप्तम अध्याय

उपन्यास साहित्य को इलाचन्द्र जोशी की देन :- पृष्ठ संख्या 422-450

1- उपन्यास साहित्य में मनस्तत्व के अनूठे विश्लेषक 422-429

2- मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा के प्रवर्तक एवं पथ प्रदर्शक 430-436

3- जोशी जी के उपन्यासों की सम्प्रेषणीयता 436-443

4- जोशी जी के उपन्यासों का मूल्यांकन 443-447

5- आगामी कथा साहित्य पर जोशी जी का प्रभाव 447-450

सहायक ग्रंथ सूची

पृष्ठ संख्या 451-463

1- हिन्दी ग्रंथ सूची 451-461

2- अंग्रेजी ग्रंथ सूची 461-462

3- पत्र पत्रिकाएं 463.

प्रथम अध्याय

उपन्यास और मनोविज्ञान

उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी

प्रथम अध्याय

"उपन्यास और मनोविज्ञान"

उपन्यास और मनोविज्ञान :- उपन्यास 'साहित्य' की एक विधा है जिसमें भाषा के माध्यम से जीवन और जगत को वाणी मिलती है । ईश्वर यदि सम्पूर्ण विश्व (जीवन और जगत्) की सर्जना करता है तो उपन्यास में लेखक 'लघु जीवन' की स्थापना करता है । 'उपन्यास' का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है - 'उप+न्यास' अर्थात् 'गौण या लघु (जीवन) को अंकित या स्थापित करना' । पाश्चात्य विचारकों 'बेकर', 'फार्स्टर', 'राल्फफाक्स', 'बिल्वरग्रास', 'हेनरी जेम्स' सभी ने एक मत से उपन्यास को 'जीवन का व्याख्याता' कहा है । 'राल्फफाक्स' के अनुसार-

"उपन्यास मात्र गद्य नहीं है वरन् वह मानव-जीवन का गद्य है और सम्पूर्ण मानवता को अभिव्यक्त करने की कला है ।" [1]

भारतीय विचारक भी एक मत से उपन्यास को जीवन के विविध रंग प्रस्तुत करने वाली विधा मानते हैं ।

1- "The novel is not merely fictional prose, it is the prose of human life. The first art to attempt, to take the whole man and give him expression."

-By "Rolf-Fox"

"The Novel and the people" - page - 12

'बाबू श्याम सुन्दर दास' के अनुसार -

"उपन्यास की सीमा यही है कि उसमें कुछ व्यक्तियों के साथ कुछ घटनाएं किसी क्रम से घटित होंगी और इस समस्त व्यापार में हमारे, नित्यप्रति के जीवन की वास्तविकता दिखाई पड़ेगी ।" 1

तात्पर्य यह है कि उपन्यास आधुनिक साहित्य की वह विधा है जिसमें जीवन की तमाम चिन्ता-बाधाओं, छल-प्रपंचों, कष्ट-कठिनाईयों, अभाव-असफलताओं का अन्तहीन विवरण विद्यमान रहता है। वह मानव को उसके वास्तविक परिवेश में निरन्तर चित्रित करने का प्रयत्न करता रहता है उपन्यास में मन के भीतर उठने वाली बहुविध भाव-तरंगों का उद्घाटन होता है । अतः इसका संबन्ध 'मनोविज्ञान' से होना स्वाभाविक है ।

मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र मन है । मनोविज्ञान के अनुसार -

"मूल प्रवृत्तियां ही मानव-व्यवहार की संचालिका है । "मैक्डूगल" मूल प्रवृत्तियों को मानव की परिचालक वृत्तियां कहकर उनको मण्डित करता है ।" 2

1-"साहित्यालोचन" - 'डा० श्याम सुन्दर दास'
छठवां संस्करण सन् 1942 ई० पृष्ठ 110

2- "We may say that directly or indirectly the instincts are the prime-movers of all human activity."
By - Mc Dougall
"An Introduction to Social Psychology" Page - 38

साहित्य भी मानव की इन्हीं मूलप्रवृत्तियों को लेकर चलता है । साहित्य मानव-मन की इन्हीं वृत्तियों के चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है । 'बाबू गुलाब राय' के अनुसार -

"जीवन की मूल प्रेरणायें ही साहित्य की मूल प्रेरक शक्तियां हैं, जो वृत्तियां जीवन की, और सब क्रियाओं की मूल स्त्रोत हैं, वे ही साहित्य को भी जन्म देती है ।" ।

उपन्यास भी साहित्य की वह विधा है जिसमें 'मनस्तत्व' को अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक प्रस्फुटित होने का अवसर प्राप्त होता है। क्योंकि उपन्यास बन्धनों से परे है । 'मनोविज्ञान' और 'उपन्यास' दोनों का विषय-क्षेत्र एक ही होने के कारण दोनों में पर्याप्त सम्बन्ध है । उपन्यास अपने जन्म से ही मानव-मन के चित्रों को स्पष्ट करने के लिए मनोविज्ञान का ऋणी रहा है । वस्तुतः उपन्यास मानव-जीवन की अभिव्यक्ति और भावों तथा विचारों का व्यक्त रूप है । 'मनोविज्ञान' भी मानव-जीवन का पर्यवेक्षण करता हुआ तत्सबंधी भावों व विचारों का अव्यक्त रूप व्यक्त करता है । 'मनोविज्ञान' और 'उपन्यास' दोनों का ही उद्देश्य मानव-मन का परिष्कार करना है । 'उपन्यास' अपने प्रारंभिक काल से ही 'मानव-मन' के परिष्कार के लिए मनोवैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों का आश्रय लेता रहा है ।

जैसे-जैसे मानव-जीवन में जटिलतायें बढ़ती जाती हैं उनके कारणों का पता लगाने के लिए उपन्यासकार को अत्यधिक श्रम करना पड़ता है।

।-"सिद्धान्त और अध्ययन" - 'बाबू गुलाब राय, 5वां संस्करण सन् 1975 पृष्ठ 64

बौद्धिकता के अतिशय विकास ने आज मानव को इतना जटिल बना दिया है कि उसकी वास्तविकता का बोध उपन्यासकार को विविध मनोवैज्ञानिक विधियों प्रविधियों द्वारा करना पड़ता है। यद्यपि प्राचीन समय में मनोविज्ञान अपनी विकसित अवस्था में नहीं था, उस समय फ्रॉयड, एडलर, युंग का 'असामान्य-मनोविज्ञान' नहीं था, परन्तु मन की अंध गुफाओं में उपन्यासकार का प्रवेश यदा-कदा हो ही जाता था । आज, जब जीवन में द्वन्द्वों व विकारों का प्राबल्य सा हो गया है, प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार भी जीवन के असामान्य हो जाने के कारणों का पता लगाने के लिए आधुनिक विकसित मनोविज्ञान का आश्रय लेते हैं ।

मनोविज्ञान की आधुनिक खोजों द्वारा पुष्ट हो चुका है कि मानव अपने अचेतन-मन द्वारा चालित है । अचेतन-मन में सदियों से दबी पड़ी इच्छाएं जरा सा अनुकूल वातावरण पाते ही बाहर आकर मानव के व्यवहार को अनियंत्रित कर देती हैं । मनोविश्लेषणशास्त्र के उदय ने 'उपन्यास-साहित्य' को बीसवीं शती में एक नयी गति दी है । आज का उपन्यास-साहित्य मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों के अनुसार जीवन की व्याख्या करता हुआ मनोविज्ञान से अपने सम्बन्ध को और अधिक पुष्ट करता है । इसी के फलस्वरूप उपन्यासों के क्षेत्र में 'व्यक्तित्व' की प्रबलता के कारण एक नवीन उपन्यासधारा-मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा चल निकली है ।

दोनों का विषय क्षेत्र 'मानव-मन' होने के कारण उपन्यास साहित्य मनोविज्ञान का ऋणी है जिसके कारण 'मनोवैज्ञानिक-उपन्यासों' का जन्म हुआ है ।

उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन :- उपन्यासों में 'मनोविज्ञान' विशेषतः "मनोविश्लेषणशास्त्र' के समावेश के कारण उनके शिल्प में पूर्ण परिवर्तन आ गया है । बीसवीं शती के आरंभ से ही 'मनोविश्लेषणशास्त्र' ने प्रथमतः पाश्चात्य उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता के बीज बोने शुरू कर दिये जिसके कारण सम्पूर्ण विश्व का उपन्यास-साहित्य प्रभावित हुआ । हिन्दी के उपन्यास-साहित्य में भी 'मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा' मनोविश्लेषणशास्त्र' के कारण ही प्रारम्भ हुई । 'आधुनिक मनोविज्ञान के चार सम्प्रदायों-मनोविश्लेषणवाद 1900, प्रयोजनवाद 1908, व्यवहारवाद 1912, आकृतिवाद 1912, ।"[1] ने ही मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा को जन्म दिया । इसके फल स्वरूप उपन्यासों में 'व्यक्ति' के जीवन के विराट चित्र न खींचकर उपन्यासकारों ने केवल व्यक्ति के 'मन' की अगाधता का ही अध्ययन किया। आज के 'मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मानव-चरित्र के स्वीकृत प्रतिमानों को खंडित कर उनके भीतर स्थित वास्तविकता को अनावृत्ति प्रदान की गयी है। इस कोटि के उपन्यासों का प्रमुख कार्य आन्तरिक चेतना को जानना है । वास्तव में प्रतिपल बदलने वाले, विविध प्रकार के आघातों तथा भ्रमावह परिस्थितियों से घिरने वाले जीवन की आन्तरिकता रहस्यमय और अज्ञेय है । किन्तु मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार मन पर आच्छादित आवरणों को बेधकर एक-एक पर्त को खोलने में समर्थ होता है ।"[2]

1- "Contemporary Schools of Psychology"- By Murphy Page17

2-"हिन्दी उपन्यास सृजन और प्रक्रिया" -डा० शिवबहादुर सिंह भदौरिया
प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 95

उपन्यास की मनोवैज्ञानिक व्याख्या के फलस्वरूप शिल्प में अभूत-पूर्व परिवर्तन हुए जिसके कारण जहाँ प्रारंभिक उपन्यासों में 'कथा-तत्व' को प्रमुखता मिलती थी वहीं अब 'चरित्र-चित्रण' को प्रमुखता मिलने लगी। 'मनोविश्लेषण' के प्राबल्य के कारण 'घटना-क्रम' ह्रास की ओर बढ़ता गया और कथानक में बाह्य-उपकरणों की साज-सज्जा न होकर आन्तरिक उपकरण उसके उपजीव्य बनते गये । छोट-छोटी नगण्य व असाधारण घटनाओं द्वारा 'कथावस्तु' की डोर सींची जाने लगी । 'मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार' यह सोचता है कि - - - -

"संभव है कि बड़ी ही महत्वपूर्ण घटना हमारे मस्तिष्क की ऊपरी सतह को थोड़ा सा ही प्रभावित करे और समुद्र के ज्वार-भाटा की भाँति तट को छूकर वापिस चली जाये । इसके विपरीत छोटी औरनगण्य घटनाएं हृदय को भंयकरता के साथ आन्दोलित कर सकती हैं और उनकी ध्वनि और प्रति-ध्वनि हृदय में जीवन-पर्यन्त गूँजती रहती है ।"[1]

यह सब सोचने के पीछे आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान है जिसमें अपनी खोजों व प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति वास्तव में जैसा नहीं है जैसा वह ऊपर से दिखाई देता है । उसके मन में 'क्षणिक बातों' से भी ग्रंथि पड़कर उसके जीवन की दिशा बदल सकती है, जो सामान्य नेत्रों से नहीं दिखलाई पड़ सकती है । इसका कारण पता लगाने के लिए मनो-वैज्ञानिक नेत्रों की ही आवश्यकता पड़ती है। ऐसी ही क्षणिक घटनाओं का

1-"हिन्दी उपन्यास: सृजन और प्रक्रिया"-डा० शिव बहादुर सिंह भदौरिया
प्रथम संस्करण सन् 1981, पृष्ठ 98,99

उत्तम परिपाक 'हेनरी ज्वॉयस' के मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'यूलीसिस' में हुआ है और उनकी व्याख्या के लिए उन्होंने मनोविज्ञान-परक चेतना प्रवाह शैली (स्ट्रीम ऑफ कान्शियसनेस)"[1] को जन्म दिया, जिसमें एक निश्चित मूड में रह कर आन्तरिक जीवन की झांकी दर्शायी जाती है। 'इडेल' लिखते है कि -

"एक बार यदि हम निश्चित मूड में रहते है तो हमें उस प्रवाह में सारा आंतरिक दृश्य दिखलाई पड़ता है।"[2]

उपन्यासों के अधिक मनोवैज्ञानिक हो जाने के कारण उनमें आत्मनिष्ठता बढ़ गयी है, उनका वातावरण मानसिक हो गया है, संवादों में अन्तर्चिंतन (इन्टीरियर मोनोलाग) प्रधान हो गये हैं तथा कथावस्तु प्रस्तुत करने के लिए दो मनोवैज्ञानिक शैलियों की प्रधानता हो गयी है - प्रथम 'पूर्व दीप्ति शैली' और द्वितीय 'आत्म कथात्मक शैली'। चरित्र-चित्रण के लिए उपन्यासकारों ने पूर्ण मनोवैज्ञानिक शैलियां अपनानी प्रारंभ कर दी है। इनमें वे सारी पद्धतियां समा गयी हैं, जिनको एक मनः - चिकित्सक अपने चिकित्सालय में आये मानसिक रोगियों के रोग के निदान के लिए प्रयुक्त करता है। इनमें से मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में प्रयुक्त

1- "Stream of Consciousness"

2- "For once we are within a given mind, we can obviously have, only the inner vision, the point of view of that particular mind."

- By L.Edel

"The psychological Novel" - page 38

होने वाली पद्धतियाँ निम्नलिखित है :-

1- 'अन्तः प्रेरणाओं का चित्रण ।मोटिवेशन।'

2- 'अन्तर्द्वन्द्व' ।इन्टरनल कॉन्फ्लक्ट।'

3- 'अन्तर्विवाद' ।इन्टीरियर मोनोलाग।

4- 'मनोविश्लेषण' ।साइको-एनालिसिस।

5- 'सम्मोहन' ।हिप्नोटिज्म।

6- 'पूर्वदृष्ट' ।क्लेर-वियन्स।

7- 'स्वप्न विश्लेषण' ।ड्रीम-एनालिसिस।

8- 'बाधकता-विश्लेषण' ।रीजस्टेन्स एनालिसिस। इत्यादि

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में उक्त पद्धतियाँ चरित्र-चित्रण के लिए उसी सजगता से प्रयुक्त होती है जैसे - किसी 'मानसिक-चिकित्सालय' में मनःचिकित्सक अपने रोगियों के रोग-निदान हेतु सामान्य रूप से प्रयुक्त करता है । वस्तुतः 'मनोवैज्ञानिक और उपन्यासकार दोनों ही व्यक्ति को समझने की चेष्टा करते हैं । अन्तर केवल यही है कि मनोवैज्ञानिक का संबंध वास्तविक जीवन से है और कथाकार का सम्बन्ध वास्तविकता को कलात्मक ढंग से उपस्थित करने से है । - - - कथा उसका प्रथम प्रेम है । मनोविज्ञान से भी उसका प्रेम तो है पर वह उसका द्वितीय प्रेम है।" ।

पाश्चात्य उपन्यास साहित्य और हिन्दी उपन्यास साहित्य दोनों ही व्यक्ति के जीवन की अन्तर्यात्रा का वर्णन करने के कारण मनोविज्ञान के आश्रयी बने । मनोविज्ञान के क्षेत्र में होने वाले क्रान्तिकारी

1-"साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन" -'देवराज उपाध्याय'
प्रथम संस्करण 1964 ई० , पृष्ठ 2

परिवर्तनों ने समय-समय पर विश्व की उपन्यासधारा को प्रभावित किया है। जीवन में संघर्ष और जटिलतायें बढ़ने के कारण उपन्यासकारों के समक्ष जीवन की सच्ची झांकी प्रस्तुत करने के लिए मनोवैज्ञानिक अस्त्र ही सुगम जान पड़े जिनका उन्होंने सफलता पूर्वक प्रयोग किया। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के बारे में 'डाक्टर त्रिभुवन सिंह' का मत है कि -

"मनुष्य के असली रूप का पता लगाना इन उपन्यासकारों का मुख्य लक्ष्य उठता है अथवा वे अपनी अन्वेषित अनुभूतियों की एक सूची तैयार करना चाहते हैं। वे मनुष्य के संबंध में मनोवैज्ञानिक खोज करना चाहते है तथा मानव-मन के अन्तर्गत प्रदेशों में चलने वाले गहनतम रहस्यपूर्ण विचारों को यथावत् चित्रित कर उसे सर्व सुबोध बनाना चाहते हैं।"[1]

आंग्ल-साहित्य में उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक-व्याख्या की परम्परा:-

आंग्ल-साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यास का जन्म कब हुआ, इस पर आलोचकों में पर्याप्त मतभेद है। वस्तुतः फ्रेंच साहित्य में यथार्थवादी-उपन्यासों के उदय के तुरन्त उपरान्त आंग्ल-साहित्य में भी यथार्थवादी उपन्यासों का जन्म हुआ। यथार्थवादी उपन्यासों में जीवन के विविध पक्षों के चित्रण को ही प्रमुखता प्रदान की जाती है अतः उनमें

1-"हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद"- 'डा० त्रिभुवन सिंह'
तृतीय संस्करण, मेम संग्रहीत संवत् 2018 वि पृष्ठ328

'मानव-मन' का विश्लेषण होने के कारण 'मनोविज्ञान' का प्रवेश अनिवार्य हो जाता है । आलोचकों में 'सैमुअल रिचर्डसन' को अंग्रेजी-साहित्य के प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित किया है। डाक्टर देवराज इसका कारण स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि -

"रिचर्डसन ने अपने सारे उपन्यासों की रचना पत्रात्मक शैली में की है । इस पद्धति के अनुसार कथाकार अपनी ओर से कुछ नहीं कहता और इस तरह पाठकों के रिक्त मस्तिष्क को कहानी से भरकर उनकी कौतूहल-वृत्ति को शांत करने की चेष्टा नहीं करता है । पाठक पत्रों को पढ़ता जाता है और उसी के सहारे कहानी की सृष्टि होती जाती है। इस तरह पात्रों के वैयक्तिक और मानसिक जीवन के सीधे सम्पर्क में आ जाता है। पाठक को पात्रों के आन्तरिक प्रदेश में होने वाले द्वन्द्व को साक्षात् रूप में देखने का अवसर मिलता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का लक्ष्य भी यही है।"[1]

यद्यपि 'रिचर्डसन' से पूर्व 'डेनियल-डेफो'[2] ने 'रॉबिन्सन क्रूसो'[3] और 'मॉल-फ्लैन्डर्स'[4] नामक दो उपन्यास अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखे परन्तु इनके विषय जीवन से सम्बन्धित नहीं थे । अतः इन्हें वास्तविक अर्थों में उपन्यासकार नहीं माना गया'[5]

1-"जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन"- डा०देवराज उपाध्याय संस्करण सन् 1972 ई० पृष्ठ 1

2-"Daniel Defoe"
3-"Robinson Crousoe"
4-"Moll Flanders"
5-"See-"The History of the English Novel"-Vol.III By-E.Baker, Page 223,252

वस्तुतः 'रिचर्डसन' ने ही अंग्रेजी उपन्यास में 'मनस्तत्व' को प्रवेश देकर सामाजिक-वातावरण में व्यक्ति का विश्लेषण यथार्थवादी शैली में किया। उनके 'पामेला' 1740' [1] 'क्लेरिस्सा' 1948' [2] और 'चार्ल्स ग्रैण्डिसन' 1754' [3] तीनों ही उपन्यास पत्रात्मक शैली में लिखे गये हैं।

तदुपरान्त 'हेनरी फीलडिंग' ने भी 'मानव-मन' के विश्लेषक उपन्यासों की सृष्टि की जिनमें 'जोसेफ एन्ड्रोज' 1742, 'टॉम-जॉन्स' 1746-49, व 'अमेलिया' 1751, प्रमुख है। इनके समकालीन 'स्मालेट', 'गोल्डस्मिथ' आदि ने यथार्थवादी उपन्यासधारा को काफी पुष्ट किया है। 'मिस बेनेबर्नी' [4] 'जेन आस्टिन' [5] व 'ब्रान्टे बहनों' [6] ने उपन्यासों में स्त्रियों के स्वर को प्रबल किया है। "शिल्प-कौशल की दृष्टि से 'जेन-आस्टिन' की कृतियाँ स्वल्प, कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद तथा सेटिंग के निर्दोष रूपों को प्रस्तुत करती है।" [7]

1- "Pamela"
2- "Clarissa"
3- "Charles Grandison"
4- "Miss Fanny Burney"
5- "Jane Austen"
6- "Brontes sisters" - Chartpey, Bronter & Emile Bronte

4- "उपन्यास : तत्व एवं स्वरूप"- डा० श्री नारायण अग्निहोत्री
प्रथम संस्करण सन् 1962 ई० पृष्ठ 93

उनके प्रमुख उपन्यासों निम्नलिखित उल्लेखनीय है :-

1- 'सेन्स एण्ड सेंसिबिलिटी' 1811,

2- 'प्राइड एण्ड प्रिजुडिस' 1813,

3- 'मैन्सफील्ड पार्क' 1814,

4- 'एम्मा' 1814,

इन सभी उपन्यासों में 'हृदय-तत्व' को लेकर मानव के जीवन के विविध तन्तुओं का उद्घाटन हुआ है। 'जेन आस्टिन' के मनोवैज्ञानिक शिल्प-कौशल की समीक्षा करते हुए डा० गणेशन लिखते हैं :-

"उनके पात्र साधारण मानव-गुणों के साथ-साथ अपने वर्गीय तथा वैयक्तिक गुणों से भी युक्त होने के कारण बहुत ही मार्मिक बने है।"[1]

'जेन-आस्टिन' के बाद आंग्ल-उपन्यास-साहित्य में 'सरवाल्टर-स्कॉट' के अतिरिक्त कोई उल्लेखनीय उपन्यासकार नहीं हुआ। 'स्कॉट' ने आंग्ल-साहित्य में विविध कथानकों वाले उपन्यासों की बौछार सी कर दी। उनके अधिकांश उपन्यास ऐतिहासिक-धरातल पर लिखे गये। कुछ उपन्यासों में सामाजिकता का पूर्ण समावेश है। उनके उपन्यासों में 'स्वच्छन्दतावाद' के कारण विचित्रता पूर्ण कौतूहल कथानकों का विस्तार है लेकिन मानव की अगाधता का अध्ययन नहीं है। 'गाय मैनरिंग' 1815, 'हार्ट ऑफ मिडलोथियन' 1818, 'वेवली' 1819, 'आईवन हो' 1819

1-"हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन" -'डा० गणेशन'
प्रथम संस्करण सन् 1962 ई० पृष्ठ 93

व 'कैमिल वर्थ' 1823, इत्यादि उपन्यास ऐतिहासिक धरातल को लेकर सृजित हुए हैं ।

'रिचर्डसन' और 'फीलिंडग' से चलकर आगे बढने वाले 'आंग्ल उपन्यास यथार्थवाद के ही सहारे आगे बढ़े । 'स्कॉट' के उपन्यासों में कथावस्तु ऐतिहासिक है । इनके परवर्ती 'डिकेन्स' और 'थैकरे' ने इस परम्परा को अग्रगामी बनाया । 'डिकेन्स' को अपनी बचपन की छोटी से अवस्था में ही समाज की क्रूरता का शिकार होना पड़ा था, अतः वे कुरीतियों और अनीतियों के प्रति सजग थे । उनके 'समाज-मनोविज्ञान' को लेकर चलने वाले कुछ प्रमुख उपन्यास निम्नलिखित है :-

1- "A Tale of Two Cities" 1859

2- "Oliver twist" 1838

3- "David copperfield" 1850

इनके इन उपन्यासों में समाज के विशाल पट पर पात्रों के 'राग-द्वेष' व सुख-दुःख का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है । 'डा० गोहल' इनके पात्रों की समीक्षा करते हुए लिखते है :-

"अत्याधिक भावुकता और तीव्र शोकात्मकता के कारण उनके पात्र कभी-कभी अविश्वसनीय और बायवीय हो जाते हैं।"[1]

1-"हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन"- 'डा० गोहल'
प्रथम संस्करण सन् 1962 ई० पृष्ठ 98

'डिकेन्स' और 'थैकरे' उपन्यासों में वस्तुनिष्ठ-यथार्थवाद का आग्रह था । उनमें बाह्य जीवन की उथल-पुथल ही अधिक प्रधान थी। फलस्वरूप प्रतिक्रियास्वरूप आंग्ल-साहित्य में 'ब्रान्टे-सिस्टर्स'-शार्लट एवं एमली-ब्रान्टे, 'जार्ज इलियट', 'जार्ज मेरीडिथ" इत्यादि ने बाह्य जीवन के यथार्थ चित्रण के स्थान पर मानव जीवन के अन्तर्जगत में उतर कर मानसिक-प्रवृत्तियों के उद्घाटन को महत्व देना प्रारम्भ किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आंग्ल-उपन्यास-साहित्य मानव-मन की अगाधता की ओर अग्रसर हुआ। 'कलात्मक चारुता' के गुरु-तर भार को वहन करता हुआ आंग्ल-उपन्यास-साहित्य अब मानव जीवन की सूक्ष्म-प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर होने लगा । 'जार्ज इलियट' के अंतिम उपन्यास 'डेनियल डोरान्डो' 1876, के पात्र चित्रण, 'ग्रंथि-पीड़ित' और 'अन्तर्मुखी' हो गये । 'बेकर' के अनुसार 'जार्ज इलियट' सत्य को लेकर चलती थी।"[1]

उनके सभी उपन्यासों में अत्यन्त वैयक्तिकता, वासनाजन्य दुर्बलताओं और अन्तर्द्वन्द्वों का ही प्राधान्य है । चाहे वह 'मिल आन फ्लॉस' हो या 'रिमोला', चाहे वह 'मिडिल-मार्च' हो या 'डेनियल-डोरान्डो' ।

1- "In George Iliot truth was a doctrine and a conviction to which she held with religious devotion."

By- E.Baker.

"The History of English Novel" - Vol.III Page 223

'जार्ज मेरिडिथ' के उपन्यास भी व्यक्तिवादी है । उनके उपन्यासों में भी मानव-जीवन के प्राकृतिक दृश्य है ।"[1]

व्यक्ति और समाज के बीच संघर्ष के दिखाने वाले उपन्यासकारों में 'टामस-हार्डी' ने ट्रेजेडी पूर्ण पात्रों की सृष्टि की है । 'हार्डी' के पात्रों में कोई हल्कापन नहीं है । 'द रिटर्न ऑफ नेटिव', 'मेयर ऑफ कास्टरब्रिज' हार्डी की महानतम कृतियां है, जिनमें जिन्होंने 'मानव-मन' का सूक्ष्म विश्लेषण किया । बीसवीं शती के प्रारंभ के साथ 'हेनरी जेम्स' जैसे महान मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार का 'आंग्ल-उपन्यास-जगत में प्रवेश हो चुका था। यद्यपि उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध नग्न-प्रकृतवादी उपन्यासों का युग बन चुका था, परन्तु बीसवीं शती में हुए प्रथम विश्वयुद्ध ने मनोविज्ञान का क्षेत्र में होने वाली विविध क्रान्तियों ने आंग्ल-उपन्यास-साहित्य में नवीन विचारधाराओं का सूत्रपात किया। बीसवीं शती में आंग्ल-उपन्यासधारा मनोविज्ञान की नूतन खोजों से प्रभावित होकर दो रूपों में बट निकली - प्रथम समाज विश्लेषक, द्वितीय व्यक्ति-विश्लेषक; समाज - विश्लेषक उपन्यासों में समाज और सभ्यता से मानव के संघर्ष का सूक्ष्म अंकन हुआ है । ऐसे उपन्यासों के प्रणेता थे - 'एच०जी०वेल्स', हेनरी-जेम्स' सेमुअल बटलर' 'गाल्सवर्दी', 'फार्स्टर', व 'हक्सले' इत्यादि । गाल्सवर्दी' पर 'फ्रॉयड' 'एडलर' व'जुंग' के मनोविश्लेषणवादी-सम्प्रदायों का

1- "From Natures parental dealings with men and from the success of those who devoutly serve, Meridith deduces the laws of man's life". E.Baker.
"The history of English Novel" -Vol.III. Page 297

विशेष प्रभाव पड़ा । द्वन्द्व और संघर्ष इनके परवर्ती उपन्यासों का प्राण है। 'मेड इन जेर्मनी' 1931, 'फ्लावरिंग ऑफ वाईल्डरनेस 1932, तथा 'अदर-रिवर' 1933, इन सभी में वंशानुक्रम और वातावरण के बीच विकसित होने वाले संघर्ष शील जीवन को चित्रित किया है ।

यद्यपि 'समाज-चित्रलेखक' उपन्यासों में भी वैयक्तिक भावों व विकारों का चित्रलेखन अवश्य हुआ है परन्तु ये सामाजिक पृष्ठभूमि से जुड़े होने के कारण पूर्ण मनोवैज्ञानिक नहीं कहे जा सकते ।

लगभग 1913 के मध्य आंग्ल-उपन्यासों के क्षेत्र में नवीन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों व विधि-प्रविधियों को लेकर चलने वाले पूर्ण व्यक्तिवादी उपन्यासों की रचना प्रारंभ हुई जिन्हें मनोवैज्ञानिक-उपन्यासों के नाम से जाना जाता है । 'डा० रामशोभित प्रसाद सिंह' पाश्चात्य-साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यास परम्परा के आगमन के बारे में लिखते हैं:-

"पश्चिमी साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यास का जन्म प्रथम महायुद्ध 1914-1918 के समय सन् 1913 और 1915 के बीच हुआ । ---- प्रथम विश्वयुद्ध के आरंभ में 'रिमेम्बरेन्स ऑफ-दि थिंग्स पास्ट' 'पिलग्रेमेज', ए पोर्ट्रेट ऑफ दि आर्टिस्ट एज ए यंगमैन' नामक उपन्यासों के साथ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का आरंभ हुआ।" 1

1-"हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दोत्तर काल" - 'डा० रामशोभित प्रसाद सिंह' प्रथम संस्करण सन् 1981 ई० पृष्ठ 11

'सेक्स', 'दमित-वासनाएं', 'वंशानुक्रम', 'व्यक्ति की मूल प्रेरणाएं' इत्यादि इस युग के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के मूल आधार हैं । इस उपन्यास-धारा के प्रमुख लेखक हैं :- "डी०एच०लारेन्स', मिस मई - सिंक्लेयर', 'मिस रेबेका वेस्ट', 'मिस डोरोथी रिचर्डसन', 'वर्जीनिया-वुल्फ' व 'बेनेट-अर्नाल्ड' इत्यादि । इन सभी उपन्यासकारों ने आंग्ल-उपन्यास जगत को मानसिक जलवायु देकर उसे पूर्ण मनोवैज्ञानिकता प्रदान की।

'लारेन्स के प्रमुख उपन्यास हैं :-

1- 'सन्स एण्ड लवर्स ' 1913 ई०
2- 'रेनबो इन लव' 1920 ई०
3- 'द लास्ट गर्ल' 1920 ई०
4- 'अरान्स राड' 1922 ई०
5- 'कंगारू' 1923 ई०
6- 'लेडी चेटर्लीज लवर' 1928 ई०

सब के सब उपन्यास जीवन के 'योन-पक्ष को लेकर चलते हैं और लैंगिक-प्रेम में असफल तथा 'काम-ग्रंथियों' के शिकार असामान्य व दुर्बल पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अत्यन्त गहनता से करते हैं । 'फ्रॉयड', एडलर' व 'युंग' आदि के विविध सिद्धान्तों के सहारे वे मानव के अचेतन-मन की गहरी पकड़ करने में सक्षम हैं।

'डोरोथी रिचर्डसन', 'मई सिंक्लेयर' तथा 'रेबेका वेस्ट' तीनों ही के उपन्यास 'सेक्स-समस्या' से आक्रान्त हैं।'डीडयस-ग्रंथि' व 'इलेक्ट्रा-ग्रंथि' का तो इतना जमघट है कि एक बार यदि किसी एक उपन्यासकार

का उपन्यास पढ़ा जाए तो अद्यंत उसी ग्रंथि का प्रकोप दिखता है । सभी ने 'अस्वस्थ-मनोविज्ञान' (असामान्य-मनोविज्ञान) को साग्रह अपने उपन्यासों में स्थान दिया है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों ने अपने परम्परा से 'चेतना-प्रवाह-शैली' का निगमन किया । 'जेम्स-ज्वॉयस' का 'यूलीसिस' तो 'चेतना-प्रवाह-शैली' का सर्वोत्तम उदाहरण है ।

"हिन्दी-साहित्य में उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की परम्परा":-

उन्नीसवीं शती में पश्चिम की औद्योगिक क्रांति और पूँजीवाद के विकास ने 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य' को ही जन्म नहीं दिया अपितु परम्परागत बुर्जुवा मनोवृत्ति में भी नये ढंग से वृद्धि की । बुर्जुवा मनोवृत्ति का यह नया विकास, अपने साफल्य के गर्व में चूर इस बुर्जुवा वर्ग के लिए ही घातक सिद्ध हुआ । उसमें वैयक्तिक अहं का प्रवेश हो गया। उसकी मानव-शोषक-प्रवृत्तियां निम्नवर्ग और अशक्त मानव-जीवन का अभिशप्त करने लगीं अपने गर्व में चूर यह बुर्जुवा वर्ग जहाँ एक ओर निम्नवर्ग के लिए अमानुषिक व्यवहार रखता था । वहीं अपनी उच्चता और श्रेष्ठता का डंका भी पीटता फिरता था। इस प्रकार अपनी ही विरोधी वृत्ति के कारण जब उसके अहं पर चोटें पड़ने लगीं तो उसकी असलियत की कलई खुलने लगी । अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए वह ऊपरी तौर पर बदलने लगा परन्तु उसके अन्तर्मन में पूर्वसंचित भावनाएं और अधिक प्रबल होती गयीं । फलतः इस द्वन्द्वात्मक जटिलता के कारण वह आत्मकेन्द्रित होता गया । कार्ल मार्क्स आदि के आगमन ने

बुर्जुवा वर्ग की व्याख्या द्वारा उसे और अधिक धक्के पहुँचाए । सबसे जबर्दस्त धक्का तो बुर्जुवा समाज को फ्रॉयड ने दिया । फ्रॉयड ने अपने 'मनोविश्लेषणवाद' द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि आज का सभ्य मनुष्य जिन धार्मिक और नैतिक विश्वासों पर जी रहा है वे सब उनकी दमित वृत्तियों के ही प्रतीक हैं । उसने बताया कि मनुष्य की सभ्यता तो केवल बाहरी नकाब भर है, अन्दर से वह बिल्कुल नंगा है । फ्रॉयड की इस मनोवैज्ञानिक व्याख्या से बुर्जुवा समाज बुरी तरह घबरा उठा और स्वयं को नये-नये आवरणों से ढकने के प्रयास में वह वर्जनाओं का शिकार होने लगा । परिणामतः वह एक जटिल-मानव बन गया ।

मध्यवर्ग में भी शिक्षित वर्ग जटिलताओं से ग्रस्त हो गया इन जटिलताओं के दो कारण थे - पहला 'बौद्धिक युग की चिन्तनवृत्ति, दूसरा 'जीवन में संघर्ष की प्रबलता'। स्पर्धाओं के इस युग ने आज व्यक्ति में जटिलताओं का भयंकर समावेश कर दिया है । आज के बौद्धिक युग में, भौतिक युग में इस जटिल-मानव का अध्ययन पुरानी परिपाटियों द्वारा संभव न हो सकता, अतः 'मनोविश्लेषण-प्रणाली' ने उपन्यास-जगत में प्रवेश किया । उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध से लेकर बीसवीं शती तक विभिन्न मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों का जन्म हुआ जिससे विश्व का 'उपन्यास-साहित्य' भी अछूता न रहा । फ्रॉयड, एडलर, युंग व वाट्सन इत्यादि के प्रयोगों और उनके सिद्धान्तों ने आंग्ल-उपन्यास-साहित्य के अतिरिक्त फ्रेंच और रूसी उपन्यास साहित्य को भी प्रभावित किया है ।

इधर भारत में भी 'फ्रॉयड', 'एडलर', जुंग इत्यादि के विचारों का संक्रामक रोग तेजी से फैलने लगा । विश्व युध्द के बाद प्रत्येक राष्ट्र का नैतिक पतन आरम्भ हो गया । अर्थाभाव के कारण जहाँ विकृतियों का ताण्डव-नर्तन हो रहा था, वहीं आवास और वस्त्रहीन, क्षुधित, अभाव-ग्रस्त व्यक्तियों को नाना प्रकार के मनोविकारों ने धर दबाया। युध्दकाल में धनी व्यक्ति पागल हो गये । सैनिकों की स्थिति ने फ्रॉयड जैसे विचारकों को अच्छा मौका दिया कि वे विविध मनोवैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा मन के विविध स्तरों की खोजबीन कर सकें । फ्रॉयड की विचारधारा और युध्दोत्तर कालीन परिस्थितियाँ साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की प्रेरणा स्रोत बनीं । यद्यपि भारत में युध्द का प्रभाव कम पड़ा लेकिन ब्रिटिश शासन की जोंक भारतीयों को चूँसती रही । कहीं बंगाल के अकाल ने देश को त्रस्त किया तो कहीं अंग्रेजों और भारतीयों के संघर्षों में अनेक लोग मारे गये । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्थिति यह आ गयी कि लोग सामाजिक और पारिवारिक दृष्टि से विघटित होने लगे। इसका प्रमुख कारण था अर्थाभाव। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बहुत से नेता देश की सेवा के बजाय अपनी सेवा करने लगे । परिणाम यह हुआ कि देश में कुण्ठा,संत्रास आदि बढने लगा और अनैतिकता का साम्राज्य छाने लगा । भारत में आर्थिक और सामाजिक विषमताएं इतनी बढ गयीं थीं कि भारतीय उपन्यास अर्थ पीड़ित व्यक्तियों की गाथा गाने लगे । आर्थिक विषमताओं ने नारी

को भी विद्रोहमयी एवं कुण्ठित बना दिया। समाज में बढ़ी विकृतियों ने उपन्यासों को एक मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया । जहाँ एक ओर भारतीय मानव कुण्ठाग्रस्त हो उठा वहीं ब्रिटिश राज्य में अध्ययन की सुविधाओं ने भारतीय उपन्यासकारों को पाश्चात्य साहित्य भी पढ़ने का मौका दिया। फलतः भारतीय उपन्यासों की 'मनोवैज्ञानिक - व्याख्या' हेतु अन्य प्रेरणा स्त्रोत भी तैयार हो गये । हिन्दी उपन्यासों ने अंग्रेजी उपन्यासों, फ्रेंच, रूसी, तथा बंगला उपन्यासों से प्रभावित होकर मानव-मन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करनी प्रारम्भ कर दी।

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के पश्चात अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन तीव्र गति से होने लगा । फलतः इसका प्रभाव भारतीय-साहित्य पर भी पड़ा, विशेष रूप से उपन्यास साहित्य पर ।

प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास यद्यपि सामान्य रूप से ही आंग्ल-उपन्यासों से प्रभावित हुए परन्तु प्रेमचन्द्र-युगीन उपन्यासों पर अंग्रेजी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का विशिष्ट प्रभाव पड़ना आरम्भ हो चुका था। ऐसा लगने लगा जैसे प्रेमचन्द्र हिन्दी उपन्यास-साहित्य के 'हार्डी' हों । जिस प्रकार 'टामस हार्डी' ने मानव की विविध चेष्टाओं के यथार्थ मनो-वैज्ञानिक अध्ययन की शुरुआत की, उसी प्रकार प्रेमचन्द ने भी मानव के 'चरित्र' का उद्घाटन किया । प्रेमचन्द्र पर आंग्ल उपन्यास-कार, 'स्काट' के प्रभाव का वर्णन करते हुए 'डा० लक्ष्मीकान्त सिन्हा' लिखते हैं :-

"स्कॉट आदर्श के दर्शन से प्रभावित है । प्रेमचन्द इसी दर्शन से प्रभावित है ।"[1]

बीसवीं शती के अंग्रेजी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रभाव प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों पर अधिक पड़ा । इन उपन्यासों में जैसा मनोवैज्ञानिक प्रभाव समाविष्ट हुआ जो व्यक्ति के अंतर्जगत् में प्रविष्ट होकर उसके सूक्ष्मतम तत्वों का अध्ययन करता है । डा० एस०एन० कपूर के अनुसार-

"इन उपन्यासों में सेक्स, वैराग्यवृत्ति की [हेरेडिटी], दमित-वासनाजनित असामान्य प्रवृत्तियाँ, व्यक्तियों के पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण की मूल प्रेरणायें, मन, वचन एवं कर्म का वैषम्य आदि इसके मुख्य विषय हैं।"[2]

अंग्रेजी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार 'हेनरी जेम्स' का प्रभाव सम्पूर्ण उपन्यास-साहित्य पर पड़ा। जिस प्रकार उसने बाह्य घटनाओं को तिरस्कृत करके पात्र के अन्दर की वस्तुओं को नाटकीय-कौशल से व्यक्त करने का प्रयास किया, उसका प्रभाव अन्य समकालीन उपन्यासों पर पड़ा जिससे उन्हें मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण हेतु आधार मिला । अंग्रेजी के उपन्यासों का हिन्दी उपन्यासों की सर्जना में व्यापक प्रभाव पड़ा है। अज्ञेय, जोशी और जैनेन्द्र ने जिस कौशल से उक्त मनोवैज्ञानिक तत्वों को अपने उपन्यासों

1- "हिन्दी उपन्यास-साहित्य का उद्भव और विकास" -
'डा० लक्ष्मीकान्त सिन्हा' पृष्ठ 154

2-"हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन' - डा० एस०एन०कपूर
प्रथम संस्करण सन् 1962 ई० पृष्ठ 113

में उतारा है उससे यह स्पष्ट है कि अंग्रेजी उपन्यासों ने भारतीय हिन्दी उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या का मार्ग प्रशस्त किया। जैनेन्द्र के 'सुखदा', 'विवर्त', 'कल्याणी', 'परख', 'त्याग-पत्र' आदि सभी उपन्यास पाश्चात्य आंग्ल उपन्यासों से प्रभाव ग्रहण करते हैं। डा० शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार-

"मनोविश्लेषण के इन निष्कर्षों का योरोपीय तथा साहित्य पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। श्रीमती 'वर्जीनिया' वुल्फ' 'जेम्स-ज्वायस', 'मार्शल प्रूस्ट', 'आंद्रे जीद' आदि प्रसिद्ध उपन्यासकारों ने मानसिक संस्कारों, मनोग्रंथियों एवं मन की संचरण भूमियों को ही प्रधान आधार बनाकर अपने कथानकों का निर्माण किया है। हिन्दी में सर्वप्रथम जैनेन्द्र ने व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व को अपने उपन्यास का मूल आधार बनाया और व्यक्ति के अन्तर्मन को विक्षुब्ध करने वाली भावनाओं का सूक्ष्मा-तिसूक्ष्म अंकन किया।"[1]

इलाचन्द जोशी मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों से अधिक प्रेरित है। उनका ज्ञान केवल भारतीय साहित्य तक ही सीमित न था अपितु विश्व के अनेक साहित्यों तक उनकी गहरी पैठ थी। अतः इनका

1-"हिन्दी उपन्यास- "डा० शिवनारायण श्रीवास्तव'
प्रथम संस्करण संवत् 2016 विक्रमी, पृष्ठ 302

प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ना नई बात नहीं थी वे स्वयं स्वीकार करते हैं :-

"जीवन, जगत और मानवीय अवचेतना सम्बन्धी मेरी अपनी खोज में ये तीनों तत्व सहायक सिद्ध हुए हैं- 1- फ्रॉयड, युंग इत्यादि पेशेवर मनोवैज्ञानिकों की कृतियों से सहज ज्ञान, 2- जीवन की विराटता के प्रत्यक्षद्रष्टा कथाकारों की रचनाओं से गहनतर ज्ञान और 3- स्वयं प्रत्यक्ष रूप से जीवन के नग्नतम और कटुतम अनुभवों से प्राप्त मूल प्रेरणा-दायक ज्ञान।"[1]

'लज्जा', 'पर्दे की रानी', 'संघाती', और 'निर्वासित' इन सभी उपन्यासों के अधिकांश पात्र 'मर्ड सिंक्लेयर' तथा 'वर्जीनिया वुल्फ' के पात्रों की भाँति मानसिक रोगों से ग्रस्त हैं, वे स्वयं अपने को समझ नहीं पाते।

'अज्ञेय' के उपन्यास 'मनोवैज्ञानिक नियतिवाद से प्रभावित हैं। ये प्रणाली 1915 ई० में 'डोरोथी रिचर्डसन' के उपन्यास 'पजल्टेड रूफ' में प्रयुक्त हुई थी। 'शेखर एक जीवनी' का शेखर बाल्यकाल से ही मानसिक ग्रंथियों द्वारा संचालित है।

'उपेन्द्रनाथ अश्क' भी आंग्ल-उपन्यासकारों 'वर्जीनिया वुल्फ' तथा 'गाल्सवर्दी' से प्रभावित हैं। उनका उपन्यास 'गिरती-दीवारें' सेक्स, विवाह, आर्थिक सामाजिक समस्याओं से उत्पन्न संघर्षों के चित्र प्रस्तुत करता है। डा० शिवनारायण श्रीवास्तव ने 'गिरती-दीवारें' में

1-"अनुचिन्तन" 'इलाचन्द्र जोशी', प्रथम संस्करण 1983 ई० पृष्ठ 13

आंग्ल उपन्यासकारों के प्रभाव के बारे में लिखा है :-

"जहाँ तक इस उपन्यास के स्थ शिल्प का सम्बन्ध है, लेखक ने अनेक पाश्चात्य उपन्यासकारों के प्रभाव को स्वयं स्वीकार किया है। इनमें 'रोमारोल्यां' के 'जीनक्रिस्टाफी', 'गाल्सवर्दी' के 'फार साइटी-सागा' और 'वर्जीनियावुल्फ' के 'चेतना प्रवाह' सम्बन्धी उपन्यास प्रमुख हैं। कई पीढ़ियों की परम्परागत पारिवारिक विशिष्टताओं के साथ सामाजिक इतिहास प्रस्तुत करने की कला लेखक ने गाल्सवर्दी तथा अर्नाल्ड बेनेट' जैसे उपन्यासकारों से पाई है। चेतन के मानसिक प्रवाह के लिए 'जेम्स जेतोवे' और 'वेब्ब' का नमूना लिया है।"[1]

इसी प्रकार 'धर्मवीर भारती', 'प्रभाकर माचवे', 'राँगेय राघव' डा० देवराज', 'भगवती चरण वाजपेई' इत्यादि उपन्यासकारों ने 'आंग्ल-उपन्यासों से प्रभावित होकर हिन्दी उपन्यासों में 'मनोवैज्ञानिकव्याख्या' की परम्परा को आगे बढ़ाया है।

आंग्ल-उपन्यासों के अतिरिक्त उन्नीसवीं शती के पाश्चात्य फ्रेंच उपन्यासों में भी हिन्दी उपन्यासों में मानव की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की परम्परा का सूत्रपात किया। 'फ्लाबेयर' के उपन्यासों के साथ फ्रेंच उपन्यासों में विश्लेषण की प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ। 'मादाम-बोवारी' उपन्यास की नायिका उस सम्पूर्ण मानव जाति का इतिहास प्रस्तुत करती है जो सहस्त्रों वर्षों से पाशविक प्रवृत्तियों से मुक्त होने में असमर्थ रहीं है।

1- "हिन्दी उपन्यास" -'डा० शिवनारायण श्रीवास्तव'
प्रथम संस्करण सम्वत् 2016 वि० पृष्ठ 377

हिन्दी उपन्यास 'फ्लाबेयर' और 'मोपासां' आदि के प्रभावों से बच नहीं सके है । इन उपन्यासकारों के उपन्यासों में नायक तो है लेकिन कथा-संचालन की डोर उनके हाथ में नहीं है। हिन्दी उपन्यासों पर प्रेम उपन्यासों के प्रभाव की व्याख्या करते हुए डा० भदौरिया लिखते हैं:-

"हिन्दी उपन्यासों में 'गोदान' (प्रेमचन्द) के होरी, 'दादा-कामरेड' (यशपाल) के दादा, 'गिरती दीवारें' (अश्क) के बेलन, 'तीनवर्ष' (भगवती चरण वर्मा) के रमेशचन्द्र, 'रीलाथ की चाची' (नागार्जुन) के रीलाथ आदि नायक है किन्तु कथा-संचालन में उनका हाथ नहीं के बराबर है।"[1]

प्रेम उपन्यासकारों ने बीसवीं शती तक आते-आते मनोविज्ञान विशेष रूप से 'मनोविश्लेषण' को उपन्यासों में और अधिक प्रगाढ़ता प्रदान की है। मात्र प्रवृत्तियों को लेकर उनका विश्लेषण करने वाले प्रेम लेखकों में 'आन्द्रे जीद', 'मारिया मन्तरला', 'सार्त्र' आदि प्रमुख है । 'आन्द्रे जीद' के 'ली इम्मोरीलस्ट-1902' में समलैंगिक प्रेम और मनुष्य की जन्मजात 'क्राइम इन्सटिंक्ट' की विस्तृत व्याख्या है । 'ला पोर्ट इट्रोइट' की नायिका मानसिक द्वन्द्वों का सामना करती हुई मर जाती है। स्पष्टतः 'आन्द्रे जीद के उपन्यासों में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तत्वों के विश्लेषण का प्राधान्य है । 'फ्लो मारिया' के उपन्यास भी पाप और वासना को

1-"हिन्दी उपन्यास, सृजन और प्रक्रिया"- डा० शिव बहादुर सिंह भदौरिया प्रथम संस्करण सन् 1981 ई० पृष्ठ 84

सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषित करते हैं । 'लेस एंजिस नोयर' जैसे उपन्यासों में कथानक गौण है और 'व्यक्ति की आन्तरिक-ता' को विश्लेषित करने का अद्भुत प्रयास है । वैवाहिक जीवन की असंगतियों, कुंठाओं और न सुलझ पाने वाली उलझनों का मार्मिक रूप में चित्रण इनके उपन्यासों की विशेषता है ।

'आन्द्रे मलरों' की औपन्यासिक रचनाओं में व्यक्ति के सूक्ष्म स्पन्दनों का अंकन है । इनके 'लेस कांकर आंद्स', 'ला वाय रायल' आदि उपन्यासों में उथल-पुथल भरे वातावरण में संघर्ष करते मनुष्य के जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण है ।

हिन्दी उपन्यासकारों में उक्त फ्रेंच उपन्यासकारों के उपन्यासों का व्यापक प्रभाव रहा है ।'आन्द्रे जींद' आदि की भांति ही 'जैनेन्द्र', 'जोशी' और अज्ञेय के पात्र बाह्य प्रतिक्रियाओं से प्रभावित होते हुए अपने अन्तस् के मनोविकारों को प्रकट करते चलते हैं । 'जैनेन्द्र' के अंतिम उपन्यासों में 'मारिया', 'जींद', पुस्त' के पात्रों की तरह मनोविकारों को मूर्त रूप देने वाले मानसिक दृश्यों का भली-भांति अंकन हुआ है।'अज्ञेय'का शेलर क्रिस्ताफी के समान ही 'अहं', 'सेक्स' और'भय' आदि मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर जूझता रहता है । यह तथ्य नकारा नहीं जा सकता कि अंग्रेजी उपन्यासों की तरह फ्रेंच उपन्यासों ने भी हिन्दी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक व्याख्या की परम्परा के लिए प्रेरण-स्त्रोत का कार्य किया है ।

उन्नीसवीं शती में रूसी उपन्यासों ने भी व्यक्ति विश्लेषण की

परिपाटी पर चलते हुए अनेक मनोवैज्ञानिक कृतियों का निर्माण किया। समाज की बुराइयों को उन्होंने मनोविज्ञान के सन्दर्भ में देखा। उनके उपन्यास देशकाल की सीमाओं में न बंधकर सम्पूर्ण मानव-जगत् के चिरकालिक भावनात्मक पात्र हैं। 'तुर्गनेव', 'टालस्टाय', 'दास्तायवस्की' आदि के उपन्यासों में मानसिक जगत् को महत्व दिया गया था किन्तु बाद में इनका तिरस्कार व्यक्ति की प्रमुखता को नष्ट कर गया। हिन्दी में 'रांगेय राघव' के 'विषादमठ' और 'सीधा-सादा रास्ता' तथा भगवती चरण वर्मा' के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' आदि उपन्यासों के नायकों की स्थिति भी रूसी उपन्यासों के नायकों जैसी ही है।

'मैक्सिम गोर्की' ने बीसवीं शती में ऐसे उपन्यासों की रचना की जिनमें आत्मकथात्मकता की प्रधानता है। रूसी उपन्यासकारों की मूल-प्रेरणा यथार्थवाद है फिर भी मानवतावाद तथा मनोवैज्ञानिकता का भी निरूपण हुआ है। हिन्दी के उपन्यासकारों ने रूस के यथार्थवाद का आश्रय लेकर अपने उपन्यासों में 'मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद' को आधार बनाया।

भारत में बंगला उपन्यासों ने भी हिन्दी-उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक व्याख्या की परम्परा का सूत्रपात किया। 'बंकिम बाबू', 'रवीन्द्रनाथ - टैगोर', 'शरदचन्द्र चट्टोपाध्याय' आदि ने हिन्दी के प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों को एक नई दिशा दी। 'शरद बाबू' ने अपने उपन्यासों में 'साइन्स आफ इमोशंस' का प्रयोग किया है। शरद चन्द्र ने व्यक्ति की 'मनोवैज्ञानिक विकृतियों को तो अपने उपन्यासों का उपजीव्य बनाया

लेकिन उन पर रूमानी रंग चढ़ाकर उनके विश्लेषण से परे हट गये। रवीन्द्र-नाथ टैगोर' और 'शरतचन्द्र' में मनोविकारों को चित्रित करने की अद्भुत क्षमता थी । 'शरद' के श्रीकान्त, देवदास, बड़ी बहन, पथ के दावेदार, टैगोर' का घरे-बाहिरे, विमल मित्र का 'साहब-बीबी-गुलाम', 'विभूति-भूषण' का 'पथेर पांचाली' हिन्दी उपन्यासों को एक नई दिशा देने का रास्ता दिखाते हैं । हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार :-

"बंगाली उपन्यास लेखकों की सजीली भावुकता के साथ पश्चिम से आयी रोमांस परम्परा का ऐसा सुन्दर योग हुआ कि उस काल का समूचा भारतवर्ष उसके सर्वग्रासी प्रभाव की लपेट में आ गया। पड़ोसी भाषा होने के कारण हिन्दी पर उनका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा।" [1]

इस प्रकार अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी और बंगला उपन्यासों ने मानव-मन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करके हिन्दी उपन्यास-साहित्य को मानव मनोवैज्ञानिक व्याख्या के लिए प्रेरित किया।

जहाँ एक ओर विश्व के उपन्यास-साहित्य ने मानव-मन का अध्ययन और विश्लेषण प्रारम्भ कर दिया, वहीं दूसरी ओर हिन्दी उपन्यास ने उन सबके आधार लेकर और मनोविज्ञान की मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा का अवलम्बन करते हुए अपनी अलग मनोवैज्ञानिक धारा बनायी। प्रेमचन्दो-त्तर काल में जैसे-जैसे मनोविज्ञान का विकास, होता गया वैसे-वैसे इसके साहित्य में नवीन प्रयोगों पर बल दिया जाने लगा। प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों

1-"हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली" - भाग-3
प्रथम संस्करण - अगस्त 1981 ई०, पृष्ठ 487

तक जिस स्वाभाविक मनोविज्ञान को अधिक महत्व दिया जाता था वही प्रेमचन्दोत्तर युग में आकर गौण हो गया। इस समय 'साम्प्रदायिक-मनोविज्ञान की परम्परा का विकास उपन्यासों में अधिक हुआ। डाक्टर बेवन के अनुसार -

"प्रेमचन्द युग ने जिस मनोविज्ञान का सहारा लिया था, वह चरित्र के साधारण मनोविज्ञान से सम्बन्धित था। प्रसाद के चरित्रों का घात-प्रतिघात और प्रेमचन्द के चरित्रों का अन्तर्द्वन्द्व मूलतः बाह्य घटनाओं से सम्बद्ध थे, मानव की आन्तरिक प्रेरणाओं से नहीं। संक्रान्ति युग में मनोविश्लेषण के विकास ने आश्चर्यजनक उन्नति की।"[1]

प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यासों में कल्पना प्राधान्य, उपदेशात्मकता आदि अधिक होने के कारण मनोवैज्ञानिकता ने अपने कदम नहीं रखे थे। प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यासों में मानव की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करके हिन्दी-उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की बीज वपन किया। 'फ्रॉयड', 'एडलर', युंग आदि के मनोविश्लेषण ने हिन्दी साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया अतः प्रेमचन्दोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का बोलबाला हो गया। समकालीन उपन्यास-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करते हुए नैराश्य और कुण्ठा भरे वातावरण में ही हिन्दी साहित्य में उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की परम्परा का सूत्रपात हुआ।

1-"आधुनिक हिन्दी उपन्यास, उद्भव और विकास"- डा० बेवन
प्रथम संस्करण सन् 1971 ई० पृष्ठ 125

द्वितीय अध्याय

मनोविज्ञान, उसके सम्प्रदाय एवं विशिष्टताएं और उनका हिन्दी उपन्यासों में समावेश

द्वितीय अध्याय

" मनोविज्ञान, उनके संप्रदाय एवं विशिष्टताएं और उनका हिन्दी उपन्यासों में समावेश "

(अ) मनोविज्ञान :-

अर्थ एवं परिभाषा :- अपने प्रारंभिक काल में 'मनोविज्ञान' 'मन का विज्ञान' माना जाता था, किन्तु बाद में यह परिभाषा विभिन्न सिद्धान्तों और सम्प्रदायों के कारण अपर्याप्त सी प्रतीत होने लगी। ईसा से 400 वर्ष पूर्व तक मनोविज्ञान का अर्थ 'मन के विज्ञान' से ही लगाते थे। 'मनोविज्ञान अर्थात 'साईकोलॉजी' दो लैटिन शब्दों से मिलकर बना है- 'साईकी' और 'लॉगॉस' । 'साइकी' का अर्थ आरंभ में 'आत्मा' व 'मन' से लगाया जाता था। अतः उस समय मनोविज्ञान से तात्पर्य - 'मस्तिष्क का विज्ञान' होता था। लेकिन इसके विकास के साथ परिवर्तित स्थितियों में इसकी परिभाषा भी बदलती गयी। संरचनावादी संप्रदाय के आगमन के साथ इसका अर्थ -'चेतना का विज्ञान' लगाया जाने लगा। 'व्यवहारवादी सम्प्रदाय' ने बीसवीं सदी तक आते-आते मनोविज्ञान की सारी पुरानी- परिभाषाओं व अर्थों को बदल डाला। विकास की तीव्र गति ने मनोविज्ञान को आत्मा, मन और चेतना से आगे लाते हुए 'व्यवहार' पर आधृत कर दिया। आज हम मनोविज्ञान को व्यक्ति के विविध कार्य कलापों और व्यवहारों के विज्ञान के रूप में व्याख्यायित करते हैं ।

कुछ प्रमुख विद्वानों ने मनोविज्ञान को निम्न परिभाषाओं में बद्ध किया है :-

'वाटसन' के अनुसार - "मनोविज्ञान व्यवहार का शुद्ध विज्ञान है।"[1]

उक्त परिभाषा यद्यपि 'व्यवहार' को मनोविज्ञान का विषय मानती है परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि यह व्यवहार- मानव का है या पशु का ।

'वुडवर्थ' अपनी पुस्तक 'एक्सपेरीमेन्टल साइकोलॉजी' में लिखते हैं :- "मनोविज्ञान संबंधित वातावरण में व्यक्ति की क्रियाओं का अध्ययन है।"[2]

यद्यपि मनोविज्ञान के अन्तर्गत व्यक्ति और पशु दोनों की ही क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, अतः उक्त परिभाषा इस दृष्टि से अपूर्ण है। क्योंकि उक्त परिभाषा में 'व्यक्ति' शब्द को स्थान देकर उसे सीमित कर दिया गया है, जबकि मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र तथ्यतः अति व्यापक है।

'स्किनर' अपनी पुस्तक "साइन्स एण्ड ह्यूमन बिहेवियर" में लिखता है -

"मनोविज्ञान जीवन द्वारा प्रस्तुत विभिन्न परिस्थितियों में

1- Psychology is the positive science of behaviour.
- J.B.Watson.
संकलित - 'आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान' चतुर्थ संस्करण-1984 'डा0 एस0एन0शर्मा' - पृष्ठ 11

2- Psychology is the science of the activities of the indivisual in relation to the environment."
संकलित- 'शिक्षा मनोविज्ञान' - संस्करण 1982-83 'डा0सुरेश भटनागर' पृष्ठ 3

व्यवहार का अध्ययन है। अनुक्रियाओं अथवा व्यवहार से अर्थ प्राणी की सभी प्रकार की क्रियाएं समायोजन तथा अभिव्यक्ति हैं।"[1]

यद्यपि उक्त सभी परिभाषाएं अपने-अपने क्षेत्रों में पूर्ण है लेकिन मनोविज्ञान की वर्तमान विषयवस्तु और उसके अध्ययन-क्षेत्र को देखते हुए ये परिभाषाएं अपूर्ण है फिर भी ये परिभाषाएं मनोविज्ञान की निम्न लिखित आधार भूत विशेषताओं पर प्रकाश डालती है:-

1- मनोविज्ञान एक विधायक विज्ञान है। इसमें क्रिया, प्रतिक्रिया, कार्य, कारण तथा परिणाम सभी का प्रभाव पड़ता है।

2- मनोविज्ञानमेंव्यक्ति का अध्ययन मनोदैहिक प्राणी के रूप में होता है।

3- मनोविज्ञान न केवल वातावरण से संबद्ध है वरन् मानव के भौतिक एवं सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करता है।

4- यह न केवल मानव का वरन् पशुओं के व्यवहारों का भी अध्ययन करता है।

1- मनोविज्ञान का क्षेत्र :-

1- समाज मनोविज्ञान :- समाज मनोविज्ञान में मनुष्य की समाज में होने वाली क्रियाओं व प्रतिक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इस मनोविज्ञान में मानव के सामाजिक

1- " Psychology deals with responses any and every kind of situation that life presents. By responses or behaviour is meants all forms of process, adjustment activities and expressions of organism."

व्यवहार का अध्ययन होता है। मनुष्य का समाजीकरण किस प्रकार होता है, वह समाज के उत्तरदायित्वों का निर्वाह किस प्रकार करता है, समाज में प्रचलित परम्पराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करने में मानव कहाँ तक सफल होता है, इसका अध्ययन समाज मनोविज्ञान करता है। "इस मनोविज्ञान में मनुष्य और उसके चारों ओर के समाज की पारस्परिक प्रतिक्रिया से प्रभावित व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और संवेगों का अध्ययन किया जाता है।"[1]

समाज मनोविज्ञान में जिन मुख्य समस्याओं का अध्ययन किया जाता है वह निम्न प्रकार हैं :- बालक का समाजीकरण, संस्कृति और व्यक्तित्व का अध्ययन, वैयक्तिक और सामूहिक अंतर, सामाजिक अन्तः क्रियाएं, नेतृत्व, सामूहिक प्रतिक्रियाएं, भीड़ और श्रोताकण, संप्रेषण की गतिशीलता, प्रेरणा, प्रत्यक्षीकरण और सीखने की प्रक्रिया, अभिवृत्ति और पक्षपात, सामाजिक व्याधिकी, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से सम्बन्धित समस्याएं ।

समाज में प्रचलित प्रथाएं व कानूनों आदि का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी समाज मनोविज्ञान का विषय है। फैशन भी मनोवैज्ञानिक आधार पर विकसित होता है। इसमें भी कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिक कारण उत्तरदायी है

1-"आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान" - डा० प्रीति वर्मा एवं
डा० डी० एन० श्रीवास्तव,
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
प्रथम संस्करण, सन् 1978 ई० पृष्ठ 24

जैसे -

वैयक्तिकता और अनुरूपता, यौनाकर्षण, परिवर्तन की इच्छा, पेशन का प्रसार, अहं का विस्तार आदि ।

2- बाल मनोविज्ञान :- 'बाल मनोविज्ञान' मनोविज्ञान का बहुत ही महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसमें जन्म की पूर्वावस्था, शैशवावस्था, बाल्यकालीन अवस्था, किशोरावस्था और परिपक्वावस्था तक विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं के विकास का अध्ययन किया जाता है। बालक के प्रारंभिक अनुभव और निओनेट पीरियड से सम्बन्धित समस्याएं, व्यक्तित्व, व्यक्तित्व-विकास और व्यक्तित्व की असामान्यताओं से सम्बन्धित समस्याएं, संज्ञानात्मक विकास से सम्बन्धित समस्याएं प्रत्यक्षीकरण और भाषा के विकास से संबंधित समस्याएं, बौद्धिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास से संबन्धित समस्याएं आदि बाल मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय है। बालकों के लिंगादि से सम्बन्धित समस्याएं भी बाल मनोविज्ञान का विषय हैं, क्योंकि इनके द्वारा बालक के व्यक्तित्व के विकास सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है।

3- वैयक्तिक मनोविज्ञान :- "इस मनोविज्ञान में मुख्यतः वैयक्तिक लक्षणों के क्षेत्र में वैयक्तिक भिन्नताओं की प्रकृति और उत्पत्ति से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।"[1]

1- "आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान" - 'डा० प्रीति वर्मा एवं 'डा० डी०एन० श्रीवास्तव
प्रथम संस्करण - 1978 ई० पृष्ठ 29

ये भिन्नतायें न केवल मनुष्यों के अन्दर देखने को मिलती हैं बल्कि पशुओं में भी दृष्टिगत होती है। बहुधा अधिगम, संवेदनात्मकता और अभिप्रेरण आदि से संबन्धित व्यवहार व उनके लक्षणों की समस्याओं का अध्ययन इस मनोविज्ञान के क्षेत्र में किया जाता है। इस मनोविज्ञान के क्षेत्र में बहुधा जिन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है वे इस प्रकार है - वंशानुक्रम और वातावरण से सम्बन्धित समस्यायें, बुद्धि की प्रकृति, बुद्धि संरचना बौद्धिक विचलन, विविध प्रकार के मानसिक दोष, धनात्मक और ऋणात्मक विकास, योन सम्बन्धी अन्तर, प्रजातीय और सांस्कृतिक अंतर आदि से सम्बन्धित अध्ययन ।

4- <u>प्रयोगात्मक मनोविज्ञान</u> :- इस मनोविज्ञानमेंसभी समस्याओं का अध्ययन होता है;परन्तु अध्ययन केवल प्रयोगात्मक विधि की सहायता से किये जाते हैं। यद्यपि प्रारम्भ में इस मनोविज्ञान में प्रयोगों में केवल एक ही प्रयोज्य और एक ही समूह पर अध्ययन किया जाता था परन्तु आजकल मनोविज्ञान की जटिल से जटिल समस्याओं का अध्ययन कई-कई प्रयोगात्मक और नियंत्रित समूहों की सहायता से किया जाता है।

5- <u>असामान्य मनोविज्ञान</u> :- असामान्य मनोविज्ञान में व्यक्तियों की अनेक प्रकार की असामान्यताओं से संबंधित समस्याओं का अध्ययन व विश्लेषण किया जाता है। "इस मनोविज्ञान की

कुछ प्रमुख समस्यायें निम्न प्रकार से है :-

संवेदनात्मक प्रत्यक्षीकरण से सम्बन्धित असामान्यतायें, अभिप्रेरणात्मक और मनोवैज्ञानिक प्रकार्यों से सम्बन्धित असामान्यतायें, मनोगत्यात्मक प्रकारों से सम्बन्धित असामान्यतायें, सामाजिक व्यवहार से संबंधित असामान्यतायें जैसे - अपराध, मद्यपान, तथा अन्य सामाजिक व्याधिकीय व्यवहार ।"[1]

इसके अतिरिक्त असामान्य मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की असामान्यताओं का भी अध्ययन किया जाता है। कभी-कभी व्यक्ति में परिस्थितिजन्य अस्थायी विकार उत्पन्न हो जाते है जैसे -

अचानक दंगा-फसाद हो जाना, घर में असन्तोषजनक विस्फोटक कलह, किसी प्रियजन की दुर्घटना हत्या, परीक्षा आदि में योग्यतानुकूल सफलता न प्राप्त कर पाना आदि कारण व्यक्ति में क्षोभ, मनस्ताप तथा मनोविक्षिप्तता के लक्षण उत्पन्न कर सकते है। इनमें विकास अस्थायी होती है।

मनस्तापों मनोदैहिक विकारों, चरित्र विकृतियों तथा मानसिक दुर्बलताओं आदि का अध्ययन असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन का मुख्य विषय है ।

1- "आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान" - डा० प्रीती वर्मा, एवं
डा० डी०एन०श्रीवास्तव
प्रथम संस्करण सन् 1978 ई० पृष्ठ 19

6- शारीरिक मनोविज्ञान :- शारीरिक मनोविज्ञान में व्यक्ति के आंतरिक अंगों की संरचना उनके प्रकार और आन्तरिक वातावरण आदि से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। विविध नाड़ी संस्थानों से सम्बन्धितसमस्याएं भी इस मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओं के सम्बन्धों से सम्बन्धित समस्याओं का भी अध्ययन शारीरिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत होता है। 'डा० एस०एन० शर्मा' के अनुसार-

"स्नायुतन्त्र तथा उसके विभिन्न प्रकार मस्तिष्क की बनावट तथा उसके कार्य, अभिप्रेरण, प्रेरणा तथा संवेग आदि में शारीरिक आधार की व्याख्या दैहिक मनोविज्ञान के प्रमुख अध्ययन विषय हैं।"[1]

7- मनोविश्लेषण :- यद्यपि वैयक्तिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत व्यक्ति के मानस का विश्लेषण किया जाता है तथापि मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों की भ्रम मय जाने के कारण 'मनोविश्लेषण' को अलग से मनोविश्लेषण मनोविज्ञान के अन्तर्गत शामिल कर लिया गया जिसके अन्तर्गत अचेतन, अर्द्धचेतन एवं काम्प्लेक्स, अवरोध एवं दमन, ईडिपस यौन कामुकता, पितृ-विरोधी इडिपस ग्रंथि आदि का अध्ययन किया जाता है। इस मनोविज्ञान, के आते ही व्यक्तित्व के संतुलित विकास पर बल दिया जाने लगा क्योंकि व्यक्ति के मानस की गहराईयों में

1- "आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान" - 'डा० एस०एन० शर्मा'
चतुर्थ संस्करण सन् 1984 ई० पृष्ठ 22

फ्रॉम विकारों की चीरफाड़ ने व्यक्तित्व के संतुलित विकास के नये आयाम खोल दिए ।

8- व्यावहारिक मनोविज्ञान:- मनोविज्ञान का उपयोग व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन से संबन्धित समस्याओं के अध्ययन में भी किया जाता है। व्यावहारिक मनोविज्ञान प्राय: उन समस्याओं का अध्ययन व विश्लेषण करता है जो मानव-जीवन के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपयोगी हैं और मानव के जीवन से सम्बन्धित आवश्यकताओं से सम्बन्धित होती है। कार्य और व्यवसाय से संबंधित समस्याओं का, शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन से सम्बन्धित समस्याओं का मैनेजमेंट, ट्रैफिक आदि से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन व्यावहारिक मनोविज्ञान में किया जाता है।

9- शिक्षा मनोविज्ञान:- शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में उन मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन करता है जो एक बालक तथा उसके शिक्षक व शिक्षण-सामग्री से संबंधित है। बालक के जन्म से लेकर युवावस्था तक विभिन्न अवस्थाओं तथा उसकी विशेषताओं के साथ शारीरिक तथा मानसिक विकास का अध्ययन शिक्षा-मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली प्रत्येक समस्या चाहे वह विद्यार्थी की हो या शिक्षक की या पाठ्यक्रम

आदि की सभी का अध्ययन व समाधान शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है विभिन्न आयु वर्ग के छात्रों के लिए जो शिक्षण-विधियाँ उपयोगी होती हैं, जो-जो अनुशासन आदि उपयोगी है, उन सभी का विवेचनात्मक अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान प्रस्तुत करता है।

(ब) मनोविज्ञान के संप्रदाय, विशिष्टताएं :

1- प्रकार्यवाद :- प्रकार्यवादी संम्प्रदाय 'क्रिया' को आधार मानता है। किसी भी क्रिया का विकास किस प्रकार होता है, इसी प्रश्न का उत्तर प्रकार्यवाद देता है। "शिशु किस प्रकार सोता है, जागता है, दूध पीता है, निगलता है, सांस लेता है, थूंकता है तथा छींकता है, रोते तथा हँसते समय किस प्रकार अपने गले से आवाज निकालता है। उसके हाथों, टांगों में परिपक्वता तथा गति किस प्रकार आती है, क्रिया के निरीक्षण से ही उसके विकास की गति का आभास मिलता है।"[1]

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं - जॉन डी वी, एंजेल, हार्वेकार इत्यादि। क्रिया' को आधार मानने वाले इस सम्प्रदाय ने डार्विन के 'विकासवाद' से जन्म लिया। इस सम्प्रदाय के अनुसार - मस्तिष्क कोई पदार्थ नहीं है, इसमें क्रियाएं होती रहती हैं तथा ये क्रियाएं लोद्देश्य होती हैं, कोई

1- "शिक्षा मनोविज्ञान"- डा० सुरेश भटनागर'
संस्करण 1982-83 पृष्ठ 430, 431।

भी क्रिया निरर्थक नहीं होती।

'जॉन डी वी' मन और बुद्धि की उपयोगिता पर बल देता है उसके अनुसार मन और बुद्धि के अध्ययन द्वारा ही व्यक्ति और समाज की समस्यायें सुलझाई जा सकती है। 'डी वी' के अनुसार- मानसिक कार्यों में निरन्तरता होती है और उसका प्रकार्य भी होता है। 'डीवी' निरन्तरता पर बल देता हुआ कहता है कि उद्दीपन और अनुक्रिया दो अलग वस्तुएं नहीं है वरन् उनमें एक निरन्तरता है जिसका स्वरूप प्रकार्य मूलक है। व्यक्ति के समस्त मानसिक कार्य उद्देश्यपूर्ण होते हैं और इसी- लिए वह मानसिक प्रकार्यों पर बल देता है।

'एंजेल' प्रकार्यवाद की व्याख्या करता हुआ कहता है- मानसिक प्रक्रियाएं निरन्तर बनी रहती हैं। मानव मनमेंजो विभिन्न प्रत्यय तथा संकल्पनाएं विकसित होती है वे परिस्थिति के अनुसार अपना कार्य करती हैं।

इस संप्रदाय की निम्नलिखित मान्यताएं हैं :-

1- मानसिक क्रियाएं क्यों और कैसे होती है ?

2- मानसिक प्रक्रियाओं की उपयोगिता क्या है ?

3- मन और शरीर में स्थापित एकता जो समस्त मानसिक क्रियाओं का आधार है।

'हार्वे कार' ने प्रकार्यवादी सम्प्रदाय में 'मानसिक प्रक्रियाओं' पर विशेष बल दिया। 'मानसिक क्रिया' एक ऐसा प्रत्यय है जो प्रत्यक्ष

ज्ञान , स्मृति, कल्पना, चिन्तन, इच्छाशक्ति इत्यादि मानसिक क्रियाओं का द्योतक है।

प्रकार्यवादी सम्प्रदाय 'जीव विज्ञान' के आधार पर मानव के व्यवहार के अध्ययन पर बल देता है। मन की 'संरचना' में उसकी कोई रूचि नहीं है। वह मन की प्रक्रिया-ओं का अध्ययन करता है, मन को सक्रिय रूप प्रदान करता है तथा मन को वह शक्ति प्रदान करता है जिसके द्वारा समंजन में सहायता मिलती है। इस विचार धारा के अनुसार मन उन समस्त क्षमताओं का योग है जिसके द्वारा व्यक्ति अपना संमंजन करता है। मन और शरीर के अध्ययन के कारण यह सम्प्रदाय- 'बाल मनोविज्ञान' शिक्षा मनोविज्ञान, वैयक्तिक मनोविज्ञान और औद्योगिक मनोविज्ञान इत्यादि क्षेत्रों में सहायक रहा।

2- <u>संरचनावाद</u> :- यह संप्रदाय संरचना के माध्यम से मनुष्य के अध्ययन पर बल देता है। इस संप्रदाय की मुख्य अवधारणा यह है कि मानव के चेतन मन को व्याख्यायित करने के लिये मानसिक क्रियाओं के विश्लेषण पर बल देता है। इस संप्रदाय में 'मानसिक शक्तियों' का कोई महत्व नहीं है। इसके प्रवर्तक 'टिचनर' के अनुसार-

"मन" मानसिक क्रियाओं का एक अनुक्रम है। डा० सीताराम जायसवाल के अनुसार-

"व्यक्ति अपने मन की दशाओं का स्वयं अनुभव करता है। इस-लिए मानसिक दशाओं का स्वतन्त्र अस्तित्व है। यह दशाएं अपने आप में

पूर्ण होती है और इनका उपक्रम ही मन और चेतना के रूप में ज्ञात होता है।"[1]

'टिचनर' व्यक्ति के अनुभवों को व्याख्यायित करता हुआ कहता है कि मनोविज्ञान की विषयवस्तु के अनुभव है जो अनुभव करने वाले व्यक्ति पर निर्भर है। व्यक्ति के अनुभवों को जानने के लिए वह शारीरिक अध्ययन (बायोलोजिकल स्टडी) पर बल देता है। उसके अनुसार मन उन समस्त मानसिक क्रियाओं का योग है जो किसी व्यक्ति के जीवन की अवधि में होती है। इसके विपरीत चेतना उन मानसिक प्रक्रियाओं का योग है जो किसी समय-विशेष पर अनुभव की जाती है। व्यक्ति के अनुभव उसके शरीर की बनावट, मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र पर आधारित होते हैं। ज्ञानेन्द्रियां व्यक्ति के अन्दर संवेदन का कार्य करती है और संवेदनों द्वारा मानसिक कार्य होता है।

मन की संरचना तीन मानसिक तत्वों से हुई है :-

1- संवेदन, 2- भावना, 3- प्रतिमा ।

'टिचनर के अनुसार जितने भी इन्द्रिय जन्य ज्ञान है सभी संवेदनों पर आधृत है । व्यक्ति का देखना, सुँघना, स्वाद आदि सभी संवेदन जन्य है। 'संवेदन' एक ऐसा तत्व है जिसका मन और चेतना की संरचना में प्रमुख स्थान होता है। 'भावना' वह तत्व है जो संवेगों में पाया जाता है। 'प्रतिमा' विचारों का आधार है।

1- "मनोविज्ञा की ऐतिहासिक रूपरेखा" - डा० सीताराम जायसवाल
प्रथम संस्करण, सन् 1963 ई० पृष्ठ 356

संरचनावादी संप्रदाय में अनुभव का आधार 'तंत्रिका-तंत्र' है। तंत्रिका-तंत्र एक माध्यम मात्र है जो अनुभव प्राप्त करने में सहायक होता है। इस संप्रदाय ने 'मानसिक-तत्वों' को तो महत्व प्रदान किया परन्तु 'व्यक्तिगत अनुभवों' या 'वैयक्तिक भिन्नता' को नहीं। इस सम्प्रदाय ने ही मनोविज्ञान के क्षेत्र में संवेदन, ध्यान, भावना तथा अन्य मानसिक तत्वों सर्वप्रथम प्रकाश डाला जिससे मानव-समाज में इन मूल प्रवृत्तियों को पहचाना जाने लगा।

3- व्यवहारवाद:- इस संप्रदाय में 'पशुमनोविज्ञान' के आधार पर मानव-व्यवहार के अध्ययन पर बल दिया जाता है। इसके संस्थापक 'वाट्सन' हैं। इस संम्प्रदाय ने ही सर्वप्रथम मानव-मनोविज्ञान तथा पशुमनोविज्ञान का अन्तर समाप्त किया तथा 'व्यवहार' को ही आधार बनाकर मानव के कार्य-कलापों की व्याख्या की।

वाट्सन के अनुसार मानव एक पशु है, अन्तर केवल उसके व्यवहार का है। उसके अनुसार चेतना एक अनिश्चित वस्तु है। यह देखी नहीं जा सकती है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक मानव के व्यवहार में सामान्य वर्गों से ज्यादा रूचि रखता है। वह मनुष्य की प्रतिक्रिया का उसी प्रकार नियंत्रण करना चाहता है जिस प्रकार भौतिकीविद् भौतिक तत्वों पर नियन्त्रण रखता है। "व्यवहार-मनोवैज्ञानिक का कार्य है-'मानव-क्रिया संबंधी भावी कथन और नियन्त्रण"।

अपने इस सिद्धान्त को वाट्सन ने 'उद्दीपन-अनुक्रिया संबंध' द्वारा व्याख्यायित किया। वह मानव में पायी जाने वाली 'प्रवृत्तियों को स्वीकार नहीं करता है वरन् उन्हें मानव का 'अर्जित व्यवहार' मानता है। उसके अनुसार व्यक्ति की 'आनुवंशिकता' से निपुणता मानसिक दक्षता, स्वभाव आदि कुछ भी नहीं प्राप्त होता है वरन् यह सब तो उसका 'अर्जित व्यवहार' है। जिस प्रकार के पर्यावरण में व्यक्ति रहता है, उस पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। वाट्सन ने इसे अपने प्रयोगों द्वारा स्पष्ट किया है। 'वाट्सन' के अतिरिक्त मेयर, हल, टालमैन, स्किनर इत्यादि ने भी 'मानव-व्यवहार' के अध्ययन का महत्व प्रतिपादित करते हुए व्यवहार की पुष्टि की है।

इस संप्रदाय की प्रमुख विशेषता यही है कि- इसने मनोविज्ञान को 'चेतना' और 'आत्मा' से हटाकर शुद्ध व्यावहारिक धरातल पर ला खड़ा किया है। इससे मानव के विकास में 'वातावरण' की महत्ता को प्रतिपादित किया है।

4- <u>गेस्टाल्ट वाद</u> :- 'गेस्टाल्ट' जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है- 'समग्रता'। इस सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक हैं- 'वर्दीमर', 'कोफ्का' और 'कोहलर'।

इस संप्रदाय के अनुसार- मनुष्य, पशु या वस्तु एक गेस्टाल्ट है। वह एक भाग या अवयव से सम्पूर्ण नहीं है। उसके सभी अवयव एक दूसरे से

संबद्ध हैं। मनुष्य की किसी भी मानसिक क्रिया में शरीर का कोई विशिष्ट भाग ही हिस्सा नहीं लेता है वरन् इस क्रिया में संपूर्ण शरीर समष्टि के रूप में कार्य करता है। सीखने की क्रिया में मस्तिष्क सम्पूर्ण कार्य करने के अधीन होता है।

गेस्टाल्टवादियों का मत है कि पशु की क्रिया भी संयुक्त रूप से ही कार्य करती है। उनके अनुसार- अनियमित आकृति को नेत्रों द्वारा अन्तराल पूर्ण करना एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। जब मनोमस्तिष्क इस आकृति को अनियमित रूप में देखता है तो मस्तिष्क में एक असन्तुलित तनाव उत्पन्न हो जाता है। मस्तिष्क इस तनाव को दूर करने की चेष्टा में इस अंतराल को भर देता है। इस प्रकार जब अंतराल भर जाते हैं तब उसकी क्रिया पूर्ण संतुलन स्थापित करती है। यह कार्य करने में मानव की 'अंतर्दृष्टि' को विशेष महत्व मिलता है। 'गेस्टाल्ट' स्थापित करने में मानव की 'अन्तर्दृष्टि' विशेष क्रियाशील होती है। मनुष्य के सामने आने वाली हर समस्या का समाधन गेस्टाल्टवादी सम्प्रदाय की मान्यताओं के अनुसार ही होता है। 'व्यक्तित्व' एक लक्षण से नहीं बनता है वरन् अनेक गुणों एवं लक्षणों से बनता है।

5- <u>मनोपरलेखवाद</u>:- आधुनिक मनोविज्ञान में मनोपरलेखवादी सम्प्रदाय एक क्रान्तिकारी सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसके पूर्व मनोविज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र केवल

'चेतन-मन' तक ही सीमित था। मनोविश्लेषणवाद के आगमन के साथ ही मानव के व्यवहार का अध्ययन उसके 'अचेतन-मन' के आधार पर होने लगा।

मनोविश्लेषणवाद के अन्तर्गत फ्रॉयड, एडलर, युंग, फ्राम और हार्नी नामक मनोवैज्ञानिक आते हैं जिन्होंने 'मन' के विविध स्तरों की खोज-बीन करके मानव के व्यक्तित्व सम्बन्धी मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों की पुष्टि की।

मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय का प्रथम प्रवर्तक 'सिगमंड फ्रॉयड' हैं, जिसने न केवल मानव के व्यक्तित्व सम्बन्धी 'मनोविश्लेषण-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया अपितु मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा को भी विकास किया। उसके व्यक्तित्व सम्बन्धी निम्नलिखित सिद्धान्त हैं:-

1- मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त

2- मन सिद्धान्त

3- दमन सिद्धान्त

4- अहं-प्रतिरक्षा क्रियातन्त्र सिद्धान्त

5- द्वन्द्व सिद्धान्त

6- मनोकामुक विकास सिद्धान्त

फ्रॉयड के 'मूलप्रवृत्ति के सिद्धान्त' के अनुसार- मूलप्रवृत्तियाँ दो है :-

1- जीवन वृत्ति या एरॉस मूल प्रवृत्ति

2- मृत्यु वृत्ति या थैनाटास मूलप्रवृत्ति

'जीवन-वृत्ति' में मानव में प्रेम और आत्म संरक्षण आदि भावनाएं उत्पन्न करती है। फ्रॉयड ने 'एरॉस'(जीवन-वृत्ति) के दो स्तर बताए पहला काम, दूसरा अहं (इगो) इन्हीं दोनों के द्वारा जीवन में रचनात्मक या सृजनात्मकता का विकास होता है। काम की मानसिक ऊर्जा (लिबिडो) द्वारा व्यक्ति जीवन के वांछित लक्ष्य की ओर बढ़ता है। 'मृत्युवृत्ति' (थैनटास) मानव को रक्तपातपूर्ण, आक्रमक, कामुक व्यवहार तथा विनाश की ओर ले जाती है।

डा० सीताराम 'जायसवाल' ने फ्रायड की इन दोनों वृत्तियों को स्पष्ट करते हुए लिखा है :- "मनुष्य के धर्म, अर्थ, कला, साहित्य, संस्कृति आदि जैसे विषयों के मूल में कामवृत्ति होती है और यह सब काम-वृत्ति (जीवनवृत्ति) के परिशोधित रूप हैं। मृत्यु-वृत्ति वह है जिसके वशीभूत होकर व्यक्ति विनाशकारी कार्यों में लीन होता है। इसके फलस्वरूप वह दूसरों के प्रति घृणा व्यक्त करता है तथा ईर्षा, क्रोध के वशीभूत होकर ऐसे कार्य करने लगता है जो उसके मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।"[1] फ्रायड के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में 'जीवन-वृत्ति' और 'मरणवृत्ति' का द्वन्द्व होता है। उसके अनुसार यह स्थिति

1- "मनोविज्ञान की ऐतिहासिक रूपरेखा"- 'डा० सीताराम जायसवाल' प्रथम संस्करण - 1963 ई० पृष्ठ 435

'कैथेक्सस' होती है। मानव का व्यवहार 'जीवन-वृत्ति और 'मरण-वृत्ति' के बीच होने वाली अन्तःक्रिया का परिणाम है :-

B = f(L.D.) ⟶

B = Beleviour
L = Life instinct
D = Death instinct
f= function

'जीवनवृत्ति'और'मरणवृत्ति' के अनुसार ही मनुष्य में 'आत्म-पीड़न रीत' तथा 'परपीड़न रीत' उत्पन्न होती है।

फ्रायड के 'मन-सिद्धान्त' के अनुसार- मन के तीन स्तर होते हैं:

1- चेतन मन

2- अर्ध चेतन मन

3- अवचेतन या अचेतन मन

फ्रायड के अनुसार मन का 9/10भाग अचेतन मन है। 'अचेतन-मन' काममूलक होता है। यह चेतन में अपनी अभिव्यक्ति चाहता है किन्तु चेतन और अचेतन के मध्य अर्धचेतन एक समीक्षक के समान रहता है जो अनुचित उत्तेजनाओं को चेतना में नहीं पहुँचने देता है ये बार-बार वेष बदलकर बाहर आने का प्रयास करती है। फ्रायड के अनुसार अचेतन-मन में दमित अवांछनीय इच्छाओं की अभिव्यक्ति न होने पर व्यक्ति मानसिक रोगी हो जाता है।

फ्रायड ने मन के गत्यात्मक पक्षको भी तीन भाग किए।।।। इदम्,

(2) अहं [1] (3) पराहम् [2] उसके अनुसार -'इदम्' मानव के अन्दर का पशु होता है। यह (प्लीजर प्रिंसिपल) 'सुख सिद्धान्त' के अनुसार केवल सुख चाहता है। यह मूलप्रवृत्यात्मक होता है और अचेतन में निहित विभिन्न प्रकार की इच्छाओं, प्रेरणाओं और वासनाओं की संतुष्टि चाहता है। 'अहं' इड का ही विकसित रूप है यह अर्धचेतन में स्थित रहता है। यह वातावरण से समझौता करके 'इड' की इच्छाएं पूरी करवाता है।'अहं' 'यथार्थ सिद्धान्त' और 'सुख सिद्धान्त' के मध्य द्वन्द्व के कारण विकसित होता है। 'पराहम्' व्यक्तित्व' का नैतिक पक्ष है। इसके विकास में विविध मनोरचनाएं सहायक होती हैं। 'सुपर-इगो' मानव के चेतन-मन में स्थित रहता है, जो बहुत थोड़ा भाग है। 'मलीजा और मलीजा' के शब्दों में "इदम् मानव के अन्दर पशु है।'अहं' मानव के अन्दर मनुष्य है। पराहम् मानव के अन्दर देवता है।"[3]

फ्रायड के 'दमन सिद्धान्त' के अनुसार- अचेतन में स्थित 'इदम्' द्वारा उत्पन्न हुई प्रत्येक इच्छा को 'चेतन' तक पहुँचने के लिए 'अहं' और 'पराहम्' सेंसर करते हैं। यदि इन दोनों द्वारा इच्छापूर्ति नहीं होती है तो अहं इसे वापस अचेतन की ओर ढकेल देता है, यही 'दमन' है। फ्रायड के अनुसार- वे दमित इच्छाएं अचेतन में संगठित होकर 'मनोग्रंथियों' (काम्प्लेक्सेस) का रूप धारण कर लेती है। ये मनोग्रंथियाँ दमन के कारण चेतन तक आने के लिए उग्र रूप अख्तियार कर लेती है और व्यक्तित्व को तहस-नहस करने लगती है।

1- Ego 2- Super Ego

3- देखिए-"असामान्य मनोविज्ञान" -'मलीजा एवं मलीजा' प्रथम संस्करण सन् 1980ई० पृष्ठ 66

फ्रायड का 'द्वन्द्व सिद्धान्त' यह बतलाता है कि जब मानवमन के गत्यात्मक पक्ष 'इड', 'इगो' और 'सुपर इगो' में समन्वय स्थापित नहीं हो पाता है तो द्वन्द्वात्मक स्थिति पैदा हो जाती है।

'अहं-प्रतिरक्षा क्रियातन्त्र सिद्धान्त' के अनुसार जब अहं, इदम्, पराहम् और पर्यावरण की आवश्यकताओं का बोझ नहीं सह पाता तो द्वन्द्वात्मक स्थिति में अनेक प्रतिक्रियाएं होती हैं जैसे - दमन, प्रक्षेपण, तादात्म्यीकरण, विस्थापन, उदात्तीकरण, क्षतिपूर्ति, परिवर्तन, प्रतिगमन, प्रतिक्रियाविधान, औचित्यस्थापन आदि ।

फ्रायड का 'मनोकामुक सिद्धान्त' विशेष महत्त्वपूर्ण है। फ्रायड के अनुसार- व्यक्ति के विकास में 'यौन' (सेक्स) का विशेष महत्त्व है। यौन-प्रवृत्ति न केवल प्रौढ़ावस्था में वरन् नवजात शिशु तक में विद्यमान रहती है। फ्रायड ने "मनोकामुक विकास" (मनोकामुक सिद्धांत) की पांच अवस्थाएं बतायी हैं :- (1) मुखीय अवस्था, जिसमें बालक चूसने, निगलने, काटने आदि क्रियाओं द्वारा यौन तृप्ति करता है। यदि उसे 'सुख सिद्धांत' से नियंत्रित न किया जाये तो आगे चलकर उसका व्यक्तित्व विकृत हो सकता है। उसमें मनोविक्षेपन, मनोविक्षिप्तता आदि विकृतियां उत्पन्न हो जाती है। दूसरी अवस्था है- गुदीय अवस्था, इसमें मल-मूत्र त्याग द्वारा यौन तुष्टि होती है। तीसरी अवस्था लैंगिक अवस्था है। 3 से 7 वर्ष की आयु में बालक 'जननेन्द्रियों से खेलकर उन्हें छूकर यौन-तृप्ति करता है। यदि बालकों को इस काम से मना किया जाता है तो उनमें

चिन्ता, मनस्ताप, हिस्टीरिया आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। चौथी अवस्था सुप्तावस्था है जिसमें 5 से 12वर्ष के बालक की काम क्रियाएं शान्तमय हो जाती हैं। उसमें 'लिबिडो' की शक्ति शिक्षा की ओर उन्मुख हो जाती है। उसमें कामशक्ति का उदात्तीकरण हो जाता है। पांचवी अवस्था- जननांगी अवस्था है। 12 से 20वर्ष तक के बालकों में यौन आवश्यकता पुनः प्रकट होती है क्योंकि इस समय यौनांगों का विकास होता है अतः इस अवस्था में किशोर चुम्बन, काम क्रिया आदि में रूचि लेता है। विपरीत लिंगी प्रेम बढ़ता है। पात्र न मिलने पर सम-लिंगी प्रेम बढ़ता है।

फ्रायड के इस 'मनोकामुक सिद्धान्त' की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसने कामुकता सम्बन्धी सिद्धान्त के आधार पर 'ईडिपस' और 'इलेक्ट्रा ग्रंथियों' का जो उल्लेख किया, वह बहुत वास्तविक है। यौन तृप्ति के विकासात्मक क्रम में ही ये ग्रंथियां उत्पन्न होती हैं।

इसके अतिरिक्त फ्रायड ने 'स्वप्न सिद्धान्त' का भी प्रतिपादन किया। उसने बताया कि दमित इच्छाएं ही स्वप्नों का कारण है। स्वप्न इच्छापूर्ति के साधन होते हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य की यौन-इच्छाएं अन्य इच्छाओं की अपेक्षा अधिक प्रबल होती है जो अपनी तृप्ति के लिए निरन्तर सक्रिय रहती है। सामाजिक मर्यादाओं के कारण इनकी पूर्ति नहीं हो पाती, फलतः अचेतन में दमित ये इच्छाएं स्वप्नों द्वारा अभिव्यक्त होती है। फ्रायड के अनुसार ये 'विस्थापन', 'प्रतीकीकरण', आदि द्वारा व्यक्त होती हैं।

फ्रायड के 'मनोविश्लेषणवाद की कमियों को देखते हुए 'एडलर' ने भी 'मनोविश्लेषणवाद' में अपना योगदान दिया। 'एडलर' ने लिबिडो काम-शक्ति को प्रमुख प्रवृत्ति न मानकर व्यक्ति की 'शक्ति-प्राप्ति' की इच्छा को शक्ति का स्त्रोत माना है। फ्रायड की भाँति उसने 'सेक्स' को महत्व न देकर 'सामाजिक रूचि' पर विशेष बल दिया। 'हाल' ने कहा है- " मनुष्य प्रधानतः एक सामाजिक प्राणी है न कि कामुक प्राणी"[1]

एडलर ने चेतन पर अधिक महत्व दिया। एडलर के व्यक्तित्व विश्लेषण सम्बन्धी सिद्धान्त में प्रमुख इस प्रकार है:-

उसके अनुसार मानव-जीवन में हीनता की भावनाग्रंथि का विशेष महत्व है। प्रत्येक व्यक्ति में हीनता की भावना कहीं न कहीं अवश्य होती है। यह दो प्रकार की होती है :- §1§ आंगिक हीनता, §2§ सामाजिक हीनता,

व्यक्ति अपनी हीनता की भावना को कम करने अथवा समाप्त करने के लिए मानसिक योग्यता के आधार पर 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' के द्वारा क्षति पूर्ति करता है। "सामान्य व्यक्ति में हीनता-भावना कभी न चुकने वाला स्त्रोत है। वह इस स्त्रोत से शक्ति प्राप्त कर जीवन पथ पर अग्रसर होता है और इस प्रकार उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।"[2]

1- "Man is primarily a social and not a sexual Creature."- Hall & Lindzey; Theories of personality Pg. 118

2- "अपसामान्य मनोविज्ञान"-'मलीजा एवं मलीजा' प्रथम संस्करण सन् 1980 पृष्ठ 88

जिस प्रकार फ्रायड के अनुसार व्यक्ति में 'ईडिपस' और 'इलेक्ट्रा' ग्रंथियाँ निर्मित होकर व्यक्तित्व का संचालन करती हैं उसी प्रकार एडलर के अनुसार - हीनता की ग्रंथि बालक में श्रेष्ठ बनने और विकास करने की इच्छा उत्पन्न करती है।

'हीनता की भावना' के फलस्वरूप मनुष्य में लिबिडो के स्थान पर 'पुंस्पृहा' उत्पन्न होती है। एडलर के अनुसार 'निर्बलता' स्त्रीत्व का लक्षण है जो अहं उत्पन्न करता है। पुरुष और स्त्रियाँ सभी 'हीनता-ग्रंथि' से पीड़ित होकर कठिनाइयों पर पुरुषोचित ढंग से विजय प्राप्त कर करना चाहते हैं।

एडलर ने अपनी 'मैस्कुलीन प्रोटेस्ट' पुंस्पृहा द्वारा सन्तोष न प्राप्त करके 'लिबिडो' के स्थान पर 'प्रतिष्ठा-संघर्ष' को महत्व दिया। एडलर के अनुसार जीवन के तीन क्षेत्रों में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। (1) सामाजिक प्रतिष्ठा हेतु संघर्ष, (2) आर्थिक प्रतिष्ठा हेतु संघर्ष, (3) कामुक प्रतिष्ठा हेतु संघर्ष,

'हीनता-ग्रंथि' की तरह ही 'जीवन-शैली' प्रत्यय भी एडलर की महत्वपूर्ण देन है। उसके अनुसार- अपनी 'हीनता-भावना' पर काबू पाने और समाज में प्रतिष्ठित स्थान बनाने के लिए व्यक्ति जो संघर्ष करता है उसके फलस्वरूप जीवन बिताने के अद्वितीय ढंग को ही 'जीवन-शैली' कहा जाता है। लक्ष्यप्राप्ति के लिए संघर्ष में व्यक्ति जो मार्ग चुनता है वही उसकी 'जीवन-शैली' बन जाती है। 'जीवन-शैली' जैसे-

प्रत्यय से संतुष्ट न होने के कारण एडलर ने 'सर्जनात्मक आत्म' की खोज की। उसके अनुसार व्यक्ति स्वयं ही अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

एडलर ने फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्तकेप्रतिक्रियास्वरूप अपना 'स्वप्न सिद्धान्त' बनाया। एडलर के अनुसार- स्वप्न केवल भूतकालीन अतृप्त इच्छाओं को ही नहीं व्यक्त करने वरन् वे व्यक्ति की वर्तमान संवेगात्मक स्थिति की भी जानकारी देते हैं। अर्थात स्वप्नों द्वारा व्यक्ति की 'जीवन-शैली' भी व्यापक होती है।

एडलर के 'मनस्ताप सिद्धान्त' के अनुसारमनस्तापी व्यक्ति अवदीमत काम-वासना से पीड़ित न होकर अनुपयुक्त 'जीवन-शैली' का शिकार होता है। जब व्यक्ति की 'जीवन-शैली' व्यक्तित्व प्रमुत्व और सामाजिकता के मध्य वांछित सन्तुलन बनाये रखने में असमर्थ होती है तो व्यक्ति मनस्तापी, 'न्यूरोटिक' हो जाता है।

फ्रायड और एडलर के बाद 'जुंग' ने अपने एनालिटिकल थ्योरी (विश्लेषणात्मक सिद्धान्त)का प्रतिपादन किया।

जुंग के विश्लेषणात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रमुख है - 'लिबिडो सिद्धान्त। जुंग के अनुसार- 'लिबिडो' समस्त जीवन-शक्ति का केन्द्र है जो मनुष्य के समस्त व्यवहारों को शक्ति प्रदान करती है। सर्वप्रथम लिबिडो का उपयोग जैविक आवश्यकताएं पूरी करने में होता है, तत्पश्चात् सामाजिक सांस्कृतिक और सृजनात्मक प्रयत्नों हेतु इसका

प्रयोग होता है।

मन सम्बन्धी वर्गीकरण में जुंग ने अपना मत फ्रायड से अलग प्रकट किया है। उसके अनुसार मन के तीन भाग है :- चेतन, वैयक्तिक-अचेतन, सामूहिक अचेतन।

उसके अनुसार चेतन मन प्रत्यक्षीकरण विचारों स्मृतियों तथा, अभिवृत्तियों आदि का बना होता है।

'वैयक्तिक अचेतन' उन अनुभवों से बना है जिन्हें हम दमित कर देते हैं। इसका सबसे महत्वपूर्ण अंश मनोग्रंथियाँ है। इन मनोग्रंथियों के तालमेल न होने से व्यक्ति बहुव्यक्तित्व वाला हो जाता है।

'सामूहिक अचेतन' उनका (पूर्वजानुभवों) भंडार है जो लाखों वर्षों में अर्जित हुए हैं। डा० जयगोपाल त्रिपाठी के अनुसार- "सभी समाजों में प्रचलित आदिम युग की दन्तकथाएं, लोकगीत तथा अन्य प्रवाद इस जातीय या 'सामूहिक अचेतन' के अस्तित्व के प्रमाण हैं, जो मानव-जाति के प्रारम्भ से लेकर अब तक विरासत के रूप में व्यक्ति में विद्यमान है।"[1]

जुंग प्रत्येक व्यक्ति को 'उभय लिंगी' मानते है मनोवैज्ञानिक स्तर पर दोनों लिंग 'पुरुषत्व' और 'स्त्रीत्व' के व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। प्रत्येक पुरुष में 'स्त्रीमा' होती है और प्रत्येक स्त्री में 'पुरुषत्व' है जो क्रमशः 'स्त्रीभाव प्रतिमा' तथा 'पुरुषभाव प्रतिमा' के रूप में जानी

1- "अपसामान्य मनोविज्ञान" - जयगोपाल त्रिपाठी
सप्तम संस्करण 1982 ई० पृष्ठ 125

जाती है। जुंग के अनुसार आदिकाल से पुरूष और स्त्री के साथ-साथ रहने के कारण उनमें ये प्रतिमाएं उत्पन्न हुई।

जुंग ने व्यक्तित्व के प्ररूप का उल्लेख करते हुए उसे दो प्रकार से वर्गीकृत किया - (1) अन्तर्मुखी, (2) बहिर्मुखी

जुंग ने मनस्ताप सम्बन्धी विचारों को प्रकट करते हुए कहा कि 'मनस्ताप' उत्पन्न होने का कारण व्यक्ति में ऐसी कठिनाई का पैदा होना है जिसका समाधान वह सीधे ढंग से नहीं कर पाता है। फलस्वरूप समस्या- समाधान हेतु वह शैशवीय विधियाँ अपनाता है, जो वर्तमान जीवन हेतु अनुपयुक्त होती हैं। अतः सामंजस्य बिगड़ने के कारण ही व्यक्ति न्यूरोटिक हो जाता है।

मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय के उपरोक्त तीन प्रवर्तकों के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक हैं - फ्रॉम, हार्नी तथा सुलीवान।

फ्रॉम ने व्यक्तित्व के मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धान्त में प्रेरणाओं के महत्वको तो स्वीकार किया परन्तु उसके मतानुसार- जहाँ व्यक्ति की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक है वहीं उनकी ख्याति, शक्ति-प्राप्ति, प्रेम तथा उच्च मानवीय आदर्शोंकी प्राप्ति भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। फ्राम ने मनुष्य की प्रधानता: पांच आवश्यकताएं बताई- (1) संबंध स्थापना की आवश्यकता (2) साधारण स्तर से ऊपर उठना (3) बद्ध-मूलता की आवश्यकता (4) परिचय की आवश्यकता (5) निश्चित दृष्टिकोण की आवश्यकता। फ्राम ने इन सभी आवश्यकताओं को

मानवीय बताया न कि पाशविक ।

मनोयौनिक सिद्धान्त के अनुसार फ्रॉम व्यक्तित्व विकास की प्रमुख मनोयौनिक अवस्थाओं को वैधिक विकासके रूप में न स्वीकार कर उन्हें समाजीकरण की प्रक्रियामानता है। व्यक्तित्व के प्रकारों का उल्लेख करते हुए फ्राम कहता है कि व्यक्ति चार- प्रकार के होते है - (1) 'प्राप्ति की इच्छा वाले (2) शोषक (3) जमाखोर और (4) विक्रेता ।

'फ्राम' के अनुसार जब व्यक्ति में अकेलेपन और शक्तिहीनता की भावनाएं जन्म लेने लगती है तो वह इनसे बचने के लिए अनेक मानसिक क्रियाओं का सहारा लेता है- जैसे (1) स्वपीड़न रीत (2) परपीड़न रीत (3) विध्वंसकता (4) यंत्रवत् समरूपता ।

फ्राम व्यक्तित्व को सामाजिक मानते हुए यह कहता है कि जब समाज व्यक्ति पर ऐसी मांगे लाद देता है जो प्रकृति के प्रतिकूल होती है तो व्यक्ति कुंठित हो जाता है। आज का सामन्तीवाद, पूंजी-पतित्व आदि मानव को कुंठित कर रहा है। मानव भटका फिर रहा है।

'हार्नी' ने भी 'मनोविश्लेषण' के अन्तर्गत व्यक्तित्व सम्बन्धी अनेक संप्रत्ययों की व्याख्या की । उसका पहला सिद्धान्त था-बुनियादी दुश्चिन्ता"। हार्नी के अनुसार- दुश्चिन्ता ऐसी भावना है जो बालक में उसकी असहायावस्था में उत्पन्न होती है। जिससे वह अपने को अकेला तथा समाज-विरोधी समझता है। 'मूलभूत चिन्ता' अपने अलगाव और असुरक्षा निःसहायता का सामना करने के लिए अनेक व्यूहरचनाएं विकसित

करता है। वह या तो अत्याधिक आक्रामक हो उठता है या फिर अत्यधिक नम्र । दुश्चिन्तितमानव किसी से प्रेम न पाकर उस पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास करके क्षतिपूर्ति करता है। इन 'व्यूह रचनाओं में कोई-कोई इतनी स्थाई हो जाती है कि व्यक्तित्व का अंग बन जाती है यह व्यूह रचनाएं निम्नलिखित है - ‖1‖ स्नेह और अनुमोदन की परितन्त्रिका तापीय आवश्यकता, ‖2‖ जीवन भार संभालने वाले साथी की तन्त्रिका तापीय अवस्था ‖3‖ अपने जीवन को संकीर्ण सीमाओं के भीतर नियन्त्रित रखने की तंत्रिका तापीय आवश्यकता ‖4‖ शक्ति की तंन्त्रिका तापीय आवश्यकता ‖5‖ अन्यों का शोषण करने की तंत्रिका तापीय आवश्यकता ‖6‖ सम्मान प्राप्त करने की तंत्रिका तापीय आवश्यकता ‖7‖ व्यक्तिगत प्रशंसा की तंत्रिका तापीय आवश्यकता ‖8‖ व्यक्तिगत उपलब्धि की आवश्यकता ‖9‖ आत्म-निर्भरता और स्वतन्त्रता की आवश्यकता ‖10‖ त्रुटि हीनता एवं अनाक्रम्यता की आवश्यकता ।

उपरोक्त दस आवश्यकताओं द्वारा अन्तर्द्वन्द्व विकसित होता है जो व्यक्ति को 'न्यूरोटिक बना देता है।

हार्नी ने व्यक्तित्व के रूपों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि व्यक्ति के तीन रूप होते हैं - ‖1‖ विनीत या लोगों की ओर गतिमान ‖2‖ आक्रामक प्ररूप या लोगों के विरुद्ध गतिमान ‖3‖ अनासक्त रूप लोगों से दूर गतिमान ।

'हार्नी' के अनुसार - व्यक्ति की उक्त तीन प्रवृत्तियां पूर्णतः अलग नहीं पायी जातीं, इसलिए वे साथ-साथ बालक में द्वन्द्व पैदा करतीं हैं। द्वन्द्वात्मक स्थिति में जब बालक को स्नेह कम मिलता है तो वह मनस्तापी हो जाता है।

सुलीवन के सारे सिद्धान्त 'हार्नी' और 'फ्राम' के सिद्धान्तों से मेल खाते हैं।

इस प्रकार मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय ने व्यक्ति के मन की गहन खुदाई करके वहाँ स्थित विभिन्न मूलप्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला तथा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि बालक का सारा व्यवहार उसके मन के विविध स्तरों द्वारा संचालित होता है। इनमें पड़ी हुई ग्रंथियाँ (चाहे वह फ्रायड द्वारा निर्धारित हों अथवा 'एडलर' या 'जुंग' द्वारा निर्धारित हो)। कभी-कभी संपूर्ण व्यवहार मानव को संचालित करती हैं। इस सम्प्रदाय ने न केवल सिद्धान्त दिये बल्कि मनोरोगी को ठीक करने की विविध मनोवैज्ञानिक प्रणालियाँ भी विकसित कीं। 'ईड' और 'लिबिडो' आदि प्रवृत्तियां मानव के जीवन में अत्यन्त महत्व रखतीं हैं। जीवन के अधिकांश भाग की डोर इन्हीं के हाथ में होती है और ये ही उन्हें स्वेच्छा पूर्वक गति देती रहती हैं।

(ख) मनोविज्ञान का हिन्दी उपन्यासों में समावेश :-

1- उपन्यासों में समाविष्ट होने वाले मनोवैज्ञानिक तत्व :-

उपन्यास मानव के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का दर्पण है। मानव-जीवन को समझने उसे व्याख्यायित करने के लिये जो-जो पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं, उन सभी पद्धतियों का प्रतिस्थापन उपन्यास में हो सकता है। उपन्यास की नव्यतम प्रवृत्तियों में सर्वप्रधान उनमें मनोविज्ञान विशेषत: उनके नये-नये संप्रदायों का समावेश है, जो न केवल मनुष्य की बाह्य वृत्तियों अपितु उन वृत्तियों की मूल प्रेरणाओं को भी समझने में भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। आधुनिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति निरन्तर जटिल से जटिल मानसिक संघर्षों के दौर से होकर गुजर रहा है, अत: उसके वास्तविक स्वरूप, संघर्षों के मूल कारणों का पता लगाने के लिए उसके जीवन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है कि उपन्यासों में मनोविज्ञान का समावेश अनिवार्य रूप से हुआ है।

"आजकल के उपन्यासों का प्रमाण वाक्य यह है कि जीवन व्यवस्थित रूप से सजी हुई दीपमालिका नहीं है, वह तो ऐसा ज्योतिमंडल है जो हमारी चेतना को आद्यन्त अपने झीने और अर्धपारदर्शक आवरण से आच्छादित किए रहता है।" [1]

इस झीने आवरण को भेदकर अन्तर्रहस्यों को उद्घाटित करना ही आज के मनोविज्ञान का उद्देश्य है।

1- "आलोचना" - जनवरी 1954 ई० (डा० देवराज) - पृष्ठ 35

'मनोविश्लेषण' के विस्फोटक आगमन से उपन्यासों में कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश हुआ। प्रेमचन्दयुगीन और प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश मुख्यतया हुआ वे निम्नलिखित है :-

1- मूल प्रवृत्तियों का द्वयत्व :-

फ्रॉयड ने मनुष्य की वृत्तियों को दो मूलभागों में विभक्त किया, 'जीवन-वृत्ति'(ईरास) और 'मरण-वृत्ति' (थैनटास) । ये दोनों वृत्तियां मनुष्य में क्रियाशील रहती हैं और मनुष्य को विविध दिशायें प्रदान करती हैं। मनुष्य की सभी रचनात्मक प्रवृत्तियां 'जीवन-वृत्ति' से प्रेरित रहती हैं और संहारात्मक या विनाशात्मक प्रवृत्तियां मरण-वृत्ति से प्रेरित रहती हैं । प्रत्येक मनुष्य में ये दोनों वृत्तियां एक साथ स्थित रहती हैं और उसके व्यक्तित्व में संघर्ष उत्पन्न करती रहती हैं, अतः मनुष्य जब किसी से प्रेम करता है तो उसका प्रेम भी घृणा-रहित नहीं रहता है।

"अति तीव्र लैंगिक प्रेम में प्रेमी में प्रेमी या प्रेमिका से क्रूर व्यवहार पाकर क्षुब्ध होने की प्रवृत्ति और प्रेमी या प्रेमिका के प्रति क्रूर व्यवहार करने की प्रवृत्ति प्रेम के साथ ही विद्यमान रहने वाली घृणा वृत्ति की द्योतक है।"[1]

1- "हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन" - 'डा० गणेशन'

प्रथम संस्करण - पृष्ठ 268

2- मनोव्यापार:- मानसिक उदात्तीकरण, विफलताओं और अन्तर्द्वन्दों के फलस्वरूप व्यक्ति में चिन्ताओं का प्रस्फुटन होता है जो व्यक्ति के 'अहं' के लिए खतरनाक है। इस तनावपूर्ण स्थिति का जब कोई व्यक्ति सीधे तौर से समाधान नहीं कर पाता, तो वह विभिन्न अप्रत्यक्ष सुरक्षात्मक उपाय अपनाता है, जिन्हें 'मनोव्यापार' या 'मनोरचनाएं' कहते हैं। ये मनोरचनाएं 'अहं' द्वारा अहं की रक्षा हेतु अचेतन रूप से किए गये सूक्ष्मसुरक्षात्मक प्रयास हैं। ये चिन्ता व तनावों से त्वरित राहत पहुँचाते हैं। मनुष्य इन मनोव्यापारों का प्रयोग इसलिए करते हैं क्योंकि ये एक सीमा तक असफलताओं पर मरहम लगाने, चिन्ताओं से रक्षा करने आघातों से रक्षा करने तथा अहं की उपयुक्तता बनाये रखने में सहायक होते हैं। कुछ प्रमुख मनोव्यापार, जिनका हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में समावेश हुआ है निम्न है :-

1- मानसिक उदात्तीकरण
2- आरोपण
3- निर्देशन
4- विस्थापन
5- अवदमन
6- तार्किकीकरण
7- तादात्म्य
8- दिवास्वप्न
9- अति क्षति पूर्ति

मनुष्य के सामने कभी-कभी ऐसी परिस्थितियां आ जाती है जब वह सामाजिक उत्तरदायित्वों का पालन करने के प्रयत्न में अपनी समाजविरोधी नैसर्गिक प्रवृत्तियों को दमित कर देता है। इस स्थिति में उत्पन्न तनाव को दूर करने के लिए दमित ऊर्जा का उदात्तीकरण हो जाता है। मौलिक नैसर्गिक प्रवृत्तियां समाजानुमोदित होकर समाज कल्याणकारी रूप धर कर बाहर आती है। वस्तुतः मानव-सभ्यता का आधार ही मुख्यतया उदात्तीकरण है। किसी व्यक्ति का दमित प्रेम कभी-कभी कविता बन जाता है। परपीड़न की प्रवृत्ति दमित होने के उपरान्त उदात्तीकृत होकर आत्मपीड़न में बदल जाती है। अत्यधिक हिंसक व्यक्ति कभी-कभी महान क्रान्तिकारी का रूप धारण कर लेते है। हिन्दी उपन्यासों में 'उदात्तीकरण' का अधिकाधिक प्रयोग हुआ है। असमायोजित व कुण्ठित पात्र कभी-कभी अन्त में जाकर अपना कुण्ठा आदि त्यागकर रचनात्मक व सृजनकारी रूप अख्तियार कर लेते है।

मनुष्य में सामान्यतः अपने दुर्गुणों बुरी आदतों व जीवन के दुःखद प्रसंगों को अन्य व्यक्ति की नज़रों से छिपाने की प्रवृत्ति होती है। इसके साथ ही साथ उसमें एक और प्रवृत्ति भी दिखलाई देती है वह यह कि समय-समय पर वह इन दुर्गुणों व बुरी आदतों को दूसरों में देखने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति को जो जो दुर्गुण अस्वीकार्य होते है वह अन्य व्यक्तियों पर प्रक्षेपित करता है उसकी यही प्रवृत्ति 'प्रक्षेपण' कहलाती है। प्रायः देखा जाता है कि आरोपण करने वाला व्यक्ति अपने दुर्गुणों को

स्वीकार नहीं करता है इसीलिए अनजाने ही उसका अवचेतन मन दूसरों पर दोषारोपण करके सन्तुष्ट हो लेता है। 'सुख-सिद्धान्त' से चालित अचेतन मन अपने को तनाव व द्वन्द्वमुक्त रखने के प्रयत्न में ही 'आरोपण' जैसे मनोव्यापार को अपनाता है।

कोई मनुष्य यदि किसी अन्य व्यक्ति के विचारों व क्रियाओं के कारण अपने मन में वैसी ही विचार धारा बनाकर उसी के आधार पर अपना कार्य प्रारम्भ कर देता है तो वह प्रवृत्ति 'निर्देशन' कहलाती है। 'निर्देशन' प्रवृत्ति से परिचालित मनुष्य में विवेक-अविवेक अर्थात विश्लेषना-शक्ति का पूर्णाभाव रहता है। व्यक्ति के अचेतन में तो अन्य किसी के विचारों की लहरें उठती रहती हैं अतः उसका अचेतन ही उस पर हावी होकर उसे निर्देशित करता है। यूंग ने निर्देशन की प्रवृत्ति को परिभाषित करते हुए कहा है - "Suggestion means the infuencing or another's thought or action by certain stimuli in srtuation where the recipient does not use his critical judgement"[1]

'निर्देशन' में ग्रसित मनुष्य अपने विवेक का प्रयोग नहीं करता है इसलिए कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि मात्र अंधविश्वास या पूर्वाग्रहों

1- Young - Personality and Problems of Adjustment, Page : 90

के कारण भी ऐसा होता है । त्रुटिपूर्ण अवधारणाएं भी प्रवृत्ति निर्देशन करती हैं ।

किसी मनुष्य के मन में उत्पन्न होने वाला संवेग जब आत्मतुष्टि का कोई उपाय नहीं ढूँढ पाता है तो किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति के प्रति उन्मुख होकर उस पर अपने भाव प्रकट करता है तो यह प्रवृत्ति 'विस्थापन' कहलाती है। प्रायः देखा जाता है कि बच्चा माँ द्वारा डाँट दिए जाने पर अपना रोष अपने से छोटों पर या अपनी किसी वस्तु की तोड़-फोड़ करके अपनाता है। व्यक्ति का संवेग जब उत्तेजित हो जाता है तो व्यक्ति की मानसिक ऊर्जा संचालित हो जाती है जिससे व्यक्ति के अन्दर मानसिक सन्तुलन एवं अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। यह अशान्ति तब तक बनी रहती है जब तक कि संवेग द्वारा संचालित मानसिक ऊर्जा अपना मार्ग नहीं ढूँढ लेती है। यदि स्वाभाविक निर्गम मार्ग अवरुद्ध हो जाए तो अन्य मार्ग ढूँढ़ना आवश्यक हो जाता है ताकि मानसिक ऊर्जा को शान्ति मिल सके ।

जब मनुष्य के अन्दर उत्पन्न भयावह विचार व दुःखद प्रसंग उसकी जानकारी के बिना चेतन से निकलकर अचेतन में घर कर जाते हैं तो यह क्रिया 'दमन' या 'अवदमन' कहलाती है। " वास्तविकता के प्रति आँख बन्द करना ही दमन है।" कुछ लोग अन्तर्द्वन्द्वात्मक स्थितियों के प्रति कीठनाइयों दोषों प्रेरणाओं के अस्तित्व को अस्वीकार करने की प्रतिक्रिया करते हैं ।

वास्तव में ये लोग दमन करते है।"[1]

'ब्राउन' अवदमन की प्रक्रिया को समझाते हुए लिखते है :-

"That part of a conflict situation which it most unacceptable to the ego and super ego may be forced into the unconscious by the ego."[2]

अर्थात अन्तर्द्वन्द्व को जो अंश 'अहं' तथा सुपर इगो को असह्य होता है, उसे 'अहं' जबर्दस्ती अचेतन में ढकेल देता है। इसी प्रक्रिया को 'अवदमन' का नाम दिया जाता है।

प्राय: देखा जाता है कि जो व्यक्ति 'दमन' का बार-बार इस्तेमाल करता है उसमें स्नायु सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते है।मनस्ताप तथा मनोविक्षिप्तता प्राय: दमन करने वाले व्यक्तियों में ही पायी जाती है। जहाँ तक हिन्दी उपन्यासों में 'दमन' सम्बन्धी मनोरचना का सम्बन्ध है, प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यासों में अवदमन के दर्शन अधिक होते है।

जब व्यक्ति की क्रियाओं व विश्वासों को स्वयं अपने द्वारा या दूसरों के द्वारा चुनौती दी जाती है तो वह उन्हें उचित सिद्ध करने हेतु कुछ तर्क गढ़ता है। स्वाभिमान कायम रखने की इच्छा से प्रेरित दोषपूर्ण व आत्मरक्षात्मक चिन्तन ही 'तार्किकीकरण' या (Rationalization) है।

1- 'हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन'- डा० गिरधर प्रसाद शर्मा
प्रथम संस्करण सन् 1978 ई० पृष्ठ 19

2- "Psychodynamics of Abnormal behaviour"- Brown
Page 169

व्यक्ति अपने कार्यों व निर्णयों हेतु कुछ तर्क खोजकर उसे उचित साबित करता है। 'तार्किकीकरण' या 'औचित्यस्थापन' दो प्रकार का होता है। एक है - अंगूर खट्टे हैं। जब कोई व्यक्ति किसी वांछित कार्य में सफल नहीं होता है तो अपने तर्कों द्वारा उस कार्य के गुण छिपाने लगता है। जैसे - यदि व्यक्ति को वांछित नौकरी नहीं मिलती है तो वह कह उठता है कि उसका 'वेतन' कम था या कार्य अधिक करना पड़ता या प्रमोशन के अवसर कम थे आदि। दूसरी प्रकार का तार्किकीकरण है- नींबू मीठे हैं। अर्थात गरीब व्यक्ति यह कहकर ही आत्मतुष्टि प्राप्त करता है कि - "जो मजा गरीबी में है वह अमीरी में कहाँ ? गरीब तो घोड़े बेचकर सो सकता है उसे न चोरी का डर है न डाके का।

अर्थात् इस मानसिक क्रिया के द्वारा व्यक्ति अपनी टूटी प्रतिष्ठा बचाने हेतु अस्थायी रूप से तो सफल हो जाता है परन्तु उसे इसकी कीमत स्वयं को धोखा देकर चुकानी पड़ती है।

जब व्यक्ति कोई उपन्यास या नाटक देखता या पढ़ता है तब वह नायक या नायिका के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो खलनायक के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं। असुन्दर लोग, अथवा प्रभावशाली व्यक्तित्व से रहित लोग चलचित्र जगत के सितारों की तथा अन्य ख्याति प्राप्त व्यक्तियों की नकल करके अपनी कमी दूर करने की कोशिश करते हैं। 'तादात्म्यीकरण' के तीन अर्थ हैं -

पहला स्वयं को किसी दूसरे व्यक्ति अथवा समूह के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध करना। दूसरा- किसी व्यक्ति अथवा समूह के उद्देश्यों और मूल्यों को अपना मान लेना। तीसरा- अपने उद्देश्यों और मूल्यों को किसी दूसरे व्यक्ति के साथ संविलीन करदेना।

जब हम कोई भयादि देख रहे होते हैं तो यदि भय में कोई गोलादि होने वाला होता है तो बरबस ही हमारे पैर उठ जाते हैं या कोई सिनेमा में यदि नायक-नायिका रोते हैं तो दर्शक भी रो पड़ता है। यह मानसिक प्रक्रिया प्रथम तरह की 'तादात्म्यीकरण' कहलाती है। स्वतन्त्रता से पहले भारत में ऐसे देशवासियों की कमी नहीं थी जो अंग्रेजों की वेशभूषा, रहन-सहन आदि न अपनाये हों अर्थात् अचेतन रूप में ही किसी व्यक्ति या समूह के मूल्यों को अपना लिया। यह तादात्म्यीकरण का द्वितीय ढंग है। प्रायः देखा जाता है कि यदि किसी व्यक्ति ने अपने समय में किसी क्षेत्र में उचित सफलता न पायी तो अपने निकट सम्बन्धी या पुत्रादि से वह यह आशा करता है कि उसका पुत्रादि यह सफलता प्राप्त करे इसके लिए वह उन्हें मानसिक रूप से तैयार करता है। यह तादात्म्यीकरण का तृतीय ढंग है।

व्यक्ति अपने संघर्षों व तनावों से मुक्ति पाने के लिए 'प्रतिगमन' करता है। जब किसी व्यक्ति के जीवन में अनेक भयावह कठिनाईयाँ पेश आती है तो वह हार मान लेता है, विजय' का प्रयत्न छोड़कर रोने,

मचलने, पैर पटकने, चीजों को ठोकर मारने आदि के द्वारा बचपन की प्रवृत्ति का परिचय देता है, तब वह 'प्रतिगमन' करता है। बड़े होकर भी जब बचपन की प्रवृत्ति आ जाए । उपेक्षा व तिरस्कार आदि पर प्राय: मानव व्यवहार 'प्रतिगमित' होने लगता है। "यह व्यवहार कुण्ठाजन्य होता है। कुण्ठित होने पर बच्चे प्रतिगमनात्मक व्यवहार प्रकट करते हैं । कभी-कभी इस प्रकार प्रतिक्रिया से तनाव दूर होता है लेकिन इससे समस्या का हल नहीं होता है।"[1]

मनुष्य अपने व्यवहार को संतुलित करने के प्रयत्न में 'क्षतिपूर्ति' जैसी मनोरचनाएं करता है। सामाजिक अथवा व्यक्तिगत कमी, हीनता आदि को दूर करने के लिए जो कार्य व्यक्ति द्वारा किए जाते हैं वे ' 'क्षतिपूर्ति' प्रतिक्रियाओं के नाम से जाने जाते हैं। इस क्षतिपूर्ति या 'सम्पूर्ति' शब्द का प्रयोग मनोविज्ञान में दो स्थितियों के लिए होता है - प्रथम स्थिति वह है जब व्यक्ति अपनी किसी एक प्रेरणा को किसी अवरोध के कारण प्रकट नहीं कर पाता तो वह दूसरी भिन्न प्रेरणा पर बल देता है। जैसे - यदि किसी व्यक्ति की यौन सम्बन्धी अभिव्यक्ति में बाधा उत्पन्न हो जाती है तो वह अपनी ऊर्जा को श्रमसाध्य कार्यों में

1- "हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन" -
डा० गिरधर प्रसाद शर्मा
प्रथम संस्करण - सन् 1978ई० पृष्ठ 25

लगा देता है। दूसरी स्थिति वह है जब व्यक्ति अपनी किसी प्रेरणा को या लालसा को तृप्त करने के लिए कोई प्रत्यक्ष साधन नहीं पता है तो उसे तृप्त करने के लिए दूसरे साधन को स्थापित कर देता है।

कभी-कभी 'हीनता' या 'स्वाभिमान' से अपदस्थ होने के खतरों से उबरने के लिए प्रतिक्रिया पैदा होती है। कद से नाटे व्यक्ति जो अपने शरीर से लाचार होते हैं प्राय: अच्छे व प्रतिभाशाली व्यक्ति साबित होते हैं । वे अपनी इस हीनता को छुपाने के लिए अतिक्षतिपूर्ति का सहारा लेते हैं ।

'दिवास्वप्नों' द्वारा भी व्यक्ति अपने तनावों से मुक्ति पाने का प्रयत्न करते हैं। प्राय: कल्पना सृष्टि द्वारा व्यक्ति की अहंकार मूलक लालसा, सत्ता की लिप्सा अथवा कामेच्छा की पूर्ति होती है। दिवा-स्वप्नों में मिलने वाली बड़ी-बड़ी ऊँची इच्छाओं की कल्पनात्मक सृष्टि के लिए किसी यथार्थता की अनुमति नहीं लेनी पड़ती है। 'दिवास्वप्न' चेतन और अचेतन दोनों होते हैं । दिवास्वप्न प्राय: काव्य रचना, कहानी व उपन्यास लिखने के लिए उपादान के रूप में भी हो सकते हैं।

3- <u>अचेतन मन का अध्ययन व विश्लेषण</u> :- अचेतन मन का अध्ययन व विश्लेषण आज के उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्ति है। मनुष्य का व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन अधिकतर

अचेतन द्वारा संचालित होता है।फ्रायड के मतानुसार मन का 9/10 भाग अचेतन है। फ्रायड ने मन की उपमा हिमखण्ड से देते हुए बतलाया है कि जिस प्रकार जल में तैरते हुए हिमखण्ड का अधिकांश भाग पानी के अन्दर रहता है। उसी प्रकार मन का 9/10 भाग अचेतन होता है इसी के द्वारा मानव की प्रत्येक प्रवृत्ति नियंत्रित होती है। हमारे बाह्य आचरण, मानसिक उथल-पुथल व तनावों की पृष्ठभूमि अचेतन से प्रेरित होती है।

हिन्दी उपन्यासों में मन के तीनों स्तरों 'इड', 'ईगो' व 'सुपर ईगो' का वर्णन मिलता है।

'इदं' का निवास जीवन के अचेतन क्षेत्र में होता है। "यह सुजक तथा संहारक प्रेरणा शक्तियों का उत्स है। शरीर सम्बन्धी समस्त कार्य प्रेरकों का उद्गम स्त्रोत यही है। काम-क्षुधा के विभिन्न रूप 'इदम' में ही शामिल रहते है। समाज द्वारा समर्थित आदर्शों से इदम् का कोई वास्ता नहीं है। मानव की सभी अच्छी-बुरी जन्मजात आवश्यकताएं अपनी तृप्ति के लिए यहीं पर हाथ-पैर हिलाती है।"[1]

'इदम्' जीवन-वृत्ति व मरणवृत्ति का केन्द्र होता है। वह मानव की समस्त रचनात्मक व विनाशात्मक प्रवृत्तियों को प्रेरणा देता है।

1- "हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक आलोचनात्मक अध्ययन"-
डा० गिरधर प्रसाद शर्मा
प्रथम संस्करण सन् 1978 ई० पृष्ठ 14

इदं की प्रवृत्ति सुख-सिद्धान्त से परिचालित होती है। अर्थात अच्छा हो या बुरा यदि सुख मिले तो वही करना है। यह काम इदं करवाता है। 'अहं' व्यक्ति के जीवन के अचेतन, अर्धचेतन व चेतन तीनों क्षेत्रों में विचरण करता है। यह 'इद्र' को यथार्थ के सम्पर्क में आने पर परिवर्तित व परिष्कृत करता है। यह 'इदं' की अवांछित, अमंगल और असामाजिक वृत्तियों का दमन करता है। यह सजग प्रहरी की भाँति अथवा दोष-निरीक्षक का कार्य करता है। यह 'इदं' की तरह वासना प्रेरित न होकर अनुभव प्रेरित होता है।

'सुपर ईगो' व्यक्ति का समाजीकरण करने वाली शक्ति है और नैतिकता की 'मूल-प्रेरणा'। नैतिक और अनैतिक प्रवृत्तियों में अंतर करना ही 'सुपर इगो' या सुपराहम का कार्य है।

हिन्दी उपन्यासों में यद्यपि चेतन और अचेतनमन की प्रवृत्तियों का काफ़ी अध्ययन किया गया है, तथापि इस प्रकार से मन के तीनों स्तरों का विभाजन करके उनका विश्लेषण कम ही किया गया है फिर भी अचेतन के स्तरों का अध्ययन अवश्य हुआ है।

4- <u>असामान्य व्यक्तित्व का अध्ययन व विश्लेषण:-</u> हिन्दी उपन्यासों में प्रेमचन्द युग में आदर्शवादी पात्रों की सृष्टि हुआ करती थी, परन्तु प्रेमचन्द कालीन

और प्रेमचन्दोत्तर युग में व्यक्तित्व की जटिलताओं व विविध मनोस्थितियों के उद्घाटन के लिए 'असाधारण मनोवृत्तियों' का भी समावेश किया गया। असामान्य व्यक्तित्व के अन्तर्गत अधिकांश असमान्य चित्त- विकृतियां होती है - (1) चित्त विकृति (2) चित्त विक्षिप्त (3) चित्त मंदता और (4) असामाजिक मनोवृत्ति ।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य के उपचार के लिए जिन मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग होता है, मानव-मन के 'अवचेतन मन' के अन्दर की बातें बाहर लाने के लिए जिन मनोपचार पद्धतियों का प्रयोग होता है उनका प्रयोग भी हिन्दी उपन्यासों में जमकर हुआ। हिन्दी उपन्यासों में 'चरित्र-चित्रण' के लिए कुछ निम्न प्रमुख पद्धतियों का प्रयोग हुआ है।

1- मुक्त आलंब पद्धति

2- बाधकता विश्लेषण

3- स्वप्न विश्लेषण

4- पूर्वावृत्तात्मक विधि

5- अन्तर्दिवाद

6- चेतना प्रवाह

7- मनोविश्लेषण या आत्म विश्लेषण

8- पत्रात्मक शैली इत्यादि

2- <u>प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में मनोविज्ञान:-</u> प्रेमचन्द युगीन उपन्यास मनोविज्ञान के आधुनिक प्रयोगों व सिद्धान्तों के समवर्ती हैं। अत: काल व परिस्थिति जन्य संघर्षों के मध्य जन्मे मानव के मन की उथल-पुथल इस युग के उपन्यासों में अवश्यं-भावी है। "उपन्यास आधुनिक युग की उपज है। आधुनिक होने के नाते प्रकृत्या इसका झुकाव जीवन की वास्तविकता की ओर आरम्भ से रहा है।"[1]

यद्यपि बाह्य जीवन की उथल-पुथल और संघर्षों की कहानी अधिक कहने वाले प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में मनोविज्ञान का समावेश उतना तीव्र नहीं था जितना परवर्ती मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में, तथापि 'अन्तर्मन' का चित्रण और 'अन्तर्द्वन्द्वों' का चित्रण इस युग के उपन्यासों में छुटपुट रूप में पाया जाता है।

प्रेमचन्द्युगीन उपन्यासों में समाज मनोविज्ञान और वैयक्तिक मनोविज्ञान का प्रवेश अधिक हुआ है। मनुष्य वातावरण के अनुसार अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। वह अपनी पारिवारिक और सामाजिक रीति-नीतियों, परम्पराओं, विचारों तथा मान्यताओं का ज्यों का त्यों अनुकरण कर लेता है। फ्रायड-कथित 'नैतिक अहं' का निर्माण समाज करता है। इस पर परिवार, समाज, विद्यालय का अत्याधिक प्रभाव

1-"हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी
प्रथम संस्करण- फरवरी 1962ई० पृष्ठ 16

पड़ता है। बालक समाज की मान्यताओं को ही औचित्य और अनौचित्य की कसौटी बनाता है। यहाँ तक कि वह उसका अंधानुकरण भी करने लगता है। इसी कारण से एक ही समाज में , एक ही संस्कृति में पले-बढ़े लोगों के व्यवहारों, विचारों आदि में समानता पायी जाती है। समाज का कोई एक व्यक्ति उसका प्रतिनिधि बन जाता है।

प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों में समाज मनोविज्ञान, और वातावरण-वादी संप्रदाय का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'गोदान' का होरी कृषक समाज का, गोबर नई पीढ़ी के कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। 'गबन' का रमानाथ मध्यवर्गीय युवावर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। प्रेमचन्द यह स्पष्ट करता है कि कोई भी मनुष्य कुछ सीखकर जन्म नहीं लेता वरन् समाज में ही उसका निर्माण होता है। उदाहरण के लिए 'गबन' उपन्यास की नायिका जालपा की आभूषणप्रियता के प्रति वातावरण ही जिम्मेदार है। वातावरण में 'समायोजन' और असमायोजन की प्रक्रिया भी प्रेमचन्द के उपन्यासों में दर्शनीय है। 'गोदान' में राय, तन्खा आदि का होरी और गोबर आदि का, 'गबन' में जालपा और रमानाथ का असमायोजन दर्शनीय है।

प्रेमचन्द की भाँति जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों में भी 'समाज-मनोविज्ञान' अपने मुखरित रूप में मिलता है। बेचन शर्मा उग्र, भगवती-चरण वर्मा, यशपाल इन सभी के उपन्यास 'समाज मनोविज्ञान एवं

वातावरणवादी सम्प्रदाय से प्रभावित है।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब उसका बाह्य वातावरण उसकी आन्तरिक इच्छाओं का विरोध बन जाता है। एक ओर समाज की मान्यतायें किसी सुदृढ़ दीवार के समान उसके सामने खड़ी रहती है तो दूसरी ओर उसकी अभिलाषाओं की तरंगें बार-बार इन मान्यताओं की दीवारें तोड़ने का जी-तोड़ प्रयास करती है। मनुष्य अपने क्रिया-कलापों का उचित ठहराने के लिए तर्कों का सहारा लेता है। फ्रॉयडियन मनोविज्ञान इस क्रिया को "औचित्य-स्थापन' नाम देता है।

'गोदान' में पण्डित ओंकारनाथ, जो कभी शराब नहीं पीते हैं, मिस मालती के आग्रह मात्र से शराब पीकर उनके भक्त बन जाते हैं और 'औचित्य-स्थापन' द्वारा इस क्रिया को सत्य ठहराते हैं। 'पण्डित बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यास 'जीजीजी' में पण्डित दीनानाथ का निम्न कथन 'औचित्य-स्थापन' का ही उदाहरण है :- "दीनानाथ अपनी सास पर मुग्ध हो जाते हैं और चाहते हैं कि बेटी के साथ मां को भी समेट लें। अगर सास भी पट जाए तो कहने ही क्या?" ------ लेकिन उनका नैतिक मन उन्हें फटकारने लगता है और अचेतन अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपनी बात का औचित्य प्रमाणित करने में जुट जाता है। वे सोचते हैं —— " धर्म औरत के लिए, हि।हि। वह तो भोग की वस्तु

है -- जहाँ मिले, जिसकी मिले । ------- मैं इस सबसे यही अर्थ निकालता हूँ कि औरत जरूर रफा करने मात्र की चीज है - बेटा-बेटी धन पैदा कर लेने मात्र की चीज है - जोतकर बोकर कोई पूजा की चीज नहीं ।"[1]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उनके उपन्यास 'यौन-मनोविज्ञान' से आक्रांत है। 'व्यं रक्षामः' की देवयानी एक ऐसी नारी है जो एक से अधिक पुरुषों से 'यौन-सम्पर्क' स्थापित किए बिना न तो संतुष्ट ही होती है और न ही उत्तेजना प्राप्त कर पाती है। यही बात यशपाल के 'तेरी, मेरी, उसकी बात' में भी स्पष्ट दिखती है।

आचरणवादी या व्यवहारवादी संप्रदाय ने प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में पर अपना विशेष प्रभाव छोड़ा है। यशपाल के प्रायः सभी उपन्यास आचरणवादी सम्प्रदाय' से प्रभावित हैं। उनके उपन्यास वर्ग-संघर्ष के उपन्यास है। अतः उनके पात्रों में 'अन्तर्द्वन्द्व' की प्रधानता स्वाभाविक ही है। आत्मविश्लेषण करने वाले पात्रों में दादा कामरेड के पात्रों की प्रधानता है। दादा कामरेड में यशोदा के पति अमरनाथ की मानसिक उथल-पुथल देखें :-

---

1- "जीजी जी" - 'पण्डित बेचन शर्मा, 'उग्र' ; पृष्ठ 56, 57

"अँधेरे में वह दोनों अपने-अपने पलंग पर पड़े छत की ओर आँखें लगाये रहते । नींद दोनों को ही बहुत देर से आती, परन्तु वह बात न कर सकते । अनेक बार अमरनाथ के होठों तक बात आकर रुक जाती। एक-दो बेर कह डालने के लिए उन्होंने पुकार भी लिया — देखो - - - ' यशोदा ने उत्तर दिया -'जी' । परन्तु फिर अमरनाथ को साहस न हुआ सोचा- क्या लाभ ? कह दिया - 'उदय को अब स्कूल में भरती करा देना ठीक होगा। यशोदा ने उत्तर दिया - 'जैसा ठीक समझें।"[1]

यशपाल जी के उपन्यासों में 'अन्तर्विवाद'[इन्टीरियर मोनोलाग्स] भी पात्रों के अचेतन मन के अन्दर रहस्यों को उद्घाटित करते है । 'अचेतनमन' के विश्लेषण का प्रारंभिक प्रयास प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों द्वारा आरंभ हो चुका था । अतः समकालीन उपन्यासकारों ने 'अचेतनमन' का विश्लेषण 'इन्टीरियर मनोलाग्स' द्वारा किया। यद्यपि प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में 'अन्तर्द्वन्द्व' अपने भीषण रूप में नहीं प्रस्तुत हुआ है अतः मानसिक असंतुलन को शांत करने के लिए सुझायी गयी विविध मनोरचनाएं प्रेमचन्द्युगीन उपन्यासों में नहीं मिलती है।

चरित्र-चित्रण के लिए मनोविज्ञान, मनोवैज्ञानिकों ने जो अन्य मनोवैज्ञानिक पद्धतियां सुझाई है जैसे :- 'मुक्त आलंग', 'आत्मविश्लेषण'

1- "दादा कामरेड" - 'यशपाल' पृष्ठ 147

तथा 'बाधकता विश्लेषण', केस हिस्ट्री विधि, स्वप्न विश्लेषण इत्यादि इनका प्रयोग प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में प्रयोग न के बराबर ही मिलता है।

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में केवल 'अचेतनमन' की झलक ही मिलती है। चरित्र-चित्रण के लिए 'अन्तर्विवादों' एवं अन्तर्द्वन्द्वों का ही प्रयोग हुआ है।

इस युग के उपन्यासों में 'अंतर्विवाद' एवं 'अन्तर्द्वन्द्व' अधिकतर पात्रों का वाह्य-संघर्ष (सामाजिक, आर्थिक संघर्ष) ही दर्शाते हैं, मानसिक जगत् तक उनकी तगड़ी पहुँच नहीं है। उदाहरणार्थ - प्रेमचन्द के आरंभिक उपन्यासों में से 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' के अन्तर्विवाद वाह्य समस्याओं को लेकर ही चले है। 'सेवासदन' में सदनसिंह के विवाह के अवसर पर पद्म सिंह शर्मा का यह अन्तर्विवाद देखें :-

"यह विवाह निकट आ गया तो शर्मा जी का उत्साह कुछ क्षीण होने लगा मन में यह समस्या उठी कि मेरा यहाँ वेश्याओं के लिए अवश्य ही मुझे लिखेंगे, उस समय मैं क्या करूँगा? नाच के बिना सभा सूनी रहेगी, दूर-दूर के गाँव के लोग नाच देखने आयेंगे --- भाई साहब बुरा मानेंगे। ऐसी अवस्था में मेरा क्या कर्तव्य है? लेकिन कुछ भी हो, मेरा कर्तव्य यही है कि सिद्धान्त का पालन करूँ।"[1]

1- "सेवा-सदन" - प्रेमचन्द पृष्ठ 105

प्रेमचन्द ने पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करने के लिए 'आत्म-विश्लेषण विधि' का प्रयोग किया है। 'कायाकल्प' में जेल की कोठरी में बंद-चक्रधर का यह आत्मविश्लेषण उसकी 'सेवावृत्ति' का उद्घाटन करता है -- "मैं तो कोई आन्दोलन नहीं कर रहा था। किसी को भड़का नहीं रहा था। जिन लोगों की प्राण-रक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डाली, वही मेरे साथ यह सलूक कर रहे हैं --- यदि सेवा करना पाप है तो मैं उस वक्त तक करता रहूँगा, जब तक प्राण रहेंगे। जेल की क्या चिन्ता ? सेवा करने के लिए सभी जगह मौके हैं।"[1]

प्रेमचन्द के अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा के परवर्ती उपन्यास आधुनिक मनोविज्ञान के प्रभाव से वंचित नहीं हैं। उनके उपन्यास यदा-कदा अन्तर्द्वन्द्वों और मानसिक संघर्षों की परिधि से होकर गुजर ही जाते हैं। उनके उपन्यासों के पात्रों के बारे में रघुवीर सहाय लिखते हैं :-

"जीवन के अनेक मोड़ों पर जब भी उनके सामने समस्याएं आती हैं और जब भी वे परस्पर विरोधी मार्गों में से एक को अपनाने के लिए बाध्य होते हैं, उन्हें अपना मार्ग निश्चित करने में दिक्कत नहीं होती। होती भी है तो वह बहुत देर तक रहती नहीं। अपने स्वभाव, गत अनुभव और मान्यताओं के आधार पर शीघ्र वे अपने लिए मार्ग चुन लेते हैं। इसीलिए उनके पात्रों में मानसिक संघर्ष कम छिड़ता है और यदि छिड़ता भी है तो

1- "कायाकल्प" - प्रेमचन्द पृष्ठ 123, 124

वह अधिक देर तक नहीं रहता।"[1]

वर्मा जी ने जहाँ भी मानसिक संघर्षों व द्वन्द्वों का चित्रण किया है वहाँ वे परस्पर विरोधी भावनाओं के मध्य संघर्ष को ज्यादा देर तक नहीं दिखा पाते हैं। 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' इन सभी उपन्यासों में मानसिक द्वन्द्व दिखे तो है, पर पल भर को।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि प्रेमचन्द युगीन उपन्यास 'समाज-मनोविज्ञान' से ओतप्रोत और आदर्शवादी संप्रदाय से प्रभावित उपन्यास है जिनमें यदा-कदा फ्रॉयडियन मनोविज्ञान का भी प्रभाव दिख जाता है।

3- <u>प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मनोविज्ञान</u>:- प्रेमचन्दोत्तर काल तक पहुँचते-पहुँचते मनोविज्ञान जन-जीवन पर छा गया। उसने मानव-जीवन का कोई भी ऐसा कोना नहीं छोड़ा जो कि मानवीय चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब है। बीसवीं सदी में फ्रायड, एडलर और युंग तथा वाटसन, वर्दीमर तथा मेक्डूगल जैसे मनोवैज्ञानिकों ने मानव-मन के गहन स्तरों को उद्घाटित करके युगों से चली आ रही परम्परागत मान्यताओं को झकझोर दिया। इन मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति को नये ढंग से सोचने, समझने और विश्लेषण करने के लिए विवश कर दिया।

1- "हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास"- डा० रणवीर रांग्रा संस्करण - सन् 1961 ई० पृष्ठ 288,289

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मनोविज्ञान के बारे में श्रीमती मधु जैन लिखती हैं - "- - - अब कथा साहित्यिकों का ध्यान समस्याओं के बाह्य विश्लेषण की अपेक्षा अन्तः विश्लेषण की ओर अधिक रहता है। वह यह मानकर चलते हैं कि व्यक्ति के कार्यकलापों के मूल में बाहरी कारण ही नहीं, आन्तरिक कारण भी विद्यमान रहते हैं। जो प्रायः बाह्य कारणों के सर्वथा विपरीत रहते हैं।"[1]

जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय, भारती एवं यशपाल के उपन्यासों में मनोविश्लेषणवादी तत्वों का जमकर प्रयोग हुआ है। उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के उपन्यास तो विविध मनोव्यापारों के रंगस्थल है।

'मूल प्रवृत्तियों' का प्रभुत्व 'जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के प्रायः सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में देखने को मिलता है। जैनेन्द्र के 'सुखदा' को ही लें। 'सुखदा' में नायिका सुखदा और कान्त दोनों के प्रेम में यद्यपि कोई कमी नहीं है। कान्त अपनी सुखदा को बहुत प्यार करता है उसे हर तरह की स्वतन्त्रता भी देता है परन्तु वह सुखदा से दबता सा दिखता है। लगता है कि उसे अत्यधिक छूट देकर अचेतन में वह उसे दबाना चाह रहा है। सुखदा को पूर्ण स्वतन्त्रता देकर उसे अज्ञात में मानसिक दण्ड देने की भी प्रवृत्ति उसके मन में विद्यमान है। 'विवर्त' उपन्यास में जितेन सब भुवन मोहिनी का हरण कर लेता है और उसे कष्ट देता है तब भी उसका हृदय

1- "यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"- डा० मधु जैन
प्रथम संस्करण - सन् 1977 ई० पृष्ठ 329

भुवन मोहिनी केन्द्रित प्रेम से वंचित नहीं रहता है। यहाँ पर भी 'जीवन-वृत्ति' और 'मरण-वृत्ति' में ध्रुवत्व देखा जा सकता है।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में तो ध्रुवत्व के उदाहरण अधिक स्पष्ट रूप में मिलते हैं। 'प्रेत और छाया', 'लज्जा', 'सन्यासी' 'मुक्तिपथ', 'पर्दे की रानी' इन सभी उपन्यासों में 'जीवन-वृत्ति' और 'मरण-वृत्ति' का ध्रुवत्व दिखता है। पारसनाथ का पिता बैजनाथ 'प्रेत और छाया' उपन्यास के प्रारम्भ में पारस को अपार घृणा की दृष्टि से देखता है, परन्तु उपन्यास के अंत में उसकी दृष्टि स्नेहमय हो जाती है। 'पर्दे की रानी' में निरंजना का व्यक्तित्व भी उसकी इन्हीं वृत्तियों द्योतक है। इन्द्रमोहन के प्रति अपार प्रेम और अन्त में उसे उसके सर्वनाश के लिए उकसाना ये उसकी दो विरोधी वृत्तियों के ध्रुवत्व को दर्शाते हैं। 'निर्वासित' के महीप और 'सन्यासी' के नन्दकिशोर के 'हिंसा-अहिंसा' के भावों में भी मूल प्रवृत्तियों का ध्रुवत्व ही है। 'निर्वासित' के नायक महीप के मानसिक संघर्षों का यही कारण है।

'अचेतनमन' का प्रवेश सर्वाधिक तीव्र गति से केवल मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में ही अधिक हुआ है। जैनेन्द्र के उपन्यासों - 'सुनीता', 'कल्याणी' और 'व्यतीत' में अचेतनमन का ही अधिक विश्लेषण हुआ है। 'सुनीता' का नायक हरिप्रसन्न अपने विद्यार्थी काल में तथा उसके बाद क्रान्तिकारी बन जाने पर अत्यन्त संयत आदर्श जीवन व्यतीत करता है

किन्तु यह सब 'अहं' और 'पराहम्' की प्रवृत्तियां है। उसकी 'लिबिडो' अत्यन्त तीव्र है। सुनीता से मिलने के बाद उसका अहं पराहम् पर हावी हो जाता है, अतः 'लिबिडो' से आक्रान्त हीरप्रसन्न सुनीता को समूचा पा लेने की चाहना करता है और उसे अपनी बांहों में कस लेता है लेकिन पुनः 'पराहम्' जागृत होकर उसे नियंत्रित करता है। इसी प्रकार 'कल्याणी' और 'व्यतीत' दोनों के ही नायक, नायिकाओं में अचेतनमन हावी रहता है।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में अचेतन मन की ही उथल-पुथल अधिक परिलक्षित होती है। डा० गणेशन के शब्दों में- "अचेतन की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने वाले हिन्दी उपन्यासकारों में इलाचन्द्र जोशी का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ है। उनके प्रायः सभी उपन्यासों में मन के अगाध तल में अवस्थित सूक्ष्म वृत्तियों की व्याख्या की गयी है।"[1]

'सन्यासी' का नायक नन्दकिशोर 'अहं-ग्रस्त' है। 'पर्दे की रानी' की निरंजना अचेतन की वृत्तियों द्वारा चालित है। 'निर्वासित' का महीप भी 'अहं' ग्रस्त है। 'प्रेत और छाया' का नायक महीप भी अपने अचेतनमन में जमी प्रवृत्तियों द्वारा ही परिचालित होता रहता है। 'रवाय का भोग' उपन्यास का नायक नृपेन्द्ररंजन भी 'सामूहिक अचेतन के सिद्धान्त' से परिचालित है।

1- "हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन" - डा० एस०एन०गणेशन
प्रथम संस्करण - सन् 1963 ई० पृष्ठ 286

'फ्रायड', 'एडलर', और 'युंग' आदि मनोवैज्ञानिकों ने अहं की सुरक्षा के लिए जो-जो उपाय सुझाये हैं उन सभी का विस्तृत प्रयोग प्रेमचन्दोत्तर काल के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने किया है। ' इनमें से 'दमन', 'क्षतिपूर्ति', 'अति क्षतिपूर्ति', 'प्रक्षेपण', 'औचित्य स्थापन', 'प्रतिगमन', 'उदात्तीकरण' 'विस्थापन' और 'तादात्म्य' इत्यादि मनोव्यापारों का प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने अधिक प्रयोग किया है।

'उदात्तीकरण' नामक मनोव्यापार को सबसे अधिक इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में प्रयुक्त किया गया है। उनके उपन्यासों के लगभग सभी पात्र उपन्यास के अंत तक आते आते उदात्त वृत्तियों वाले हो जाते हैं। 'सन्यासी' उपन्यास का नायक नंदीकिशोर उपन्यास के प्रारम्भ में हिंसा और अहं जैसे भावों द्वारा चालित होकर अपने सम्पर्क में आने वाले सभी पात्रों को मानसिक प्रताड़नाएं देता है, परन्तु अंत में जाकर उसकी वृत्तियों का उदात्तीकरण होता है। वह संन्यासी बन जाता है। 'पर्दे की रानी' उपन्यास में भी अंत में निरंजना की वृत्तियां उदात्तीकृत हो जाती हैं। वह मातृत्व जैसे जीवन के मंगलमय पथ का वरण करती है। जोशी जी के अन्य उपन्यासों में भी उदात्तीकरण विविध रूपों में पाया जाता है। "जोशी जी के उपन्यास 'मुक्तपथ में उदात्तीकरण का उत्तम उदाहरण है। उनके कथानक का आधार ही राजीव की मानसिक प्रवृत्तियों का उदात्तीकरण है।"[1]

1- "हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन" - डा० एस०एन०गणेशन
प्रथम संस्करण- सन् 1962ई० पृष्ठ 279

जैनेन्द्र के उपन्यास भी मानसिक उदात्तीकरण को लेकर चलते हैं। 'त्याग पत्र' की मृणाल पतित होने पर भी आदर्श पात्र के रूप में सामने आती है। पति से अनादर पाकर वह अपने विद्रोह के भाव को दबाती है और 'आत्मपीडन' के भाव से अपने को त्रास देती रहती है। यही उसका मानसिक उदात्तीकरण है। अपने आप में घुलती हुई मृणाल बिना कोई प्रतिरोध दिखाये मानसिक रूप से, आंतरिक रूप से उदात्त चरित्र प्रस्तुत करती है। 'परख' उपन्यास की नायिका 'कट्टो' का जीवन भी उदात्तीकृत है। वह जीवन की स्वाभाविक वृत्ति का दमन करके अपनी यौन ऊर्जा को रचनात्मक दिशा में मोड़कर ग्रामीण बालक बालिकाओं को पढाने लगती है, यही उसका मानसिक उदात्तीकरण है।

'अति क्षतिपूर्ति' नामक मानसिक क्रिया व्यापार भी प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में परिलक्षित हुआ है। जैनेन्द्र के उपन्यास व्यतीत में प्रेम के क्षेत्र में पराजित जयन्त युद्ध के क्षेत्र में विजय पदक प्राप्त करता है। जोशी जी के उपन्यास 'हुबह के झूले' में नायिका गुलबिया अपनी शिक्षा के द्वारा सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाती है। 'निर्वासित' का नायक महीप भी कद में ठिगना होने के कारण अतिक्षतिपूर्ति द्वारा महान कवि बन जाता है।

'निर्देशन' नामक मनोव्यापार प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में जोशी जी और जैनेन्द्र में ही अधिक मिलता है। 'त्याग का भोग' उपन्यास की नायिका मीनाक्षी 'हिप्नोटिज्म' द्वारा निर्देशित है। 'लज्जा' उपन्यास

की नायिका 'लज्जा' में भी स्वयं में कोई विवेचना शक्ति नहीं है।उसका अचेतन मन डा० कन्हैयालाल के विचारों के आधार पर कार्य करता है। 'प्रेत और छाया' उपन्यास का नायक पारसनाथ 'इडिपस-ग्रीथ' से निर्देशित है। जैनेन्द्र के उपन्यासों में 'सुखदा'की नायिका सुखदा का व्यवहार दादा के व्यवहार के द्वारा निर्देशित है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकों द्वारा खोजे गये मनो-व्यापारों का तो प्रयोग हुआ ही है, पात्रों के चारित्रिक विश्लेषण के लिए लगभग सभी मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का भी अनुगमन हुआ है। मनोविश्लेषण शास्त्रियों ने 'मुक्त आसंग', 'आत्म विश्लेषण', 'बाधकता विश्लेषण', 'स्वप्न-विश्लेषण', 'पूर्ववृत्तात्मक विधि', 'पत्रात्मक शैली' एवं 'अन्तर्दर्शवाद' जैसी मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का अविष्कार करके मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के समक्ष 'अचेतनमन' के विश्लेषण की कुंजी खोल दी। प्रेमचन्दोत्तर कालीन सभी उपन्यासकारों में इन शैलियों का न्यूनाधिक रूप में प्रयोग हुआ है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में 'जयवर्धन' व'कल्याणी' में मुक्त आसंग प्रणाली द्वारा पात्रों के अचेतन मन में छिपे विकारों को बाहर लाया गया है। 'विलबर हुस्टन' इला को मुक्त आसंग में लाकर अपना मानसिक चित्रण प्रस्तुत करवाता है।[1] 'त्याग पत्र' में मृणाल का भतीजा प्रमोद उसे

1-देखें - "जयवर्धन" - जैनेन्द्र, प्रथम संस्करण, पृ० 128, 130, 131

मुक्त आलंग की स्थिति में लाकर उसके मानसिक पट खोलता है।[1] इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में मुक्त आलंग प्रणाली केवल 'निर्वासित' में ही तीव्र रूप में प्रयुक्त हुई है। महीप धीराज के मन की 'गांठें' खोलने के लिए उसे इस स्थिति में ले आता है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में आत्म विश्लेषण प्रणाली तो स्वतः ही आ गयी है, क्योंकि अधिकांश उपन्यास आत्म कथात्मक शैली में लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त पूर्व दृश्यात्मक प्रणाली, पत्रात्मक प्रणाली इन दोनों का प्रयोग 'नदी के द्वीप' में मिलता है। भुवन, रेखा, गौरा और चन्द्र-माधव के पत्रों के सहारे उनके चेतन और अचेतन मन के क्रिया कलापों को मुखरित किया गया है।

अस्तु, प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मनोविश्लेषण शास्त्रियों द्वारा सुझाये गये व्यक्तित्व विश्लेषण संबंधी सभी वैज्ञानिक तत्वों का न्यूनाधिक रूप में समावेश हुआ है और यह परम्परा इन उपन्यासों में अनुगामी है।

1- देखें- "त्यागपत्र" - जैनेन्द्र संस्करण सन् 1983 पृष्ठ 69

तृतीय अध्याय

इलाचन्द्र जोशी का जीवन, कृतियाँ एवं उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

"तृतीय अध्याय"

::::::::::

'इलाचन्द्र जोशी का जीवन, कृतियाँ एवं उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण'

(अ) जीवन परिचय :-

1- जन्म-तिथि :- मानव हृदय के अन्तरतम् के गूढतम रहस्यों की अपने तीक्ष्ण मनोवैज्ञानिक अस्त्रों द्वारा, चीर-फाड़ करने वाले महान साहित्य चिकित्सक श्री इलाचन्द्र जोशी जी का जन्म मार्गशीष मास के शुक्लपक्ष में त्रयोदशी की तिथि को संवत् 1956 तदनुसार 13 दिसम्बर सन् 1902 को अल्मोड़े की खूबसूरत वादियों में हुआ था, जहाँ की भूमि ने चिरकाल से ही कवियों, उपन्यासकारों की जननी होकर स्वर्गादपि गरीयसी होने का गौरव प्राप्त किया है।

2- निवास स्थान:- प्रकृति से कवियों लेखकों व अन्य महानविभूतियों का जैसे जन्म जन्मान्तर का नाता रहा है। उसकी ममतामयी क्रोड इन महापुरुषों के मानस को महान गुणों से भरती रही है। ऐसी ही प्रकृति की एक क्रोड है- अल्मोड़े की हरीतिमाच्छ चित्ताकर्षक भूमि जिसने कई लोकों के कई महान, भावुक, संवेदनशील व्यक्तित्व तैयार किये हैं। अल्मोड़े का नैसर्गिक वातावरण, जैसे वहाँ के मानव-मात्र को अपने जैसी सुकुमारता व भावुकपन लुटाता रहता है। संसार-संताप-तप्त प्राणी जब यहाँ अपने पद को प्रस्थापित करता है तो एक सुखद और नैसर्गिक आनन्द उसके मन-पुष्प को पल्लवमय कर देता है। जीवन के नैराश्य से ऊबा हुआ प्राणी जब कभी अपने चरण अल्मोड़े की धरती पर रखता है तो अनजाने ही वह जीवन के प्रति आशावान हो उठता है। यहाँ की ऐसी भूमि अनेक साहित्य-मनीषियों की जननी बन-बनकर धन्य होती रही है। कविवर पंत, नाटककार,

मनोवैज्ञानिक उपन्यास सम्राट
इलाचन्द्र जोशी

राजनीतिज्ञ गोविन्द बल्लभ पन्त और शिवानी जैसी साहित्य-मणियाँ इसी रमणीक-स्थली से उपजी हैं। इस रमणीक-स्थली के 'मल्लीदन्या' नामक सुन्दर ग्राम में ही मानव-मनोविज्ञान के चतुर-चितेरे पंडित इलाचन्द्र जोशी ने जन्म लिया। 'दन्या' इनका पैतृक निवास था पर इनकी शिक्षा दीक्षा अल्मोड़े से ही आरम्भ हुई, अतः अल्मोड़ा इनके बचपन की निवास स्थली है। बचपन में ही उस समय वहाँ पर उपलब्ध समस्त साहित्य का मनन करने के बाद सातवीं कक्षा में पढ़ते-पढ़ते ही एक एक हस्तलिखित पत्रिका सुधारक के संपादक बने। तब तक वहीं अल्मोड़ा में ही रहे परन्तु जब सोलह वर्ष की उम्र में हाई स्कूल भी पास कर लिया तो दुर्भाग्यवश पिता के देहावसान के बाद बड़े भाई के साथ कुछ दिन शाहजहाँपुर रहे लेकिन भाई हेमचन्द्र जोशी के स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद जाने के कारण उन्हें अपने मन का करने का अवसर मिला। जीविका की खोज एक कर्मयोगी की तरह करते हुए वे कलकत्ते जैसी महानगरी में पहुँचे। संघर्ष के क्षणों में 'कलकत्ता' उनका निवास-स्थान बना। 'साहित्य' में अपनी धाक उन्होंने कलकत्ते में ही जमानी आरंभ कर दी थी।"[1] कलकत्ते के उबड़-खाबड़ जीवन का क्रम टूटा प्रयाग आकर।"[2] उनके जीवन का शेष भाग 'प्रयाग' में ही साहित्य-साधना करते-करते बीता। 'संगम' जैसी त्रिधारा थी पंडित इलाचन्द्र जोशी का शेष जीवन साहित्य, कला व पत्रकारिता की तीन धाराएं चलाते हुए प्रयाग में 18, नवाब यूसुफ रोड़ में ही व्यतीत हुआ।

1-"अग्निपथ के वे दिन"-संस्मरण- इलाचन्द्र जोशी 'प्रस्तुति कुमुद सक्सेना साप्ताहिक हिन्दुस्तान- 23जनवरी1983 पृष्ठ25

2-"परिमल"-'इलाचन्द्र जोशी 'अभिनन्दन विशेषांक- सन् 1952 पं0इलाचन्द्र जोशी, जीवनपरिचय-ओंकार शरद पृष्ठ 14

3- पूर्वज :- इलाचन्द्र जोशी के पूर्वज 'मल्लीदन्या' अल्मोड़ा के ही रहने वाले थे। इनके पिता स्वर्गीय पंडित चन्द्रबल्लभ जोशी एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे, संगीत-समाज में उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा थी; साथ ही वे वन-विभाग में चीफ कंजर्वेटर ऑफ फारेस्ट के निजी सचिव भी रहे थे। चित्र-कला और मूर्तिकला के प्रति पंडित चन्द्रबल्लभ जोशी जी का पूर्ण समर्पण था। जोशी जी की माँ सुसंस्कृत परिवार की एक भद्र महिला थी जिनके अन्दर भारतीय नारी के गुण व सनातनपंथी परम्पराएँ विद्यमान थीं। वे यद्यपि अधिक पढ़ी-लिखी न थीं फिर भी गीता का अध्ययन नियमित रूप से करतीं थीं। गीता के निर्लिप्त और निरासक्त कर्मदर्शन का बालक जोशी पर पूर्ण प्रभाव पड़ा, जो स्वाभाविक ही था। इनके ज्येष्ठ भ्राता डा० हेमचन्द्र जोशी भाषा शास्त्र के प्रकाण्ड-पंडित थे। विश्व-भ्रमण के फलस्वरूप प्राप्त ज्ञान के कारण इनकी गणना विश्व के श्रेष्ठ भाषा शास्त्रियों के रूप में की जाती है।

4- व्यक्तित्व :- इलाचन्द्र जोशी सरल-स्वभाव के प्राणी थे। उनका बाह्य व्यक्तित्व ही उनके आन्तरिक व्यक्तित्व के पृष्ठ खोलने का काम करता है। पंडित इलाचन्द्र जोशी के गरिमामय व्यक्तित्व की झाँकी सुमित्रानन्दन पंत ने अपने एक लेख 'मन का साथी' में दर्शायी है:- "- बहुत पहिले की बात है, एक दुबला-पतला, गोरा, लम्बा, फुरतीला किशोर युवक गंभीर मुद्रा धारण किए, अपनी पैनी दृष्टि से भीड़ के कोलाहल को चीरता हुआ, अल्मोड़े के पत्थरों के पटटी बाजार को तीखे पैनल डगों से पार करता हुआ, सांझ के समय कभी एकांत वनों की ओर वायु-सेवन के लिए जाता हुआ दिखाई पड़ता था। सीधा व सादा लिबास- संभवतः पायजामे के ऊपर कमीज और कोट, सिर पर पहाड़ी टोपी, दोनों हाथ कोट की जेब में - बिना

किसी की ओर देखे, चुपचाप सड़क के किनारे-किनारे अकेले जाते हुए उस किशोर के व्यक्तित्व में उसके संकोचशील आत्मस्थ एकाकीपन के अतिरिक्त और कोई विशेष आकर्षण नहीं प्रतीत होता था। उसके गोरे-गोरे गालों पर पहाड़ी हवा अपना स्वास्थ्य की लालिमा का वरदान अर्पित करने में अलबत्ता नहीं चूकी थी, पर कंधों पर उन दिनों लंबे-लंबे बालों की घुँघराली लटें नहीं झूला करती थीं। झिझक, संकोच आदि सभी सुलभ गुणों के कारण उसमें पार्वती के स्वल्प का ही अधिक प्राधान्य था। - - - - - न जाने किसने एक दिन बतलाया कि यही झलावन्द्र जोशी हैं।"[1] ऐसे दुबले-पतले, गोरे लंबे फुर्तीले थे, मन के साथी पंडित झलावन्द्र जोशी। बेहद संकोची, बेहद आत्मस्थ जोशी जी किशोरावस्था पार करते-करते लंबी घुँघराली लटों वाले, ओवरकोट्यारी जोशी जी बन चुके थे। "- - - उनकी गहन गंभीर मुद्रा मन को आकर्षित किए बिना नहीं रहती थी। स्वभाव के तारल्य जो प्रायः प्रत्येक पहाड़ी में मिलता है- का अपनी निष्कपट सहृदयता के कारण उनका पांडित्य धीरे-धीरे हृदय में स्नेह की रेखाओं में प्रस्फुटित होने लगा।[2]

अवस्था प्राप्त करते हुए जोशी जी का व्यक्तित्व आत्मस्थ तो होता गया, पर स्वभाव का तारल्य वृद्धावस्था तक बना रहा। श्री सुशील राकेश' उनके स्वभाव के बारे में लिखते हैं:- "जोशी जी का स्वभाव वास्तव में बाल सुलभ है, वे क्षण भर में बालकों के प्रति मोहित हो जाते हैं, क्षण-भर में डाँट भी देते हैं और फिर गंभीर हो जाते हैं, पृथ्वी जिस तरह हर दुःख का भार सहती है, किसी से कहती तक नहीं। उसी तरह का

1-"परिमल" - 'झलावन्द्र जोशी' -अभिनंदन विशेषांक- सन् 1952
पंत लिखित 'मन का साथी' लेख से उद्धृत, पृष्ठ 40

2-"परिमल" - 'झलावन्द्र जोशी' अभिनंदन विशेषांक, सन् 1952
पंत लिखित 'मन का साथी' लेख से उद्धृत पृष्ठ 42

कुछ इला का अपनापन है।"[1] वसुन्धरा की तरह ही इला का व्यक्तित्व जीवन भर आघातों के थपेड़े झेल-झेलकर भी अक्षत ही रहा। उनकी मानस-भगिनी महीयसी महादेवी जी ने उनके सम्मान में प्रस्तुत अभिनंदन-पत्र में उनके ऐसे ही अक्षत व्यक्तित्व का दिग्दर्शन कराया है - "भाई इलाचन्द्र जी का व्यक्तित्व ऐसा ही है जो सौ-सौ बार तपा, पर गला नहीं, सहस्रों आघात झेले, पर बिखरा नहीं।"[2]

ऐसे व्यक्तित्व के धनी थे - इलाचन्द्र जोशी जिनके चित्त में सदैव अल्मोड़े की भावुकता व सारल्य बसता था, पर सांसारिक -संतापों से पीड़ित जोशी जी की मुख मुद्रा सदैव धीर-गंभीर चिन्तनमय लगती थी।

5- <u>स्नेही तथा परिचित</u> :- शैशवकाल में ही विद्याव्यसनी इलाचन्द्र जोशी ने अनेक उत्कृष्ट साहित्यकारों का सान्निध्य प्राप्त किया। अपने अल्मोड़े-प्रवास के दौरान ही उन्होंने गोविन्द बल्लभ पंत व सुमित्रानन्दनपन्त जैसी प्रख्यात विभूतियों के साथ अपनी साहित्य साधना शुरू की। बड़े भाई डा० हेमचन्द्र जोशी का उनपर विशेष प्रेम, उनका साहित्य के प्रति रुझान पैदा करना- इनके कारण ही जोशी जी का मित्र-मंडल और परिचित-मंडल बढ़ता गया। इनके साहित्यिक जीवन को बनाने व उसे संवारने का पूर्ण श्रेय इनके अग्रज डा० हेमचन्द्र जोशी को जाता है। जोशी जी का बचपन से ही अमित विद्यानुरक्ति को देखकर हेमचन्द्र जी ने इन्हें तेरह वर्ष की ही अवस्था में जब ये मात्र सातवीं कक्षा के विद्यार्थी थे,

---

1-"धर्मयुग" - 4जनवरी से 10जनवरी सन् 1976
सुशील राकेश- 'पं० इलाचन्द्र जोशी के संस्मरण' से उद्धृत, पृष्ठ 22, 23
2-"परिमल" -'इलाचन्द्र जोशी' अभिनंदन विशेषांक,
'महादेवी लिखित अभिनन्दन प[illegible] उद्धृत, पृष्ठ 1

बंगला साहित्य के सम्पर्क का रास्ता किया जिसके कारण आगे चलकर अपने कलकत्ता प्रवास के दौरान इन्होंने बंगला साहित्यकारों का स्नेह पाया। 'गोविन्द बल्लभ पन्त' से उनकी मित्रता की कहानी अल्मोड़ा के एक बाल पुस्तकालय से शुरू हुई। " - - - सातवें दर्जे की पढ़ाई - तेरह की उम्र। स्कूली किताबों में जी न लगे। अल्मोड़ा में एक बाल-पुस्तकालय था। उसके मंत्री श्री गोविन्द बल्लभ पंत थे जो आज हिन्दी जगत् के माने हुए नाटक कार व उपन्यासकार हैं। उन्हीं इलाचन्द्र जोशी ने केवल इसीलिए मित्रता की कि उन्हें वे उनकी पसन्द की पुस्तकें देते रहें।"[1] सुमित्रानन्दन पंत अध्ययन-काल में उनके सीनियर थे। जोशी जी एक ही विद्यालय में पढ़ते हुए कविवर पंत की प्रतिभा से शुरू से ही प्रभावित रहे। 'सुधारक' पत्रिका, जिसका नाम बदलकर बाद में जोशी जी ने 'सुधाकर' किया में कविवर सुमित्रा नन्दन पंत व पं० गोविन्दबल्लभ पंत की रचनाओं को प्रकाशित करके जोशी जी को दोनों 'पंत' बंधुओं के साथ नैकट्य प्राप्त हुआ। बचपन से ही प्राप्त सुमित्रानन्दनपंत का सान्निध्य उन्हें 'प्रयाग' प्रवास के दौरान भी मिला क्योंकि पंत ने भी बाद में प्रयाग आकर साहित्यकार-संगम में अवतरण किया। अल्मोड़ा प्रवास के दौरान ही पंडित अंबिका प्रसाद गुप्त जो कि 'इन्दु' व हिन्दी गल्प माला के संपादक थे, का भी विशेष स्नेह जोशी जी को प्राप्त हुआ। जोशी जी जब नवीं कक्षा के विद्यार्थी थे तब 'हिन्दी गल्प-माला' में उनकी कहानियाँ प्रकाशित होती थीं। पंडित अम्बिका प्रसाद गुप्त का दिशा-निर्देश उन्हें किशोरावस्था से ही प्राप्त हुआ। पिताजी श्री चन्द्रबल्लभ जोशी की मृत्यु के बाद एकाएक आजीविका की तलाश में पंडित इलाचन्द्र

1-"परिमल" - 'इलाचन्द्र जोशी' अभिनंदन विशेषांक सन् 1952 ई०
ओंकार शरद लिखित- पं०इलाचन्द्र जोशी' जीवन परिचय
से उद्धृत, पृष्ठ 11

जोशी कलकत्ता नगरी पहुँचे वहाँ पर उनका बंगला का पूर्वज्ञान उन्हें बंगला साहित्यकारों के सानिध्य में लाया। " - - - तब जोशी जी केवल 19वर्ष के थे। अचानक 'कलकत्ता-समाचार' दैनिक कार्यालय में पहुँच गये। इनके बंगला व हिन्दी ज्ञान के कारण बिना अधिक परिश्रम के सम्पादकीय विभाग में नौकरी मिल गयी। उन्हीं दिनों बंगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार स्व० श्री शरच्चन्द्र चटर्जी से आपका परिचय हुआ और वहाँ परिचय धीरे-धीरे घनिष्ठता में परिणत हो गया। जोशी जी ने उन्हें अपनी अब तक की प्रकाशित रचनाएं- कविताएं, साहित्यिक निबंध और कहानियाँ पढ़ने को दीं जिन्हें पढ़कर वे बहुत प्रसन्न हुए और बराबर अच्छी-अच्छी चीजें लिखते रहने के लिए जोशीजी को उत्साहित और प्रेरित करते रहेंगे।"[1]

इस प्रकार उनका परिचय बंगला साहित्यकारों से शुरू हुआ। बंगला में एक कहानी 'यौवनावस्था की चंचलताएं' लिखकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पास भेजने के बाद ही रवीन्द्र जी से उनका परिचय हुआ और साथ ही आगे उन्होंने उनसे प्रशंसा व स्नेह पाया। बंगाली साहित्यकारों में न केवल शरच्चन्द्र व रवीन्द्र बाबू ने उन्हें विशेष स्नेह दिया; अपितु स्व० सच्चिदानन्द सिन्हा व स्व० रामानन्द चटर्जी जैसे : उत्कृष्ट पत्रकार भी उनके मित्र बने, क्योंकि वे 'हिन्दुस्तान रिव्यू' तथा 'मार्डन रिव्यू' से जुड़े थे। 'प्रयाग' आने पर तो उनके स्नेहियों व परिचितों की बाढ़ सी आ गयी। न केवल साहित्यिक मनीषी ही उनके परिचित थे, अपितु अनेक महान राजनीतिज्ञ भी उनके साहित्य से प्रभावित होने के कारण उनके परिचितों में शामिल हुए। पंडित जवाहरलाल व सरोजनी नायडू को उनका साहित्य विशेष पसन्द था। एक बार शायद

1-"परिमल" - 'इलाचन्द्र जोशी' अभिनन्दन विशेषांक, ओंकार शरद लिखित- 'इलाचन्द्र जोशी' जीवन परिचय, लेख से उद्धृत पृ० 12

1937 के आसपास स्वर्गीया श्रीमती सरोजनी नायडू इलाहाबाद आयीं तो उन्होंने आनन्द भवन में सहपूर्वक जोशी जी की 'पिंजरावती' की कविताएं सुनीं और फिर कई बार उन्हें बुलाकर उनकी कविताएं सुनीं।"[1] इनकी कविताओं की प्रशंसा में उन्होंने जोशी जी को एक पत्र लिखा :-

"It has given me very great pleasure to hear you, your exquisite Hindi Lyrics, which have in them such delicate and flowery beauty of rhythm and music, rich imagery and tender emotion. you are among the poets who are born not made- a child of your own forests, mountains and shadowy skies."[2]

प्रयाग आने पर 'लीडर प्रेस' से सम्पर्क के कारण पंडित इलाचन्द्र जोशी की परिचितों का दायरा बढ़ता गया। हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध लेखक व कवि वहीं आकर अड्डा जमाते थे। बाचस्पति पाठक तो उनकी तुलना-प्रीतमा से पहले से ही परिचित थे।अज्ञेय हेमचन्द्र जोशी के साथ सम्पादन कार्य संभालने पर अन्य अनेक साहित्यकार जिनमें मुख्य 'केशव देव वर्मा' थे, उनके सम्पर्क में आये। श्री रामचन्द्र टण्डन, बलभद्र प्रसाद मिश्र आदि उनके मित्र बने। लेकिन 'संगम' व 'परिमल' के संपर्क में आते ही प्रतुमल्युग

1- 'इलाचन्द्र जोशी के अग्रज के पुत्र श्री भुवन चन्द्र जोशी से 28-10-87 को इलाहाबाद में हुए साक्षात्कार के आधार पर प्राप्त तथ्य।

2-"परिमल" सन् 1952 में प्रकाशित 'सरोजनी नायडू' का पत्र पृष्ठ 14

(प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, महादेवी वर्मा व निराला) की त्रयी पंत, महादेवी व निराला जैसे लोगों के बीच उनका शेष जीवन बीता। धर्मवीर भारती, गंगा प्रसाद पांडेय, गोपेश जी, जगदीश गुप्त, जितेन्द्र सिंह, डा० राजबली पांडेय, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, दिलीप नारायण सिंह ओंकार शरद, वृन्दावनलाल वर्मा, मैथिली शरण गुप्त, गिरिधर गोपाल, तर्केश्वर दयाल सक्सेना, रघुवंश, नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, धीरेन्द्र वर्मा, रामकुमार वर्मा, अमरनाथ झा आदि विद्वान जोशी जी के अभिन्न मित्रों में से है। स्वर्गीय श्री वृन्दावन लाल वर्मा जी ने जोशी जी से हुए परिचय के बारे में लिखा है :- "उन्नीस सौ इक्कावन के फ़रवरी महीने की बात है। साहित्यकार-संसद प्रयाग ने एक समारोह किया। गंगा का तट, सूर्यास्त से पूर्व का समय । ठंड पड़ रही थी। गंगा की लहरों पर से झूमती हुई वायु की एक झकोर आई। उसके साथ एक सज्जन उसी पंक्ति की ओर आते दिखलाई पड़े, जिसमें मैं बैठा हुआ एक मित्र से बातचीत कर रहा था। सब लोग इधर-उधर खड़े, बैठे टहलते हुए, समारोह का आनन्द ले रहे थे। अधिवेशन का आरंभ नहीं हुआ था। वह सज्जन मेरे पास आकर बैठ गये। दीर्घकाय, लम्बे केश, खुला सिर, शरीर पर लम्बा ऊनी कोट। साहित्यकार तो होंगे ही तब तो यहाँ आये, मैंने सोचा, परन्तु अपने मित्र से उनका परिचय नहीं पूछ पा रहा था - वे बहुत निकट बैठे थे। मैंने अपना तमाखू वृना निकाला और गदेली पर मला। उस सज्जन ने अपना हाथ पसारा और मेरी गदेली पर से चुपचाप लेकर मुँह में डाल लिया। बातचीत चुप नहीं। मैंने मन में गुना - कौन हो सकते हैं, ये इतने बेतकल्लुफ ? जब अनुमान पर न पढ़े तो संकेत में अपने मित्र से प्रश्न किया, क्योंकि वे तो मौन धारण

किये हुए थे। धीरे से मेरे कान में पड़ा, "श्री इलाचन्द्र जोशी! ----
उस दिन का परिचय गाढ़ा और अधिक गाढ़ा होता चला गया।"[1]
आज के समर्थ साहित्यकार व सम्पादक धर्मवीर भारती जी, स्वर्गीय इलाचन्द्र जोशी के स्नेह के विशेष पात्र थे। इलाचन्द्र जोशी ने 'संगम' के प्रकाशन के दौरान धर्मवीर भारती की प्रतिभा को खोजा और अपने सहकारी के रूप में उनसे कार्य करवाया। वे लिखते हैं - 'संगम का नियमित प्रकाशन हो जाने पर प्रारम्भ में ही मुझे तीन योग्य सहकारी प्राप्त हो गये, जिनमें श्री धर्मवीर भारती भी थे, --- श्री भारती का आविष्कार मैंने ही किया। 'संगम' में आने से पहले वह विश्वविद्यालय के छात्र मात्र थे।"[2] ओंकार शरद व रमानाथ अवस्थी पर भी उनकी विशेष कृपा थी, उन्होंने 'संगम' के दौरान जोशी जी की काफी सहायता की। जोशी जी लिखते हैं:- "--मेरे दूसरे सहकारी श्री ओंकार शरद आज के प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार और सुप्रसिद्ध तरुण कवि श्री रमानाथ अवस्थी ने भी मेरा काम बहुत हल्का कर दिया था। त्रिमूर्ति की तरह यह जोड़ी मुझे संयोग और सौभाग्य से ही मिल गयी थी।"[3] जीवन के अंत तक साहित्य धारा बहाते हुए जोशी जी का स्नेही तथा परिचित वर्ग असीमित रहा। परिवार के सभी सदस्यों, पुत्रों के भी पुत्रों में स्नेह बाँटते रहे, साथ बैठकर ताश आदि खेलते हुए बच्चों को बचपन दिया, बूढ़ों के साथ इलाहाबाद की सुबहें व शामें बितायीं।

1- "परिमल" - 'इलाचन्द्र जोशी' अभिनंदन विशेषांक सन् 1952
अभिनंदन -'वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ठ 4
2- "अग्निपथ के वे दिन" -संस्मरण इलाचन्द्र जोशी प्रस्तुति सुधुद सक्सेना
साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 23जनवरी 83, पृष्ठ 25
3- "अग्निपथ के वे दिन"- संस्मरण इलाचन्द्र जोशी प्रस्तुति सुधुद सक्सेना
साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 23जनवरी 83, पृष्ठ 25

6- भ्रमण :- इलाचन्द्र जोशी ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा अल्मोड़े में पूरी की। साहित्य लिखने की रुचि उनमें बचपन से ही जाग्रत हो गयी थी, अतः अपनी साहित्य-यात्रा को ऊर्ध्वमार्गी बनाने के लिए वे अल्मोड़े में ही निरन्तर एक खोजी की तरह घूमते रहते थे, कभी इस पुस्तकालय में तो कभी उसमें। उन्होंने लिखा है :- "मेरे बचपन में ही स्वामी सत्यदेव अल्मोड़े आये थे। उनके प्रयास से हिन्दी का अच्छा प्रचार हुआ। अल्मोड़े में एक पुस्तकालय की स्थापना हुई। लोगों का आग्रह था कि उसमें केवल 'विशुद्ध साहित्य की ही पुस्तकें रहें। ----- "मैंने भी उस पुस्तकालय के माध्यम से खूब पढ़ा।"[1] अर्थात् जोशी जी ने अपने बचपन के दिनों से ही साहित्य-स्वाद हेतु इतस्ततः भ्रमण किया। पिताजी के देहावसान के बाद जोशी जी के सम्मुख जब रोजी-रोटी की समस्या उठ खड़ी हुई तो उन्होंने भागकर कलकत्ते में शरण ली। कलकत्ते के गली-कूँचों में घूमते हुए जब उन्हें कुछ न सूझा तो कुछ दिन तो उन्होंने साहित्यिक जीवन का आनंद उठाने के लिए साहित्य साधना शुरू की। कलकत्ता प्रवास के बारे में वे लिखते हैं:- "शरद चन्द्र के कारण मैं कलकत्ता गया था। वहीं से, साहित्य-साधना शुरू की। वहाँ साहित्यिक गोष्ठियों में जाना और लाइब्रेरी में पढ़ना घूमना ही मेरा काम रहा।"[2] जब खर्च की समस्या आई तो उन्होंने वहाँ एक लॉंड्री खोली और कपड़े धोये। "मन में सोचा कि पैसा कमायेंगे, बहुत पैसा हमारे पास आ जायेगा, और वही लॉंड्री खोलेंगे, मशीन खरीदेंगे।

---

1 -"अभी मैं घर नहीं लौटा हूँ" - 'इलाचन्द्र जोशी'
'साक्षात्कार', 16जनवरी 1979, पृष्ठ 48

2-"साक्षात्कार इलाचन्द्र जोशी - साक्षात्कारकर्ता 'प्रमोद सिन्हा'
'साक्षात्कार', 16जनवरी 1979, पृष्ठ 9

---- मैं 16-17 साल का था । इस धंधे से मेरा आम आदमियों से परिचय हुआ ।"[1] कलकत्ते में रहते हुए लॉंड्री के धंधे में लगे हुए यद्यपि उन्हें साहित्य-सृजन के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता था लेकिन अपने कलकत्ता प्रवास के दौरान हुए अनुभवों को उन्होंने 'जहाज का पंछी' उपन्यास में हूबहू उतारा है। लांड्री में हर समय तो समय मिलता नहीं था क्योंकि हर कपड़े को लिस्ट से मिलाना, सबके कपड़े अलग-अलग करना, इन सबकी गिनती करते-करते काफी समय बीत जाता था । "रात में वहीं कहीं सोने की जगह भी नहीं थी, गर्मी भी थी और पास ही बाहर गंदी गली थी। जगह कम थी इसलिए जो धुलने के लिए कपड़े आते थे, उन्हीं गट्ठरों के ऊपर लेटकर मैं सो जाता था। कोई-कोई कपड़े गंदे होते थे, बच्चों को दस्तो कराये हुए कपड़े भी होते थे। मगर लिखने की गति जो थी वह धीमी हो गयी थी। रात में लेटा हुआ हूँ गंदी गली के पास गंदे बिस्तर में और सोच रहा हूँ कविता- - - - 'पिंजनवती' की पूरी कविताएँ वहीं लिखी गयीं ।"[2] ये यात्रा प्रवास के लिए कलकत्ता नहीं गये, गये अपने घर-परिवार के लिए । लिखने पढ़ने की प्रेरणा भी घर से पायी। नौकरी के सिलसिले में उन्हें कुछ दिन दिल्ली लखनऊ भी रहना पड़ा था । लखनऊ से निकलने वाली पत्रिका 'सुधा' में 'सहायक' के लिए एक विज्ञापन निकला, जिसके लिए इलाचन्द्र जोशी जी ने आवेदन किया। वे लखनऊ निवास के बारे में लिखते हैं :- "बहरहाल लखनऊ पहली बार गया। दुलारेलाल भार्गव जी के यहाँ काम शुरू किया,

---

1-साक्षात्कार इलाचन्द्र जोशी - साक्षात्कार कर्ता 'प्रमोद सिन्हा' 'सारिका' 16जनवरी 1979, पृष्ठ 9-10

2-साक्षात्कार इलाचन्द्र जोशी - साक्षात्कारकर्ता - 'प्रमोद सिन्हा' 'सारिका' 16जनवरी 1979, पृष्ठ 10

यहीं पर अनेक साहित्यकारों से मेरी पहली भेंट हुई । मैथिलीशरण गुप्त जी से भी यहीं मिला । 'सुधा', 'माधुरी' का झगड़ा चलता था। मैंने कितने ही लेख उस जमाने में लिखे । कुछ अपने नाम से, कुछ छद्म नाम से ।"[1] पेसों के विवाद के कारण उन्होंने लखनऊ छोड़कर कुछ दिन इलाहाबाद में काम किया फिर कुछ दिनों के लिए साहित्य से कटकर शाहजहाँपुर के पंचायत राज में रहने लगे । बड़े भाई साहब के साथ काम के सिलसिले में वे शिमले भी गये। वापस आकर उन्होंने टाईप सीखा । भाई साहब के साथ ही 'नई दिल्ली' व बम्बई की यात्राएँ युवावस्था में ही कीं। इन सब यात्राओं के बाद ही उन्होंने इलाहाबाद जैसी नगरी के अनुभव प्राप्त किए जिसका उल्लेख ऊपर हुआ है। कलकत्ता भ्रमण के दौरान उनका रुझान पत्रकारिता की ओर अधिक हो गया अतः वे इसी सिलसिले में इलाहाबाद वापस आये। पारिवारिक उलझनों के कारण ही जिसमें उनका वैवाहिक जीवन भी था। वे कलकत्ता जैसे सुदूर नगर से इलाहाबाद आये। इलाहाबाद में उन्होंने अपने साहित्य को नयी दिशा दी। 'मुक्तिपथ' को छोड़कर अधिकांश उपन्यास उनके इलाहाबाद निवास के दौरान ही लिखे गये। 'संगम', 'परिमल', साहित्यकार संसद सभी जगह गोष्ठियों में उनका आना-जाना था। यहाँ पर आकर उन्होंने अपना घर बना लिया और सपरिवार यहीं रहने लगे। यहाँ पूर्ण व्यवस्थित होने पर उन्होंने अनेक स्थानों की यात्राएँ कीं । महादेवी वर्मा के साथ वे कन्याकुमारी जैसे प्राकृतिक स्थल के दर्शनार्थ भी गये । संपादक पद छोड़ने के बाद सन् 1955 में कुछ दिन के लिए वे आकाश वाणी इन्दौर में प्रोड्यूसर पद पर रहे इसके बाद दिल्ली ट्रान्सफर कराकर

1- "अभी मैं मरा नहीं लौटा हूँ।" - 'इलाचन्द्र जोशी'
'साक्षात्कार'- 16जनवरी 1979, पृष्ठ 49

आकाशवाणी दिल्ली में भी 'प्रोड्यूसर' के रूप में ख्याति अर्जित की और दिल्ली के वातावरण में रमण किया। अंतिम समय में वे इलाहाबाद में ही रहे।

7- पत्रकारिता क्षेत्र :- बहुमुखी प्रतिभा के धनी पंडित इलाचन्द्र जोशी ने पत्रकारिता का काम बचपन से ही शुरू कर दिया था। उन्होंने अल्मोड़े में ही तेरह वर्ष की छोटी सी उम्र में एक हस्तलिखित पत्रिका के संपादन का भार अपने कंधों पर लिया। "उन्हीं दिनों अल्मोड़ा के कुछ लड़कों ने मिलकर एक हस्तलिखित मासिक पत्र निकाला नाम था - 'सुधारक' । पत्रिका बहुत दिनों तक न चल सकी तो इलाचन्द्रजी के हाथ में उसका भार आया। सर्वप्रथम ही आपने पत्रिका का नाम बदला- सुधारक के क्या माने हमें कोई सुधार करना है ? साहित्यिक नाम होना चाहिए । केवल 'र' व 'क' का स्थान बदलना होगा - सुधाकर । और तेरह वर्ष की अवस्था में ही 'सुधाकर' के सम्पादक हो गये, इलाचन्द्र जोशी"[1] पत्रकारिता का सिलसिला आगे बढ़ा - 'चाँद' के सहारे । जब 'चाँद' अपनीबालावस्था में था तभी स्व० सहगल जी इनसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने जोशी जी को 'चाँद' का सहकारी सम्पादक नियुक्त कर दिया। परन्तु आर्थिक कारणवश ये 'चाँद' से नाता तोड़कर कलकत्ते पहुँचे। कलकत्ते में इनकी रचनाएँ न केवल हिन्दी व अंग्रेजी की वरन् बंगला की भी बड़े सम्मान के साथ छपती थीं। '1928' में मार्डन रिव्यू में " इनका एक लेख 'तत्कालीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों पर प्रकाशित हुआ था जिससे हिन्दी संसार में बड़ा तहलका मच गया था और प्रत्येक प्रमुख हिन्दी पत्र

1-"परिमल" -'इलाचन्द्र जोशी' अभिनंदन विशेषांक सन् 1952 ई० ओंकार शरद लिखित पं० इलाचन्द्र जोशी, जीवन परिचय लेख से उद्धृत पृष्ठ ।।

ने उस पर टिप्पणी प्रकाशित की थी। इसी वर्ष दुलारे लाल भार्गव ने इन्हें 'सुधा' के संपादन के लिए बुलाया।" [1] लेकिन सैद्धान्तिक मतभेद के कारण ये वहाँ से सम्पादन का काम छोड़कर कलकत्ते पहुँचे जहाँ 1929 में अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री हेमचन्द्र जोशी के साथ संयुक्त रूप से 'विश्ववाणी' नामक मासिक पत्रिका का संपादन किया। दो वर्ष बाद ही 'विश्ववाणी' के अलावा वे एक साप्ताहिक पत्र 'विश्वमित्र' के संपादन करने लगे। इसके बाद डाक्टर हेमचन्द्र जोशी और इनके संपादकत्व में मासिक 'विश्वमित्र' का प्रकाशन आरम्भ किया जिस पर पत्रकारों ने विशेष समीक्षा की और कहा कि यह पत्र हिन्दी पत्रकारिता जगत् का नव दिशा वाहक पत्र है। पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने काफी आर्थिक कठिनाईयों का सामना किया। अपने एक साक्षात्कार में उन्होंने इसका वर्णन देते हुए कहा है - "विश्ववाणी' जब निकालते थे तो सवाल उठा कि पैसा तो है नहीं ? मेरे घर में टाईपराईटर रखा, प्रातः उठते ही मैं अपना काम शुरू कर देता। लिखता और उन्हें टाइप करके दे देता। इसी प्रकार दिन भर प्रेस का ही चक्कर रहता था, साथ ही साथ्री का काम भी देखता था। इसी कारण हम दोनों भाई दिवालिए रहे, कभी भी अधिक पैसा नहीं कमा सके।" [2]

सन् 1935 में इलाचन्द्र जोशी व हेम चन्द्र जोशी ने अपने प्रयत्नों

1- "जोशी जी के अग्रज के पुत्र श्री भुवन चन्द्र जोशी से इलाहाबाद में 20-10-87 को हुई साक्षात्कार के आधार पर प्राप्त तथ्य ।

2-"आजकल जो लिखते हैं, तत्कालवादी हैं -'इलाचन्द्र जोशी' 'साप्ताहिक' 16मार्च 1982, पृष्ठ 11

से 'विश्ववाणी' का प्रकाशन नये सिरे से आरंभ किया जिसमें देशविदेश से संबंधित महत्त्वपूर्ण सामयिक विषयों पर निबंध प्रकाशित होते रहते थे। और अधिकांश लेख इन्हीं लोगों द्वारा लिखे जाते थे।"[1] आज की पत्रकारिता व पत्रकारों के बारे में वे लिखते हैं। -"जैसा वक्त है वैसे ही पत्रकार, आज का सम्पादक थका हुआ लगता है। अध्ययन की कमी बड़ी साफ खिल पड़ती है। घूमा फिर कर वह सिर्फ राजनीति में ही घुसा रहता है।"[2]

प्रयाग आकर वे सर्व प्रथम 'हिन्दी-साहित्य सम्मेलन' के साहित्य मंत्री चुने गये फिर श्री रामवन्द्र टण्डन के आग्रह पर वे सम्मेलन से निकलने वाली एक छोटी सी पत्रिका का संपादक बने। मँहगाई की हालत में "मैंने आव न देखा न ताव, तत्काल उस काम का भार अपने ऊपर लेने को राजी हो गया। न वेतन की कोई बात चलाई, न टण्डन जी ने ही कोई बात कही। जब एक महिना काम करते-करते पूरा हो गया तब मुझे पचास या साठ रुपये दिये गये - मँहगाई मिलाकर। मैं संतुष्ट ही बना रहा --- मँहगाई काटने के लिए वह रकम मुझे पर्याप्त लगी।"[3] कुछ महीने साहित्य सम्मेलन में काम करने के बाद उन्होंने साप्ताहिक 'भारत' में रेगुलर स्टाफ में शामिल होकर काम किया। लेकिन 'भारत' के तत्कालीन सम्पादक श्री बलभद्र प्रसाद मिश्र की अप्रसन्नता के कारण 'भारत' छोड़कर 'संगम' की योजना बनायी। यह योजना इलाचन्द्र जोशी के चिर मित्र,

---

1- "परिचय" -'इलाचन्द्र जोशी' अभिनंदन विशेषांक 1952 पृष्ठ 14

2-"अभी मैं घर नहीं लौटा हूँ" -'इलाचन्द्र जोशी" -
'साप्ताहिक' 16जनवरी 1979, पृष्ठ 50

3-"अश्कपथ" के वे दिन - 'इलाचन्द्र जोशी' प्रस्तुति- मुकुंद सक्सेना,
'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' 23जनवरी 1983, पृष्ठ 23

फिर हितैषी श्री वाचस्पति पाठक ने बताई । उस समय 'संगम' का प्रकाशन एक ऐतिहासिक घटना थी । 15अगस्त 1947 को दिन से 'संगम' का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्रिका उद्घाटन श्री लाल बहादुर शास्त्री की अध्यक्षता में हुआ। जोशी जी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में अंतिम बार 'धर्मयुग' का संपादन किया, तदुपरान्त वे संपादक-पद से मुक्त हो गये और स्वतन्त्र साहित्य साधना में निरन्तर लगे रहे। 'संगम' के दौरान प्राप्त अमोल निधि धर्मवीर भारतीजी ने निरन्तर पत्रकार व्यक्तित्व को निकट से देखा-परखा और उनकी 'स्वर्ण जयन्ती' के अवसर पर उनके पत्रकार रूप का मूल्यांकन 'परिवेश' में किया । "पत्रकार के रूप में श्री इलाचन्द्र जोशी।" "नामक लेख में उन्होंने उनमें उन सभी गुणों का सर्वथा अभाव बतलाया है। जो आज एक सफल पत्रकार होने के लिए आवश्यक हैं। उन्होंने ऐसी बातें बतलाई जिनका उनमें सर्वथा अभाव रहा - पहली बात "वे मालिक की मर्जी पर काले को सफेद और सफेद को काला कह सकने में सर्वथा असमर्थ रहे। दूसरी बात "मालिक के अलावा वे पाठकों की रुचि(जन-रुचि) की भी घोर उपेक्षा करते हैं और चित्रों से लेकर राशिफल तक को स्थान देने के लिए तैयार नहीं होते। तीसरी बात- "कि वे व्यर्थ में प्रतिभाशाली लेखकों की सूची में नये-नये नाम बढ़ाकर इतिहास-लेखकों का काम बढ़ाते हैं। चौथी बात-" उनके कारण अखबारों के दफ्तरों में काफी उलझने पैदाहो जातीं हैं। पांचवीं बात-"जोशी जी इस युग में आत्मचिंतन, व्यक्ति की विचार स्वाधीनता, साहित्यक के आगे राजनीतिक व्यक्ति का गौण महत्व, इस प्रकार के प्रतिक्रियावादी विचारों को प्रश्रय देते हैं। छटी बात- "उनकी एक बुरी आदत यह है कि वे चाहे जाँ पाल सार्त्र के विषय में लिखें,

पाहे विलियम फाकनर के, लेकिन पढ़ लिखकर उन पर सम्मति निर्धारित करते हैं। और आश्चर्य की बात यह है कि इन समाम गणों के अभाव के बावजूद जोशी जी अपने समय के सफलतम पत्रकारों में हैं।"[1]

8- शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान :- इलाचन्द्र जोशी जी के ज्ञान का एक उदाहरण दर्शनीय है :-

"अरे तू तो अपने आप इतनी अच्छी बंगला कैसे सीख गया।" आश्चर्य से बड़े भाई ने पूँछा।

"बंगला में कौन-कौन सी किताबें पढ़ीं ?" पुनः प्रश्न हुआ।

"रवीन्द्रनाथ और डी०एल०राय का पूरा सेट समाप्त कर लिया।" यह उत्तर था "और अंग्रेजी की कौन सी किताबें पढ़ी ?" बड़े भाई ने फिर पूँछा: "सभी जो आपकी 'लाइब्रेरी' में थीं"[2]

मात्र सातवें दर्जे का विद्यार्थी इलाचन्द्र जोशी के ज्ञान के बारे में अधिक क्या कहा जाए, बचपन से ही बंगला, अंग्रेजी, संस्कृत व हिन्दी के भाषा और उसके साहित्य की अगाध-अध्ययन और पारंगतता थी उनमें। 'सुमित्रानंदन पंत' ने जोशी जी के साहित्यिक या शास्त्रीय ज्ञान के बारे में लिखा है :- "वे कई भाषायें जानते हैं, - बंगला के वे प्रकांड पंडित हैं -- सारा रवीन्द्रनाथ कंठस्थ है, -- शरद को घोलकर पी गये हैं -- हिन्दी

1-"परिमल" - 'इलाचन्द्र जोशी' अभिनंदन विशेषांक सन् 1952 ई० धर्मवीर भारती लिखित 'पत्रकार के रूप में श्री इलाचन्द्र जोशी' शीर्षक लेख का सारांश पृष्ठ 27,28

2-"परिमल" -"ओंकार शरद लिखित - पं० इलाचन्द्र जोशी, जीवन परिचय, द्वारा उद्धृत, पृष्ठ 10

को कौन पूछे, वह तो उनकी अंगुलियों के इशारों पर नाचती है।"[1]

उनके शास्त्रीय ज्ञानवर्धन में उनके घर का वातावरण विशेष सहायक रहा सुसंस्कृत व सभ्य तथा विद्या प्रेमी परिवार में जन्म लेने के कारण जोशी जी को विद्या-प्रेम तथा संस्कृत प्रेम विरासत में मिला। परिवार में संस्कृत बड़ी श्रद्धा के साथ पढ़ी जाती थी, अतः संस्कृत व पुराणों का ज्ञान आपको पैतृक सम्पदा के रूप में प्राप्त हुआ। अग्रज श्री हेमचन्द्र जोशी के निरन्तर सान्निध्य के कारण उन्हें फ्रेंच व अन्य भाषाएं सीखने का पर्याप्त अवसर मिला जिसका प्रभाव हम जोशी जी के विविध उपन्यासों में देखते हैं। अपने अध्यवसाय के कारण जोशी जी ने जहाँ एक ओर विश्व साहित्य का गंभीर अध्ययन किया; वहीं दूसरी ओर विविध मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अध्ययन करके उनकी आलोचनाएं भी लिखीं। फ्रॉयड, एडलर व युंग के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की भरपूर आलोचना उनके निबन्ध संग्रहों 'अनुचिंतन', 'विवेचना', 'देखा-परखा' में हुई है। शरद साहित्य की भी 'मनोवैज्ञानिक' पक्ष की आलोचना जोशी जी ने की है। जोशी जी का कलकत्ता प्रवास उनके व्यावहारिक ज्ञानवर्धन में सक्षम रहा। कलकत्ते के गंदी गली-कूचों में विचरण करता जोशी जी का कलाकार मन निरन्तर वहाँ से अपने लिए साहित्य सामग्री जुटाता रहा। जीवन के इन्हीं कटु अनुभवों पर व उनके व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित 'जहाज का पंछी' हिन्दी उपन्यास जगत का दस्तावेज है। उनके व्यावहारिक ज्ञान के कारण निरन्तर उनकी 'निरीक्षण-वृत्ति' तीक्ष्ण होती गई और जीवन-पथ में मिलने वाले प्रायः हर 'स्वभावगत व्यक्ति'

1-"परिमल" - 'सुमित्रानंदन पंत' लिखित 'मनका साथी' लेख से उद्धृत - पृष्ठ 40

के अन्तःमानस की मनोवैज्ञानिक चीर-फाड़ करती गई । उनके शास्त्रीय ज्ञान की परख मुख्यतः 'विवेचना' में होती है, जिसका प्रत्येक निबन्ध उनकी वैचारिक बुद्धि का परिचायक है।

१- <u>आर्थिक परिस्थितियाँ</u> :- महान् साहित्यसेवी होने पर भी जोशी के जीवन का पूर्वार्द्ध प्रायः अभावों व संत्रासों में बीता। पिताजी श्री चन्द्रवल्लभ जोशी के देहावसान से उनके घर में मुसीबतें ही मुसीबतें आयीं क्योंकि उससे पहले तो जोशी जी का सुकुमार मन कविता कामिनी का शृंगार करने व ज्ञानार्जन में ही बीता। लेकिन पिताजी की मृत्यु के समय उनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। अपने एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा - "सबसे पिता के देहान्त से हमारे परिवार में बड़ी मुसीबतें आयीं। गल्ला तो घर में होता था लेकिन नकद पैसों की बड़ी कमी थी। पिताजी के देहान्त पर दाहक्रिया तक के लिए किसी महाजन से पैसे लेने पड़े थे।[1] उस समय बहुतेरे लेख लिखकर घर का खर्च चलाना पड़ता था, पर स्थिति अच्छी नहीं हो पा रही थी। आर्थिक स्थिति से उबरने के लिए ही शिमला में 'आर्मी हेड क्वार्टर्स' में डिस्पेचर के पद पर कुछ दिन कार्य किया। काम के अत्यधिक भार के कारण साहित्य से नाता टूटने की वजह से वहाँ से भागकर कुछ पैसा बचाकर कलकत्ता पहुँचे। वहाँ भी उन्हें निरन्तर आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ा।

१- "अभी मैं मरा नहीं लौटा हूँ" - 'इलाचन्द्र जोशी'
'साक्षात्कार'- १६जनवरी १९७९ पृष्ठ ४८-४९

निरन्तर संघर्ष के कारण उनका निराश मन निरन्तर आनंद की तलाश में रहा। घर से बहुत दूर जाकर भी उन्हें लांड्री के बीधोबीध यह सुध आती थी कि घर में यह नहीं है, घर में वह नहीं है।"[1] सन् 1935 में विवाह के बाद तो परिस्थितियाँ और भी बदलीं, पत्नी ने निरन्तर उनका साथ दिया लेकिन जोशी जी ने अपने आपको परदेसी ही समझा। 'चित्रवाणी' के संपादन के समय उनकी आर्थिक स्थितियाँ ओर भी बिगड़ रही थीं। प्रेस के काम की व्यस्तता के कारण जिन्दगी तनावपूर्ण होती जा रही थी। "रात में जब सोने लगता तो नींद कहाँ से आती, इतने टेंशन में। अतः नींद की गोली में खाता था।"[2] यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उनके जीवन का पूर्वार्द्ध न केवल साहित्य संघर्ष का युग था वरन् व्यक्तिगत जीवन संघर्ष का भी युग था। अहंकेन्द्रित एकान्तप्रिय इलाचन्द्र जोशी का परवर्ती जीवन कुछ सम्पन्नता में बीता। जीवन के अंतिम समय में भी 'रोग-शय्या' पर पड़े जोशी का मन साहित्य साधना में लगा रहा।

10- परलोक गमन :- इलाचन्द्र जोशी को परलोकवास से पहले फ्रालिज का दौरा पड़ा था, तब से अक्सर उन्हें विस्मृति घेर-घेर लेती थी। परलोकगमन से दो-तीन वर्ष पहले केशवचन्द्र वर्मा ने उनसे एक भेंट की थी। जिसके बाद उन्होंने जोशी जी के स्वास्थ्य के बारे में लिखा - "आँखों में बड़ी तकलीफ है। मोतिया बिन्दु के कारण पढ़ने में कठिनाई होती है। लेकिन किताबें ही उनकी एकमात्र दुनिया है। उसी में वे रमते हैं --- खोये-खोये से -

---

1- "आजकल जो लिखते हैं, वे तत्कालवादी हैं -'इलाचन्द्र जोशी' 'सारिका' 16मार्च 1982 पृष्ठ 11

2- "आजकल जो लिखते हैं वे तत्कालवादी है" -'इलाचन्द्र जोशी' 'सारिका' 16मार्च 1982, पृष्ठ 11

-- भारी मोटे फ्रेम के चश्मे के नीचे झांकती हुई आँखें - कहीं सबसे बेहद जुड़े हुए -- कहीं एकदम अपने में भीतर धँसते हुए --।"[1] अपने जीवन से संघर्ष करते हुए कवि, उपन्यासकार, पत्रकार पं० इलाचन्द्र जोशी 80वर्ष की अवस्था में 14 दिसम्बर 1982, को पुण्यस्थली इलाहाबाद में नश्वर शरीर को छोड़कर परमात्मा में विलीन हो गये।

(ब) कृतियाँ :-

काव्य संग्रह :-

"विजनवती" - इलाचन्द्र जोशी अल्मोड़ा जैसे प्राकृतिक प्रदेश की उपज हैं। प्रकृति का अत्यधिक सामीप्य ही उनके काव्य-सृजन की मूल-प्रेरणा बना। जोशी जी ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत 'विजनवती' नामक काव्य-संग्रह लिखकर की। 'विजनवती' काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् 1937 ई० में हुआ। "जोशी जी की कविताओं का यह संग्रह उनकी अद्वितीय कृति है - इस अर्थ में भी कि इसके बाद उनका कोई दूसरा संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ।"[2]

'विजनवती' की सभी कविताएं जोशीजी के कलकत्ता के संघर्ष भरे दिनों की देन है, जब उन्हें साहित्य के क्षेत्र में शांति पाने के लिए 'हिमालय' की गोद में जाना पड़ा था।" --- वहाँ उस नरक में हिमालय ही याद

1- "साप्ताहिक" - 16जनवरी 1979, केशवचन्द्र वर्मा लिखित लेख, पृष्ठ 48

2- "परिमल" - इलाचन्द्र जोशी अभिनंदन विशेषांक सन् 1952
जगदीश गुप्त लिखित-'जोशी जी की काव्य कृति-'विजनवती' में'-
-उद्धृत, पृष्ठ 29

आता था। इसके सिवा और कौन जगह हो सकती थी जहाँ शांति मिल सके। उससे ही प्रभावित होकर मैंने हिमालय पर कविताएं लिखीं। ' 'विजनवती' की पूरी कविताएं वहीं सृजित हो गयीं।"[1] अपने निबंध-संग्रह 'देखा-परखा' के निबन्ध 'छायावादी और प्रकाश' में उन्होंने अपने काव्य संग्रह की विषयवस्तु के बारे में लिखा है :- "विजनवती में मैंने विजन की उस अमूर्त मानस-प्रतिमा का दैविक गीत गया है जो मेरे लिए किसी मूर्तिमयी जीवित प्रतिमा से भी अधिक सजीव तथा सत्य है।"[2] विजनवती की मुख्य कविताएं है - 'राजकुमार', 'नरक-निर्वासी', 'महाश्वेता', 'दमयन्ती', 'शकुन्तला', 'मायावती', 'तारा', 'सेविका', 'मृत्यु-मिलन' और सबसे अन्त में 'उसकी स्मृति में'।

<u>कहानी संग्रह</u> :- इलाचन्द्र जोशी जी की कहानियां मनोविज्ञान से ओत-प्रोत है। उनकी कहानियों में 'मनोविश्लेषण' का ही प्राधान्य है। वे स्वयमेव स्पष्ट करते है -"उसी वाह्य 'जीवन-चक्र' का चित्रण सच्ची सफलता प्राप्त कर सकता है जो अन्तर्जीवन चक्र पर आधारित हो, उसी प्रकार अन्तर्जीवन की वही प्रगति अधोन्मुखी हो सकती है जो वाह्य जीवन की प्रगति पर निश्चित सम्बन्ध स्थापित किए हो।"[3] उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखीं जो उनके सात-कहानी संग्रहों में छपी है।

1-"आजकल जो लिखते है, वे तत्कालवादी है -'इलाचन्द्र जोशी' 'सारिका'- 16मार्च 1982 पृष्ठ 10

2-"देखा-परखा" - 'इलाचन्द्र जोशी', प्रथम संस्करण मई 1957, पृष्ठ 34

3-"विवेचना" - 'इलाचन्द्र जोशी' द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 116

कालक्रमानुसार उनके कहानी संग्रह अधोलिखित हैं :-

1- धूपलता या छुपरेखा*1 सन् 1938 ई०

2- दीवाली और होली सन् 1942 ई०

3- रोमांटिक छाया सन् 1943 ई०

4- आहुति सन् 1945 ई०

5- खण्डहर की आत्माएं सन् 1948 ई०

6- डायरी के नीरस पृष्ठ सन् 1951 ई०

7- कटीले फूल, लजीले कांटे सन् 1959 ई०

इसके अतिरिक्त इनका एक नवीन कहानी-संग्रह 'भूतों की बारात' भी है। जिसका प्रकाशन कनिष्क प्रकाशन द्वारा हाल ही में हुआ है।

आलोचनात्मक कृतियाँ :- इलाचन्द्र जोशी जी ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि व साहित्य पर गहरी पकड़ दर्शाने वाले अनेकों निबन्ध लिखे जिनका प्रकाशन उनके कई 'निबन्ध-संग्रहों' में हुआ। उनके कुछ प्रमुख 'निबन्ध-संग्रह' जिनमें 'विश्व-साहित्य' की आलोचना का प्राधान्य है, कालक्रमानुसार निम्नवत् हैं :-

1- 'साहित्य-सर्जना' सन् 1938 ई०

2- 'विवेचना' सन् 1943 ई०

3- 'विश्लेषण' सन् 1943 ई०

4- 'साहित्य-चिन्तन' सन् 1954 ई०

5- 'देखा-परखा' सन् 1957 ई०

इसके अतिरिक्त उनके निबन्धों का एक संग्रह संयुक्त रूप से

1* अगले पृष्ठ पर →

'साहित्य-संतरण' नाम से प्रकाशित हुआ जिसके विषय में प्रमाणिक जानकारी नहीं है। इलाचन्द्र जोशी के देहान्त के बाद उनके दो निबन्ध संग्रह और प्रकाशित हुए हैं। "अनुचिंतन" और 'नये विचार, नई दृष्टि'।[1] 'अनुचिंतन का प्रथम प्रकाशन 1983 ई० में हुआ। इस संग्रह के प्रकाशकीय निवेदन में देवेन्द्र रस्तोगी लिखते हैं :- "इस संग्रह के निबन्धों की जानकारी और एक आधी-अधूरी सूची जोशी जी ने दी थी। पत्र-पत्रिकाओं में खोये इन निबन्धों को संकलित करने की जिम्मेदारी उन्होंने मुझे सौंपी थी।"[2]

'नये विचार, नई दृष्टि' में उन सभी आलोचनात्मक व अमूल्य साहित्यिक निबन्धों का निर्वाचित संग्रह है जो पिछले पचास वर्षों में इलाचन्द्र जोशी ने लिखे। यह संग्रह जोशी जी के पुत्र श्री निखिल चन्द्र जोशी के श्लाघ्य प्रयत्नों द्वारा 'कनिष्क प्रकाशन, इलाहाबाद' द्वारा प्रकाशित हुआ है।

<u>उपन्यास और उनका संक्षिप्त परिचय</u> :- इलाचन्द्र जोशी जी ने अपने साहित्य-सृजन की शैशवावस्था में प्रकृति के प्रांगण में अपनी कविता-कामिनी की अवतारणा करके उसका छायावादी श्रृंगार किया लेकिन स्वभाव से संकोची वृत्ति वाला जोशी जी का मन अधिक दिनों तक 'कविता' में न लगा। उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेक निबन्ध लिखे। अपनी साहित्य-यात्रा के दौरान जीवन के खट्टे-मीठे व तीखे अनुभवों ने उन्हें उपन्यास-सृजन की ओर अग्रसर किया। फ्रॉयड के मनोविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन, जीवन के नग्नतम व कटुतम अनुभवों ने उन्हें

1- कुछ विद्वान इस संग्रह का नाम 'धूपलता' बताते हैं जैसे ओंकार शरद, [परिमल 1952 पृष्ठ 15] और रामचन्द्र तिवारी 'धूपरेखा' [हिन्दी का गद्य इति द्वितीय संस्करण 1968, पृष्ठ 408]

2- 'अनुचिंतन' - 'इलाचन्द्र जोशी' प्रथम संस्करण 1983 पृष्ठ 5

उपन्यास लिखने के लिए मूल प्रेरणादायक ज्ञान दिया। इसी ज्ञान के सहारे हिन्दी उपन्यास-जगत् में एक नयी विचारधारा के पोषक जोशी जी ने कई सफल उपन्यासों का सृजन किया लेकिन इन सबसे पहले उन्होंने एक ऐसे उपन्यास की रचना की, जो यदि पुस्तक रूप में समय से प्रकाशित हो जाता तो शायद उपन्यास जगत् में एक नये युग के प्रणेता के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित करता, जिसका हक प्रामाणिक रूप से उन्हें नहीं दिया गया। वह उपन्यास था - 'परदेशी'। इस उपन्यास की रचना उन्होंने कलकत्ता प्रवास के दौरान की जब वे 'मार्डन रिव्यू' में पत्रकारिता से जुड़े थे।"[1] इस उपन्यास का धारावाहिक प्रकाशन 'माधुरी' में प्रेमचन्द के संपादन में कुछ दिनों तक हुआ। बाद में यह अधूरा छपकर ही रह गया। क्योंकि जोशी जी वादों व विवादों के पचड़ों से अपने को सदैव अलग रखे रहना चाहते थे।[2]

इलाचन्द्र जोशी ने इस उपन्यास के पुस्तक रूप में न छपवाने का कारण बताते हुए लिखा है -"कारण यही था कि वह साहित्य की उस ऊँचाई वाली दुनिया तक चला गया था, जो कि उस समय के साहित्यिक यथार्थ से बहुत ही ऊँचा था।"[3] इलाचन्द्र जोशी के प्रकाशित उपन्यासों का रचनाक्रम के अनुसार संक्षिप्त परिचय निम्नवत है :-

1- 'लज्जा' (दुराशा) :- इलाचन्द्र जोशी लिखित 'दुराशा' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1929 में हुआ। यह इनकी

1- इलाचन्द्र जोशी के परिजन श्री भुवनचन्द्र जोशी से इलाहाबाद में 28-10-87 को हुए साक्षात्कार भेंट वार्ता के आधार पर प्राप्त तथ्य,

2- "परिमल" 'इलाचन्द्र जोशी अभिनंदन विशेषांक सन् 1952, पृष्ठ 13

3- आजकल जो लिखते हैं, वे तत्कालवादी हैं-इलाचन्द्र जोशी 'सारिका' 16मार्च 1982, पृष्ठ 12

प्रथम प्रकाशित औपन्यासिक रचना है । बाद में यही कृति 'लज्जा' नाम से सन् 1946ई0 में प्रकाशित हुई जो अभी तक उसी नाम से प्रकाशित हो रही है। नाम-परिवर्तन के सम्बन्ध में जोशी जी लिखते हैं :- "घृणामयी नाम से जो उपन्यास मैंने कई वर्ष पूर्व लिखा था, 'लज्जा' उसी का अल्प संशोधित रूप है। मूल कहानी, भाव, भाषा तथा शैली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है। जो नाम मात्र का परिवर्तन किया है वह केवल ऊपरी पॉलिश में ।"[1]

इस उपन्यास की प्रधान पात्री लज्जा है जिसकी निपट निराशा से जन्मी कहानी गहन विषाद में समाप्त होकर उपन्यास का कलेवर बुनती है। आत्मकथा शैली में लिखे गये इस उपन्यास की नायिका लज्जा के डाक्टर कन्हैयालाल से असफल प्रेम और तदुद्भूत आत्मपीड़ा को लेकर ही इस उपन्यास का सृजन हुआ है। उपन्यास की अधिकांश घटनाएं इसी मूल पात्र के चारित्रिक विकास में योग देती हैं। एक धनी परिवार में पली व सुशिक्षित नववसन्तमय किशोरी लज्जा डाक्टर कन्हैयालाल से अवस्थाजन्य प्रेम करती है किन्तु अपने सहोदर राजू के लिए भी उसके अन्तस्तल में ऐसा सहज स्नेह है जिसकी वह उपेक्षा नहीं कर पाती। राजू को रूपलोभी लम्पट डाक्टर कन्हैयालाल से उत्कट घृणा हो जाती है। वह घृणा के कारण 'मरण-वृत्ति' से संचालित होकर वह मनोरोगग्रस्त होजाता है। लज्जा से स्नेह न पाने के कारण अर्थात अपने प्रेम के विभाजन में डा0कन्हैयालाल को मध्य पाकर वह दोनों के तरुणाईजन्य प्रेम-सम्बन्धों को तोड़ना चाहता है। उपन्यास का

1- 'लज्जा' - तृतीय संस्करण 1962 ई0 भूमिका से उद्धृत

यह त्रिकोणात्मक मनोवैज्ञानिक संघर्ष राजू की जीवन लीला को समाप्त कर देता है। और लज्जा की निराशा और घृणा के साथ उपन्यास का समापन करता है। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये जोशी जी के प्रथम उपन्यास से ही उनकी मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का प्रकटन शुरू हो जाता है। 'लज्जा' उपन्यास में कृतिकार का प्रमुख लक्ष्य 'नायिका का आत्म-विगर्हणा द्वारा अपने भाई की हत्या के कारण उन कार्यों के प्रति प्राय-श्चित है जो उसकी दमित वृत्तियों एवं यौन भावना के कारण पूर्ण हुए। भाई की मृत्यु के साथ ही पिता की मृत्यु भी उसी का परिणाम है। इसका ही पूर्ण चित्र जोशी जी ने अपने उपन्यास में दिया है।"[1] 'लज्जा' उपन्यास की आलोचना करते हुए 'डा० सुधीर कुमार' लिखते हैं -"वस्तुतः अस्वस्थ और विकृत मन का विश्लेषण करने में लेखक को पूर्ण सफलता मिली है।"[2]

2- सन्यासी :- इलाचन्द्र जोशी लिखित 'सन्यासी' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1941 में हुआ। कालक्रम की दृष्टि से यह जोशी जी का दूसरा उपन्यास है। 'घृणामयी' के बाद 11 वर्ष की मौन कला-साधना के बाद जोशी जी की लेखनी से ऐसे उपन्यास की रचना हुई जिसकी तुलना थामसहार्डी' के चरित्र प्रधान उपन्यास 'मेयर आफ कैस्टरीब्रज' से की जा सकती है। 'सन्यासी की मुख्य कथा तो कुछ पंक्तियों में ही कही जा सकती है, लेकिन उपन्यास का उतना बड़ा कलेवर केवल पात्रों के विस्तृत चरित्र-चित्रण के कारण बन गया है।"[3]

1- इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास -'जलप्रद विचारी'- पृष्ठ 79
2- उपन्यासकार-'इलाचन्द्र जोशी 'मूल्यांकन- डा०सुधीर कुमार
प्रथम संस्करण 1980, पृष्ठ 128
3- उपन्यासकार-'इलाचन्द्र जोशी 'मूल्यांकन- डा० सुधीर कुमार
प्रथम संस्करण 1980, पृष्ठ 128

इस उपन्यास के मुख्य पात्र नन्दीकिशोर, शांति, जयन्ती और बलदेव हैं। नायक नन्दीकिशोर के शुष्क, निष्ठुर अहंवादी और अन्तर्पीड़ित मन के विवरण द्वारा उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। "इसमें नायक नन्दीकिशोर के रूप में व्यक्ति के अहंभाव की एकान्तिकता पर निर्मम प्रहार हुए हैं। यथार्थ जीवन की भूमि पर मानवीय मनोभावों का सूक्ष्म तरंगायित खंडित जीवन के मूल तत्वों का विवेचन-विश्लेषण इस उपन्यास की विशेषता है।"[1] कथा के प्रथम भाग के सहायक सूत्र हैं - नन्दीकिशोर के जीवन के विविध पक्ष और तत्सम्बन्धी घटनाएँ। कथा विकास के दूसरे सूत्र के रूप में जयन्ती का चरित्र सामने आता है। नन्दीकिशोर और जयन्ती के दोनों सूत्र थोड़े समय तक साथ-2 चलते हैं, विकसित होते हैं, परन्तु आगे चलकर शांति का आगमन कथा को पुनः नवीन मोड़ देता है। शांति नन्दकिशोर की पत्नी बनकर प्रयाग में रहती है लेकिन अचानक नन्दीकिशोर के बड़े भाई के आगमन के साथ कथा नाटकीय मोड़ लेती है, तदोंपरान्त नन्दीकिशोर के भाई के जाने पर शांति वहाँ से चुपचाप चली जाती है। नन्दीकिशोर के वापस घर पहुँचने पर उसकी शादी जयन्ती से होजाती है। लेकिन परम्परागत रीति से परिचालित नन्दीकिशोर और 'आत्मपीड़न रीति' से परिचालित जयन्ती का वैवाहिक जीवन सुखमय नहीं रहता। दोनों के अहं के टकराव और प्रताड़नाओं के फलस्वरूप जयन्ती आत्महत्या कर लेती है। अन्तर्वेदना की शांति के लिए नन्दीकिशोर सन्यासी का रूप धर लेता है। इसी के साथ कथा का उदात्तीकरण होकर उपन्यास की समाप्ति होती है। "पात्रों के अन्तर्जगत्

1-"हिन्दी वाङ्मय, 20वीं सदी" डा० नगेन्द्र, प्रथम संस्करण 1972 पृष्ठ 205

में छिपे हुए भयंकर विस्फोट का यथार्थ चित्रण करने में लेखक ने अभूतपूर्व कार्य कर डाला है, जिसके कारण यह उपन्यास एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक की डायरी बन गया है।" 1 सन्यासी उपन्यास की समीक्षा करते हुए डा० रवीन्द्र जैन लिखते हैं :- "उनके सभी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'सन्यासी' का अपना स्वतन्त्र महत्व है। नन्दकिशोर उपन्यास का प्राण है। सारी घटनाएं उसी से जन्मती हैं, उसी से विकसित होती है और उसी में लय भी होती हैं। ---------- मूलतः 'सन्यासी' मनोवैज्ञानिक प्रणाली पर रचित असफल प्रेम एवं खंडित दाम्पत्य-जीवन की कथा है।" 2 'चित्रलेखा' नामक मासिक पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित इस उपन्यास की पुस्तक रूप में आने से पूर्व ही असीम प्रशंसा सम्पूर्ण साहित्य जगत में होने लगी थी। कालान्तर में विभिन्न विद्वानों ने इसे 'मानसिक चिकित्सालय' तक की संज्ञा दी जिसमें शांति, ज्यन्ती, नन्दकिशोर, बलदेव जैसे मानसिक रोगी इलाचन्द्र जोशी की मनःचिकित्सा पाकर धन्य हुए।

3- <u>पर्दे की रानी</u> :- इलाचन्द्र जोशी लिखित 'पर्दे की रानी' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1941 ई० में हुआ। यद्यपि 'संन्यासी' का प्रकाशन इससे पूर्व ही चुका था परन्तु 'रचना-काल'

1-"उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी, एक मूल्यांकन"-डा० सुधीर कुमार
प्रथम संस्करण 1980, पृष्ठ 128

2-"उपन्यास, सिद्धान्त और संरचना" -डा० रवीन्द्र कुमार जैन
प्रथम संस्करण, 1972, पृष्ठ 172

की दृष्टि से देखने पर 'पर्दे की रानी', 'संन्यासी' से पूर्व लिखी रचना प्रतीत होती है।

लगभग 220 पृष्ठों में लिखित छोटा सा उपन्यास 'पर्दे की रानी' चार भागों में विभाजित है। प्रथम भाग शीला की कहानी, दूसरा भाग निरंजना की, तीसरा भाग पुनः शीला की और चौथा भाग 'पर्दे की रानी' निरंजना की कहानी का बयान करता है। 'डायरी शैली' जैसे इस आत्म-कथात्मक शैली में लिखे मनोविज्ञान-परक उपन्यास की प्रधान पात्री 'निरंजना' है जिसकी कहानी शीला के मुख से भी कही गयी है। इस उपन्यास में कथानक की एक सूत्रता का निर्वाह जोशी जी ने सफलता पूर्वक किया है। नायिका निरंजना पढ़ने के लिए हॉस्टल में प्रवेश लेती है जहाँ उसकी एकान्तप्रियता व संकोचशीलता को देखकर हॉस्टल की अन्य सहपाठीभयाँ उसे 'पर्दे की रानी' नाम से विभूषित करती हैं। हॉस्टल से लौटने पर भी उसे एकान्तवास ही पसंद आता है। आगे की कथा दो सहायक सूत्रों इन्द्रमोहन व शीला को लेकर आगे बढ़ती है। इन्द्रमोहन निरंजना के अद्भुत रूप सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसे पाने की लालसा करता है और उसे पा लेने के लिए तक प्रयत्न करता रहता है। "निरंजना अपनी समस्त बौद्धिकता के बावजूद आवेगमयी रागात्मक प्रवृत्तियों द्वारा ही संचालित होती है।"[1] इस कारण वह भी अनजाने ही इन्द्रमोहन को अपना दिल दे देती है। कुछ समय बाद निरंजना को जब पता चलता है कि इन्द्रमोहन की शादी शीला से हो गयी है तो वह अनजाने ही शीला के प्रति विद्वेष की भावना से भर उठती है। इन्द्रमोहन द्वारा

---

1 -"हिन्दी साहित्य, बीसवीं शती" -सम्पादक डा० नगेन्द्र,
प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ 205

निरंजना को एक बार पा लेने की उत्कट अभिलाषा के कारण ही वह शीला की हत्या कर देता है। शीला की हत्या के बाद इन्द्रमोहन निरंजना के कौमार्य को भंग करके स्वयं भी चलती गाड़ी से कूदकर अपने प्राण विसर्जित कर देता है। निरंजना मातृत्व के बोझ से दबकर स्वयं को न मारकर भावी सन्तान के आने की कल्पना में ही अपना भावी जीवन व्यतीत करती है। उपन्यास का अंत नायक और नायिका दोनों की परस्पर उत्कट प्रेम और घृणा की भावनाओं को दर्शाता हुआ होता है। डा० राम शोभित प्रसाद जी इलाचन्द्र जोशी की कला समीक्षा करते हुए लिखते हैं :- "उनकी नायिकाएं विधिवत् विवाह से पूर्व गर्भवती हो जाती हैं, परन्तु लेखक की घृणा का पात्र वे नहीं बनतीं। लेखक ने समस्या को प्रगतिशील दृष्टि से देखा है।"[1]

"इस उपन्यास में शेखर का मनोविज्ञान निहित प्रतीत होता है।"[2]

'पर्दे की रानी' उपन्यास की कथावस्तु की समीक्षा करते हुए डा० राम-शोभित प्रसाद जी लिखते हैं :- 'पर्दे की रानी' की कथा मनुष्य मन की अनेक विकृतियों पर प्रकाश डालती है। स्त्रियों के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, मोह और स्पर्धा, पुरुषों की अकल्पनीय वासना एवं कामुकता तथा स्वार्थ-परता का नग्न चित्रण इसमें हुआ है।"[3] इस उपन्यास की कथा-योजना में इलाचन्द्र जोशी पर्याप्त सफल हुए हैं। मनोविश्लेषण प्रधान होते हुए भी उनके

1-"हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दोत्तर काल" -डा० रामशोभित प्रसाद सिंह
प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 186

2-"इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व"- राजेन्द्र जैन
प्रथम संस्करण 1979 पृष्ठ 27

3-"हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दोत्तरकाल"- डा० रामशोभित प्रसाद सिंह
प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 330

इस लघु उपन्यास में पर्याप्त घटनाक्रम दृष्टिगत होते है। इस उपन्यास में कम से कम पात्रों के द्वारा इलाचन्द्र जोशी ने अवचेतन मन के अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण किया है जो उनकी उपन्यासकला को सौष्ठव प्रदान करता है। 'पर्दे की रानी' में लेखक की अन्तर्दृष्टि व्यक्ति-मानस की गहराईयों में छिपी कुण्ठाओं के अन्वेषण में अति व्यस्त रहती है। इन अवचेतनाजन्य कुंठाओं के अभिर्यांत्रित विस्फोट का घातक परिणाम अति प्रबल वेग से पाठक की चेतना को झकझोर देता है।"[1]

4- <u>प्रेत और छाया</u> :- इलाचन्द्र जोशी लिखित 'प्रेत और छाया' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1945 ई० में हुआ। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की परम्परा में यह उपन्यास जोशी जी की उपन्यासकला को उत्कर्ष प्रदान करता है।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र चार है :- 'पारसनाथ', 'मंजरी', 'भुवोरिया जी' और 'नीदनी'। प्रधान पात्र पारसनाथ स्थूल रूप से कथा के प्रथम सूत्र में उपजकर कथाविकास करता है। कथा को उस समय नाटकीय मोड़ मिलता है जब पारस को पता चलता है कि वह अपने माता-पिता की तथाकथित वारुण सन्तान है। यहीं से उसके मन में मानसिक कुंठा और 'इडिपस ग्रंथि' सक्रिय हो जाती है। मंजरी के प्रवेश से कथा का दूसरा सूत्र जन्म लेता है और उपन्यास को गति देता है। 'इडिपस ग्रंथि' द्वारा परिचालित होने के कारण वह मंजरी के साथ रहते हुए उसे गर्भवती कर देता है। मंजरी के गर्भवती होने पर इन्द्रमोहन उसे त्याग देता है। इसके

1- "पर्दे की रानी" -'इलाचन्द्र जोशी' संस्करण 1983 ई० पृष्ठ 1 (भूमिका)

बाद 'नीलिमा' का चरित्र तीसरे सूत्र के रूप में कथा को आगे बढ़ाता है। पारसनाथ माँ के चरित्र की याद करके एक बार फिर नीलिमा को अपने प्रेमपाश में बाँधकर उसे धोखा देता है। घृणा और विद्वेष्णा की आँधी में उपजता है- चौथा सूत्र, नीलिमा की बहन हीरा के रूप में। पारसनाथ घृणा का नीलिमा की बहन हीरा को नीलिमा से अलग करना चाहता है। इस अवस्था में मरणोन्मुख पिता उसे (पारसनाथ को) नाटकीय रूप में मिलता है। पिता के नाटकीय मिलन के फलस्वरूप उसके द्वारा उसे ज्ञात होता है कि वह जारज सन्तान नहीं है। यह ज्ञात होने पर पारस के मन की 'इडिपसग्रंथि' समाप्त हो जाती है और वह पाश्चात्ताप स्वरूप हीरा से शादी कर लेता है। डा० रणवीर रांग्रा इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखते हैं - 'प्रेत और छाया' में नायक पारसनाथ की उस मानसिक ग्रंथि के दुष्परिणामों का चित्रण है जिसका मूल उसके पिता द्वारा पैदा किए गये इस भ्रान्त विश्वास में मिलता है कि उसकी माँ किसी पर-पुरुष से सम्बन्ध था। नायक की जीवन व्यापी नाटकीय भटकन का अंत तभी होता है जब मरते समय उसका पिता यह स्वीकार कर लेता है कि उसका यह लांछन मिथ्या था। इस आत्म-स्वीकृति के परिणाम स्वरूप पारसनाथ की मानसिक ग्रंथि खुल जाती है, पर मनोवैज्ञानिक तथ्य के उद्घाटन की धुन में रचना का उपन्यासत्व कमजोर पड़ गया है।"[1] यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इस उपन्यास की विशाल इमारत मनोविज्ञान की नींव पर बनी है। मनोविज्ञान का बड़ा

1-"हिन्दी वाङ्मय, बीसवीं शती" - सम्पादक डा० नगेन्द्र,
प्रथम संस्करण, 1972, पृष्ठ 205

ही स्थूल रूप इस उपन्यास को अतिरिक्त नाटकीयता प्रदान करके कला का ह्रास करता है।[1] 'प्रेत और छाया' में मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति इतनी अधिक उभरी हुई है कि इनके चरित्रों को व्यक्तित्व ही नहीं मिल पाता है। लेत के थोथे की भाँति अमूर्त सिद्धान्तों पर व्यक्तित्व का आच्छादन पहनाया गया है। मनोवैज्ञानिक उपचार के बाद जिस प्रकार कोई न्यूरोटिक स्वस्थ हो जाता है उसी प्रकार ग्रंथि खुल जाने पर पारसनाथ भी ठीक हो जाता है। इस उपन्यास का विश्लेषक हल किताबी मध्यवर्गीय पात्रों को चित्रित करने में बिल्कुल सफल हुआ है।[1]

'प्रेत और छाया' उपन्यास का रचनाकाल 1943 ई० का है जिसका नायक 'पारसनाथ' जोशी के जवानी के दिनों में मिला हुआ 'रामेन्द्र' नामक व्यक्ति था। यह व्यक्ति जोशी को कलकत्ता प्रवास के दौरान मिला था। जोशी जी अपने एक निबन्ध "मेरा पात्र, जो स्वयं मुझे पात्र बनाना चाहता था" में लिखते हैं - "जीवन की निरन्तर गतिशील प्रखर उपन्यास धारा के बीच मस्ती और लापरवाही से तैरता हुआ यह अद्भुत वास्तविक पात्र मुझे मेरी जवानी के प्रारंभिक दिनों में अनायास ही मिल गया था। मैं तब कलकत्ता में था।[2] 'रामेन्द्र' नामक तथाकथित पात्र ने जोशी जी को काफी बनाने की कोशिश की। अपने पिता से प्रतिस्पर्धिता के कारण उसमें प्रतिहिंसा की जो भावना भरी थी, ठीक वही भावना इसी पारसनाथ के चरित्र में दिखाई पड़ती है। बलिया जिले के इस पात्र की

1- "आलोचना" - अंक 13 पृष्ठ 132

2- "अनुचिंतन" - 'इलाचन्द्र जोशी' प्रथम संस्करण 1963, पृष्ठ 80

तत्कालीन जीवनी [illegible] का यत्किंचित परिवर्तन करके जोशी जी ने 'प्रेत और छाया' नामक उपन्यास की रचना की जो उनके अनुभवों की परिधि से होकर गुज़रा। इसलिए हम यदि उस पर मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर गढ़े उपन्यास होने का दोष लगायें तो उनकी साहित्य-कला का अपमान ही होगा। 'प्रेत और छाया' के नायक 'पारसनाथ' में वैसी ही मस्ती, वैसा ही राग-रंग वैसी ही प्रतिहिंसा की भावना, वैसा ही स्वेच्छाचरण, वैसी ही घृणा वैसी रहस्यमयता झलकती है जिसका वर्णन उन्होंने अनुचिंतन के निबन्ध "मेरा पात्र, जो स्वयं मुझे बनाना चाहता था" के अन्तर्गत किया है।

5- निर्वासित :- इलाचन्द्र जोशी लिखित 'निर्वासित' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1946 ई० में हुआ था। "जोशी जी का यह उपन्यास भी सिद्धान्तों से कटकर नहीं चलता। जोशी जी अपने इस उपन्यास में भी अन्य उपन्यासों की भाँति मानसिक ग्रंथियों एवं कुण्ठाओं की कथा कहते हैं।[1] इस उपन्यास का नायक 'महीप' एक कवि है। कथा का आरम्भ उसकी सुकुमार भावनाओं के पूर्व परिचय के साथ होता है। कथा का विस्तार और आधार महीप की वैचित्र्य पूर्ण आकांक्षाएँ हैं। आगे चलकर नीलिमा उसके सम्पर्क में आती है। महीप इससे पर्याप्त सुख अनुभव करता है। उपन्यास में बाद में रमा और सुषमा का प्रवेश होता है, परन्तु महीप के चारित्रिक विकास में ये पात्र कोई योग नहीं देते। ठाकुर लक्ष्मीनारायण और महीप इन दो मुख्य पात्रों के संघर्ष कथा सूत्र को गति देते हैं। इस संघर्ष में ठाकुर लक्ष्मी-

---

1.- देखें:- "इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व"- राजेन्द्र सेन प्रथम संस्करण 1968, पृष्ठ 39

नारायण सिंह की विजय होती है। शारदा देवी के कथा में योग देने से कथानक की गति परिवर्तित होती है। उनकी प्रेरणा से महीप एक क्रांतिकारी दल का निर्माण करता है और नीलिमा के प्रति उसमें उपजने वाली प्रबल निरासविन्त के चित्रण के साथ उपन्यास का उपसंहार होता है। असफल मनोदशाओं के चित्रण में यह उपन्यास बेजोड़ है।

उपन्यास में ठाकुर लक्ष्मीनारायण सिंह तत्कालीन सामन्तों का प्रतिनिधित्व करता हुआ विषमय विलासिता के मध्य शराब पी-पीकर घोर पाप कृत्य करता हुआ नरक के कीड़ों की तरह निन्दनीय जीवन यापन करता है। इलाचन्द्र जोशी ने तत्कालीन बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधि ठाकुर लक्ष्मीनारायण जैसे पिशाच से जनता को मुक्तिपथ पर ले जाने के लिए 'महीप' जैसे 'बटुआ' किन्तु क्रान्तिकारी पात्र का सृजन किया है।

"इस उपन्यास में महीप नामक एक असफल प्रेमी और एम०ए० पास युवक को केन्द्र में रखकर सामाजिक जीवन की कुछ समस्याओं का चित्रण किया गया है।"[1] नायक महीप जीवन के भिन्न लाज संकुल पथों से होकर विचरण करता है, किन-किन घटना चक्रों का सामना करता है, और उनके अन्दर होने वाली प्रक्रियाओं का जोशी जी ने इस उपन्यासों में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। "वास्तव में उसका सम्पूर्ण जीवन अचेतन मन के संकेतों पर भटकता फिरता है। प्रेम सम्बन्धी उसकी चरम-निराशा क्रान्तिकारी आन्दोलन के संघटन में मूर्त होती है।"[2]

1-"हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दोत्तरकाल"-डा० रामशोभित प्रसाद सिंह प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 341

2-"आधुनिक हिन्दी उपन्यास, उद्भव और विकास"-डा० बेचन, प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 155

जोशी जी के उपन्यासों के सभी प्रधान पात्र या नायक प्रारंभ में 'मानसिक रुग्णता' झेलते हैं और असंगतियों से उन्हें दो चार होना पड़ता है, इसी प्रक्रिया से महीप भी होकर गुज़रा है। अतिशय आदर्शवादिता व अतिशय भावुकता ही महीप में 'यौन कुण्ठा' पैदा करती है। एडलर के 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' की तरह उसकी प्रेमिका नीलिमा के ठाकुर से विवाह हो जाने पर वह क्रान्ति का रास्ता अपनाता है। वैवाहिक जीवन में असफल नीलिमा को महीप द्वारा पुनः संबल मिलता है, पर वह महीप के प्रस्ताव को ठुकरा कर उपन्यास में निराशा व अवसाद के वातावरण का सृजन करती है।

संक्षेप में "कहानी में उत्सुकता बनाये रखने में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। कहीं-कहीं अधिक मनोविश्लेषण तथा व्याख्यान के कारण रोचकता पर आघात हुआ है। संगठन की दृष्टि से गौण कथानकों की योजना प्रशंसनीय है।"[1]

6- <u>मुक्ति पथ</u> :- इलाचन्द्र जोशी लिखित 'मुक्तिपथ' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1950 ई० में हुआ। नवीन विषय-वस्तु और सामाजिकता के कारण यह उपन्यास साहित्य जगत् में अत्याधिक चर्चा का विषय बना। डा० रणवीर रांग्रा के शब्दों में "मुक्तिपथ' से उनकी उपन्यास कला ने एक स्वस्थ मोड़ लिया है। यहाँ से उन्होंने वर्गों के अपने मनोविज्ञान सम्बन्धी अध्ययन-मंथन का सामाजिक उद्देश्य से प्रयोग करना शुरू कर दिया है।" आन्तरिक द्वन्द्व और बाह्य परिस्थितियों का

1-"हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दोत्तर काल" डा० रामशोभित प्रसाद सिंह प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 343

समन्वय करके मानव को आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के दुःखों से मुक्ति दिलाने के प्रयास के कारण ही इस उपन्यास का नाम 'मुक्तपथ' पड़ा जो स्वातन्त्र्योत्तर समाज का पूर्ण चित्रण करने में समर्थ है।

इस उपन्यास का प्रमुख पात्र राजीव है जो एक शिक्षित बेरोजगार तथा पुराना क्रान्तिकारी है। कथा का प्रारम्भ राजीव की इसी बेकारी की समस्या लेकर होता है। वह राजनैतिक अपराधी की सजा भुगतने के बाद पुनः रोजी रोटी की तलाश करता हुआ अपना जीवन आरम्भ करता है। कथा के विभिन्न सूत्र यहीं जन्म लेते हैं।[1] सुनन्दा के उपन्यास में प्रवेश व राजीव के प्रति सहानुभूति से कथा का विकास होता है। राजीव और सुनन्दा एक दूसरे के प्रति मोहासक्त होते है और प्रीमला नामक एक अन्य पात्र की सहायता से वे दोनों एक अलग स्थान पर जाकर अपना नया जीवन आरम्भ करते है। राजीव यहाँ पर अपनी वासना का दमन करता है। प्रतिक्रिया स्वरूप तदुपरान्त मानसिक उर्जा को वह एक सुधारवादी आन्दोलन में लगाता है। सुनन्दा और राजीव को इस सुधारवादी आन्दोलन से अपने-अपने मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों से मुक्ति मिल जाती है। सुनन्दा जब देखती है कि राजीव 'मुक्तपथ' में एक कर्मयोगी की तरह लगकर उसकी व्यक्तिगत भावनाओं व कोमल कल्पनाओं की अवहेलना कर रहा है तो व्यक्ति और समष्टि में सामंजस्य न हो सकने के कारण वह एक दिन राजीव को छोड़ कर मुक्ति की आशा के साथ 'मुक्तपथ' पर निकल पड़ती है, यही उपन्यास की नाटकीय समाप्ति है।

1- "हिन्दी वाङ्मय, बीसवीं शती" -सम्पादक डा० नगेन्द्र
प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ 206

डा० देवराज उपाध्याय इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखते है :-

"यह उपन्यास जोशी जी का सर्वप्रथम ऐसा उपन्यास, है, जहाँ आधुनिक मनोविश्लेषण की गहरी छानबीन के द्वारा मानसिक स्तरों को उघाड़ने की चेष्टा की गयी है।"[1] अपितु इस उपन्यास में 'यौन-ग्रन्थियों' व मानसिक ग्रंथियों से उत्पन्न समस्याओं का निरन्तर ह्रास होता है और उदात्तीकरण की प्रक्रिया में पात्रों के व्यक्तित्व का सबल पक्ष उभर-उभर कर सामने आया है।

समाजवादी प्रभाव से बोझिल यह उपन्यास कथानक की दृष्टि से सबल और सुगठित है। 'भारी-स्वतन्त्रता' की पूर्व घोषणा जोशी जी ने उस समय ही कर दी थी जब भारत को स्वतन्त्र हुए कुछ ही दिन हुए थे। सुनन्दा के ये वाक्य उपन्यास के मेरु-दण्ड, उपन्यास का प्राण है :-

"यदि आप ऐसी कोई विश्व योजना चाहते है जो समग्र रूप से सच्चे अर्थों में समाज कल्याण और स्थायी शांति की स्थापना करने में सफल हो सके तो बाहर के पारिश्वि जीवन के विकास के साथ भीतर के भाव-जीवन के विकास की ओर भी उतना ही सचेष्ट रहें।"[2]

7- <u>सुबह के भूले</u> :- इलाचन्द्र जोशी जी द्वारा लिखित 'सुबह के भूले' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1952 ई० में हुआ। समाज के मध्यवर्ग के यथार्थ चित्रण के कारण यह उपन्यास पर्याप्त लोकप्रिय रहा।

1-"आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान"- डा० देवराज उपाध्याय पृष्ठ 246

2-"सुबह के भूले" -'इलाचन्द्र जोशी' -पेपर बैक संस्करण 1983 पृष्ठ 199

"इस उपन्यासमें आर्थिक विषमता, नारी की दुर्दशा, फैशनों की बाढ़, भिखारियों की दयनीय अवस्था, सिनेमा जगत की चरित्र हीनता आदि सभी सामाजिक पहलुओं का चित्रण बड़ी सफलता से किया गया है, लेकिन फिर भी यह उपन्यास पात्रों के अन्तर्मन को टटोलता हुआ नजर आता है।"[1]

प्राचीन कहावत है कि 'सुबह का भूला' यदि शाम को घर वापस आ जाय तो वह सुबह का भूला नहीं कहलाता। इसी भावभूमि पर रचित इस उपन्यास के अनेक पात्र अपने निर्दिष्ट मार्ग से भटककर अन्त में सही मार्ग पर आ गये हैं। 'सुबह की भूली,' उपन्यास की नायिका गुलबिया का वापस सही मार्ग पर आना ही इस उपन्यास की मुख्य कथा है। नायिका गुलबिया यौवन की दहलीज पर कदम रखते ही बाहरी चमक-दमक से मोहाच्छन्न हो जाती है, और फैशनेबुल व तथाकथित आधुनिक समाज से सादृश्य स्थापित करने के लिए वह 'गुलबिया' से 'गिरिजा' बन जाती है। गिरिजा बनकर तथाकथित सभ्य समाज में सामंजस्य न बैठा सकने के कारण वह पुनः गुलबिया-मय जीवन की ओर लौट आती है, यह गुलबियामय जीवन ही उसे शांति प्रदान करता है।

बम्बई के तत्कालीन फैशनेबुल समाज के प्राणी वास्तव में इतिहास जीवन जीने के कारण सुख शांति विहीन प्राणियों की तरह समाज में भटक रहे हैं, नकलीपन उन्हें अस्थिर व आक्रान्त बना रहा है। निम्नवर्गीय समाज अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहा है। गुलबिया झंझावट पूर्ण जीवन से उकताकर

1.-"इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व"- राजेन्द्र जैन
प्रथम संस्करण, 1979 पृष्ठ 40, 41

अन्त में अपने ही समाज के बाल सखा किशन के साथ विवाह कर लेती है। इसी घटना के साथ उपन्यास का समापन होता है।

गुलबिया की बालावस्था का चित्रण करने में जोशी जी ने बाल-मनोविज्ञान का अच्छा प्रयोग किया है। ऊपर से लुभावने लगने वाले समाज का कच्चा चिट्ठा खोलकर जोशी जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव का चिर-मोह नैसर्गिक जीवन के प्रति ही रहता है।

ध्यातव्य यह है कि जोशी जी के अभी तक के उपन्यासों में अभिजात्यवर्गीय पात्र (विशेषतः नायक, नायिका) ही कथा के वाहक बनते थे, पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लिखे गये इस उपन्यास में उन्होंने सामान्य वर्गीय व मध्यवर्गीयव्यक्तियों को भी प्रश्रय दिया है। बुद्धि व हृदय दोनों पक्षों का समन्वय जोशी जी के इस उपन्यास का लक्ष्य रहा है। नायिका गुलबिया के चरित्र के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट होती है:- "वह एक पथिक के समान है जो आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से जीवन को विकसित करने वाले स्वभाविक मार्ग का रास्ता भूल चुकी है, परन्तु जब वह पैशनेबल युवक और युवतियों के सही रूप को समझ लेती है तो उसको यह क्षणिक आकर्षण गलत महसूस होता है - - - - - उसे बाद में अपनी जाति तथा घर के लोग अच्छे दिखाई पड़ते हैं और उनसे वह क्षमा याचना करती है।" अतिशय बुद्धिवादी आग्रह उसे असामंजस्य प्रदान करता है पर भावनाओं को भी गृहीत कर लेने से पुनः वह सामान्य जीवन यापन करती है।"[1]

1-"इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व"- राजेन्द्र जैन प्रथम संस्करण 1979, पृष्ठ 42

8- जिप्सी [त्याग का भोग] :- इलाचन्द्र जोशी की लिखित 'जिप्सी' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1952 ई० में हुआ। नाम परिवर्तन की परम्परा का निर्वाह करते हुए जोशी जी ने 'जिप्सी' उपन्यास का नाम बदलकर 'त्याग का भोग' रखा। 'जिप्सी' के परवर्ती संस्करण 'त्याग का भोग' नाम से प्रकाशित हुए। इसी उपन्यास का छात्रोपयोगी संस्करण सन् 1987 में 'मणिमाला' नाम से भी प्रकाशित हुआ है। नाम बदलने के सम्बन्ध में जोशी जी का वक्तव्य है - आवश्यकता महसूस होने पर पुस्तक का नाम बदलने की प्रथा महाभारत-काल से चली आ रही है। महाभारत का नाम उसके रचयिता ने प्रारंभ में 'जय' रखा था, फिर 'भारत' रखा और अंत में उसे भी बदलकर महाभारत रख दिया।- - - - मेरी रचनाओं के जो प्रेमी इस कृति को 'जिप्सी' नाम से पढ़ और जान चुके हैं वे इस नये नाम से शायद सन्तुष्ट न हों। मैं उन्हें केवल 'शेक्सपियर' की इस बात से सांत्वना दे सकता हूँ कि 'ह्वाट्स देयर इन ए नेम ?' - नाम में क्या रखा है। 'गुलाब' को यदि 'तुलाब' कहा जाए तो उसकी गंध और उसके रूप में कोई अन्तर नहीं आयेगा।"[1]

उपन्यास की प्रधान नारी पात्र मणिया और प्रधान पुरुषपात्र सुपेन्द्रलाल है, जिसके चरित्र-विकास द्वारा इस उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। 'उपन्यास' की नायिका मणिया के माता-पिता के जीवन और उसकी विडम्बना पूर्ण परिस्थितियों का चित्रण प्रारंभ में लेखक ने किया है। मणिया और सुपेन्द्रलाल के मिलन के बाद दोनों के जीवन में वैवाहिक

1-"त्याग का भोग" - 'इलाचन्द्र जोशी' तृतीय संस्करण, नवम्बर 1972, [आमुख]

समस्या उठ खड़ी होती है । वो कथा को मोड़ देती है। मनिया की शर्त के अनुसार रंजन के ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने से दोनों का विवाह हो जाता है । लिल्या और फादर बेरेमिया के बीच में दखल देने के कारण मनिया और रंजन के स्वभावों में विरोधाभास उत्पन्न होकर कथा की गति को अवरुद्ध सा कर देता है। मनिया के गर्भवती होने पर नृपेन्द्ररंजन उसे कलकत्ता ले जाता है वहाँ रंजन अपने मित्र वीरेन्द्र की पत्नी शोभना की ओर नाटकीय रूप से आकृष्ट होता है । ऐसी ही नाटकीय घटना में एक दिन मनिया का चेहरा तेजाब से विकृत हो जाता है और उसका नवजात शिशु भी कुछ दिनों के उपरान्त मर जाता है। रंजन के चारित्रिक पतन को देखकर वह एक धर्म-संस्था में शामिल हो जाती है और अपना चेहरा 'प्लास्टिक सर्जरी' करवाकर पुनः आकर्षक बना लेती है । साथ ही अपना नाम भी बदल लेती है । वीरेन्द्र की मृत्यु होने के पश्चात् नृपेन्द्र रंजन शोभना को बाहर भेजकर पुनः एक नई मनि (जो वस्तुतः मनिया ही है) के प्रति आकृष्ट होता है। अंत में भेद खुलने पर पश्चात्ताप करता हुआ रंजन एक 'कर्मयोगी' बनकर सामने आता है और उपन्यास का उपसंहार करता है।

'जिप्सी' उपन्यास में मनोविज्ञान के नूतन से नूतन पहलुओं का प्रयोग है । 'हिप्नोटिज्म,' 'स्वप्न मनोविज्ञान', 'टेलीपैथी' व 'छायात्मक' कल्पना अर्थात् क्लैरवॉयन्स द्वारा पात्रों के अवचेतन मन में दबी पड़ी प्रवृत्तियों व अतृप्त कामनाओं को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास 'जिप्सी' की कथा-वस्तु में चार-चाँद लगा देता है ।

"इलाचन्द्र जोशी कहीं भी मनोविज्ञान से कट नहीं पाते, कहाँ

उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को चुना गया है, वहाँ पात्रों के मानसिक आघातों द्वारा उन सामाजिक समस्याओं का समाधान भी कर दिखाया है।"[1]

9- <u>प्रेताब का बेटी</u> :- इलाचन्द्र जोशी लिखित 'जहाज का पंछी' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1954 ई० में हुआ। यह उपन्यास जोशी जी की उपन्यास-कला के विकास में एक नये मोड़ का परिचायक है। "-व्यक्ति-मानस-मंथन के कुशल चित्रकार जोशी जी ने इस कृति में सामाजिकों को स्थान देकर एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। इसमें व्यक्ति और समाज के संघर्ष का चित्रण औपन्यासिक कलात्मकता एवं यथार्थवादी ढंग से किया गया है।"[2]

इस उपन्यास का कथानक न केवल एक वर्ग है और न कथा का क्षेत्र कोई एक नगर या प्रदेश। कथावस्तु का आरम्भ नायक के कलकत्ता महानगरी में भटकने व आश्रय की खोज करने से होता है। कथा का प्रारंभिक सूत्र उसकी खेद पूर्ण स्थिति से आरम्भ होकर बेल गमन तक रहता है। वहाँ से कथानक एक नया मोड़ लेता है। एक पठानवान के यहाँ शरण लेकर उसके पाक-कला सीखने का प्रसंग कथा को गति देता है। नायक भटकता हुआ एक पूँजीपति के घर नौकरी कर लेता है। इसी तरह जीवन-संघर्ष करता हुआ एक घर में रसोइए का काम करता है। उपन्यास के अंतिम चरण में वह 'लीला' नामक

1-"इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व" -राजेन्द्र बेन
प्रथम संस्करण 1979, पृष्ठ 44

2-"हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन"- डा०गिरधर प्रसाद
प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 158

एक भद्र महिला के साथ उसके घर रहता है, वहाँ से वह समाज सेवा का व्रत धारण करता है। इस तरह कथा अनेक तीर्थस मोड़ लेती हुई समाप्त हो जाती है।

"इसका कथानक छोटी-छोटी मर्मस्पर्शी घटनाओं से गुम्फित है, जो कथानायक के जीवन को झकझोरती हुई प्रभावित करती चलती है। पाठकों के समक्ष इन घटनाओं के माध्यम से व्यक्ति, समाज एवं पूरे युग का यथार्थ चित्र स्पष्ट होता है, और स्वयं कथानक युग-चेतना का ज्वलन्त और जीवन्त रूप धारण पड़ता है।"[1] 'जहाज का पंछी' उपन्यास में इलाचन्द्र जोशी ने व्यक्ति के प्रति समाज के अत्याचारों तथा व्यक्ति के प्रति व्यक्ति के अत्याचारों की तजीव कहानी कही है। महानगरी को आधार बनाकर कथानायक को वे उसकी विषम से विषम परिस्थितियों से गुज़ारते हैं और उसके माध्यम से वे आज के युग के आत्मकेन्द्रित व्यक्ति के अन्ध-स्वार्थ पर निर्मम प्रहार करके व्यक्ति को परखने की समाज की अनुचित कसौटी का भंडा फोड़ करते हैं। डा० रणवीर रांग्रा इस उपन्यास की आलोचना में लिखते हैं :- "इस उपन्यास की सबसे बड़ी कमजोरी है इसके कथानक की घटना बहुलता और पात्रों की भरमार। कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा जोड़कर उपन्यासकार ने अनेक्य पात्रों के डीटेल्स (डेटेलिटी) के सहारे उपन्यास भर में इतनी घटनाएँ बिखेर दी हैं कि पाठक बेचारा चकरा जाता है। प्रत्येक घटना और उसमें व्यक्त पात्रों की प्रतिक्रिया के आरम्भ, विकास और निष्पत्ति में इतना साम्य है, निष्कर्षों की इतनी आवृत्ति है कि

1- "आलोचना" - डा० गंगा प्रसाद पांडेय 'जहाज का पंछी' पृष्ठ 192

पाठक बहुदा उब जाता है।"[1]

वस्तुत: ये सभी घटनाचक्र लेखक इलाचन्द्र के खुद के भोगे हुए हैं। अपने कलकत्ता प्रवास के समय आने वाली सारी घटनाओं, सारी परेशानियों, सारे संघर्षों से अनुभव बटोर-बटोर कर जोशी जी ने 'जहाज का पंछी' नामक उपन्यास की रचना की जिसके कथानायक की तरह[2] उन्होंने कलकत्ते में युवावस्था के संघर्ष भरे दिन गुजारे। उन्होंने अपने एक साक्षात्कार में स्वीकार किया है :- "इस धंधे से [illegible] मेरा आम आदमियों से परिचय हुआ। लांड्री का काम बड़ा कठिन होता है - - - - ये सब छोटी-छोटी जरूरतें - - - इन्हीं चक्करों में साथ-साथ पैसा भी काफी उधार चलता रहा - - - मैंने इस अनुभव को साहित्य में पिरो दिया - - - ये सारा अनुभव मैंने 'जहाज का पंछी' में दिया है।"[3]

10- <u>ऋतुचक्र</u> :- इलाचन्द्र जोशी लिखित 'ऋतुचक्र' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1968 ई० में हुआ। उनकी उपन्यासकला के उपरोक्त विकास में 'मनोवैज्ञानिक आग्रह' निरन्तर कम होता गया है। हृदय दार्शनिक और रोमांटिक अंदाज में लिखे गये इस उपन्यास ने मनोविश्लेषणवादी धारा

1- "हिन्दी साहित्य, बीसवीं शती" - डा० नगेन्द्र, प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ 206

2- - " - मुझे इस गली में शरण मिली है - कलकत्ता महानगरी के इस नरक में, चन्दनी को भी गन्दा करने वाले इस शहर में, सभ्य संसार की इस चेहरे की रंगीली के आवरण के भीतर मानव जगत के मर्म में छिपे हुए इस कोठ-केन्द्र में।" (जहाज का पंछी -इलाचन्द्र जोशी पृष्ठ 389, 90)

3- "आजका जो लिखते हैं, वे तत्कालवादी हैं" इलाचन्द्र जोशी साप्ताहिक, 16मार्च 1982, पृष्ठ 11

से अलग हटकर उपन्यास-जगत् में अपना विशिष्ट स्थान बनाया ।

'ऋतुचक्र' में है - सुरम्य पहाड़ी प्रकृति के अन्तर्प्राणों में छिपे आनंद कोष के मूलतत्वों का उद्घाटन !, आज के रेगिस्तानी जीवन की विश्वव्यापी धूल और धूएं के भीतर से हरियाली के बिखरे हुए बीजों की खोज !, सामूहिक पागलपन के विरुद्ध वैयक्तिक आत्मा के विद्रोह का परिचिन्तन !, रोमांस की एकदम नई और मौलिक परिकल्पना !, रोमांचक रोमांसों के रहस्यों की मार्मिक अन्तर्कथा और युग-जीवन की विसंगतियों की कहानी !

उपन्यास के नायक हैं -'दादा मिलन कुमार और नायिका है - 'प्रतिमा' । चालीस वर्ष से अधिक आयु प्राप्त दादा मिलन और प्रतिमा केरोमांस को लेकर इस उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। जैसे एक ऋतुचक्र आती है और अपना रंग बिखेर कर चली जाती है, पुनः दूसरी ऋतु का आगमन फिर तीसरी, चौथी इत्यादि का । ऋतुओं का यह आगमन व प्रत्यावर्तन अपनी अलग-अलग बहुरंगी छटाओं को पीछे छोड़ता चला जाता है, उसी प्रकार मानव-जीवन का भी चक्र चलता है, एक अवस्था पार करते ही, अगली वय आने पर ही उसकी अलग ही बहुरंगी मादकता होती है। हर वय में नित नूतन रोमांस की छटाएं विद्यमान रहतीं हैं । इसी तथ्य पर आधृत है - दादा मिलन कुमार और प्रतिमा की चालीस पार की रोमांस लीला । मुख्य रूप से उपन्यास की कथा इन्हीं दोनों के मिलने और बिछुड़ने की कहानी है । उपन्यास के अन्दर विभिन्न स्थानों पर चित्रा, लीला, माणिकलाल, गिड़वानी, नकुलेश, रामबाबू आदि पात्र आते हैं ।

और प्रेम के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। दादा का पहाड़ी स्थलों पर रोमांटिक मूड में भ्रमण और प्रीतमा के साथ वहाँ की मनोरम वादियों में भ्रमण तथा पारस्परिक प्रेमालाप ही कथा का विकास करते हैं। चित्रा नामक अतिशय बुद्धिवादी पात्र का उपन्यास में प्रवेश और उसकी आत्म-हत्या तथा तज्जन्य अन्यान्तरवाद की व्याख्या उपन्यास को दार्शनिकता की ओर ले जाते हैं। कथा का अन्त दादा मिलन कुमार और प्रीतमा की जुदाई से होता है। अन्त में लेखक स्वयं पात्रों के सम्मुख आकर मानव जीवन-चक्र को 'ऋतुचक्र' के समान बतलाते हुए उपन्यास का दार्शनिक समापन करता है।

उपन्यास का सारा वातावरण प्राकृतिक है। प्रकृति का उन्मुक्त प्रांगण दादा मिलन कुमार और प्रीतमा को सेवल का भरपूर आनंद उठाने में उद्दीपन का कार्य करता है। उपन्यास वर्णनात्मक शैली में शुरू होकर 'आशावाद' का आलाप करता हुआ समाप्त होता है। पात्र-शैली, गीत-शैली व पूर्वदीप्ति शैली द्वारा उपन्यास के पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण किया गया है। मनोविज्ञान साध्य न बनकर 'साधन' के रूप में उपन्यास की कथा में प्रविष्ट होता है।

11- <u>खीव की प्रेयसी</u> :- ज्ञानचन्द्र जोशी शिक्षित खीव की प्रेयसी नामक उपन्यास का प्रकाशन सन् 1976 ई० में हुआ। इस उपन्यास के प्रकाशन के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :- "उज्जयिनी की दो रातें" शीर्षक अपनी कहानी का प्रकाशन मैंने रुकवा दिया। गर्मी का मौसम पहाड़ पर बिताने के लिए पिछले वर्ष अर्थात् जून 1975 ई० को मैं चालीस

वर्ष के बाद अल्मोड़े चला गया और वहाँ दो महीनों के भीतर ही कवि की प्रेयसी को लिखकर पूरा कर डाला।"[1] यह उपन्यास इलाचन्द्र जोशी द्वारा लिखित एक कल्पना प्रधान उपन्यास है जिसमें उन्होंने कालिदास के पूर्ववर्ती कवि 'सोमिल्ल' और उसकी प्रेयसी 'शिरीषा' को नायक-नायिका के पद पर बैठाया है और इन दोनों को लेकर एक कल्पित कथानक गढ़ा है।

उपन्यास की विषय-वस्तु पर विवाद उठने से पहले ही उसका समाधान करते हुए जोशी जी लिखते हैं :- "पाठकों को यह बताने की आवश्यकता मैं नहीं समझता कि 'कवि की प्रेयसी' न तो ऐतिहासिक चित्र है न पौराणी। यह मेरे पूर्वजन्म से परिचित एक कवि मित्र के जीवन की सीधी-सादी कहानी है, जिसे सीधी-सादी भाषा में ही मैंने लिखना चाहा है। इसमें वर्णित चित्रों की सटीकता प्रमाणित करने के लिए किसी पुरातत्व वेत्ता की खोजी दृष्टि को व्यर्थ प्रयत्न करने का कष्ट उठाना नहीं पड़ेगा। यह कल्पना-प्रधान उपन्यास है और इसकी परख शुद्ध कवि-कल्पना ही कर सकेगी।"[2]

उपरोक्त स्पष्टीकरण से ज्ञात होता है कि जोशी जी ने इसे कल्पना की तूलिका से रँग-रँग कर रोचकता प्रदान की है। यह उपन्यास लिखने की प्रेरणा इलाचन्द्र जोशी जी को किशोरावस्था के ही मिल गयी थी जब उन्होंने प्रथम बार 'मालविकाग्निमित्रम्' पढ़ा। उसमें कालिदास द्वारा वर्णित ग्रामों में उन्हें सबसे अधिक सौमिल्लक ने प्रभावित किया और उसके प्रति उनमें परम आत्मीय भाव जाग्रत होने लगे। उसे उन्होंने सन् 1930 ई० के बाद से अपने उपन्यास का नायक बनाने की कई बार चेष्टा की। पर समय की शिला पर

1- "कवि की प्रेयसी" - 'इलाचन्द्र जोशी', प्रथम संस्करण 1976 पृष्ठ 12

2- "कवि की प्रेयसी" - 'इलाचन्द्र जोशी', प्रथम संस्करण 1976 पृष्ठ 13

कई चित्र मिटते चले गये पर सौमिल्लक जोशी जी की अवचेतना में बुरी तरह घर कर गया था। समय मिलते ही वह उनकी अवचेतना से बाहर निकलकर उनके उपन्यास 'कवि की प्रेयसी' का पात्र बन बैठा।"[1]

इस उपन्यास का कथानक 27 परिच्छेदों में बांटा गया है। कथानक का आरम्भ सौमिल्लक के पितामहों की तत्कालीन संस्कृति से चित्रित किया गया है। उज्जयिनी के सम्पन्न श्रेष्ठी परिवार का होनहार युवक सौमिल्ल उपन्यास के प्रारंभ में अपने कनिष्ठा-मां ! क्रीत विदेशी युवती! जिसे वह 'इज्जो' कहकर पुकारता है, के प्रति सहज स्नेह-भाव का अनुभव करता है। उसका गुरुकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण करना व जीवन के प्रथम अनुभवों की खोज में देशाटन करना कथा के मध्य भाग को गति देते हैं। देशाटन में ही मिली सुन्दरी शिरीषा के साथ इन्द्र-उर जाकर मदन सेना के भवन में टिकना व तज्जन्य घटना-चक्र उपन्यास के कथासूत्र को रोचक ढंग से गति देते हैं। अच्छी अभिनेत्री बनने की लालसा शिरीषा में मदनसेना के प्रति प्रति स्पर्धा पैदा करती है। अतः एकाएक वह सौमिल्लक के साथ उज्जयिनी निकल पड़ती है। अनेक विघ्न बाधाओं के बाद सौमिल्ल उसे अपने एक मित्र प्रवेत के यहाँ ठहरा कर उसे उसकी वहन रत्नप्रिया के संरक्षण में अभिनय में प्रशिक्षित करता है। एक बार प्रवेत को रंगमंच पर खेलने के लिए कोई नाटक नहीं मिलता तो वह सौमिल्ल द्वारा पूर्व लिखित और उपेक्षित नाटक 'वीरहरणम्' को प्रस्तुत करने की तैयारी करता है, साथ ही उसकी नायिका का रोल 'शिरीषा' को

1- देखें - "कवि की प्रेयसी" - 'इलाचन्द्र जोशी' प्रथम संस्करण 1976 ई० पृष्ठ 11, 12

देता है । शिरीषा के मार्मिक अभिनय की सभी प्रशंसा करते हैं । अन्त में सौमित्र की कनिष्ठा माता 'इज्जा' के आशीर्वाद के साथ 'शिरीषा' और 'सौमित्र' का परिणय होकर नाटक का सुखान्त समापन होता है । इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए 'डा० शशि भूषण सिंहल' लिखते हैं :-"उपन्यास की कथा रोचक है । इसकी प्रवाहमयी सरल वर्णन-शैली पाठक को मुग्ध कर लेती है । इस कला में जोशी जी ने अपनी सुपरिचित क्षमता का नये तेवर में परिचय दिया है । कथा की घटनाओं में ताज़गी है ।"[1]

उपन्यास की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए वे आगे लिखते हैं :- "उपन्यास की विशेषता है कि अनेक घटनाएं देखने में स्थूल हैं, रोचक हैं, और तीव्रता से घटती जान पड़ती हैं फिर भी उनके तल में मानसिक क्रिया और भावात्मक उत्तेजना के तत्व बड़ी बारीकी से सन्निहित रहते हैं । साधारण सी दीख पड़ने वाली घटनाओं के भीतर से मानव-मन की गहराईयों को उपन्यासकार ने देखने-दिखाने का सफल प्रयत्न किया है ।"[2]

उपरोक्त उपन्यासों के अतिरिक्त जोशी जी ने दो अन्य उपन्यास लिखे जो लगभग अप्राप्य हैं -'भूत का भविष्य' और 'उज्जयिनी की रातें' ।

1- "हिन्दी उपन्यास वार्षिकी 1976" - 'सूर्य कान्त गुप्त,' प्रथम संस्करण 5 मई 1979, पृष्ठ 120

2- "हिन्दी उपन्यास वार्षिकी 1976" - ' सूर्य कान्त गुप्त ' प्रथम संस्करण 5 मई 1979, पृष्ठ 121

(स) इलाचन्द्र जोशी का 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण':- जैसे ही साहित्य में मनोवैज्ञानिक विशेषतः मनोविश्लेषण प्रणाली आरम्भ हुई, जोशी जी का दृष्टिकोण भी सामाजिकता से यथार्थवादी व व्यक्तिवादी हो उठा । जोशी जी महसूस करने लगे कि कविता लिखने की अपेक्षा उपन्यास लिखने में मानव के यथार्थ चित्रण की अधिक गुंजाइश है । कहानियों की पृष्ठ भूमि में संघर्षों और जटिलताओं का चित्रण करते-करते वे अनजाने ही ऐसा महसूस करने लगे कि व्यक्ति की पीड़ाओं का तनावों का जितनी सच्चाई और ईमानदारी से वे उपन्यास के माध्यम से चित्रण कर सकते हैं उतने ज्वलन्त सत्य का चित्रण कविता द्वारा नहीं किया जा सकता है ।

इलाचन्द्र जोशी के रचनाकाल के दौरान फ्रॉयड, एडलर और जुंग के मनोवैज्ञानिक सिध्दान्त कुलाँचे भर रहे थे । जोशी जी में बचपन से ही यह प्रतिभा थी कि वह न केवल भारतीय पुस्तकों का अध्ययन करते थे वरन् उन्हें पाश्चात्य पुस्तकों पर भी अच्छी विशेषज्ञता थी । इसी के फलस्वरूप उनकी विचारधारा समसामयिक उपन्यासकारों के सम्मुख बिल्कुल नवीन थी ।

यद्यपि उन्होंने फ्रॉयड, एडलर व जंग के सिध्दान्तों का सहारा लिया तथापि वे पूर्णरूपेण फ्रॉयड वादी होकर नहीं रह गये । उन्होंने अपने जीवन में आने वाली समस्याओं व उलझनों से मुक्ति पाने हेतु ही 'मनोविश्लेषण' की तरफ अपना कदम बढ़ाया । इस बात की पुष्टि करते हुए उन्होंने लिखा है :- " मनोविज्ञान सम्बन्धी अध्ययन की आकुलता मुझमें जन्मजात रही है, इसका सम्भावित कारण भी मैं बता चुका हूँ कि अपनी

निजी मनोवैज्ञानिक उलझनों से मुक्ति पाने की छटपटाहट में ही मुझे इस विषय के अध्ययन के लिए प्रेरित किया ।"[1]

अपने अध्ययन की इस परम्परा में उन्होंने फ्रॉयड का कितना सहारा लिया इसकी पुष्टि करते हुए वे लिखते हैं :- "मैंने प्रारम्भ में फ्रॉयड और उसी युग के दूसरे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों की मान्यताओं का अध्ययन गहराई और बारीकी से किया । उस अध्ययन से मुझे विशेष ज्ञान तो नहीं हुआ, पर एक सूत्र अवश्य मिल गया । अपने और अपने आसपास के व्यक्तियों के निकटतम और सूक्ष्म अध्ययन से मुझे लगा कि फ्रायड का मनोविज्ञान इस जटिल विश्व की तह में बैठने के लिए एक आधार बिन्दु तो अवश्य देता है, पर अपने आप में वह न तो कोई समाधान है और न जीवन और मानव-जीवन की गहराइयों को ही वह पाता है ।"[2]

इलाचन्द्र जोशी ने जीवन और जगत् के विश्लेषण की प्रक्रिया में पाया कि जीवन का वास्तविक यथार्थ बड़ा ही दुर्गम और गुहाहित है । उसका असली बोध न तो केवल फ्रॉयड के सतही ज्ञान से सम्भव है और न परम्परागत धार्मिक और सांस्कृतिक आग्रहों से, और न मात्र प्राचीन और नवीन दार्शनिक तत्वों से । "उसका सही और सीधा बोध यदि किसी हद तक सम्भव है तो वह केवल व्यक्ति द्वारा व्यक्ति की निजी अन्वेषणा के स्तर-स्तर पर निहित पूर्वाग्रहों के विशुद्ध और पूर्णतः पूर्वाग्रह शून्य निर्मम विश्लेषण से।"[3]

1- "अन्वेषण" - 'इलाचन्द्र जोशी' पृष्ठ 12

2- "अन्वेषण" - 'इलाचन्द्र जोशी' प्रथम संस्करण 1983, पृष्ठ 12

3- "अन्वेषण" - 'इलाचन्द्र जोशी' प्रथम संस्करण 1983, पृष्ठ 9

उनकी मान्यता थी कि मूल यथार्थ के तात्त्विक बोध की दिशा में यदि सबसे कठिन और मार्मिक पीड़ादायक और विकट उलझनों भरा कोई रास्ता है तो वह केवल 'आत्मविश्लेषण' का ही है क्योंकि बड़े से बड़े ज्ञानी भी इस घोर कष्टकर दुर्गम मार्ग से कतराते हैं और अवचेतना की सतह से आधा-पौन इंच भीतर प्रवेश करने के प्रयत्न में ही घबरा उठते हैं और बाहर आकर अपने निपट सतही ज्ञान के बल पर यह घोषित करने लगते हैं कि उन्होंने मानव के अवचेतन मन का रहस्य ढूँढ निकाला । फ्रॉयड ने भी यही किया था। अपने बरा से सिद्धान्तों के बल पर अवचेतना के पूर्ण विश्लेषण का उत्तराधिकारी मान लिया ।

इलाचन्द्र जोशी अपने 'मनोविश्लेषण' की पृष्ठ भूमि के बारे में लिखते हैं:-

"मैं स्वयं जन्म से ही रहस्यप्रिय रहा हूँ और इसी कारण अपनी अवचेतना के अनेक स्तरों में निहित अद्भुत और साधारणतः अविश्वसनीय रहस्यजालों से मुझे कई वर्ष तक उलझते रहना पड़ा है पर उन सब उलझनों से घिरे रहने पर भी मैं घबराया नहीं हूँ, वरन् अपनी किसी रहस्यमयी जन्मजात प्रेरणा से मैं अपने विवेक को अधिकाधिक पुष्ट करने और अधिक से अधिकतर पैना बनाने के प्रयासों में आरम्भ से ही जुटा रहा हूँ । अपने अन्तर की जटिल मनोवैज्ञानिक उलझनों को मैं अपने अतीन्द्रियत्व की यथार्थता की मूल पृष्ठ भूमि मानकर चला हूँ । ---- मुझे लगा कि सही रास्ता यही हो सकता है कि निर्मम होकर अपनी उलझन का विश्लेषण करके, उसके तात्त्विक रूप को समझूँ और अलग-अलग उलझनों को उनके अलग-अलग परिप्रेक्ष्य में देखूँ - फिर चाहे उस प्रक्रिया में

मुझे सौ-सौ नरकों की भीड़ों में क्यों न तपना पड़े ।" [1]

अपने अनुभवों की बढ़ती परिधि के कारण उन्हें यह महसूस होने लगा कि मानव मन की जटिलताएं अनंत्य रहस्यमयी और बहुमुखी हैं । प्रचलित पाश्चात्य मनोविज्ञान सिध्दान्तों (फ्रॉयड, एडलर, युंग) द्वारा यदि किसी एक समस्या का समाधान होता भी है तो उसी समाधान में अनंत्य अन्य प्रश्न एक बीज की तरह उसमें पैदा करते चले जाते हैं । अतः उन्होंने अपनेपाश्चात्य मनोविज्ञान सम्बन्धी सभी सिध्दान्तों को उठाकर ताक पर रख दिया और निजी तलस्पर्शी से और जीवन सम्बन्धी प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा इस विषय में खोज की । वे अपने 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' की प्रक्रिया में जिन तत्वों को सहायक मानते हैं वे हैं - (1) (फ्रॉयड, युंग आदि पेशेवर मनोवैज्ञानिकों की कृतियों से सतही ज्ञान (2) जीवन की निराध्या के प्रत्यक्ष द्रष्टा कथाकारों की रचनाओं से गहनतर ज्ञान (3) स्वयं प्रत्यक्ष रूप से जीवन के जन्मतम और कटुतम अनुभवों से प्राप्त मूल प्रेरणादायक ज्ञान।" [2]

मनुष्य का मन एक ऐसा रहस्यमय जाल है जिसमें पर्वतों, उनसे निकलने वाली नदियों, जंगलों बंजरों और सभी नदियों को अपने में समेट लेने वाले समुद्रों तथा उन समुद्रों पर उमड़कर तैरने वाली नीलिमा लहरों के ताने-बाने का सा एक ऐसा विस्तृत मंजाल फैला रहता है, जिसका कोई चित्र खींचा ही नहीं जा सकता और न जिसके ओर का ही पता चलता है न छोर का । जोशी जी ने अपनी साहित्य यात्रा में अपने पैर ऐसे ही कीचड़ में फंसाये हैं और अपने को उस दलदल से बचा पाकर निकलते चले आये हैं ।

1- "अभिषंग"-'इलाचन्द्र जोशी' प्रथम संस्करण 1983, पृष्ठ 10, 11

2- देखिए -"अभिषंग"-'इलाचन्द्र जोशी' प्रथम संस्करण 1983, पृष्ठ 13

वे कहते हैं - "साधारण से साधारण और सरल से सरलव्यक्ति के भी मन का रहस्य जब विश्लेषित और उद्घाटित हो जाता है तब वह सरल व्यक्ति, सहज ही एक ऐसा असाधारण पात्र करने लगने लगता है जैसे किसी पौराणिक कथा का असामान्य पात्र हो ----- इस कोटि के व्यक्तियों के मन का विश्लेषण जितनी बारीकी से किया जायेगा, उतना ही उनकी अंतर भावनाओं के बीच की दूरी और खाई अपरिमित रूप से बढ़ती दिखाई देगी ----- मानसिक विश्लेषण ही इस अंतर को स्पष्ट करता है।"[1]

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रक्रिया को इलाचन्द्र जोशी ने कभी निश्चित नियति के ढाँचे में बन्द नहीं माना है। यह ठीक है कि एक विशेष सीमा तक मनोविज्ञान के कुछ निश्चित नियम होते हैं पर मनुष्य की मूल प्रवृत्ति बिलकुल स्वतन्त्र है। वह किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के ढाँचे में बंधकर नहीं रह सकती है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की उपयोगिता के बारे में स्पष्ट करते हुए इलाचन्द्र जोशी जी लिखते हैं :-

"मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की यदि कोई सार्थकता हो सकती है तो केवल इसी बात पर कि वह मनुष्य की अन्तरात्मा को मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों की दासता से मुक्त करने में सहायक सिद्ध हो सकती है, मनोवैज्ञानिक दासता मनुष्य की नियति का अपरिहार्य अंग नहीं है।"[2]

जिस प्रकार से किसी फोड़े की चीरफाड़ करने से या पेट के रोगी

1-"साहित्य" -मैंने अपनी रचनाओं में मनोविज्ञान को क्यों और कैसे अपनाया 'इलाचन्द्र जोशी' 16मार्च 1982 ई० पृष्ठ 15

2-"अन्तर्चेतन" -'इलाचन्द्र जोशी' प्रथम संस्करण, 1985, पृष्ठ 13

को विरेचन देने से उसको स्वास्थ्य लाभ ही होता है, यद्यपि इस प्रक्रिया में उसे दर्द व कष्ट झेलने पड़ते है, उसी प्रकार मनोविकार ग्रस्त या रुँधनार्मस्त व्यक्ति के मानस की यदि चीरफाड़ की जाय तो वह मनोग्रंथियों से मुक्ति पाकर यथार्थ मनुष्यत्व की ओर अग्रसर हो सकता है। यही विचारधारा इलाचन्द्र जोशी की है। उन्होंने कभी भी अपने मनोवैज्ञानिक अस्त्रों को मात्र विश्लेषण हेतु नहीं इस्तेमाल किया वरन् उनका मुख्य कार्य इस अस्त्र द्वारा संश्लेषण का रहा है ।

जोशी जी ने अपने 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' की परिधि में जिन यंत्रों का इस्तेमाल किया है वे हैं चेतन, अचेतन मन का विश्लेषण' 'हीनता मनोग्रंथि का विश्लेषण' अहं और काम के समायोजन का विश्लेषण, जीवन-वृत्ति' 'मरणवृत्ति का विश्लेषण' इडिपस और इलेक्ट्रा काम्प्लेक्स का विश्लेषण इसके अतिरिक्त मानसिक समायोजना हेतु विविध मनोव्यापारों का विश्लेषण ।

अचेतन-चेतन सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को इलाचन्द्र जोशी जी ने 'प्रेत और छाया' की भूमिका में विस्तार से स्पष्ट किया है। जोशी जी का दृढ़ विश्वास है कि आज संसार में जो भी उथल-पुथल या तनाव दिखाई देते है उनका जितना सम्बन्ध बाह्य जगत् से है उतनाही अन्तर्जगत् से भी ।

"आधुनिक मनुष्य ने सभ्यता के अमरी संस्कारों के लेप से अपने सचेतन में अवश्य सफेदपोशी कर ली है । पर जिस पर्दे पर वह सफेदपोशी की गयी है वह इतना झीना है कि ज़रा-ज़रा सी बात से वह फट जाता है और उसमें तनिक भी छिद्र पैदा होते ही उसके नीचे दबी पड़ी पशु-प्रवृत्तियां परिपूर्ण

वेग से विस्फोटित होने लगती है । इन मूल पशुवृत्ति प्रवृत्तियों को मनुष्य जितने ही जोर से सभ्य मनुष्य नीचे दबाता है उतने ही प्रवेग से वे स्वर के गेंद की तरह ऊपर को उछाल मारने लगती है ।" 1

परिणाम स्वरूप मनुष्य अपने जीवन को बाह्याडम्बरों में रखकर जीवन की समस्याएं वास्तविक रूप में न समझकर केवल उनका बाह्योपचार ही करता है जो नितान्त व्यर्थ है । जोशी जी अपने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में 'अचेतन-मन' के विश्लेषण को महत्व देते हुए कहते हैं :-

"मानवता के लिए सबसे कल्याणकर उपाय यह है कि वह अपनी उस अज्ञात चेतना के गहरे और अधिक गहरे स्तरों में प्रवेश करके उसके भीतर जड़ जमाने वाली आदिकालीन पशुप्रवृत्तियों की छानबीन और विश्लेषण करे, और उस पातालपुरी की नारकीय अंधकारा में बद्ध उन संस्कारों की यथार्थता स्वीकार करके ऐसी तरकीब निकालने का प्रयत्न करे जिससे गलत रास्ते से होकर उन बद्ध प्रवृत्तियों का विध्वंसक विस्फोट न हो, बल्कि उचित मार्गों से उनका नियमित प्रस्फुटन हो ।" 2

जोशी जी का दृढ विश्वास है कि व्यक्ति में अहं का अधिक विकास न केवल समाज के लिए घातक है अपितु आत्मघाती भी बन जाता है। यह अहं भाव आत्म-विनाश का दरवाजा भी खोलता है।

1- "प्रेत और छाया" - भूमिका 'इलाचन्द्र जोशी' चतुर्थ संस्करण संवत् 2035 वि० पृष्ठ 4

2- "प्रेत और छाया" - भूमिका-'इलाचन्द्र जोशी' चतुर्थ संस्करण संवत् 2035 वि० पृष्ठ 10

आधुनिक युग के बुद्धिशाली मानव का अहं उसकी बौद्धिकता के साथ ही आगे बढ़ा है, यह अहंभाव तीव्र, व्यापक और उग्र रूप धारण करता हुआ चला है। यह अहंभावग्रस्त है, इसकी पूर्ति की चेष्टा में वह पग-पग पर अस्वाभाविकता असफलता पाता है, इसलिए वह बौखला उठता है और उस बौखलाहट की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वह आत्म-विनाश के पहले अपने आसपास के संसार के विनाश की योजना में जुट जाता है।"[1]

इस प्रकार अहं का यह विकार उसके लिए तो घातक बनता ही है, साथ ही उसके सम्पर्क में आने वाले नर-नारियों के लिए भी अनिष्टकारी, अमंगलकारी बन जाता है।

उक्त अचेतन मन व अहं के विकृत रूप के उद्घाटन के लिए ही जोशी जी ने अपने उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का प्रवेश कराया जो न केवल 'मानस' का विश्लेषण ही करता है अपितु संश्लेषण का मार्ग भी प्रशस्त करता है, जो कि अन्य सभी मनोवैज्ञानिकों व मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के 'मनोविश्लेषण' से अलग छाप लिए हुए है। जोशी जी के 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' के सम्बन्ध में राजेन्द्र जैन लिखते हैं :-

"उनकी यह व्यक्तिगत अवधारणा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से अलग हटकर मौलिक एवं नवीन कही जा सकती है। उनकी यह धारणा कोरा किताबी ज्ञान न होकर आन्तरिक अनुभूति है। यह अनुभूतियाँ जीवन से प्राप्त हुई है जीवन का आधार लेकर ही सिद्धान्त सिर उठाते हैं और अनुभूति के आधार पर ही इन सिद्धान्तों में संशोधन होता रहता है।"[2]

1- "विक्षेपना" -'इलाचन्द्र जोशी' द्वितीय संस्करण पृष्ठ 123

2- "इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व"- राजेन्द्र जैन प्रथम संस्करण 1979, पृष्ठ 102

चतुर्थ अध्याय

इलाचन्द्र जोशी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का शिल्प विधान

चतुर्थ अध्याय

"इलाचन्द्र जोशी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का शिल्प विधान"

(अ) जोशी जी से पूर्व औपन्यासिक शिल्प:- एक समय था जब मानव अपने समग्र रूप में सरल सुगम स्वभाव वाला था। उसके अन्तर में कोई द्वन्द्वात्मक उठापटक नहीं थी। आज की तरह उसमें जटिलताओं का घटाटोप न होकर उसका चरित्र सुगठित वाला था। समय परिवर्तित हुआ तो समसामयिक परिस्थितियों के कारण उसका जीवन वैमनस्यपूर्ण हो चला। व्यक्ति-व्यक्ति में परिस्थिति-जन्य जटिलता एवं टेढ़ापन व्याप्त होने लगा। उपन्यास भी मन की उन्हीं जटिलताओं को लेकर चल पड़े। हिन्दी का उपन्यास साहित्य भी उससे अछूता न रहा। 'बाबू गुलाब राय' इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं:-

'साहित्य जीवन से भिन्न नहीं है वरन वह उसका ही मुखरित रूप है। वह जीवन के महासागर से उठी हुई उच्चतम तरंग है। मानव-जाति के विचारों और संकल्पों की आत्मकथा साहित्य के रूप में प्रतिबिम्बित होती है।"[1]

फ्रॉयड, एडलर, युंग वाट्सन आदि के सिद्धान्तों ने उपन्यास साहित्य को मनोवैज्ञानिक शिल्प प्रदान किया। जोशी जी के पूर्ववर्ती उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक उपन्यास शिल्प बीज-रूप में प्रेमचन्द के उपन्यासों में देखने को मिलता है। प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासों में 'अनगढ़-शिल्प का प्राबल्य था। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मनोविज्ञान के सायास समावेश के कारण शिल्प में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। जोशी जी के पूर्व उपन्यास-शिल्प को यहाँ तीन बिन्दुओं के माध्यम से व्यक्त कर रहे हैं:-

1- भारतेन्दु युग

1-"सिद्धान्त और अध्ययन"-'बाबू गुलाबराय' प्रथम संस्करण 1975 पृष्ठ 64

2- प्रेमचन्द युग,

3- प्रेमचन्दोत्तर युग,

1- भारतेन्दु युग :- हिन्दी उपन्यासों का प्रारंभिक काल बंगला व अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद और अनुकरण का युग था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु काल से हिन्दी-साहित्य में उपन्यासों के अनुवाद-युग का प्रारंभ हो चुका था। सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वयं दो मराठी उपन्यासों 'चन्द्रप्रभा' और 'पूर्णप्रकाश' का हिन्दी में अनुवाद किया। तत्पश्चात् 'बाबू गदाधर सिंह', 'पं०प्रताप नारायण मिश्र', 'प०राधाचरण गोस्वामी', 'कार्तिक प्रसाद खत्री', 'गोपाल राम गहमरी' आदि ने विविध बंगला उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद किया। यह हिन्दी उपन्यासों की शैशवावस्था थी, अतः इनकी शिल्प-विधि भी अनुकृत ही थी। भारतेन्दु युग में जब मौलिकता का अभाव खल रहा था तो कुछ उपन्यासकारों ने इस अभाव की पूर्ति के लिए तरह-तरह के प्रयोग करके तिलस्मी, जासूसी, ऐति-हासिक तथा सामाजिक उपन्यासों की रचना की।" वस्तुतः इस युग के उपन्यास जीवन की वास्तविकता से विच्छिन्न थे। इस विच्छिन्नता का फल यह हुआ कि उपन्यास कोरे काल्पनिक हो गये हैं। कल्पना के कारण कभी तो उपन्यास आल्हों की बन्द गीतियों में चक्कर लगाने लगे और कभी ख्याली दुनियाँ में तिलस्म के अद्भुत और अपूर्व महल खड़े करने लगे।"[1] भारतेन्दु युग में उपन्यास मात्र जन-मन-रंजक होते थे। उपन्यास साहित्य की इस शैशवावस्था में प्रयोगात्मक और अनगढ़ शिल्प का ही बोलबाला था, अतः शिल्प विधि के सभी तत्व अविकसित एवं अनगढ़ ही दिखते हैं। तत्कालीन उपन्यास-साहित्य की समीक्षा करती हुई 'श्रीमती ओम शुक्ल' लिखती हैं:-

---

1- "हिन्दी उपन्यास: युग चेतन और पाठकीय संवेदना"- डा० मुकुन्द द्विवेदी, प्रथम संस्करण 1970, पृष्ठ 171,

"मानव-जीवन से प्राप्त होने वाले पोषक-तत्वों के अभाव में उपन्यास-शिल्प अनुवाद और अनुकरण की घेरेबन्दी में बंधा रहकर अनगढ़ता और प्रयोगात्मकता की अवस्था पार न कर सका।"[1]

इस समय के उपन्यास-साहित्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इसका कथा-शिल्प अप्रौढ व सीधा-सादा है। इस समय के उपन्यासों की कथावस्तु जीवन की पेचीदगियों व गम्भीर समस्याओं की कहानी न कहकर कथा सुनने की उत्सुकता के कारण केवल उपन्यास की रीढ़ बनकर रह गयी है। चाहे 'परीक्षागुरु' की कथा हो या 'सौ अजान एक सुजान' की ; चाहे वह 'आर्या सिन्ध' की कथा हो या 'भाग्यवती' की, सर्वत्र कल्पना जन्य स्थूल कथानक ही दिखता है। एक पूर्व-निश्चित लक्ष्य के साथ इन उपन्यासों का उपसंहार होता है।

तत्कालीन उपन्यासों में 'चरित्र-शिल्प' भी अनगढ़ अवस्था में था। इसका एक मात्र कारण यह था कि केवल कथा पर ही अधिक बल दिया जाता था। घटना-वैचित्र्य के सहारे कुतूहल का सृजन करके पाठक के मन में उत्सुकता और रोचकता उत्पन्न करना ही उपन्यासकार का अंतिम ध्येय था। अतः तत्कालीन उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की स्थिति गौण थी। चरित्र-चित्रण के नाम पर उपन्यासों में केवल पात्रों के 'आकृति-वर्णन' व 'प्रवृत्ति निर्देश' द्वारा उनके जीवन के स्थूल चित्र यत्र-तत्र प्रस्तुत किये जाते हैं।

संवादों का रूप भी अनावश्यक और अनियमित था। संवादों में केवल विचार सूत्र की माला ही गुँथी होती थी। इनमें 'चरित्र-विश्लेषण' सम्बन्धी कोई गुण न था।

इस युग के उपन्यासों की भाषा भी सरल एवं सुबोध थी। भाषा अपने

1- "हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास"- डा० श्रीमती ओम शुक्ल, संस्करण- जुलाई 1974, पृष्ठ 62

लिखवाने के लिए जानी जाती थी क्योंकि उपन्यासकारों के समक्ष पाठकों की रूचियों की समस्या आती थी। 'बाबू देव की नंदन स्त्री ' ने अपने उपन्यास-चन्द्रकांता-संतति' में लिखा है - "यदि बाबू हरिश्चन्द्र अपनी भाषा को थोड़ा सरल कर लेते तो हम भाईयों को अपने समाज पर कलंक लगाने की आवश्यकता न पड़ती और स्वाभाविक शब्दों के मेल से हिन्दी की पैसिंजर भी मेल बन जाती ------- -------- मेरी हिन्दी किस श्रेणी की हिन्दी है, इसका निर्धारण मैं नहीं करता, परन्तु मैं यह जानता हूँ कि इसके पढ़ने के लिए कोष की तलाश नहीं करनी पड़ती।"[1] स्पष्टत: सरल और सुबोध भाषा का ही आग्रह था। इस युग में भाषा के अनगढ़ और अपरिपक्व रूप के ही दर्शन होते हैं। अपवाद स्वरूप कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें संस्कृतनिष्ठ व परिष्कृत भाषा व्यवहृत हुई है। "सौ अजान एक सुजान" की भाषा देखिए :- "मालिक चन्द्रमा को विपरीत में पड़ा देख नमक-हराम नौकर की भाँति तारागण एक-एक कर गायब होने लगे अथवा काल केवर्त ने आकाश मान सरोवर में जिज्ञासारूपी जाल बड़ी दूर तक फैलाये जाती मछली की भाँति सबों को एक साथ समेट लिया।"[2] तत्कालीन उपन्यासों में वातावरण-सृजन केवल प्राकृतिक दृश्यों के लिए होता था। रहस्यमय वातावरण की सृष्टि उस समय के ऐयारी, जासूसी व तिलस्मी उपन्यासों की मुख्य विशेषता थी। उपन्यासों का उद्भव व प्रयोग काल होने के कारण भारतेन्दु युगीन उपन्यासों में शिल्प सम्बन्धी कोई गठन व प्रौढ़त्व के दर्शन नहीं होते हैं।

(2) प्रेमचन्द युग :- हिन्दी उपन्यासों के शिल्पगत विकास के क्रममें मौलिकता के आविर्भाव के साथ एक ऐसे युग का उदय हुआ जिसने उपन्यास का मानो कायाकल्प ही कर दिया। औपन्यासिक शिल्प में कायाकल्प

1- "चन्द्रकान्ता-संतति"- देवकीनन्दन खत्री- चौबीसवां हिस्सा, पृष्ठ 82,83
2- "सौ अजान एक सुजान"- बालकृष्ण भट्ट - - पृष्ठ 39

के प्रणेता थे- अमर उपन्यासकार उपन्यास-सम्राट मुंशी प्रेमचन्द। प्रेमचन्द के समकालीन उपन्यासकारों में 'जयशंकर प्रसाद', 'उग्र', 'कौशिक', 'वृन्दावनलाल वर्मा' और आचार्य 'चतुर सेन शास्त्री' आदि ने उपन्यास-साहित्य को शिल्पगत् वैशिष्ट्य प्रदान किया। यद्यपि प्रेमचन्द युग में उपन्यासों की कई धारायें चली जैसे -ऐतिहासिक उपन्यास, यथार्थवादी उपन्यास एवं सामाजिक उपन्यास, लेकिन इन सभी धाराओं में औपन्यासिक शिल्प को क्रमशः प्रौढ़ता ही मिलती रही है। प्रेमचन्द ने यह सिद्ध कर दिया कि "उपन्यासकार का संस्कार होता है - जीवन के संघर्षों के बीच में। उसका व्यक्तित्व चारों ओर से पड़ने वाली चोटों से गढ़ा जाता है। अनगढ़ व्यक्तित्व न अपना स्वरूप पाता है और न अपनी कृतियों को ही स्वरूप दे पाता है।"[1]

प्रेमचन्द और समसामयिक उपन्यासकारों ने इस काल की सामाजिक चेतना को अपने-अपने शिल्प द्वारा विविध रंग दिये हैं। प्रेमचन्द ने जन-जीवन को ही अपने सृजन का मूल आधार माना। हिन्दी उपन्यासों में मनोविज्ञान के समावेश का सर्व-प्रथम प्रयास प्रेमचन्द ने ही किया। अतः स्पष्टतः उनका उपन्यास-शिल्प मनोविज्ञान के आधार पर ही विकसित हुआ है। "प्रेमचन्द युग ने जिस मनोविज्ञान का सहारा लिया था वह चरित्र के साधारण मनोविज्ञान से सम्बन्धित था। प्रसाद के चरित्रों का घात-प्रतिघात और प्रेमचन्द के चरित्रों का अन्तर्द्वन्द्व मूलतः बाह्य घटनाओं से सम्बद्ध थे, मानव की आन्तरिक प्रेरणाओं से नहीं।"[2]

प्रेमचन्द युग के प्रणेता मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों का लक्ष्य मानव-मन का परिष्कार करना है, अतः उनकी कथावस्तु का आधार भी मानव-जीवन है। उन्होंने अपने सामाजिक, समस्यात्मक व यथार्थवादी, समस्त उपन्यासों में मानव-मन को लेकर

1- "उपन्यास: तत्व एवं स्वरूप विधान"- श्री नारायण अग्निहोत्री,
प्रथम संस्करण 1962, पृष्ठ 232

2- "आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास"- डा० सेवन
प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 125

ही कथा का विकास किया है। इसके सहारे ही मन की विविध मनोवैज्ञानिक मूलप्रवृत्तियों का भी उन्होंने चित्रण किया है। अपनी सूक्ष्म दृष्टि के सहारे सूक्ष्म कथावस्तु का भी गठन प्रेमचन्द ने किया है। उनके उपन्यास समस्याओं से घिरे रह कर भी 'मानव-मन' के रहस्यों को ही उद्घाटित करते चलते हैं। 'गबन' में 'रमानाथ' व 'जालपा' की मानसिक वृत्तियों व तज्जन्य ऊहापोह का चित्रण कथानक का मुख्य आधार है। 'गोदान' में 'होरी', 'धनिया', 'गोबर' के समाज-गत चरित्रों द्वारा व्यक्ति चरित्र की झांकी प्रस्तुत हुई है। 'निर्मला' की कथावस्तु में भी सूक्ष्मता व नारी-मनोविज्ञान तथा 'समाज मनोविज्ञान' का चित्रण है।

प्रसाद, उग्र, कौशिक सभी के उपन्यासों के कथानक स्थूलता की जड़ों से ऊपर उठाकर सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हुए हैं। जहाँ भारतेन्दु युगीन उपन्यासों की कथावस्तु अनगढ़ थी, वहीं प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों की कथावस्तु ने मनोविज्ञान का जामा पहनना आरंभ कर दिया था। चाहे वह 'गोदान' की कथावस्तु हो, चाहे 'कंकाल' की; चाहे वह 'भिखारिणी' की कथावस्तु हो, चाहे 'वृध्दा' की बेटी' की, सबमें मानव की मूलप्रवृत्तियाँ जैसे- संवेदना, सहानुभूति, कुण्ठा आदि दृष्टिगत होती है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी प्रेमचन्द युग विकास और प्रौढ़ता का युग कहा जा सकता है। इस युग में 'चरित्र-चित्रण' को कथावस्तु से अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका था। इस युग का उपन्यासकार यह दिखलाने का प्रयत्न करने लगा था कि उसके पात्रों के चरित्रों में क्या-क्या सबलतायें है व क्या-क्या दुर्बलतायें है, परिस्थिति के परिवर्तित होने पर इनमें क्या-क्या मानसिक परिवर्तन होंगे।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में जन साधारण की कठिनाईयों, हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि के चित्रण के लिए विविध वर्गों से पात्रों का चयन किया है और इनके चित्रण के लिए प्रत्यक्षन और परोक्ष दोनों प्रणालियाँ अपनीयी है। घटनाओं, अन्तर्द्वन्द्वों, अनुभवों क्रिया-प्रतिक्रियाओं द्वारा इस युग में चरित्र-चित्रण पर बल डाला गया है। 'प्रेमाश्रम', 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कंकाल', 'तितली' आदि उपन्यासों में सामान्य, असामान्य, दुर्बल कई तरह के पात्र मिल जाते हैं जिनके चारित्रिक विश्लेषण में लेखकों ने सूक्ष्मता का परिचय दिया है। 'सेवासदन' की नायिका सुमन को ही लें, वह एक साथ अनेक विशेषताओं का पुञ्ज है। रूप, गुण, स्वाभिमान, महत्वाकांक्षा सबका उसमें समन्वय है। स्वच्छन्द जीवन के प्रति भी वह लालायित रहती है। उसमें उच्चता ग्रंथि {सुपीरियरटी कॉम्पलेक्स} भी दृष्टिगत होती है। कोठे पर पहुँचकर वह वहाँ आने वाले हर व्यक्ति का मज़ाक उड़ाती है। बुद्धि का उसमें इतना प्राबल्य है कि हर व्यक्ति की दुर्बलता का मार्मिक विश्लेषण करती है। 'गोदान' में भी पात्रों के जीवन की विवशताओं का उनकी चिन्ताओं व अन्य मनः स्थितियों का भी पूर्ण मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। यद्यपि 'हृदय-पक्ष अर्थात् मनोविज्ञान का प्रयोग प्रेमचन्द युग में शुरू हो गया था तथापि बीच-बीच में लेखक की बोलने, उपदेश देने की प्रवृति नहीं गयी थी। पात्रों में आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति भी दिखने लगी थी। 'गोदान' के होरी का आत्म-विश्लेषण देखिए- " - - - मुनिया को रख ले, तो खेती को लेकर घर में रहेगा कैसे। बिरादरी का झंझट जो है। सारा गाँव काँव-काँव करने लगेगा। सभी दुश्मन हो जायेंगे। अम्मां तो इसे घर में घुसने भी न देगी। लेकिन जब स्त्री होकर यह नहीं डरती तो पुरुष होकर वह क्यों डरे। बहुत होगा लोग उसे अलग कर देंगे - - - ।"[1]

1- " गोदान" - प्रेमचन्द, संस्करण 1981 पृष्ठ 41

बहुत होगा लोग उसे अलग कर देंगे - - - ।" [1] 'चरित्र-चित्रण' की मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का सूत्रपात प्रेमचन्द के युग में प्रारंभ हो गया था। 'कंकाल' और 'तितली' प्रसाद के इन दोनों उपन्यासों में पत्र शैली, स्वप्न शैली, गीत शैली, आत्म विश्लेषण शैली सभी का प्रयोग हुआ।" [2]

भाषा-शैली और कथोपकथन में भी इस युग के उपन्यासकारों ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। वाह्य जगत से अन्तर्जगत् की ओर मुड़ने के कारण भाषायी दृष्टिकोण भी मनोवैज्ञानिक हो गया। 'डा० मधु जैन' भाषा शैली के इस बदलाव का कारण स्पष्ट करती हुई लिखती हैं:- "ज्यों-ज्यों उपन्यास-साहित्य का झुकाव मन की ओर होता गया, त्यों-त्यों उसकी भाषा भी अधिकाधिक सूक्ष्म होती गयी, उसका परम्परागत वैय्याकरणिक ढांचा भी परिवर्तित होने लगा। मन जैसे अमूर्त विषय को मूर्त करने के लिए भाषा को भी अमूर्त और सूक्ष्म बनना पड़ा।" [3] शैली में विश्लेषणात्मकता की प्रवृत्ति के दर्शन होने लगे। सरल और मंजी हुई सूक्ष्म भाषा का प्रचलन बढ़ गया।

प्रेमचन्द युग में वातावरण कथावस्तु के विचार-वहन हेतु सृजित किया जाने लगा। इस युग में उपन्यासों में उपस्थित वातावरण में केवल प्रकृति के विविध रंग रूपों की रंगमय झांकी नहीं थी वरन् प्रकृति के विविध रंग-रूप मानव की मनःस्थितियों से तादात्म्यीकृत होने लगे थे। 'गोदान' में ऐसे प्रकृति के मनोनुकूल चित्रों की बहुलता है। उदाहरणार्थ - "सिलिया में चियासलाई से कुप्पी जलाई। एक किनारे मिट्टी का घड़ा था, दूसरी ओर चूल्हा था, जहाँ दो-तीन पीतल और लोहे के बासन

1- "गोदान" - प्रेमचन्द - संस्करण 1981, पृष्ठ 41

2- "देखें, 'कंकाल व तितली' - प्रसाद पंचम संस्करण, पृष्ठ क्रमशः 113, 179 तथा 121

3- "यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण" - डा० मधु जैन, प्रथम संस्करण 1977, पृष्ठ 274

मंजे-धुले रखे थे। बीच में पुआल बिछा था। वहीं सिलिया का बिस्तर था। इस बिस्तर के सिरहाने की ओर राख की छोटी ढटोली बैठे रो रही थी, और उसी के पास दो-तीन मिट्टी के हाथी-घोड़े अंग-भंग दशा में पड़े हुए थे। जब स्वामी ही न रहा तो कौन उनकी देखभाल करता? मातादीन पुआल पर बैठ गया। कलेजे में हूक-सी उठ रही थी: जी चाहता था, खूब रोये।"[1]

यद्यपि वृन्दावनलाल वर्मा ने उपन्यासों को ऐतिहासिक व सामाजिक आधार प्रदान किया तथापि उनमें भी उन्होंने शिल्पगत-प्रौढ़ता के ही दर्शन होते हैं। संक्षेप में 'प्रेमचन्द' युगीन उपन्यास-शिल्प की कुछ निम्न लिखित विशेषतायें हैं:-

1- उपन्यासों की कथावस्तु की पृष्ठ भूमि के रूप में भारत की निर्धनता, दासता व अशिक्षा जैसी वस्तुयें ही विद्यमान थी।

2- पश्चिमी आविष्कारों व स्वतन्त्रता-आन्दोलनों तथा गांधी, अरविन्द, टाल स्टाय आदि विचारकों ने प्रेमचन्द-युगीन साहित्य को अधिकाधिक प्रभावित किया।

3- तत्कालीन उपन्यासों में सामाजिक एवं अन्य व्यापक समस्याओं का नग्न रूप उभर कर सामने आया।

4- उपन्यासों में पात्र का 'व्यक्तित्व' भी उभर कर सामने आया, उसकी भी चिर-दमित इच्छाओं को सजीव होकर बाहर आने का अवसर मिला। 'संघर्ष ही जीवन है' - जैसा सूत्र युगीन उपन्यासों में 'चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत होने लगा।

5- उपन्यास कुतूहल व विलासमूला कल्पना के पाश से मुक्त हुआ। मात्र समय-यापन का साधन न बनकर यह जीवन का 'दर्पण' बनकर प्रकट हुआ।

1- "गोदान" - प्रेमचन्द, संस्करण 1981, पृष्ठ 288

6- सोद्देश्य-आदर्शवादी परम्परा से युक्त इस युग के उपन्यासों में कथावस्तु व्यक्ति के 'व्यक्तित्व' को सामाजिकता के धरातल पर तौलने लगी।

7- गहरी पर्यवेक्षण-शक्ति के कारण 'चरित्र-चित्रण' मनोजगत् की ओर अधिक झुकने लगा।

8- भाषा में अतिशय भावुकता, रोमानीपन व रीतिकालत्व इन सबके प्रति वर्जना का स्वर प्रबल हुआ, इसका स्थान सरल, स्वाभाविक, विषयानुकूल युक्त व बौद्धिक भाषा ने ले लिया।

9- 'वातावरण-चित्रण' में इस युग के उपन्यासों ने निजता व मौलिकता उपलब्ध करायी। "मनोविज्ञान एवं ह्रासमान अर्थव्यवस्था के आधार पर देशकाल का स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक चित्रण भी इस युग की विशेषता है। अनुकूल वातावरण के कारण घटना को गति और पात्रों को अधिकाधिक सजीवता प्राप्त हुई है।"[1]

10- समाज-मनोविज्ञान के अतिरिक्त स्वाभाविक व स्पष्ट चित्र हिन्दी उपन्यास जगत् में प्रथम बार इसी युग में आये।

तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्द-युग औपन्यासिक-शिल्प के विकास व मनोविज्ञान के धरातल पर प्रथम पदार्पण का युग था। इस युग के उपन्यासकारों ने मानव के 'चेतन-मन तक पहुँचने में सफलता प्राप्त कर ली।

3- <u>प्रेमचन्दोत्तर युग</u> :- प्रेमचन्दोत्तर युग वह युग है जब उपन्यास-शिल्प को मनोविज्ञान की विविध खोजों, सिद्धान्तों तथा तत्वों

1- "उपन्यास: सिद्धान्त और संरचना" - डा० रवीन्द्र कुमार जैन पृष्ठ 76

से सजाया-सवांरा जा रहा था। मनोविज्ञान की नूतन खोजों ने यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य वह नहीं है जो हमें ऊपरसे देखने में लगता है। उसका आन्तरिक व्यक्तित्व ही उसके व्यवहार का संचालन करता है। फ्रॉयडवादी विचार धारा ने उपन्यासकारों को मानव-मन के तीन स्तरों की जानकारी दी - 'जाग्रत चेतन', 'पूर्वचेतन' और 'अवचेतन' तथा उनके महत्व से भी परिचित करा दिया। इस विचारधारा ने यह सिद्ध कर दिया कि मानव का 'अवचेतन-मन' असामाजिक और पशु प्रवृत्तियों का गुप्त भंडार है। यदा-कदा समय अनुकूल होते ही इनका विस्फोट होता रहता है। इन्हीं विचारों को ग्रहण करते हुए प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने मनोविज्ञान के विविध अस्त्रों द्वारा मन के इस स्तर की चीर-फाड़ का काम शुरू किया।

जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय, देवराज, धर्मवीर भारती, भगवती चरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उषा प्रियंवदा, प्रभृति उपन्यासकारों ने मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों के सहारे व्यक्ति के मन का चित्रण किया है। मनोविज्ञान के विकास एवं प्रसार के कारण प्रेमचन्दोत्तर युग के औपन्यासिक शिल्प में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। पात्रों की आन्तरिक मनोभूमि पर उतरने के कारण कथानक 'गौण' हो गया और उसमें व्यक्ति के अन्तर्मन को प्रमुखता मिली। उपन्यासों पर पड़े फ्रॉयडियन प्रभाव का अवलोकन करती हुई डा० मधु लिखती है :- - - " - - मनोविज्ञान विशेषतः उसकी मनोविश्लेषणवादी शाखा ने हमारी कथावस्तु में आमूल-परिवर्तन किये है। इसने कथा को बाह्य-जगत् से मोड़कर अन्तर्जगत् की ओर ढकेल दिया। घटनाओं की गौणता के कारण मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों की संख्या अत्यन्त सीमित हो गयी है। लेखक दो या चार पात्रों को लेकर पूरे उपन्यास की रचना कर डालता है।" 1

1- "यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण" - डा० मधु जैन, प्रथम संस्करण 1977, पृष्ठ 376

प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासकारों ने केवल चेतन-मन की ही छानबीन की, लेकिन प्रेम-चन्दोत्तर युग में अचेतनमन के विश्लेषण की प्रवृत्ति प्रबल हो उठी। इस युग के उपन्यासकार यह मानने लगे कि मानव के समस्त कार्य मूल प्रेरणाओं द्वारा ही निर्देशित होते हैं। कोई इन मूल प्रवृत्तियों को फ्रॉयड की तरह 'काम' मानने लगा, कोई इसे एडलर की तरह 'आत्मगौरव' मानने लगा। इसीलिए "इन लेखकों का मुख्य उद्देश्य पात्रों के अचेतन मन में स्थित ग्रंथियों और कुण्ठाओं को समाप्त करना रहता है और वे निर्द्वन्द्व इस ओर बढ़ते चलते हैं, भले ही कथा में संगठन रहे या न रहे - - - - - वे केवल उन्हीं घटनाओं को लेते हैं जो पात्रों की मानसिक गुत्थी को सुलझाने में सहायक हों। इसका परिणाम यह हुआ कि कथा में बिखराव आ गया है।"[1]

मानसिक घटनाओं के उलझाव-सुलझाव के चक्कर में पड़ने के कारण कथानक में स्थूलता का स्थान सूक्ष्मता ने ले लिया। अज्ञेय, जोशी, जैनेन्द्र सभी के उपन्यासों में 'सूक्ष्मता' देखने को मिलती है। कथावस्तु कुछ घंटों, कुछ महीनों में ही घटित हो जाती है। पात्र स्वयं अपनी कहानी कहते जाते हैं। कभी-कभी उपन्यासकार किसी मानसिक प्रक्रिया की जटिलता की व्याख्या के लिए स्वयं भी उपस्थित होता है।

प्रेमचन्दोत्तर-युग के उपन्यासकारों ने पात्र और उनकी 'चरित्र-सृष्टि' में ही अपना सारा ध्यान रमाया है। अतः उनके पात्र मानसिक प्रवृत्तियों के आधार पर चुन-चुन कर लिए गये हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की यह विशेषता है कि इनमें कम पात्र अपनाये जाते हैं। 'शेखर-एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'सुनीता', 'परख', 'कल्याणी', 'त्यागपत्र', 'शेष और छाया', 'सन्नाटा', 'मुक्तिपथ', 'अज्ञेय की डायरी', 'रोकोगी नहीं राधिका', 'भीतर के घाव', 'उसकी पंचवटी', इत्यादि प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में पात्रों की सीमितता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। इस युग के उपन्यासों के

1- "पचास के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"- डा० मधु जैन,
प्रथम संस्करण 1977, पृष्ठ 273

पात्र प्रायः मनोविज्ञान-सम्मत है। 'अन्तर्मुखी', 'आत्मकामी', 'असामान्य, असामाजिक, चित्तविकृत पात्र ही इन उपन्यासों की मेरुरज्जु हैं। प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासकारों ने 'चरित्र-चित्रण' की बहिरंग प्रणालियों का ही प्रयोग अधिकांश रूप में किया परन्तु 'अचेतन-मन' की व्याख्या के कारण प्रेमचन्दोत्तर युग में अंतरंग और पूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग हुआ जिनमें 'अन्तर्द्वन्द्व', 'अन्तर्भाषण', 'मनोविश्लेषण', 'मुक्त-आलंब', 'बाधकता-विश्लेषण', 'केस-हिस्ट्री प्रणाली' आदि प्रणालियाँ प्रमुख हैं। जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय, देवराज, धर्मवीर भारती, इत्यादि सभी के उपन्यासों में चारित्रिक-विश्लेषण के लिए इन्हीं प्रणालियों का प्रयोग हुआ है। इसका एकमात्र कारण यह है कि " व्यक्ति-मानस की अचेतन प्रवृत्तियाँ इतनी सूक्ष्म होती हैं कि उपन्यासकार यदि सफल मनोविश्लेषक हो और उपन्यास में उसने उन सभी प्रणालियों का प्रयोग किया हो जिनको एक मनोविश्लेषक अपनाता है तो भी शायद ही वह उन्हें उघाड़ सकेगा।"[1] तात्पर्य यह है कि मनोवैज्ञानिक पात्र के चरित्र-चित्रण हेतु ये प्रणालियाँ अनिवार्य हो जाती हैं।

संवादों की दृष्टि से भी प्रेमचन्दोत्तर युग में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ क्योंकि इस समय का साहित्य मनोवैज्ञानिकता से भाराक्रान्त है। पूर्वकालीन भारतेन्दु युग के और प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में पात्रों का बाह्य द्वन्द्व ही प्रकाशित होता है। पर प्रेमचन्दोत्तर युग में "उपन्यास में बाह्य संघर्ष का स्थान अन्तर्संघर्ष ने ले लिया और उपन्यासकार अनुभूति के विभिन्न स्तरों पर व्यक्ति मानस में हो रहे संघर्ष के अचेतन कारणों की खोज में मनोविश्लेषण की ओर प्रवृत्त हुए।"[2] अतः इस युग के उपन्यासों में संवाद अन्तर्द्वन्द्व प्रधान मिलते हैं। पात्रों के अन्तर्मन का स्पर्श पाकर इस इस युग के उपन्यासों के संवाद सजीव हो उठते हैं। श्री नारायण अग्निहोत्री के

1- "हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास" - डा० रणवीर रांग्रा
संस्करण 1961, पृष्ठ 524

2- "हिन्दी वाङ्मय; बीसवीं शती - डा० नगेन्द्र,
प्रथम संस्करण 1972 पृष्ठ 201, 202

शब्दों में, — " मनोविश्लेषण प्रधान उपन्यासों में व्यक्ति के उद्गार संवेगों की महासागर-तुल्य अन्तराल के अन्वेषण एवं तद्विषयक मानचित्र आलेखन की प्रमुखता रहती है - इसके साथ ही संवादों में भाग लेने वाले पात्रों के अपने-अपने अन्तस् में भी विचार-साहचर्य, इन्द्रियों की नियंत्रित न की जा सकने वाली गतिविधि और चंचल मन की अदमनीय उच्छृंखलताओं, प्रवृत्ति जन्य विकारों अथवा वासनाओं के कारण एक ही साथ, एक ही समय में उठने वाली भावतरंगों के आलेखन के प्रयत्न-स्वरूप एक नये प्रकार के एक पात्रीय, अन्तः कर्थित, स्वयं-चालित निर्लक्ष्य और अनियंत्रित से संवादों की सृष्टि होती है।"[1]

देशकाल और वातावरण की दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर युग प्रौढ़त्व और परिष्करण का युग कहा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक कथावस्तु के कारण मनोवैज्ञानिक वातावरण की सृष्टि इस युग के उपन्यासों की मौलिक विशेषता है। 'व्यक्ति' की प्रधानता के कारण वातावरण भी वैयक्तिक ही रहा। इस युग का उपन्यासकार - - "- - - प्रायः एक मानसिक चिकित्सक अथवा मनोविश्लेषणवादी प्रयोगशाला का वातावरण उत्पन्न करता है।वह स्वयं एक मनोचिकित्सक के रूप में उपस्थित होता है।"[2] प्रकृति का भी मनोनुकूल चित्रण इन उपन्यासों की विशेषता है।

'भाषा-शैली' में भी मनोविज्ञान के समावेश के कारण आमूल-चूल परिवर्तन हुए। भाषा में अर्थगर्भता मनोविज्ञान-सम्मत-विषयवस्तु के अनुरूप ही व्यञ्जित होने लगी। जैसे-जैसे उपन्यास-साहित्य मन की ओर झुकता गया, भाषा भी अधिकाधिक सूक्ष्म होती गयी। भाषा में अमूर्तता बढ़ती गयी। जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय, सभी के

1- "उपन्यास: तत्व एवं रूप विधान" - श्री नारायण अग्निहोत्री, प्रथम संस्करण 1962, पृष्ठ 128

2- "यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण" - डा० मधु जैन, प्रथम संस्करण 1977, पृष्ठ 381, 382

उपन्यासों में अंचीय भाषा प्रयोग होने लगा। शैली में 'मनोविश्लेषण' की प्रधानता होने लगी। जैनेन्द्र के प्रत्येक लघु उपन्यासों में भाषायी सौन्दर्य देखते ही बनता है। भाषा की समीक्षा करते हुए डा० देवराज उपाध्याय लिखते हैं :- - "उनकी भाषा में भावों की ऊँचाई तक उठकर उन्हें अभिव्यक्त करने की गज़ब की शक्ति है। उनके वाक्य प्रायः छोटे-छोटे चलते, पर साथ ही मानों फूल बिखेरते हुए से चलते हैं। वे पारे की तरह हुलमुल से करते रहते है, मानों हमारे हाथों की ऊँगलियों का स्पर्श हुआ नहीं कि वह खिल पड़ा, बिखरा उठा। पर उसके जरा होले-होले पेश आइए आपको अपार सौन्दर्य का दर्शन होगा। - - - - - - - - - - - - - - - - उनके वाक्य जितना कहते नहीं, उससे कहीं अधिक ध्वनित करते है, इंगित करते है और अपने अभ्यंतर में बैठकर देखने की प्रेरणा करते है।"[1]

तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में व्यक्ति के अन्तःचित्रण के कारण कथानक, संवाद, चरित्र, भाषा सभी में आमूल परिवर्तन हुए है। इस युग के उपन्यासकारों का एकमात्र लक्ष्य रहा है- व्यक्ति के अंतर्मन की गुत्थियों को प्रकाश में लाना और उन्हें सामान्य पुरुष की कोटि में लाना। अतः प्रेमचन्दोत्तर युग में नये मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के उद्भव के साथ औपन्यासिक मूल्य भी मनोवैज्ञानिक हो चले, इनकी शिल्प-विधि भी मनोवैज्ञानिक हो गयी। मानव-मन के सूक्ष्म पारखी इलाचन्द्र जोशी जी इस 'मनोवैज्ञानिकविश्लेषण' के अग्रणी विश्लेषक माने जाते हैं।

(ब) "जोशी जी का मनोवैज्ञानिक उपन्यास-शिल्प":- इलाचन्द्र जोशी जी पुरुष की अहं जन्य कुण्ठा व नैराश्य, स्त्रीजन्य नारी की व्यथा एवं अचेतन मन द्वारा संचालित मानव जीवन के चतुर चित्रकार हैं। फ्रॉयड, एडलर, युंग आदि मनोविश्लेषकों के सिद्धान्तों द्वारा उन्होंने

1- "जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन" - डा० देवराज उपाध्याय संस्करण 1972, पृष्ठ 61, 62

विचार-शक्ति का संचय किया और अपने कुछारू जीवन से अनुभव रस लेकर दोनों को अद्भुत समन्वय करके व्यक्ति के अहं भाव पर निर्मम चोटें की हैं। उनके सभी उपन्यासों में केवल व्यक्ति का 'अन्त:करण' का ही विश्लेषण मिलता है। उन्होंने केवल व्यक्ति के अन्त:करण में छिपी पशु प्रवृत्तियों और अहंभाव का उद्घाटन ही नहीं किया है वरन् इन प्रवृत्तियों को तुसंस्कारों से मण्डित भी किया है। वे व्यक्ति की इन प्रवृत्तियों को विध्वंसात्मक हो न बताकर उनका रचनात्मक पहलू भी दिखाते हैं। उनका मत है कि -- "विश्व में अपेक्षाकृत शांति की स्थापना तभी संभव है जब तक मानव-समाज अन्तर्जीवन को उतना ही बल्कि अधिक महत्व नहीं देता कि जितना बाह्य जीवन को ------- -------- इसलिए मानवता के सबसे कल्याणकर उपाय यह है कि वह अपनी उस अज्ञात चेतना के गहरे, और अधिक गहरे स्तरों में प्रवेश करके उसके भीतर बढ़ जमाने वाली आदि-कालीन पशुप्रवृत्तियों की छानबीन और विश्लेषण करें और उस पातालपुरी की नारकीय अंधकारा में बद्ध उन संस्कारों की यथार्थता स्वीकार करके ऐसी तरकीब निकालने का प्रयत्न करें जिससे गलत रास्ते न होकर उन बद्ध प्रवृत्तियों का विध्वंसक विस्फोट न हो बल्कि उचित मार्गों से उनका नियमित प्रस्फुटन हो।"[1]

इसी लक्ष्य को लेकर उन्होंने अपने उपन्यास सृजित किये हैं। मानव के अन्तर्मन की गाथा कहना ही उनका लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने विभिन्न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों व पद्धतियों का सहारा लिया है। विभिन्न मनोवैज्ञानिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं को उपादान बनाने के कारण इनके उपन्यास पूर्ण मनोवैज्ञानिक लगते हैं और औपन्यासिक शिल्प भी मनोविज्ञान की भट्ठी से निकलकर उसी रंग में रंगा गया है। मानव की अन्तश्चेतना में प्रविष्ट होने के कारण उपन्यासों

1- "प्रेत और छाया" - इलाचन्द्र जोशी - चतुर्थ संस्करण सं0२०३५ई0 पृष्ठ 9, 10

की कथावस्तु, चरित्र-सृष्टि, संवाद, वातावरण और भाषा शैली आदि सभी तत्व मनोमय हो गये हैं। फ्रॉयड के अनुसार- मानव मुख्य रूप से 'काम' द्वारा संचालित प्राणी है। उसकी वासनात्मक प्रवृत्तियाँ जब प्रचण्ड वेग धारण करती हैं तब कुछ समय के लिए वह असामाजिक हो जाता है, लेकिन समाज की नैतिकता व उसके मान-दण्डों का भय उन्हें दबा देता है और वे अचेतनमन में प्रविष्ट कर जाती हैं। अचेतनमन में प्रविष्ट होकर वे सुषुप्तावस्था में वहाँ पड़ी रहती हैं। जब कभी चेतन मन अचेतन मन की अपेक्षा निर्बल पड़ जाता है तब अचेतन मन में दमित वासनाएं स्वप्न के रूप में भी प्रकट होती हैं। एडलर के अनुसार- मानव में तीन तत्व प्रधान होते है - आत्म-हीनता की भावना (इनफीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स) : क्षतिपूर्ति (कम्पन्सेशन) और अति-क्षतिपूर्ति (ओवर कम्पन्सेशन) । मानव शिशु दीर्घकाल तक असमर्थ और असहाय रहता है फलतः उसमें 'हीनत्व' की प्रबल भावना घर कर जाती है, व्यक्ति अज्ञात रूप में अपनी हीनता और असमर्थता से छुटकारा पाने के लिए छटपटाता रहता है और किसी न किस प्रकार से वह अपनी कमी की पूर्ति अवश्य करता है। अपनी 'जन्मजात' अक्षमता' को दूर करने के लिए उसकी अन्तश्चेतना शक्ति प्राप्त करने की अदम्य-आकांक्षा से आपूरित हो उठती है और वह जीवन भर शक्ति-संचय करता हुआ दूसरों पर विजय प्राप्त करने के लिए उत्कंठित होता रहता है। जोशी जी के उपन्यासों में फ्रॉयड व एडलर दोनों मनोवैज्ञानिकों के विचारों का कलात्मक निर्वाह हुआ है। युंग, का सामूहिक अचेतन का सिद्धान्त भी जोशी के उपन्यास-शिल्प को प्रभावित करता है। विविध मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं द्वारा प्राप्त अद्भुत ज्ञान के कारण जोशी जी का सम्पूर्ण उपन्यास-शिल्प मनोवैज्ञानिक घात-प्रतिघातों का प्रतिबिम्ब बन गया है।

(ii) "कथावस्तु में मनोविज्ञान और उसका विश्लेषण":- जोशी जी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं फलतः उनके उपन्यासों की कथावस्तु भी पूर्ण मनोवैज्ञानिक है। 'डा० गणेशदत्त गौड़' मनोवैज्ञानिक कथावस्तु की समीक्षा करते हुए लिखते हैं - मनोवैज्ञानिक कथावस्तु में बाह्य घटनाएं नगण्य होती हैं, उसका प्रसारण मानसिक घटनाओं पर ही अवलम्बित होता है। पात्रों का मानसिक प्रक्रम इनको विकासोन्मुख बनाता है -------- पात्रों में कौतूहल रहस्य जानने की उत्सुकता और अन्तर्दर्शन की ओर झुकाव मनोवैज्ञानिक कथा-वस्तु के प्रमुख सूत्र हैं।"[1]

जोशी जी की कथानक चयन सम्बन्धी प्रवृत्ति मनोविज्ञान परक है। मानव के अचेतन मन में पड़ी हुई ग्रन्थियों के परिणाम स्वरूप उसका शरीर मानसिक अस्वास्थ्य का शिकार हो जाता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा इन ग्रन्थियों को सुलझाकर मानव को स्वस्थ मस्तिष्क देना। इलाचन्द्र जोशी जी का मुख्य लक्ष्य है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में 'व्यक्ति-अध्ययन' ही लेखकों का चरम लक्ष्य होता है, अतः कथानक का ताना-बाना भी मानव की उन्हीं मानसिक क्रियाओं की उथल-पुथल द्वारा बुन जाता है। जोशी जी के कथानक भी मानसिक क्रिया-प्रक्रियाओं से ओतप्रोत हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास-परम्परा के पथचारी इलाचन्द्र जोशी की कृतियों में कथानकों का चयन, गठन, विकास और उपसंहार सभी मनोविज्ञान से प्रभावित है। इलाचन्द्र जोशी जी की कृतियों में कथानकों का गठन 'व्यक्ति' की मानसिक कुण्ठाओं एवं उलझनों को लेकर किया गया है। मन की स्वस्थ अवस्था के बजाय उन्होंने विकृत मनोभावों को कथा में इतनी प्रमुखता दी है कि उनके समस्त उपन्यास, मानसिक चिकित्सालयों में चिकित्सा कराते रुग्ण-ग्रस्त व्यक्तियों की मानसिक उलझनों और पेचीदगियों की कहानी सी कहते प्रतीत होते हैं। जोशी जी का प्रत्येक उपन्यास

1- "आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन"-डा०गणेश दत्त गौड़ संस्करण जनवरी 1965, पृष्ठ 217

किसी न किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त या विचारधारा से अनुप्राणित है। 'लज्जा' (दृश्यमयी) नामक उपन्यास इनकी प्रथम औपन्यासिक कृति है। जिसमें जीवन की दो मूल प्रवृत्तियों 'जीवन-वृत्ति' और 'मरण-वृत्ति' का प्राधान्य है। जब तक मनुष्य में 'जीवन-वृत्ति' का प्राधान्य होता है वह सामाजिक प्राणी बिलता है, परन्तु जैसे ही उसमें 'मरण-वृत्ति' की अधिकता हो जाती है वह मृत्योन्मुख हो जाता है। डा० गुलदेव शुक्ल के अनुसार :- " 'लज्जा' उपन्यास का कथानक मूलतः राग और वासना के द्वन्द्व की कहानी है।"[1] 'लज्जा' (दृश्यमयी) उपन्यास की नायिका लज्जा का हृदय एक ओर अपने भ्राता राजू के प्रति अगाध प्रेम से पूरित है तो दूसरी ओर डा० कन्हैयालाल के प्रति वासनात्मक प्रेमाकर्षण उसे मदान्ध किये है। एक तरफ विशुद्ध 'भ्रातृ-प्रेम' है, दूसरी तरफ 'वासनात्मक-प्रेम'। इन दो प्रेम के पाटों के बीच में फँसी लज्जा का मन अन्तर्द्वन्द्व का अखाड़ा सा बन जाता है। उधर राजू में फ्रॉयड की 'मरण-वृत्ति' की अधिकता हो जाती है तो वह मृत्यु का वरण कर लेता है। राजू का यह कथन उसके मन के अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट करता है। उसके अन्दर 'मरण-वृत्ति' की प्रधानता को स्पष्ट करता है। " ------- घृणा, प्रेम, आनंद, विषाद, प्रतिहिंसा, करुणा, ईर्ष्या, और उत्तेजना का ताडव प्रतिक्षण कैसी विचित्रता के साथ मनुष्य के भीतर चला करता है। इन सब विकारों से मुक्त होने के लिए मैं रात-दिन छटपटाता रहता हूँ, पर न मालूम किसी रहस्यमय लोक से, किस अँधकार मय मुख से, कौन अधिनायिक शक्ति मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध धर दबाती है।"[2] सम्पूर्ण उपन्यास द्वन्द्वों से भरा पड़ा है। स्वभाव एवं आदर्श का द्वन्द्व, भावना एवं कर्तव्य का द्वन्द्व, यौवन की मजबूरी एवं पारिवारिक प्रतिष्ठा का द्वन्द्व इन सभी द्वन्द्वों में 'लज्जा'

1- "हिन्दी उपन्यास का विकास और मौलिकता" - डा० गुलदेव शुक्ल, संस्करण सितम्बर 1966, पृष्ठ 188

2- "लज्जा" - इलाचन्द्र जोशी, तृतीय संस्करण 1962, पृष्ठ 147

की कथावस्तु को विशुद्ध मनोवैज्ञानिक बना दिया है।

मनोग्रंथियों के कलाकार जोशी के उपन्यास 'सन्यासी' का कथानक व्यक्ति की 'अहंवादिता'(आत्मकेन्द्रता) तथा 'पशु-प्रवृत्तियों' को आधार बनाकर निर्मित हुआ है। अहंवादिता व्यक्ति के व्यवहार को उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को किस प्रकार प्रभावित करती है, 'अहंवाद' के विकास में पारिवारिक वातावरण का कितना योगदान है, इसकी व्याख्या 'सन्यासी' में पूर्ण मनोवैज्ञानिक ढंग से की गयी है। व्यक्ति का 'अहं' सदैव परिस्थितियों के प्रतिकूल चलता है, जिससे जीवन में परिवेश के प्रति संघर्ष होता है। यह संघर्ष होता है। यह संघर्ष व्यक्ति के अन्दर से शुरू होकर धीरे-धीरे अपने विश्वजनीन हो उठता है। इस अन्तर्द्वन्द्व के कारण व्यक्ति का जीवन कुण्ठा व विषादमय हो उठता है। 'संयासी' उपन्यास मानव की इसी 'अहंवृत्ति' को लेकर सृजित हुआ है। नायक 'नन्दकिशोर' के माध्यम से मनोवैज्ञानिक-उपन्यास-सम्राट इलाचन्द्र जोशी जी ने व्यक्ति के इसी 'अहंभाव' के परिणामों को दर्शाया है। नायक 'नन्दकिशोर'का अहं-प्रेम उसे नितान्त आत्मकेन्द्रित व स्वार्थी बना देता है, जिसके कारण उसमें 'समाजघाती प्रवृत्तियाँ' जन्म लेने लगती हैं, कालान्तर में वह 'आत्मघाती प्रवृत्तियों' का भी शिकार हो जाता है। फलतः वह दूसरों (नन्दकिशोर 'शांति') के जीवन में क्लेश और दुःख के बीज बोते-बोते अपने जीवन में भी अशांति और असंतुष्टि के बीज बो लेता है। इस तरह 'नन्दकिशोर' के 'अहं' से उद्भूत समाज-घाती मनोभावों, मानसिक जटिलताओं और प्रेमजन्य दुष्परिणामों को लेकर 'संन्यासी' का कथानक रचा गया है। डा० भदौरिया के अनुसार:- 'संयासी' की संरचना में मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और सामाजिक असंगतियों की व्यापक छाया मंडराती रहती है।"[1]

1- "हिन्दी उपन्यास: सृजन और प्रक्रिया" - डा० विश्वबहादुर सिंह भदौरिया, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 170

'पर्दे की रानी' उपन्यास की कथावस्तु 'प्रतिष्ठात्मवृत्ति' या 'पर-पीड़न-वृत्ति' तथा एडलर की 'हीनता की भावना' के सिद्धान्त को लेकर चलती है। मनोविज्ञान के अनुसार मानव के व्यक्तित्व-निर्माण में न केवल 'वंशानुक्रम' का योग होता है अपितु 'वातावरण' भी पर्याप्त सहायक होता है। क्रूर पिता और वैश्या मां की सन्तान 'निरंजना' तब तक 'हीनता-ग्रंथि' से पीड़ित रहती है जब तक कि वह अपनी सहेली 'शीला' और नायक 'इन्द्रमोहन की हत्या नहीं कर लेती 'इन्द्रमोहन' के अन्दर की 'अहंभावना' उसे मृत्यु के मुख तक ढकेल ले जाती है। 'निरंजना' की 'अहंभावना', 'शीला', और 'इन्द्रमोहन' दोनों की मृत्यु में परोक्ष रूप से सहायक है। 'वंशानुक्रम' और 'वातावरण' के योग से नायिका 'निरंजना' के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। तात्पर्य यह है कि 'पर्दे की रानी' उपन्यास की कथावस्तु में अव-चेतनाजन्य कुण्ठाओं और 'परपीड़न-रीति' का प्राधान्य है। इसकी कथा के आधार के बारे में इसके आमुख में लिखा है :- "पर्दे की रानी" में लेखक की अन्तर्दृष्टि व्यक्ति-मानस की गहराईयों में छिपी कुण्ठाओं के अन्वेषण में अति-व्यस्त रहती है।"[1]

'प्रेत और छाया' उपन्यास में व्यक्ति के मन में उत्पन्न 'कुण्ठा' और तज्जन्य कुटिलता को लेकर कथानक का गठन हुआ है। व्यक्ति में जब 'दमन' नामक मूलप्रवृत्ति प्रबल हो उठती है तो उसका 'सुपर-इगो' दुर्बल हो जाता है और उसमें 'इड' (अहं) प्रबल होकर अपना प्रचण्ड रूप दिखाने लगता है। 'प्रेत और छाया' का सामान्य, शिक्षित नायक पारसनाथ जब अपनी माता के व्याभिचारिणी होने की बात जान लेता है तो 'ईडिपसग्रंथि' से परिचालित होकर मनोग्रंथि ग्रस्त हो जाता है और समस्त स्त्री जाति से बदला लेता हुआ समाजघाती हो उठता है। उसकी इसी अनैतिकता का जोशी जी ने मनोविज्ञान की रबड़-रेख द्वारा 'प्रेत और छाया' में छायांकन किया है।

1-"पर्दे की रानी" - इलाचन्द्र जोशी : संस्करण 1965, आमुख पृष्ठ 1

'निर्वासित' उपन्यास की कथा का आधार महीप की हीनता-ग्रन्थ (इन्फीरियारिटी-कॉम्प्लेक्स) मानसिक जटिलता का विश्लेषण है। एडलर का 'क्षतिपूर्ति-सिद्धान्त' इस उपन्यास की कथा का आधार है। कथा के आधार को जोशी जी ने स्वयं स्पष्ट किया है कि उपन्यास का नायक "जीवन के किन जटिल लाज-संकुल पथों से होकर विचरण करता है, किन-किन घटनाचक्रों का सामना उसे करना पड़ता है और उनकी क्या-क्या और कैसी प्रतिक्रियाएं उसके भीतर होती हैं, इन्हीं सब बातों का चित्रण करने का प्रयत्न मैंने किया है।"[1]

'त्याग का भोग' (लिप्सी) उपन्यास में 'अहंभाव' को कथा का मूल आधार बनाया गया है। नायक 'भूपेन्द्ररंजन' के बुर्जुआ वातावरण में पलने के कारण उसमें 'अहंभाव' और 'आत्मकेन्द्रता' की भावना घर कर गयी है। अपनी निजी सुख-सुविधा के लिए वह 'मीनाक्षी' पर विभिन्न अत्याचार करता है। इस प्रकार 'त्याग-का भोग' (लिप्सी) का कथानक 'भूपेन्द्ररंजन' के 'अहंभाव' एवं 'आत्म-रति' के अमंगलकारी रूप को आधार बनाकर रचा गया है।

'सुबह के भूले' उपन्यास नायिका 'गुलबिया' की 'हीनता-ग्रंथि' को कथा का आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास में मनोविज्ञान के साथ-साथ बाह्य-जगत् व बाह्य-समस्याओं का भी चित्रण हुआ है। हीनता से ग्रस्त 'गुलबिया' किस प्रकार क्षतिपूर्ति द्वारा अपने व्यक्तित्व में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाती है, इसका सांगोपांग वर्णन 'सुबह के भूले' उपन्यास में हुआ है।

'जहाज का पंछी' उपन्यास तो बहुविध बाह्य विकृतियों का खजाना लगता है। सामाजिक वातावरण द्वारा व्यक्ति की मानसिक वृत्तियाँ किस प्रकार प्रभावित होती है, इस तथ्य का प्रकटन 'जहाज का पंछी' में हुआ है। यह उपन्यास जोशी जी

1- "निर्वासित- इलाचन्द्र जोशी : सप्तम संस्करण सं० 2022 ई० प्रस्तावना पृष्ठ 5

में सामाजिकता के प्रति मन्द-मन्दतम्मुख होने के लक्षण दर्शाता है। 'व्यक्ति-व्यक्ति' व्यक्ति-समूह और वर्ग-वर्ग के बीच का संघर्ष दिखाना इस उपन्यास का लक्ष्य है।

'ऋतुचक्र' उपन्यास में कथावस्तु को मनोवैज्ञानिक आधार नहीं मिला है। 'ऋतुचक्र' उपन्यास में उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी जी ने मानव को प्रकृति के प्रति उन्मुख करके शांति की खोज का रास्ता सुझाया है। उनके अनुसार- आज किसी एक व्यक्ति या किसी एक समूह का कर्तव्य दूसरे व्यक्ति या दूसरे समूह के कर्तव्य से टकरा रहा है। फलस्वरूप निरर्थक हिंसा-प्रतिहिंसा, अकारण पारस्परिक विरोध, निरुद्देश्य टकराव और बेमानी संघर्ष ही आज के जीवन के मुख्य राग्त रह गये हैं। इन सब विकृतियों की और कुसंगतियों के मूल में आज की संकुचित, कुटिल, विवेकहीन, राजनीति है जो राष्ट्र-राष्ट्र में, संप्रदाय-संप्रदाय में, संस्था-संस्था में, घर-घर में सामूहिक और वैयक्तिक अवचेतना में घुसकर, जीवन के मूल बीजों को जलाती हुई उन्हें पूर्णत: नष्ट करने में जुटी है। इसीलिए जोशी जी प्रकृति की ओर जाने की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं - - ।" - - - - - और यह सफलता उसे प्राप्त हो सकती है केवल महा-प्रकृति के मुक्त अन्तर-प्रांगण में और अंतर्जीवन की अथाह गहराईयों में । अत: छिन्न करो बाहर के सभी कृत्रिम और झूठे बंधन! उन्मुक्त करो अंतर के रुद्ध द्वार!"[1]

'कवि की प्रेयसी' उपन्यास इलाचन्द्र जोशी का ऐतिहासिक धरातल पर लिखा गया मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इस उपन्यास की कथावस्तु का आधार केवल ऐतिहासिक है, 'मारी-मनोविज्ञान' के आधार पर नायिका का चरित्रांकन अवश्य हुआ है।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों का मूल स्पष्ट करती हुई 'विमल सहस्रबुद्धे' लिखती है:- - "काम-वासना की अनेक प्रतिक्रियाओं से निर्माण हुई उलझनों से ग्रस्त-

---

1- "ऋतुचक्र" - इलाचन्द्र जोशी: द्वितीय संस्करण, 1955, पृष्ठ 8

तरह का मानसिक-संघर्ष किस प्रकार जीवन के मोड़ देकर चलता है, इन सबका अध्ययन इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में मिलता है।"[1]

कथानकों को मनोवैज्ञानिक आधार देने के साथ-साथ जोशी जी के उपन्यासों के कथानकों का प्रारंभ भी मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा ही हुआ है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथावस्तु में प्रारंभ करने की प्रमुख विधियाँ है:- 'पूर्वदीप्ति'(फ्लेश-बैक), 'आत्मकथात्मक विधि। इलाचन्द्र जोशी के सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यास इन दो विधियों द्वारा ही प्रारंभ किए गये है। उदाहरणार्थ- 'लज्जा' उपन्यास की कथावस्तु का आरंभ नायिका लज्जा की कुण्ठाओं व मानसिक विकृतियों को उद्घाटित करते हुए 'आत्मकथात्मक विधि' द्वारा हुआ है- "घृणा ! घृणा ! मेरी सारी आत्मा आज घृणा के भाव से ओत-प्रोत है। मुझ हतभागी नारी ने आज समस्त प्रकृति को, सारे विश्व को अपने अन्तस्तल की घृणा से लीप-पोतकर एकाकार कर दिया है। इस अनन्त सृष्टि का अस्तित्व ही आज मेरे लिए केवल घृणा को लेकर है।"[2]

'सन्यासी' की कथा का प्रारंभ भी जोशी जी ने विशुद्ध मनोवैज्ञानिक ढंग से 'पूर्वदीप्ति शैली' द्वारा किया है - "साल भर की सजा भुगतकर अभी लौटा हूँ। मेरे साथ के जो-जो देश सेवी कारामुक्त होकर वापस आये हैं, उन सबने बन्धनावस्था में भी दीक्षित, दुःखित देश की ही चिन्ता की है और बाहर आकर अपने संस्मरण साप्ताहिक अथवा मासिक पत्रों में छपाये हैं, पर मैं पापी सदा आलस्यमय जीवन बिताने के बाद अन्त को जब भाग्य की विडम्बना से अकस्मात् सन्यासी बन बैठा और देश-माता के वीर-पुत्रों की प्रेरणा से शहर में आकर एक जोशीली

1- "हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"- डा० विमलशङ्कर बुद्धदेव, पृष्ठ 154

2- "लज्जा" - इलाचन्द्र जोशी, तृतीय संस्करण 1982, पृष्ठ 3

वक्तृता देने के कारण जेल के अंदर ठूँस दिया गया।"[1]

'त्याग का भोग' उपन्यास का प्रारंभ नायक नृपेन्द्ररंजन की अपनी कथा द्वारा 'आत्मकथात्मक शैली' में होता है - "मथुरी में उस दिन जिस ईरानी जिप्सी लड़की की दुकान में मैंने चाकू खरीदा उसमें मेरी कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। पर वह एक ऐसी लड़की की याद मुझे अक्सर दिलाती रहती है जो कुछ ही वर्ष पहले तक उसी स्थान पर उसी की तरह बिसाती की दुकान खोले रहती थी और वैसी ही चंचल और ढीठ थी ------।"[2]

'पर्दे की रानी' उपन्यास का प्रारंभ भी शीला द्वारा आत्मकथात्मक ढंग से होता है। प्रारंभ में 'शीला की कहानी' शीर्षक परिच्छेद है जिसमें शीला विश्लेषणात्मक ढंग से कथा प्रारंभ करती हुई कहती है--

"मेरी सौगनी चन्द्रप्रभा ने आकर मुझसे कहा - आज एक बहुत ही सुन्दरी लड़की होस्टल में भर्ती होने आई है। ऐसा जान पड़ता है कि वह किसी राजा की लड़की है। "[3]

'प्रेत और छाया' उपन्यास का प्रारंभ वर्णनात्मक शैली में किया गया है। चूँकि जोशी जी के समय में उपन्यास-सम्राट मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों की धूम मची थी अतः जोशी जी के उपन्यासों पर तत्कालीन उपन्यासकारों के साथ-साथ पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के शिल्प का भी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था अतः उनके कुछ उपन्यासों में कथावस्तु का प्रारंभ विवरणात्मक ढंग से भी होता है।

1- "संन्यासी" - जोशी, सप्तम आवृत्ति सं2030 वि0 पृष्ठ 9
2- "त्याग का भोग"-(जिप्सी)- जोशी:तृतीय संस्करण 1972 पृष्ठ 7
3- "पर्दे की रानी"- जोशी : संस्करण 1983, पृष्ठ 7

'ऋतुचक्र' उपन्यास का प्रारंभ भी 'वर्णनात्मक शैली' में हुआ है। प्राकृतिक छटा का वर्णनात्मक शैली में दृश्यांकन 'ऋतुचक्र' उपन्यास की विशेषता है। देखिए :-

" क - कु - कु - कू - कुर - कुर - कुर ।" यह चिड़िया बोल रही थी।

" हे - हे - ए - ए + हें - हें - हें - हें ! हा - ा - ा - ा ! - यह आदमी बोल रहा था। चारों ओर ऊँचे पहाड़ी पर कतारों में खड़े देवदारु के लंबे-लंबे और नुकीले पेड़ों की छाया सघन से सघनतर होती चली जा रही थी। "[1]

'जहाज का पंछी' उपन्यास में भी कथा का प्रारम्भ नायक स्वयं के विश्लेषण द्वारा करता हैं- "तो अन्त में मुझे इस गली में शरण मिली है - कलकत्ता महानगरी के इस नरक में, गन्दगी को भी गन्दा करने वाले इस ढूरे में सभ्य संसार की इस फैशन की रंगीनी के आवरण के भीतर मानव-जगत् के मर्म में छिपे हुए इस कोढ़ केन्द्र में! विश्वास मानिए, मैं केवल विवशता के कारण यहाँ आया हूँ, किसी प्रकार की ज्ञात या अज्ञात इच्छा, कुतूहल या जीवन की गन्दगी का ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता से प्रेरित होकर नहीं। "[2]

'मुक्तिपथ' 'सुबह के भूले', 'निर्वासित'और 'प्रेत और छाया' उपन्यासों में कथा का प्रारम्भ जोशी जी ने स्वयं किया है। कथा का प्रारंभ करते समय जोशी जी का यह ध्येय रहा है कि कथा का स्पष्टीकरण भी होता चले।

'आत्मकथात्मक शैली' में लिखे गये उपन्यासों में नायक-नायिकाएं सभी अपनी और औरों की मनःस्थितियों आदि का 'मनोविश्लेषणात्मक' और'पूर्व-दीप्ति पद्धतियों' से विश्लेषण करती हैं। क्योंकि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के कथानकों की विशेषता ही होती है - 'मन की अन्तःस्थितियों का विश्लेषण' ।

1- "ऋतुचक्र" - इलाचन्द्र जोशी : तृतीय संस्करण 1985, पृष्ठ 9
2- "जहाज का पंछी" - इलाचन्द्र जोशी, संस्करण 1985, पृष्ठ 9

इलाचन्द्र जोशी जी ने कथानक का वितान बुनने के लिए, ~~करने के लिए~~ मानसिक कुण्ठाओं और जटिलताओं का सहारा लिया है और उत्तरोत्तर इनके उद्घाटन और क्रिया-प्रतिक्रियाओं की सहायता से कथानक का विकास किया है। मानसिक -कुण्ठाओं पर आधृत जोशी जी के उपन्यासों के कथानक कतिपय मनो-वैज्ञानिक सूत्रों के आधार पर विकसित हुए हैं। अन्तश्चेतना की सूक्ष्म जटिलताओं के उत्तरोत्तर मनोवैज्ञानिक विकास द्वारा कथानकों के विकास का जोशी जी का ढंग ही निराला है। अपनी कृतियों के प्रारम्भ में प्रायः किसी रुग्णमानस पात्र की कहानी छेड़कर, तदुपरान्त उसकी रुग्ण-मानसिकता अथवा विक्षिप्त मनःस्थिति का उद्घाटन करते हुए उन्होंने कथा का विकास किया है। उदाहरण के लिए 'लज्जा' उपन्यास जो 'राग और वासना के द्वन्द्व' पर आधृत है, इसी द्वन्द्व को लेकर विकसित हुआ है। डा० कन्हैयालाल के प्रति प्रबल वासनात्मक प्रेम जहाँ लज्जा को मतवाला किए है, वहीं भाई रंजन के लिए भी उसका हृदय प्रेम-भरित है। नवयौवन की स्वाभाविक मादकता से उसका हृदय आच्छादित है, जिसमें डा० कन्हैयालाल जैसा लम्पट व्यक्ति स्थान ग्रहण किये है। भाई राजू (रंजन) को लज्जा का कन्हैया लाल के साथ घूमना-फिरना अच्छा नहीं लगता है। इस कारण से लज्जा का मन धीरे-धीरे राजू से हटने सा लगता है। वासना प्रबल होकर लज्जा को कामान्ध बना देती है परिणामतः उसका प्रिय भाई राजू आत्महत्या कर लेता है। लज्जा का मन इस मौत से ग्लानिपूर्ण हो उठता है। वह भारी आत्मदुःख, पश्चाताप, ग्लानि और पुरुष की लम्पट प्रकृति के प्रति क्षोभ से छटपटाती रहती है। इस प्रकार 'वासना और प्रेम' के सूत्र को लेकर चलने वाली कथा इनके आपस संघर्ष और दुष्परिणामों को लेकर विकसित होती है।

'सन्यासी' का कथानक भी नायक नन्दकिशोर के विकृत अहं की विविध

अवस्थाओं, घृणा, ईर्ष्या, जैसी कुत्सित वृत्तियों के क्रमिक उद्घाटन द्वारा आगे बढ़ता है। चूँकि जोशी जी का एकमात्र उद्देश्य मानव की अन्तःमन की जटिलताओं का उद्घाटन करना है, अतः 'कथा' को प्रमुख स्थान न मिलकर कथानक में इन्हीं जटिलताओं का मनोवैज्ञानिक उद्घाटन ही प्रमुख हो चला है। 'काम-तृप्ति' तथा 'आत्मरति' नामक मूलप्रवृत्तियों से संचालित नन्दकिशोर में 'पर-पीड़न रति' प्रबल है। वह निज-वासना की पूर्ति के कारण मानवीय गुणों से रिक्त हो उठता है तथा नैतिक-अनैतिक अथवा उचित-अनुचित के विवेक से शून्य होकर पशुधर्मी हो उठता है, परिणाम-स्वरूप 'सन्त्रासी' का कथानक इस विकृत 'अहंवाद' से उद्भूत समाजघाती मनोवृत्तियों के दुष्परिणामों का दिग्दर्शन कराता हुआ आगे बढ़ता है।

'अहं' और कामजन्य विकारों' पर आधृत उपन्यास 'पर्दे की रानी' में भी जोशी जी ने इन विकारों की प्रतिक्रियाओं और दुष्परिणामों को दर्शाकर इस उपन्यास के कथानक को विकसित किया है। नायिका निरंजना और नायक इन्द्र-मोहन दोनों ही अहंवादी और कामासक्त हैं और आत्म-तृप्ति की लालसा दोनों के हृदयों को आन्दोलित किए हुए है। जब इन्द्रमोहन को अपनी कामतृप्ति में बाधा नज़र आती है तो उसका हृदय प्रतिहिंसा की ज्वाला से भर जाता है और इसके कुपरिणाम कथानक में नज़र आने लगते है। उपन्यास का कथानक इन्द्रमोहन की इसी अदम्य कामतृप्ति की भावना और उत्कट प्रतिहिंसा की भावना से संतृप्त होता हुआ आगे बढ़ता है।

'ईडिपस-ग्रंथि' से परिचालित उपन्यास 'प्रेत और छाया' में सर्वत्र नायक पारसनाथ के मन की इसी ग्रंथि का उद्घाटन देखने को मिलता है। 'ईडिपस ग्रंथि' के कारण उसका मन उत्तरोत्तर नीचता के दलदल में धँसता जाता है। इसी ग्रंथि के

उद्घाटन के साथ-साथ 'प्रेत और छाया' का कथानक आगे बढ़ता जाता है।

'त्याग का भोग' में नायक नृपेन्द्ररंजन की बुर्जुवा मनोवृत्ति को आधार मानकर इसके अनिष्टकर-परिणामों के चित्रण द्वारा कथानक का विकास हुआ है। जोशी जी बताते हैं कि बुर्जुवा मनोवृत्ति वस्तुतः मानव के अहंवाद का ही नवीन संस्करण है जिसके ग्रस्त होकर नायक में दुष्ट-मनोवृत्तियाँ घर कर लेती हैं और नैतिक मान-मर्यादाएं तथा आदर्श इसके सम्मुख फीके पड़ जाते हैं। इन्हीं चित्रणों के सहारे कथानक विकसित हुआ है।

'जहाज का पंछी' में भी नायक की कुण्ठित भावनाओं का चित्रण करते हुए कथानक आगे बढ़ा है। दर-दर ठोकरें खाते नायक को जीवन में जिन-जिन जटिलताओं का सामना करना पड़ता है, वही कथानक को आगे बढ़ाती हैं।

'सुबह के भूले' उपन्यास का कथानक भी नायिका सुलोचना की हीन-भावना' के उत्तरोत्तर उद्घाटन और उसकी प्रतिक्रियाओं द्वारा ही आगे बढ़ा है।

प्रायः सभी उपन्यास जटिल-मानसिक उलझनों के चित्रण के सहारे कथानकों को आगे बढ़ाते हैं। स्पष्टतया जोशी जी के उपन्यासों का धरातल मनोवैज्ञानिक होने के कारण कथानक का विकास भी मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। जोशी जी ने कथानक के विकास के लिए जिन घटनाओं को लिया है वे मनोवैज्ञानिक एवं जटिलतम होने के कारण असाधारण सी प्रतीत होती है। जब मानव-मन की पर्तें खुलती जाती हैं तो वह मानव साधारण न दीखकर वैचित्र्यपूर्ण एवं असाधारण सा दिखने लगता है। उसका आचरण भी असाधारण हो उठता है। इस प्रकार असाधारण पात्र और उनके असाधारण आचरण में साम्य बैठाने के लिए

असाधारण घटनाएं लेनी पड़ती हैं। उदाहरण के लिए 'लज्जा' में नायिका लज्जा और डा० कन्हैयालाल को बड़ा से ही समय में अतिशय प्रेम होना और राजू का आत्म-हत्या करना तथा उसकी आत्म-हत्या के पश्चात लज्जा के मन में डा०कन्हैया लाल के प्रति घृणा और हिंसा की भावना भर जाना ये घटनाएं असाधारण ही हैं। मानव के आम-जीवन में ऐसी घटनाएं कम ही दिखती हैं 'सन्यासी' में नायक नन्द-किशोर द्वारा शांति को लेकर इलाहाबाद भाग जाना, उसे आश्रय हीन छोड़कर शिमला चले जाना, ज्योन्ती द्वारा बड़ा सी बात के पीछे जल-मरना, नन्दकिशोर द्वारा पश्चाताप स्वरूप सन्यासी-जीवन धारण करना आदि समस्त घटनाएं वस्तुतः असाधारण आचरण की ही द्योतक हैं। प्रायः सभी उपन्यासों में जोशी जी ने असाधारण घटनाओं के सहारे कथानक को विकसित किया है। 'पर्दे की रानी' में इन्द्रमोहन द्वारा निरंजना को होटल में ले जाकर उसे जबरन भ्रष्ट करने की कुचेष्टा करना निरंजना का चालाकी से बच निकलना, इन्द्रमोहन द्वारा शीला को विष देकर मार डालना, निरंजना द्वारा गाड़ी में इन्द्रमोहन के लिए सहर्ष आत्म-समर्पण और इन्द्रमोहन का तुरन्त गाड़ी से कूदकर मर जाना तत्पश्चात् निरंजना का सहर्ष गर्भधारण, सभी घटनाएं असाधारण हैं। 'प्रेत और छाया' में भी पारस-नाथ का असाधारण आचरण, उसकी हिंस्रवृत्ति असाधारण घटना ही है। उत्कट प्रतिहिंसा की भावना से वह मन्दनी, कांची, मञ्जरी को असहाय अवस्था में छोड़ देता है और नारी जाति से बदला लेता है। 'त्यांग का भोग' (निबंध) में तो ऐसा लगता है कि जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं को खानि के लिए असाधारण घटनाओं का तांता सा लगा दिया है। 'मनिया' जैसी घर बार विहीन, अनाथ युवती के पीछे धनवान ज़मींदार नृपेन्द्ररंजन का पागल हो उठना, उसके विद करने पर नृपेन्द्र का ईसाई बन जाना, मनिया के चेहरे पर तेजाब पड़ने से उसका

चेहरा विकृत हो जाने पर नृपेन्द्ररंजन का वीरेन्द्र की पत्नी शोभना के लिए पागल हो उठना,अन्त में मनिया के कहने पर अपनी समस्त सम्पदा 'जन-समन्वय केन्द्र' को दान कर देना ये घटनाएं कुछ ऐसी ही हैं, जो अपनी असाधारणता के कारण अविश्वसनीय सी प्रतीत होती है। 'जहाज का पंछी' की घटनाएं तो इतनी असाधारण हैं कि सर्वथा विचित्र लगती है। उपन्यास के कथानक का विकास नायक के विचित्र कारनामों के साथ ही होता है आरम्भ से अन्त तक कुतूहल वर्धक रोमांचक तथा आकस्मिक घटनाओं ने तो समां ही बांध दिया है।लगता है कि वास्तव में नायक 'जहाज का पंछी' बनकर इधर-उधर फड़फड़ाता रहता है , पुनश्च उसी जहाज पर आ जाता है। 'मुक्तिपथ' में भी सुनन्दा और राजीव का दाम्पत्य जीवन न बिताकर आदर्श-धर्म-पालन में मग्न रहना कदापि साधारण नहीं लगता । 'सुबह के भूले' उपन्यास में नायिका गुलबिया का फिल्मी दुनियां से पाक-साफ बचकर आना तत्पश्चात विमल से शादी कर लेना ये घटनाएं असाधारण ही है। 'ऋतुचक्र' में दादा मिलन कुमार का अधेड़ावस्था का रोमांटिक प्रेम भी अविश्वसनीय सा लगता है।

वस्तुतः जोशी जी ने इन असाधारण घटनाओं का प्रयोग केवल पात्रों के अन्तःमन की विविध वृत्तियों के प्रकाशनार्थ किया है। कथानक के विकास में जोशी जी ने घटनाओं का विशद् वर्णन न करके केवल घटनाओं की मानसिक प्रतिक्रिया का ही चित्रण किया है। जोशी जी के उपन्यासों में "घटनाओं का अस्तित्व यदि है तो व्यक्ति के अन्तर्मन में प्रतिक्रियास्वरूप उठने वाले बवंडरों के चित्रण तथा मनोविकारों का विश्लेषण करने के लिए ही। इसीलिए उन्होंने अपने कथानकों का विकास करते समय अधिकतर उन्हीं घटनाओं को लिया है, जिनसे कि पात्र की मानसिक जटिलता व रहस्यात्मकता को प्रकाश में लाने में सहायता मिले ।"[1]

1-"हिन्दी उपन्यास का विकास और मौलिकता" - डा० गुलदेव मुक्त, संस्करण, सितम्बर 1966, पृष्ठ 188

असाधारण आवरण को दर्शाने के लिए जोशी जी ने वासनापूर्ण प्रसंगों को भी कथानक में स्थान दिया है जोशी जी के वासनापूर्ण प्रसंगों की मर्यादा यह है कि उन्होंने इन वासनापूर्ण प्रसंगों को अपनाते समय वासनाओं को उभाड़ने की अपेक्षा उनके विश्लेषण पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। इन प्रसंगों के सहारे व्यक्ति की मानसिक स्थिति का ही विश्लेषण हुआ है। उदाहरणार्थ 'लज्जा' में लज्जा की मन: स्थिति(अवचेतन) के विश्लेषण हेतु दो चार कामुक प्रसंग आ गये हैं। डा०कन्हैया लाल के सम्मुख लज्जा के कोच पर लेटने की घटना का वर्णन है - "मैं उनके सामने कोच पर बैठने और लेटने की मध्यावस्था में अवस्थित हो गयी थी। मैं अच्छी तरह जानती थी कि मेरा इस प्रकार बैठना शिष्टाचार के विरुद्ध है, पर मुझे यह भी विश्वास था कि डा० साहब इस प्रकार मेरे शरीर का विलास और उसकी ललित गति देखकर शिष्टता और अशिष्टता का विचार सब भूल जायेंगे। प्रत्येक नारी के हृदय में येन-केन प्रकारेण पुरुष को रिझाने की प्रवृत्ति वर्तमान रहती है और मैं तो इसके लिए बर्बरता की चरम-सीमा तक पहुँचने के लिए भी तैयार थी।"[1] 'लज्जा के अभिसार के अतिरिक्त उसकी काम-विवशता का एक और चित्र है :-

"अकस्मात् डाक्टर साहब के पैरों ने मेरे पावों का स्पर्श किया। मेरे सारे शरीर में एक बिजली-सी दौड़ गयी। मेरे रक्त में उष्णता व्याप्त हो गयी। मैंने अपने को सम्हालने की चेष्टा की क्षण भर में सहस्र भावनाएं मेरे मस्तिष्क से ही गुजर गयीं। ---------- मैं रह न सकी और उनकी गोद मुँह छिपाकर सिसक-सिसककर बे-अख्तियार रोने लगी। कुछ देर बाद जब मेरा सिसकना बंद हो गया तो मैं फिर भी उसी मोहमग्न अवस्था में उनकी गोद के ऊपर अपना सिर रखे

1- "लज्जा" - इलाचन्द्र जोशी- तृतीय संस्करण 1982 पृष्ठ 49

रही । विवशता अक्षमता के कारण उस स्थिति से निकलने हटने की शक्ति भी मुझमें नहीं थी ।"।

उक्त वासनापूर्ण प्रसंग केवल 'लज्जा' के चरित्र के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हेतु लिए गये हैं और कथानक के विकास में अपनी मनोवैज्ञानिकता के कारण विशिष्ट बन पड़े हैं।

'पर्दे की रानी' में इलाचन्द्र जोशी ने रंजना की विवश स्थिति और इन्द्रमोहन की कामातुरता का चित्र इस प्रकार खींचा है :- "नहीं इन्द्रमोहन जी, जब तक शीला जीवित है तब तक आप मुझसे हरगिज इस तरह की आशा न करें - यह असम्भव है। यदि आप बहुत उतावले हैं तो लीजिए, मेरा यह हाथ अपने होठों से लगा लीजिए। - - - - - इन्द्रमोहन जी ने आव-न-देखा-ताव, अत्यन्त अधीरता के साथ अपने दोनों हाथों से कसकर मेरा हाथ पकड़ लिया और एक उन्मादग्रस्त व्यक्ति की तरह उत्कट आवेश में उसे चूमने और चूसने लगे। पूरे पांच मिनट तक वह अपनी दोनों आँखें मूँदकर उसे चूसते रहे।"।

जोशी जी के कई उपन्यासों में ऐसे वासनापूर्ण प्रसंग आये हैं किन्तु वे इनमें रत न होकर केवल घटनाओं के वर्णन में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की ओर अधिक प्रवृत्त हुए हैं। यही इनके इन प्रसंगों की मर्यादा है।

जोशी जी उपन्यासों के कथानक के प्रारम्भ में किसी समस्या[कुण्ठा, - विकृति] को लेकर चले हैं, कथानक का विकास करते-करते अंत में उसका उदात्तीकृत रूप अवश्य प्रस्तुत किया है। अपने मनोवैज्ञानिक चिन्तन को दर्शन की आधार शिला पर रखकर उन्होंने कथानकों का उपसंहार किया है। वे व्यक्ति के घोर अहंवाद पर कठोर प्रहार करते हुए अन्त में उसके परिशोधन पर ही बल देते हैं। " उनकी दृष्टि में घोर अहंवाद तो भस्मासुर के समान है जो कि समूची मानवता को भस्म करने

1- "पर्दे की रानी" - इलाचन्द्र जोशी - संस्करण 1983, पृष्ठ 190

के लिए भाग दौड़ मचा रहा है। अतः अपने कथानकों में आत्मरति के अधिष्ठाता भस्मासुर के विनाशकारी कारनामों की झलक दिखाकर इलाचन्द्र जोशी इस असुर को ध्वस्त करने की आवश्यकता पर ही बल देते हैं।"[1] अतः उनके कथानकों का अन्त भी इसी प्रकार हुआ है। उपसंहार में प्रमुख पात्रों के मन में पाश्चात्ताप उत्पन्न करके नैतिकता की अनैतिकता पर और मानवता की दानवता पर विजय दिखा कर जोशी जी ने मनोविश्लेषण को एक नयी दिशा दी है। जहाँ पर जोशी जी को मानसिक कुण्ठाओं और यितविकृतियों के दुष्परिणाम दिखाने थे, वहाँ दुःखान्त, पाश्चात्तापपूर्ण उपसंहार हुए हैं। जहाँ पर वे इन विकृतियों के इलाज द्वारा मानव-मन का संस्कार करते हैं वहाँ सुखान्त पाश्चात्तापपूर्ण उपसंहार देखने को मिलते हैं। जोशी जी के विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य संश्लेषण रहा है अतः उपन्यासों में लक्ष्य-पूर्ण उपसंहार देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ - 'लज्जा' के कथानक का उपसंहार पाश्चात्तापपूर्ण एवं अवसादात्मक वातावरण में हुआ है। राजू की आत्महत्या और पिता की मृत्यु के बाद लज्जा का मन स्वस्थता की ओर बढ़ता हुआ डा० कन्हैया लाल के प्रति आत्मग्लानि और घृणा से भर उठता है। वह अपने जीवन से व्यथित होती हुई कहती है :- "दयामय मुझे बता दो कि मैंने किसी पूर्व जन्म में स्वाभाविक नियमों का पालन करके नारी का जीवन पूर्ण रूप से बिताया या नहीं? अथवा वर्त-मान जीवन की तरह मेरे सभी पूर्व जीवन भी अर्थहीन और लक्ष्यभ्रष्ट होकर कर्म्मणा के गहन गह्वर में विलीन हो गये।"[2] इसी प्रकार 'सन्यासी' का उपसंहार भी विभिन्न घात-प्रतिघातों के बाद दुःखद पाश्चात्तापपूर्ण वातावरण में ही हुआ है। जयन्ती की आत्महत्या और शान्ति के अज्ञात स्थान पर चले जाने के बाद नन्दकिशोर का अहंपक्षनाशन हो जाता है। वह अपने दुष्कर्मों पर पाश्चात्ताप करता हुआ कहता

1-"हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता" - डा०शुकदेव शुक्ल, सितम्बर 1966, पृष्ठ 191

2-"लज्जा" इलाचन्द्र जोशी- तृतीय संस्करण 1982, पृष्ठ 162

है:- अब मैं न सन्यासी हूँ न नेता।- - - - - - - - - - पर मैं उन दोनों के अभाव का अनुभव कर रहा हूँ और सम्भवतः जीवन भर करता रहूँगा।"[1]

'निर्वासित' में महीप की मृत्यु से कथा का अन्त अवसादात्मक हो चला है - "नीलिमा ठहरो, मैं आता हूँ - - - - - - - - और इसके बाद ही उसका श्वास ऊपर को चढ़ने लगा। भर्त घबराकर डाक्टर को बुला लाई, पर तब तक सब कुछ समाप्त हो चुका था।"[2]

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि जोशी जी के कथानक अन्त में मानसिक कुण्ठाओं के कुपरिणाम दिखाने हेतु ही दुःखात्मक हो चले हैं।

इसके अतिरिक्त सुखात्मक अन्त भी जोशी जी ने दर्शाये हैं। उदाहरणार्थ - "पर्दे की रानी' का कथान्त पश्चात्तापपूर्ण होते, हुए भी सुखात्मक है। इन्द्रमोहन के प्रेम की सत्यता का प्रमाण मिलने पर शांति उसके मर्म को सहर्ष धारण कर लेती है। उसका गुरू उसे आशीर्वाद देता हुआ कथा का अन्त पश्चात्तापपूर्ण होते हुए सुखान्त कर देता है - "आज तक तुम्हारा जीवन घृणा, प्रतिहिंसा और हत्या के वातावरण से घिरा रहा है, अब शीघ्र माता बनने जा रही हो, इसलिए अब से स्नेह, प्रेम और कल्याण की भावनाएं तुम्हारे जीवन के चारों ओर मंगल-वितान तानना आरम्भ कर देंगी- यह मेरा आन्तरिक विश्वास और आशीर्वाद है।"[3]

'प्रेत और छाया' उपन्यास में पारसनाथ के मन का विश्लेषण इतना अधिक हो चुका है कि अन्त में आकर उसका हृदय कुण्ठाहीन होकर हीरा से विवाह करके परिष्कृत हो जाता है और वह लोकहितार्थ अपनी सम्पत्ति दान में दे देता है।

1-"सन्यासी"- इलाचन्द्र जोशी सप्तम आवृत्ति, सं02030वि0 पृष्ठ 440
2-"निर्वासित"-इलाचन्द्र जोशी, सप्तम संस्करण, सं02022वि0 पृष्ठ 464, 465
3-"पर्दे की रानी"-इलाचन्द्र जोशी, संशोधित संस्करण, सन् 1983, पृष्ठ 224

'त्याग का भोग' [जिप्सी] का अन्त भी पाश्चात्तापूर्ण होते हुए सुखद है। नृपेन्द्ररंजन अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त करके अपनी सारी सम्पत्ति जन-समन्वयकेंद्र को दान कर देता है और समन्वयवाद की स्थापना का व्रत लेता है। 'जहाज का पंछी' 'मुक्तिपथ', 'सुबह के भूले' सभी उपन्यासों के अन्त पाश्चात्तापपूर्ण हैं लेकिन सुखान्त भी हैं। इसका एक मात्र कारण 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और संश्लेषण' है। पात्रों के अन्तर्मन का विश्लेषण होते होते उनका हृदय निर्मल होकर पाश्चात्ताप करने लगता है, सारी की सारी ग्रंथियाँ खुल जातीं हैं और जीवन की जटिलताएं समाप्त होने लगतीं हैं।

इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यासों में मनोविज्ञान का जमकर प्रयोग किया है। उन्होने कथानकों का धरातल 'मनोविज्ञान की ईंटों द्वारा' निर्मित किया है। मन की गांठों को विविध मनोवैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा खोलते हुए उन्होने पात्रों को विविध मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों की दासता से मुक्ति दिलाई है। इस कार्य में उन्होंने कथानक में असाधारण घटनाओं का समावेश किया है। यह उनके कथानकों की अपनी मांग है। कथानकों का आकर्षण चित्तविकृतियों की उठापटक, अन्तर्द्वन्द्वों तथा मानसिक घात-प्रतिघातों के कारण स्वतः ही बढ चला है। छोटी-छोटी तुच्छ घटनाएं भी अपने विस्तृत मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के कारण रूचिकर हो चली हैं। "मनोवैज्ञानिक कथावस्तु में बाह्य घटनाएं नगण्य होती हैं। उसका प्रसारण मानसिक घटनाओं पर ही अवलम्बित होता है, चरित्रों का मानसिक प्रक्रम इनको विकासोन्मुख बनाता है।"[1] जोशी जी के उपन्यासों की कथावस्तु उक्त कथन के अनुरूप है। चरित्रों के मानसिक जगत के उद्घाटन के निमित्त तदनुरूप निर्मित कथावस्तु पर शैथिल्य या दौर्बल्य का आरोप लगाया जाना उनके प्रति अन्याय होगा।

1-"आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन" -
डा० गणेश दत्त गौड़, जनवरी 1965, पृष्ठ 217

(2) संवाद योजना में मनोविज्ञान और उसका विश्लेषण :- संवादों का प्रयोग उपन्यास के कथानक को गति देने और उसमें स्वाभाविकता तथा सजीवता लाने के लिए किया जाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के लिए संवाद मात्र कथा को गति देने हेतु नहीं होते वरन उनके माध्यम से तो मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार एक मनःचिकित्सक की भाँति पात्रों के अचेतन मन में स्थित कुण्ठाओं, व्यथाओं, अवसादों की अभिव्यक्ति करवाते हैं। स्पष्टतः उनके संवादों का उद्देश्य मात्र वाह्य क्रियाकलापों एवं कथा का विकास न होकर अचेतनस्थ व्यापारों का उद्घाटन होता है। "उनके संवादों की वाह्य परिस्थिति से कोई संगति नहीं रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके पात्र जो कुछ कह रहे हैं वह मन के किसी रहस्यलोक का उबाल है।"[1] जोशी जी के उपन्यासों में हमें इस प्रकार के संवाद बहुधा देखने को मिलते हैं जिनके द्वारा पात्र की मनःस्थितियों का प्रकटन होता है। मनःस्थितियों के विश्लेषण के कारण इस प्रकार के संवाद प्रायः लम्बे हो उठते हैं, पाठक को थोड़ी ऊब महसूस होती है, परन्तु यदि इन लम्बे कथोपकथनों का प्रयोग न किया जाए तो पात्रों की जटिलताओं व उनकी मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं पर से पर्दा कैसे उठेगा? मनोविश्लेषण के कारण इस प्रकार के संवाद बोझिल होकर भी रोचक बन पड़े हैं, किसी पात्र की जटिलता को पढ़ने व समझने की जिज्ञासा पाठक के मन में निरन्तर बनी रहती है।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में मनोविश्लेषण प्रधान संवादों की भ

1- "यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण" - 'डा० मधु जैन'
प्रथम संस्करण, 1977 पृष्ठ 379

भरमार है। उदाहरण के लिए:- 'प्रेत और छाया' में 'मंजरी' और 'पारसनाथ' के मध्य होने वाले वार्तालाप को ही लें -

"तुम ठीक कहती हो, मंजरी.!, मैं सचमुच बहुत ही दुखी, बड़ा ही दयनीय हूँ। तुम्हारे दुःख का कारण तुम्हारी अनाथ अवस्था है ------ --------- पिछले सात वर्षों से मैं जहाँ भी रहा हूँ, इसी प्रकार के नारकीय वातावरण में रहने पर मजबूर हुआ हूँ। इस प्रकार दिन-रात नरक में रहने के कारण मैं मनुष्य-समाज के प्रति विद्रोह, प्रतिहिंसा और घृणा की आग को सुलगाता चला गया हूँ। जिस दिन मुझे पहले-पहल मालूम हुआ कि मैं अपनी माँ के प्रेमी का पुत्र हूँ, नाजिक उसके प्रीत का, उस दिन जो विस्फोट मेरे अंदर हुआ, उसने मेरे जीवन के स्वप्नों को और आदर्शों को उलट दिया।"[1]

'त्याग का भोग' उपन्यास में भी ऐसे संवाद स्थान-स्थान पर मिलते हैं जो पात्रों की 'अहं भावनाओं', 'कुण्ठाओं', 'परपीड़न रीत' इत्यादि मानसिक अवस्थाओं को प्रकाशित करते हैं। 'मीनाक्षी' जब 'मणिमाला' बनकर वृषेन्द्र के सम्मुख आती है तो वह वृषेन्द्र के प्रतिहिंसात्मक और अहंवादी रूप का पर्दा-फाश करती हुई कहती है :-

"तुमने मेरे भोलेपन और मेरी अनाथ अवस्था से जो लाभ उठाया, बाल्यजीवन की असाधारण परिस्थितियों के कारण विचित्र भावों से त्रस्त मेरे मन पर अपनी डिप्लोमेटिक कला का जो प्रयोग किया जिस तरह अपने जाल में मुझे फँसाया, उसके लिए आज मैं तुम्हें जो भी दण्ड दे सकूँ वह कम होगा।"[2]

1- "प्रेत और छाया" - 'इलाचन्द्र जोशी' चतुर्थ संस्करण, संवत् 2035 वि० पृष्ठ 150, 151

2- "त्याग का भोग" - 'इलाचन्द्र जोशी' तृतीय संस्करण, सन् 1972 ई० पृष्ठ 60।

'संन्यासी' उपन्यास में भी पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए ही ऐसे ही लम्बे-लम्बे संवादों की योजना की गयी है। 'अठहत्तरवें परिच्छेद' में जयन्ती और चन्द्रशेखर के संवादों को देखें -

"जयन्ती ने कहा - तो सुनिए, आप में बहुत से अच्छे गुण हैं, कुछ गुण तो असाधारण हैं। आपका हृदय बाहर से चट्टान से भी कठोर मालूम होने पर भी भीतर वह मोम से अधिक कोमल है। कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान भी आपका बहुत बढ़ा चढ़ा है, पर-पर आपके स्वभाव में एक बड़ा भारी दोष है।"[1]

'वह क्या? मैंने अत्यन्त अधीरता से पूँछा।

"वह यह कि आप बड़े अहंकारी हैं। आपका अहंभाव हद दर्जे तक आगे बढ़ा हुआ है। यह एक दोष आपमें ऐसा जबर्दस्त है, जो कभी-कभी आपके सद्गुणों को ढक देता है। केवल यही नहीं इसके कारण आपके जीवन में अक्सर अशान्ति और बेचैनी छाई रहती होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"[2]

'सुबह के भूले', 'मुक्तिपथ', 'पर्दे की रानी' आदि सभी उपन्यासों में प्रायः ऐसे ही संवाद मिलते हैं, जो पात्रों की चरित्राभिव्यक्ति करते हैं। जोशी जी के उपन्यासों का धरातल मनोवैज्ञानिक होने के कारण उनके उपन्यासों में पात्र स्वगत भाषण देते चलते हैं। इसका कारण यह है कि मन में अनेक प्रकार के विचार उठते गिरते रहते हैं। एक विचार आता है तो वह दूसरे से टकराकर मिट जाता है, फिर अगला विचार आता है वह पहले वाले को धकेलता चला जाता है। इन सारे अन्तः संघर्षों का वर्णन पात्रों के अपने कथन ही कर सकते हैं।

1- "त्याग का भोग" - इलाचन्द्र जोशी, तृतीय संस्करण, 1972 पृष्ठ 60।

2- "सन्यासी" - इलाचन्द्र जोशी, सप्तम आवृत्ति सं02030वि0 पृष्ठ 363, 364

यदि ये कथन इस प्रकार के उपन्यासों में न प्रयुक्त हों तो उनकी सहजता और स्वाभाविकता का लोप हो जाता है। जोशी जी के उपन्यासों में ऐसे 'स्वगत कथन' (अन्तर्विवाद) देखने को मिलते हैं जो पात्रों के अन्त:संघर्षों को प्रकट करते चलते हैं। कभी-कभी उनके पात्र चेतन में सोचते हैं तो कभी अर्धचेतनावस्था में। 'लज्जा' में ऐसे स्वगत-कथनों (अन्तर्विवादों) की भरमार है। कथा के प्रारम्भ से ही ऐसे कथन बहुतायत से मिलते हैं। उदाहरणार्थ -

"कहाँ हो तुम प्यारी लली। आज इस चिरदु:खिनी, चिरपापिनी को क्या किसी तरह भी तुम्हारे पवित्र चरणों की धूलि प्राप्त नहीं हो सकती? हाय लिली, विंश शताब्दी की उन्नति के तुमुल कोलाहल से उकताकर, वर्तमान यूनिवर्सिटी की शिक्षा से परिहृष्ट और सभ्य समाज के शिष्टाचार की धूलि से लिप्त होकर मैं तुम्हारे तपोवन की चिरंतन शांति में अपनी आत्मा को निमज्जित करना चाहती हूँ। क्या काल के उलटे स्रोत में बहकर मैं किसी तरह तुम्हारे पास तक नहीं पहुँच सकती।"[1]

'अन्तर्विवादों' (इन्टीरियर मोनोलाग्स) का प्रयोग 'निर्वासित' में अधिक देखने को मिलता है कि अभूतपूर्व अद्विग्नता व्यक्त करने के लिए जोशीजी उसके अन्तर्विवादों का उल्लेख करते हैं। लेकिन इन अन्तर्विवादों में इतना दम नहीं कि वे उच्च कोटि की मनोवैज्ञानिकता की कोटि में आ सकें। 'प्रेत और छाया' में पारसनाथ का यह अन्तर्विवाद देखिए :- "

"नहीं, मैं इस वीभत्स गिद्ध का बेटा कभी नहीं हो सकता- किसी भी हालत में नहीं, न रूप में, न रंग में न किसी मनोभाव में ही उससे मेरा कोई साम्य है। पर यदि मैं उसका बेटा नहीं हूँ तो इसका अर्थ स्पष्ट ही

1- "लज्जा" - इलाचन्द्र जोशी, तृतीय संस्करण, 1982, पृष्ठ 4, 5

यह है कि मेरी माँ वास्तव में व्यभिचारिणी है और मैं उसकी जारज़ सन्तान हूँ।"[1]

यह अन्तर्विवाद वस्तुतः मनोवैज्ञानिक कोटि का ही है जो नायक की बदलती बनती मनःस्थितियों का द्योतक है। 'सन्यासी' में भी मनोवैज्ञानिक अन्तर्विवाद देखने को मिलते हैं। 'सत्तासीवें परिच्छेद' में नन्दकिशोर का एक अन्तर्विवाद देखिए :-

"क्या मैं सचमुच शान्ति से नहीं मिल पाऊँगा? यदि इस बार उससे न मिल सका तो फिर जीवन में कभी मिल सकने की सम्भावना नहीं है पर मिलकर भी क्या होगा? वह मुझे भूलकर, जीवन में स्थिरता प्राप्त करके किसी निश्चित कार्यक्रम के अनुसार अपने दिन बिता रही है। उसके इस कार्यक्रम में बाधा डालना क्या उचित होगा? वह सुखी है, सन्तुष्ट है, जो भयंकर धक्का मेरे संसर्ग के कारण उसकी आत्मा को पहुँचा था उससे भी वह निश्चय ही इतने वर्षों के अन्तर से संभल चुकी है। तब फिर क्यों नाहक पुरानी स्मृति उभाड़कर उसे पीड़ित किया जाए पर क्या न मिलने पर मेरे मन में जो धुकधुकी सब समय लगा के लिए बनी रहेगी, उसका क्या उपाय होगा?"[2]

नन्दकिशोर के मन में शान्ति से मिलने सम्बन्धी उठते गिरते विचारों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण जोशी जी ने इस अन्तर्विवाद में बखूबी किया है।

'सन्यासी' उपन्यास के अन्तर्विवादइन्टीरियर मोनोलाग्स वस्तुतः जोशी जी के अन्य समस्त उपन्यासों से उत्कृष्ट और मनोवैज्ञानिक है। इसको पढ़कर लगता है कि इलाचन्द्र जोशी को मनोविज्ञान पर पूरा कमाण्ड हासिल है।

1- "प्रेत और छाया" - इलाचन्द्र जोशी, चतुर्थ संस्करण सं० 2035 वि० पृष्ठ 51

2- "सन्यासी" - इलाचन्द्र जोशी, सप्तम आवृत्ति सं०2030 विक्रमी पृष्ठ 412,413

इसी प्रकार 'मुक्तपथ' उपन्यास में भी अन्तर्विवादों का प्रयोग हुआ है। संवादों और अन्तर्विवादों द्वारा पात्रों के मन की सूक्ष्म भाव-भंगिमाओं के प्रकाशन के कारण उनके कथोपकथन की इस विशेषता को कृष्ण-देव झारी ने इन शब्दों में नोट किया है:-

"जोशी जी के कथोपकथन की एक विशेषता पर अवश्य ध्यान जाता है वह है-कथोपकथन कराते समय पात्रों की सूक्ष्म भावभंगिमाओं का निर्देशन। इससे पात्रों के गूढ आशय समझने में सहायता मिलती है।"[1]

जोशी जी के संवादों की प्रमुख विशेषता यह है कि वे प्रत्येक वार्तालाप के बाद उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी करते चलते हैं। यही कारण है कि यदि उनके उपन्यासों में कहीं एक वार्तालाप आता है तो उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या पृष्ठ चलती है। जोशी जी के कथोपकथन या संवाद पात्रों की चेष्टाओं भावभंगिमाओं से युक्त होते हैं। वार्तालाप के साथ-साथ उसके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सटीक उदाहरण 'संन्यासी' में देखें :-

"मैनेजर ने पूँछा - 'चाय लाऊँ ?

मैंने कहा - हाँ जल्दी, दो कप।

बड़े प्रेम से सिर हिलाते हुए मैनेजर ने कहा - 'बहुत अच्छा, मैं अभी भेजे देता हूँ।' - यह कहकर जाने लगा। दो कदम चलकर वह फिर लौटकर दरवाजे पर आ खड़ा हुआ और बड़ी मिठास के साथ कहने लगा- 'इस होटल को अपना घर समझिए, किसी बात का संकोच न कीजिएगा। यहाँ किसी प्रकार का कष्ट आपको न होने दूँगा। इस होटल में बहुत से साहब लोग ही उतरते रहते

1- 'उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी" -'डा० कृष्ण देव झारी'
संस्करण - 1975 ; पृष्ठ 131

है जो किसी न किसी औरत को लेकर रहना चाहते हैं। आज ही एक साहब कानपुर से एक तवायफ को साथ लेकर आये हैं। नीचे के एक कमरे में ठहरे हुए हैं। परसों एक दूसरे साहब गोरखपुर से एक बाई को पकड़ लाये थे। ऐसी हसीन औरत मैंने अपनी जिन्दगी में कभी नहीं देखी और उसका गाना- क्या तारीफ करूँ साहब। आप लोगों की दुआ से मैंने जिन्दगी में एक से एक मशहूर तवायफ का गाना सुना है, पर परसों गोरखपुर वाली का जो गाना सुना वह- ओह। कुछ पूँछिए मत। कमाल का गाना गाया उसने। "-यह कहकर वह गद्गद भाव दिखाकर शांति की ओर घूमने लगा। शांति ने उसकी बातों का रूख देखकर पहले ही मुँह फेर लिया था। मैं असह्य क्रोध से काँपने लगा था और एक अज्ञात भय से मेरा हृदय जोरों से धड़क रहा था। मैंने यथाशक्ति जोर से चिल्लाकर कहा - "खबरदार। पर मेरा गला फट सा गया था और अपनी आवाज स्वयं मुझे अत्यन्त अप्राकृतिक तथा विकृत सी जान पड़ी। इसके बाद तुरन्त अपनी आवाज को यथाशक्ति स्वाभाविक बनाने की चेष्टा करते हुए मैंने कहा- "एक भले घर की महिला के सामने इस तरह की बातें करते हुए तुम्हें शर्म नहीं मालूम होती। तुम्हारे होटल में क्या हम लोग इस तरह की अश्लील बातें सुनने के लिए आये हैं। अगर हमें मालूम होता कि इस होटल में इस तरह के लोग आया करते हैं तो हम हरगिज यहाँ पाँव न रखते।"[1]

इस संवाद योजना में पात्रानुकूलता, भावानुरूपता, मनोवैज्ञानिकता, विश्लेषण और पात्रों की भावभंगिमाओं और चेष्टाओं का पूर्ण-परिचय मिलता है। नायक नन्दकिशोर के 'खबरदार' कहने की मनोवैज्ञानिक व्याख्या कितनी

1- "संन्यासी" -'इलाचन्द्र जोशी' - सप्तम आवृत्ति, संवत् 2030 वि० पृष्ठ 112

स्वाभाविक है। ऐसे विश्लेषण केवल अनुभवी उपन्यासकार ही कर सकेंगे। जोशी जी की संवादयोजना की यह विधि प्राय: सभी उपन्यासों में देखने को मिलती है, यह विधि उनकी निजी विशेषता है।

जोशी जी के विश्लेषण प्रधान संवादों की सार्थकता व मनोवैज्ञानिकता का आकलन करने पर निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :-

1- उनके उपन्यासों में संवाद पात्रों के स्वयं के पूर्वजीवन और घटनाओं की व्याख्या करते हैं ।

2- ये संवाद मुख्य पात्रों के अतिरिक्त अन्य संबंधित पात्रों के पूर्वजीवन और घटनाओं पर प्रकाश डालते हैं।

3- ये जीवन की गहनतम अनुभूतियों के साथ-साथ जीवन की समस्याओं पर भी प्रकाश डालते हैं ।

4- पात्रों के स्वयं के चरित्र-विश्लेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं ।

5- नायक-नायिकाओं के चरित्र-विश्लेषण के अतिरिक्त अन्य चरित्रों के विश्लेषण में भी प्रयुक्त होते हैं।

6- अपनी विवेचनात्मकता की प्रवृत्ति के कारण विचार प्रधान व दार्शनिक हो चले हैं ।

जोशी जी ने कथा विकास में संवादों को प्रमुखता न देकर उनके माध्यम से पात्रों के विचारों का वहन किया है। विचाराभिव्यक्ति के कारण चाहे वह मनोवैज्ञानिक हो, चाहे सांस्कृतिक या नैतिक, उनके संवाद विश्लेषणात्मक बन गये हैं। सामाजिक समस्याओं की विवेचना, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की व्याख्या आदि के कारण इनके संवादों की रोचकता में कुछ कमी आ गयी है। उदाहरणार्थ - 'पर्दे की रानी' में निरंजना के विकृत अहं का समाधान बताता हुआ गुरु चन्द्रशेखर कहता है:-

"मेरे मत से इस रोग को दूर करने के लिए सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि इस युग में के वैज्ञानिक चिंतनावाद ने जो कुछ भी झूठा ज्ञान हमें दिया है अपने मन और मस्तिष्क से हमें उसके सब चिन्हों को धो डालने के दीर्घ प्रयत्न में जुट जाना होगा। उस झूठे ज्ञान के फलस्वरूप अपनी जिन मानसिक उलझनों और अन्तर्द्वन्द्वों को हम लोगों जो कि अर्द्धवादी युग के कोरे बुद्धिवादी प्राणी हैं। अत्यन्त महत्व आरोपित करने के आदी हो गये हैं उनके संबंध में हमें निश्चित रूप से यह जान लेना चाहिए कि वे केवल हमारे अर्द्धभाव के हाईड्रोजन से फुलाये गये बैलून हैं।"[1]

जहाँ कहीं भी जोशी जी अपने 'विश्लेषण' का पारम्परिक टार्च प्रयुक्त करते हैं और सिद्धान्त कथन का लोभ करने लगते हैं वहीं उनके संवाद विवेचनात्मक बन जाते हैं और संवादों में इस तरह की विवेचनाएं कभी-कभी जोशी जी के उपन्यासों के शिल्पगत सौन्दर्य को निगल जाती हैं। जोशी जी का प्रायः प्रत्येक उपन्यास ऐसी ही शिल्पपद्धती से ग्रस्त है। 'सन्यासी' के पैंतीसवें परिच्छेद में नायक नन्दीकिशोर और उसकी मित्रमण्डली के बीच होने वाली वार्ता में इलाचन्द्र जोशी ने विचारगर्भित विवेचन द्वारा शिल्पगत सौन्दर्य को जैसे नकार ही दिया है:-

"मैंने कहा - " तो आप प्रगतिशीलतावादी हैं?"

" आपका मतलब ? "

" मैंने सुना है कि इलाहाबाद में नवयुवकों का एक ऐसा दल संगठित हुआ है जो भारतीय सभ्यता और साहित्य को पूँजीवादी कहकर उसके विनाश के लिए कटिबद्ध हुआ है और उसके ध्वंसावशेष की नींव पर एक ऐसी

1- "पर्दे की रानी" - 'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण - 1983
पृष्ठ 221, 222

साम्यवादी सभ्यता स्थापित करना चाहता है जो, उसकी राय में विश्व में क्रांति लाकर रहेगी। यह दल अपने को प्रगतिशीलतावादी कहता है, ऐसा मैंने सुना है।

"मुझे अफ़सोस है कि इस दल से मेरा कोई परिचय नहीं है, पर उसके मतवाद से मेरी 'सिम्पैथी' है। गांधी जी पूँजीवादियों के पिट्ठू हैं, इसलिए उनके प्रति मेरे मन में तनिक भी श्रद्धा नहीं है। भारत की निर्धन और दलित जनता के प्रति उनकी सहानुभूति अक्षय है पर सदियों से पीड़ित किसान और मज़दूर अपनी नोन-तेल लकड़ी पर भी पूँजीपतियों का सर्वग्रासी हाथ पड़ते देख अपनी क्षीण शक्ति से उसका विरोध करने लगते हैं, वहीं गांधी जी उनकी तरफ़ से कभी एक शब्द भी न कहकर पूँजीपतियों की पीठ ठोकने लगते हैं ----------

----- ग्राम संगठन संबन्धी प्रस्ताव उनके लिए जितना महत्वपूर्ण है, ग्रामों की जीवित जनता के सजीव कष्टों की कठोर वास्तविकता उसका शतांश भी महत्व नहीं रखती।"[1]

ऐसे संवादों से उपन्यास का शिल्प-पक्ष शिथिल हो उठता है। 'प्रेत और छाया' तथा 'त्याग का मोल' में ऐसे संवाद स्थान-स्थान पर मिल जाते हैं जिनमें विचारों का विश्लेषण ही प्रधान है। 'प्रेत और छाया' के 'पहले परिच्छेद' में पारसनाथ और उसकी मित्र मंडली के बीच हो रहे वार्तालाप संबंधी यह संवाद देखिए :-

" मुझे ऐसा लगता है कि हम सब मध्य श्रेणी के बुद्धिजीवी व्यक्ति वर्तमान संसार के लिए निपट निरर्थक और अनावश्यक सिद्ध हो रहे हैं। हम सब परोपजीवी पैरेसाइट्स हैं, और युग विवर्तनकारी प्रगतिशील समाज के पोषक तत्वों का निरर्थक शोषण करते चले जाते हैं। वर्तमान विश्वव्यापी क्रांति के बाद जब संसार का नव-निर्माण होगा तो हम लोग और किसी भी रूप में अपनी उपयोगिता का प्रमाण

1- "सन्यासी" - 'इलाचन्द्र जोशी' - सप्तम आवृत्ति, सं० 2030 विक्रमी पृष्ठ 164, 165

नाम को भी न दे सकेंगे - यह निश्चित है।"[1]

'त्याग का भोग' उपन्यास में विभिन्न धर्मों की विवेचना, मार्क्सवाद की विवेचना आदि हेतु अनेक लम्बे-लम्बे संवाद प्रयुक्त हुए हैं जो 'विवेचनात्मक संवादों' की श्रेणी में आते हैं। 'बादर बरेमिका' और नायक 'पारसनाथ' के मध्य धार्मिक मत-मतान्तरों संबंधी संवाद[2], वीरेन्द्र और सुरेन्द्र के मध्य मार्क्सवादी सिद्धान्तों संबंधी संवाद[3], ऐसे लगते हैं कि आपस में वार्तालाप न होकर कोई भाषण प्रतियोगिता हो रही हो।

सामाजिक विचारों पर तर्क वितर्क प्रस्तुत करने वाले ऐसे विवेचनात्मक लंब संवाद 'मुक्तिपथ', 'जहाज का पंछी', 'निर्वासित', 'पर्दे की रानी', 'संन्यासी' इत्यादि सभी उपन्यासों में मिलते हैं।

'स्वगत कथनों'(इन्टीरियर मोनालाग्स), 'मनोवैज्ञानिक संवादों' व 'विवेचनात्मक संवादों के अतिरिक्त इलाचन्द्र जोशी जी यत्रतत्र हास्य व्यंग्य पूर्ण छोट-छोटे रोचक व चुटीले संवादों का प्रयोग करने में भी पीछे नहीं हैं। 'पर्दे की रानी' उपन्यास में यह संवाद देखें :-

"आप दो दिन से ऐसे गायब रहे जैसे गधे के सिर से सींग। क्या बात हो गयी थी?

"गधे का उल्लेख निश्चय ही इन्द्रमोहन जी को किसी प्रकार पसन्द नहीं आया होगा, यह मैं निश्चित रूप से जानती हूँ। सच बात तो यह है कि यह जानकर ही मैंने इरादतन गधे को बीच में लाकर खड़ा कर दिया था पर

1- "प्रेत और छाया" -'इलाचन्द्र जोशी', चतुर्थ संस्करण - सं0 2035 विक्रमी पृष्ठ 23

2- "त्याग और भोग"-इलाचन्द्र जोशी', तृतीय संस्करण - 1972 पृष्ठ 197, 200, 201, 202, 203

3- "त्याग का भोग" -'इलाचन्द्र जोशी', तृतीय संस्करण - 1972 पृष्ठ 282, 283, 284, 285

अपने वास्तविक मनोभाव को छिपाने की कला में कभी इन्द्रमोहन जी को कुछ कम नहीं पाया। वेदना की क्षणिक झलक को तत्काल मिटाते हुए वह हुंसकर हँसे और बोले -

"आपने बड़ी अच्छी उपमा दी । मैं वास्तव में अपने को किसी के सिर का सींग ही समझता हूँ ।"[1]

कितनी चुटीली संवाद योजना है! मनोविज्ञान के मोतियों में पिरोयी गयी ऐसी ही एक संवादयोजना 'सन्यासी' में भी देखने को मिलती है। प्रो० मिश्रा के यहाँ नन्दीकिशोर के एक मित्र सोती जी के संबंध में नन्दीकिशोर का कथन देखें :-

"सोती जी, सारी रात जागते रहें, यह कैसा वैराग्याभास है।"[2]

'सन्यासी' में नन्दीकिशोर और शांति का एक और वार्तालाप देखें:-

"शांति देवी । अब शांति से काम लो । अधिक भ्रांति न मचाओ । मैं बड़ी भ्रान्ति में हूँ ।"[3]

उक्त संवादों में हास्य व चुटीलापन झलकता है।

जोशी जी के उपन्यासोंका मूल उद्देश्य मानव के विकृत मन को विश्लेषण और संश्लेषण के माध्यम से स्वस्थ बनाना रहा है।अतः तदनुरूप ही उनके उपन्यासों में संवाद योजना मिलती है। चूँकि मानव मन का विश्लेषण विविध मनोवैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा हुआ है अतः उनके उपन्यासों में ऐसे चुटीले

1- "पर्दे की रानी" - 'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण 1963, पृष्ठ 78
2- "सन्यासी" - 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति सं० 2030वि० पृष्ठ 57
3- "सन्यासी" - 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति सं० 2030वि० पृष्ठ 128

हास्य व्यंग्य पूर्ण संवाद यत्र-तत्र ही मिलते हैं, न कि सर्वत्र । परिस्थिति की सहजता और गम्भीरता के अनुरूप ही जोशी जी ने संवादों की योजना की है। उपन्यासों का धरातल मनोवैज्ञानिक होने के कारण जोशी जी की संवाद-योजना मुख्य रूप से मनोवैज्ञानिक ही रही है। उनमें मनोवैज्ञानिकता का प्रवेश अनिवार्य हो गया है। डा० श्याम सुन्दर दास के अनुसार :-

"यद्यपि कथोपकथन का उद्देश्य प्रायः वस्तु विकास करना माना जाता है, पर वास्तव में उसका संबंध पात्रों से है। उसके द्वारा रागद्वेष, प्रवृत्ति, मनोवेग आदि का प्रस्फुटन, पात्रों की स्थिति का घटनाओं के अनुकूल परिवर्तन और उनका एक दूसरे पर प्रभाव बहुत अच्छी तरह दिखाया जा सकता है।"[1]

जोशी जी के संवाद उक्त परिभाषा पर खरे उतरते हैं। पात्र जिस मनःस्थिति से गुज़र रहे होते हैं, वार्तालाप के समय उनके द्वारा वही अभिव्यञ्जना की जाती है। उनके संवाद चाहे छोटे हो या लम्बे, चाहे विवेचनात्मक हों या समस्यात्मक, अपनी मनोवैज्ञानिकता के कारण भाव गम्भीर्य से युक्त है।

(3) चरित्र-सृष्टि में मनोविज्ञान और उसका विश्लेषण :- "इलाचन्द्र जोशी मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के कथाकार हैं। अतः उनके औपन्यासिक पात्र भी यथार्थ जगत् के ही प्राणी हैं। सभी मानवीय गुण-दोष उनमें विद्यमान हैं।"[1]

जोशी जी का कथन है कि "विश्व में अपेक्षाकृत (पूरी नहीं) शांति की स्थापना असंभव है जब तक मानव समाज अन्तर्जीवन को उतना ही (बाल्क अधिक)

1- "पर्दे की रानी" -'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण 1983 आमुख, पृष्ठ 1

हास्य व्यंग्य पूर्ण संवाद यत्र-तत्र ही मिलते हैं, न कि सर्वत्र । परिस्थिति की सहजता और गम्भीरता के अनुरूप ही जोशी जी ने संवादों की योजना की है। उपन्यासों का धरातल मनोवैज्ञानिक होने के कारण जोशी जी की संवाद-योजना मुख्य रूप से मनोवैज्ञानिक ही रही है। उनमें मनोवैज्ञानिकता का प्रवेश अनिवार्य हो गया है। डा० श्याम सुन्दर दास के अनुसार :-

"यद्यपि कथोपकथन का उद्देश्य प्रायः वस्तु विकास करना माना जाता है, पर वास्तव में उसका संबंध पात्रों से है। उसके द्वारा रागद्वेष, प्रवृत्ति, मनोवेग आदि का प्रस्फुटन, पात्रों की स्थिति का घटनाओं के अनुकूल परिवर्तन और उनका एक दूसरे पर प्रभाव बहुत अच्छी तरह दिखाया जा सकता है।"[1]

जोशी जी के संवाद उक्त परिभाषा पर खरे उतरते हैं। पात्र जिस मनः-स्थिति से गुज़र रहे होते हैं, वार्तालाप के समय उनके द्वारा वही अभिव्यञ्जना की जाती है। उनके संवाद चाहे छोटे हो या लम्बे, चाहे विवेचनात्मक हों या समस्यात्मक, अपनी मनोवैज्ञानिकता के कारण भाव गम्भीर्य से युक्त है।

(3) चरित्र-सृष्टि में मनोविज्ञान और उसका विश्लेषण :- "जोशी जलावन्द्र मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के कथाकार हैं। अतः उनके औपन्यासिक पात्र भी यथार्थ जगत् के ही प्राणी हैं। सभी मानवीय गुण-दोष उनमें विद्यमान हैं।"[1]

जोशी जी का कथन है कि "विश्व में अपेक्षाकृत (पूरी नहीं) शांति की स्थापना असंभव है जब तक मानव समाज अन्तर्जीवन को उतना ही (बल्कि अधिक)

1- "पर्दे की रानी" -'जलावन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण 1983 आमुख, पृष्ठ 1

महत्त्व नहीं देता जितना कि वाह्य जीवन को क्योंकि इस बात के निश्चित प्रमाण जीवन की गहराई में डुबकी डालने वाले मनोवैज्ञानिक को मिलते हैं कि सामूहिक सभ्य मानव के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन के युग-युग में परिवर्तित पुनरावर्तित होने वाले रूप उसकी सामूहिक अज्ञात चेतना में निहित प्रवृत्तियों के रहस्यमय परिवर्तन से बनते और बिगड़ते हैं। इसलिए मानवता के लिए सबसे कल्याणकर उपाय यह है कि वह अपनी उस अज्ञात चेतना के गहरे और अधिक गहरे, स्तरों में प्रवेश करके उसके भीतर जड़ जमाने वाली आदिकालीन पशुप्रवृत्तियों की छानबीन और विश्लेषण करे और उस पाताललपुरी की नारकीय अंधकार में बद्ध उन संस्कारों की यथार्थता स्वीकार करके ऐसी तरकीब निकालने का प्रयत्न करे जिससे गलत रास्ते से होकर उन बद्ध प्रवृत्तियों का विध्वंसक विस्फोट न हो: बल्कि उचित मार्गों से उनका नियमित प्रस्फुटन हो न तो उन सामूहिक प्रवृत्तियों के दबाने से काम चलेगा, न ही उन्हें अस्वीकार करने से और न अज्ञात रूप से उनका आकस्मिक विस्फोट करने से।"[1]

जोशी जी ने मानव की अन्तश्चेतना में प्रवेश पाने और उसके अन्दर निहित पशुप्रवृत्तियों के विश्लेषण और शोधन हेतु मनोवैज्ञानिक पात्रों का चयन किया है। कथानकों का धरातल मनोवैज्ञानिक होने के कारण उनके चरित्रों का चयन और सृजन मनोवैज्ञानिक ढंग से ही हुआ है। उनके 'चरित्र' ही उनके उपन्यासों के केन्द्रबिन्दु हैं। जोशी जी ने मानव के अन्तर्मन की चीर-फाड़ के लिए ऐसे चरित्र चुने जो देवताओं के समान बाहर और भीतर एक से न होकर मनुष्यों के समान बाहर से कुछ और तथा भीतर से कुछ और हों।

1- "प्रेत और छाया" 'इलाचन्द्र जोशी' चतुर्थ संस्करण सं0 2035 चित्रलेखा पृष्ठ - 9,10

जोशी जी को अन्तर्मन के भीतर की कमेन्टरी सुनाने के लिए " ऐसे पात्र चाहिए थे, जो मनुष्य को - मनुष्य की सभी कमजोरियों को लिए हुए - स्वभाव से दुलमुल और इतने संवेदनशील हों, कि छोटी से छोटी घटना भी उसके अचेतन को घीरकर अचेतन में एक ग्रंथि बनकर गहरी धंस जाए - - ।"।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार मानव मन के अचेतन के विश्लेषण को अपना मुख्य लक्ष्य मानते हैं।अतः जोशी जी ने भी इसी लक्ष्य को लेकर अपने उपन्यासों की अस्वस्थ चित्त वाले व दुर्बल पात्रों की सर्जना की है,क्योंकि अचेतन के चित्रण हेतु जितना आसानी से दुर्बल पात्र की ग्रंथियां प्रकाश में लायीजा सकती हैं उतनी आसानी से स्वस्थ पात्र की नहीं। जोशी जीके इन दुर्बल, पीड़ित, अस्वस्थ पात्रों के मन कुण्ठाग्रस्त है, इसीलिए वे अपनी मूल-प्रवृत्तियों के वश में हैं। उदाहरण के लिए - 'लज्जा' की नायिका 'लज्जा', 'सन्यासी' का नन्दीकिशोर, 'त्याग का भोग' का नृपेन्द्र रंजन व मन्या, 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ 'पर्दे की रानी' का 'इन्द्रमोहन,' 'मुक्तिपथ' का राजीव और सुनन्दा 'निर्वासित' का महीप, सभी किसी न किसी मानसिक विकृति अथवा कुण्ठा के शिकार हैं। 'लज्जा' उपन्यास की नायिका 'लज्जा' वासनात्मक प्रेम और प्राप्त प्रेमके अन्तर्द्वन्द्व में फंसी है तो 'सन्यासी' का 'नन्दीकिशोर' 'अहं-पीड़ित' है। 'पर्दे की रानी' की निरंजना विपित्र काम-चर्या से परिचालित है तो इन्द्रमोहन मरण-भीरुता से परिचालित है। 'मुक्तिपथ' की 'सुनन्दा' 'यौन-समस्या से पीड़ित है तो 'सुबह के भूले' की 'गुलबिया' 'हीन-भावना' से पीड़ित है। 'निर्वासित' का महीप असफल प्रेमी बनकर 'हीनता की ग्रंथि' से प्रताड़ित हो उठता है।

1- "हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास"- डा० रणवीर रांग्रा संस्करण 1961 पृष्ठ 401

अपनी दुर्बलताओं और जटिलताओं के कारण जोशी जी के पात्र अतिमानव और असाधारण से लगने लगते हैं। वस्तुतः ऐसा नहीं है क्योंकि व्यक्ति के बाह्य से अधिक उसका अन्तः (अचेतन) मन उसको संचालित करता है जिसको बाह्य रूप से चक्षुओं द्वारा हम नहीं देख पाते हैं। उनको देखने के लिए तो मनोवैज्ञानिक नेत्र चाहिए।

जोशी जी को अपने उपन्यासों में पात्रों का भीड़ भड़क्का पसन्द नहीं, इसलिए उन्होंने अपने अधिकतर उपन्यासों में बहुत थोड़े पात्रों से काम चलाया है। उपन्यासों में मुख्य पात्र तो केवल नायक और नायिकाएं ही हैं। कुछ गौण पात्र भी आये हैं जो मुख्य पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश डालते हैं और उनकी गुत्थियों, उनकी जटिलताओं, उनकी अन्य मानसिक समस्याओं के निराकरण में उनकी सहायता करते हैं। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये पात्र दो प्रकार के हो जाते हैं - पहले 'मनोवैज्ञानिक केस' (नायक-नायिकाएं): दूसरे 'मनोविश्लेषक पात्र'। अगर इनके उपन्यासों में मात्र मनोवैज्ञानिक केस ही होते, मनोविश्लेषक पात्र न होते तो शायद नायक-नायिकाएं सभी पाठकों के लिए पहेली बन जाते और उनके उपन्यास मनोवैज्ञानिक गोरखधन्धा बनकर रह जाते। इसलिए मुख्य पात्रों के साथ-साथ कुछ प्रमुख गौण पात्रों की भी सर्जना हुई है।

जोशी जी अपने पात्रों की चरित्र-सृष्टि भी पूर्ण मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा करते हैं। असामान्य पात्रों की असाधारण चरित्रों को वे 'प्रवृत्ति निर्देश प्रणाली' द्वारा निर्दिष्ट करते चलते हैं। उदाहरणार्थ :-

'लज्जा' उपन्यास में 'लज्जा' के मन में डाक्टर कन्हैयालाल के प्रति उत्पन्न घृणा का प्रारम्भ में ही संकेत कर दिया गया है -"घृणा-घृणा।

मेरी सारी आत्मा आज घृणा के भाव से ओत-प्रोत है। मुझ हत्यारी नारी ने आज समस्त प्रकृति को, सारे विश्व को अपने अन्तस्तल की घृणा से लीप पोतकर एकाकार कर दिया है।"[1]

'पर्दे की रानी' में निरंजना के अपने कमरे में बन्द रहने की विपिन्न मनोवृत्ति की ओर संकेत करके जोशी जी पात्र की 'मनोवैज्ञानिक सृष्टि' हेतु आधार तैयार कर लेते हैं। 'सन्यासी' में नन्दकिशोर के 'सन्यासी' बनने की विपिन्न वृत्ति, 'प्रेत और छाया' में पारसनाथ द्वारा कांची को छोड़कर भाग जाने, 'मुक्तिपथ' में राजीव के मन में उत्पन्न विद्रोह की अग्नि का उल्लेख करके जोशी जी ने उनकी कुछ-कुछ असामान्य-वृत्तियों की ओर संकेत कर दिया है 'त्याग का भोग' में रईस नृपेन्द्ररंजन के यतीममनिया की ओर आकृष्ट होने, 'जहाज का पंछी' में निःसहाय नायक द्वारा ईमानदारी का परिचय देने के साथ जोशी जी उनकी अंतर्मन की भावनाओं का दिग्दर्शन कराना प्रारम्भ कर देते हैं।

'अनुभाव चित्रण' के माध्यम से भी जोशी जी ने अपने पात्रों के उठते-गिरते मनोभावों का चित्रण किया है। किसी व्यक्ति की क्षण-विशेष की मनोदशा जानने व समझने के लिए उसके अनुभावों में होने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तनों का अध्ययन बहुत जरूरी है। जोशी जी भी पात्रों के मन के भाव दिखाने के लिए समस्त शारीरिक चेष्टाएं न दिखाकर मुख और आँख की चेष्टाएं अधिक दिखाते हैं। 'प्रेत और छाया' में पारसनाथ जब मोहनी का दरवाजा खटखटाता है तो मोहनी के सामने आने पर "प्रथम क्षण में पारसनाथ ने उसके मुख पर परम विस्मय की भ्रांति का भाव देखा, उसके बाद दूसरे ही क्षण वह भाव कोमल विषाद के एक हल्के से आवरण के रूप में बदल गया और उसके बाद ही तत्काल वह हल्का सा शरदकालीन बादल भी हट गया और निर्मल शुद्ध प्रसन्नता के प्रकाश में उसका

1-"छाया" - 'इलाचन्द्र जोशी' तृतीय संस्करण -1982 पृष्ठ 3

तारा मुख प्रभासित हो उठा।"[1]

'निर्वासित' में भी ठाकुर साहब के यहाँ प्रीति-भोज के पश्चात नीलिमा और रूपा के हावभावों, उनकी मुद्राओं और चेष्टाओं पर महीप और धीराज एकटक आँखों से और एकान्त मन से गौर करते रहते हैं। जैसे उन दोनों के जीवन-मरण की समस्या उन्हीं मुद्राओं और चेष्टाओं पर निर्भर करती हो। "

'मुलाकात' द्वारा अन्तर्भावों के प्रकाशन के उदाहरण हमें 'पर्दे की रानी' और 'प्रेत और छाया' में मिलते हैं। 'पर्दे की रानी' की शीला जब निरंजना से इन्द्रमोहन की उदारता की बातें कर रही थी तो उस समय उसने निरंजना की आँखों को देखा - "उसकी आँखों से कभी एक पुलकपूर्ण भाव झलकता उठता था, कभी एक तीव्र वेदना व्यक्ति होती थी और कभी एक विचित्र व्यंग्य का आभास।"[2]

'प्रेत और छाया' की चाँदनी जब अपने पति मुजौरिया जी के विरुद्ध आग उगल रही थी, तब पारसनाथ को ऐसा जान पड़ा जैसे - "उसके अन्तर की सारी घृणा एकत्रित होकर उसकी आँखों में समाकर उस व्यक्ति के विरुद्ध विस्फोटित होना चाहती हो।"[3]

सुषुप्त अवस्था में अनुभावों के चित्रों द्वारा भी जोशी जी ने पात्र चरित्रोद्घाटन किया है। 'त्याग का भोग' का नायक सुरेन्द्ररंजन मीनाक्षी

1- "प्रेत और छाया" - 'जोशी, चतुर्थ सं० सं० 2035 वि० पृष्ठ 196, 197
2- "पर्दे की रानी " - 'जोशी, संशोधित संस्करण 1983 ई० पृष्ठ 152
3- "प्रेत और छाया" - 'जोशी, चतुर्थ सं० सं० 2035 वि० पृष्ठ 273

(जो कि तो रही थी) के मुख पर व्यक्त सूक्ष्म परिवर्तनों को पढ़ रहा था-

"वह प्रगाढ़ निद्रा में मग्न थी, किन्तु उसके कपाल की नसें, पलकों का स्नायुतन्त्र ओठों की त्वचा जैसे किसी अज्ञात अनुभूति से प्रतिपल नयी-नयी चेष्टाओं के साथ चालित हो रहे थे। कभी वह अपनी भौंहों को सिकोड़ती थी, जैसे किसी निर्मम पीड़ा से कराहना चाहती हो।"[1]

शारीरिक प्रतिक्रिया द्वारा चरित्र-चित्रण में जोशी जी काफी समर्थ हैं। 'मुक्तिपथ' की सुनन्दा की सूक्ष्म अनुभूतिशीलता का एक चित्र उसकी शारीरिक प्रतिक्रिया द्वारा इस प्रकार प्रकट हुआ है :-

"सुनन्दा पत्थर की मूर्ति की तरह स्तब्ध खड़ी रह गयी, शरीर का सारा रक्त जमकर जैसे बर्फ बन गया। वह तत्काल झटककर घर से भागकर निकल जानाचाहती थी, पर पांवों पर जैसे किसी ने कील ठोंककर फर्श पर जमा दिया हो। जीभ जैसे सूखकर लकड़ी हो गयी थी। एक मिनट तक वह उसी अवस्था में खड़ी रही। उसका सिर झन-झन करने लगा। चक्कर खाकर गिरना ही चाहती थी कि प्रबल इच्छाशक्ति से उसने अपने मन को संभाला।"[2]

जोशी जी के उपन्यासों के पात्र जीवन भर संघर्षों के पाटों के बीच पिसते रहते हैं परन्तु उनका यह संघर्ष अपने भीतर की वृत्तियों से होता है। द्वन्द्व उनके जीवन का अनिवार्य अंग है। वे अपनी वृत्ति जनित यातनाओं की भट्ठी में निरन्तर जलते रहते हैं। क्षण भर को भी उनका जीवन शान्त नहीं दिखता। जब तक चेतन जीवित रहता है तब तक वे शिष्ट व्यवहार करते हैं परन्तु जैसे ही चेतन ढीला पड़ जाता है, अचेतन उसके अंकुश को उतारकर फेंकता

1- "त्याग का भोग" -'इलाचन्द्र जोशी' तृतीय सं० 1972 ई० पृष्ठ 56
2- "मुक्तिपथ" -'इलाचन्द्र जोशी' पेपर बैक संस्करण 1983 पृष्ठ 98

है। कुंठित प्रवृत्तियाँ अपने नग्न रूप में नाचती हुई पात्र को असन्तुलित कर देती हैं। आरम्भ से ही अचेतन के हावी हो जाने से पात्र ग्रंथिग्रस्त होकर विकृत मना हो जाते हैं। चेतन और अचेतन के द्वन्द्व तो 'पर्दे की रानी', 'सन्यासी' और 'प्रेत और छाया' में अधिक खिलते हैं। 'पर्दे की रानी' की निरंजना का मन अब तक यह भूला रहता है कि वह एक वेश्या माता और खूनी-पिता की सन्तान है, अब तक तो सभ्य व्यवहार करती है परन्तु जैसे ही अचेतन मन पर पड़ा झीना दुकूल हटता है, उसका सारा व्यक्तित्व एक राक्षसी भुकम्प से थर-थरा उठता है। 'प्रेत और छाया' का नायक पारसनाथ 'ईडिपस-ग्रंथि' से चालित होकर नारी-मात्र से घृणा करने लगता है। अन्तर्द्वन्द्वों से जूझता हुआ पारसनाथ अन्त में यह जानकर कि वास्तव में उसकी माँ व्यभिचारिणी नहीं है, स्वस्थता की ओर बढ़ता है।पात्रों के अन्तर्द्वन्द्वों व उनकी मानसिक जटिलताओं व ग्रंथियों को सुलझाने के लिए जोशी जी ने कुछ मुख्य मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का सहारा लिया है। 'चरित्रों' के विकास के लिए आत्मविश्लेषण प्रणाली, डायरी प्रणाली, पूर्वस्मृति, बाधाकता-विश्लेषण, केस हिस्ट्री, चित्र-विश्लेषण, शब्द सहस्मृति , सम्मोह-विश्लेषण, अन्तर्दर्शवाद, मुक्त आलंब, प्रणाली, स्वप्न विश्लेषण और मनोविश्लेषण तथा मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ जोशी जी ने बहुतायत से प्रयुक्त की हैं। जोशी जी को आत्मविश्लेषण की प्रणाली इतनी प्रिय है कि उनके पात्र हर समय स्वचरित्र प्रकाशनार्थ आत्मविश्लेषण का अवसर ढूँढते रहते हैं। 'सन्यासी' में नायक मन्दीक्षोर जब शांति के साथ भागता है तो वह आत्मविश्लेषण करता हुआ कहता है:-

"मेरे बाह्य मन का आदर्श चाहे कितना ही ऊँचा हो, पर मेरा अन्तर्मन तो जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों से गठित मानव-प्रकृति के विरुद्ध नहीं जा सकता था। भागने के समय मेरे भीतरी मन का यह पाप स्वयं मुझसे

"मैं इस विजन विश्व में अकेला हूँ, इस अनुभूति की वेदना कैसी तीव्रता से नित्य मेरे मर्म को विद्ध करती है। इस वृहद् संसार में एक व्यक्ति भी मेरी यातनाओं का, मेरी भावनाओं का साथी नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने दिन-रात के सांसारिक चक्र में व्यस्त है, और मैं अकेला रात्रि के गहन अंधकार में तारों को गिनता हूँ। "[1] 'निर्वासित' भी धीराज की डायरी उसके जीवन दर्शन पर प्रकाश डालती है।

पात्रों के अंतर्मन की झांकी दिखाने के लिए जोशी जी ने चहेरा-चेक (पूर्व स्मृति) प्रणाली का सुन्दर उपयोग किया है। 'सन्यासी' में शांति के चले जाने के बाद नन्दकिशोर पूर्वस्मृतियों में डूबता हुआ अपनी मनःस्थिति का वर्णन करता है :- "जब से मेरा शांति से परिचय हुआ था, तब से एक-एक घटना मायालोक के विचित्र छाया स्वप्न की सृष्टि की तरह जागरित होकर मेरे मन और मस्तिष्क को आच्छन्न करने लगी। ये सब छाया चित्र मिलकर कभी मुझे डंक मारते थे, कभी तीखी कटीली वेदना से विद्ध करते थे और कभी एक अपूर्व पुलक के संचार से मेरे मन को और आत्मा को एक अवर्णनीय अनुभूति से सम्मोहित करते थे। "[2]

मनोविज्ञान की प्रणालियों का अनुसरण करते हुए जोशी जी ने सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) प्रणाली का उपयोग 'छाया का भोग', 'प्रेत और छाया' तथा 'पर्दे की रानी' में मुख्यतः किया है। पात्रों की उलझी हुई रहस्यात्मक वृत्तियों को प्रकाश में लाने के लिए सम्मोहन-विद्या का प्रयोग प्रायः मनोवैज्ञानिक, उपन्यासों का प्रिय खेल है। 'पर्दे की रानी' में निरंजना, मनमोहन जी से

1- "सन्ध्या" - 'इलाचन्द्र जोशी' तृतीय संस्करण - 1982 ई० पृष्ठ 146
2- "सन्यासी"- 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति, सं० 2030 वि० पृष्ठ 254

अपनी माँ की हत्या की बात सुनकर मोहाविष्ट हो जाती है :- "मनमोहन जी का बोलना मुझे ऐसा लग रहा था जैसे दूर-दूर पृथ्वी की सीमा-रेखा पार किसी अन्धकार पूर्ण शैतान लोक से एक विषवाणी ईथर में तरंगित होती हुई मेरे मस्तिष्क के यन्त्र से टकराकर अत्यन्त निर्दयता के साथ निरन्तर गूँज रही है।"[1] 'त्याग का भोग' में नृपेन्द्र रंजन द्वारा मन्या को सम्मोहित करके उसके चरित्र का उद्घाटन जोशी जी ने किया है। 'मुक्तिपथ' में राजीव के मुख से बन्धनमुक्त होने का आवाहन सुनकर सुनन्दा मोहाविष्ट हो जाती है:- "पर उस" समाधि की सी अवस्था में भी राजीव का एक-एक शब्द, उसकी अवचेतना में अपने निश्चित, निर्धारित स्थान पर बैठता जा रहा था, जैसे कोई रहस्यमयी शक्ति उसके अन्तःपट पर उन शब्दों को टाईप करती चली जा रही हो, या किसी प्लान्चेटनुमा रहस्यात्मक यन्त्र द्वारा किसी दूर-स्थित आत्मा का सन्देश उस पर लिखा जा रहा हो।"[2] स्पष्टतः वही पात्र सम्मोहित होते हैं जो आत्मविश्वास की कमी वाले होते हैं, जिनमें मनोबल का अभाव रहता है। उदाहरणार्थ - जब 'प्रेत और छाया' की मन्या जब तक आत्म विश्वास से रहित थी जब तक वह नृपेन्द्र की सम्मोहन-कला का शिकार बनी लेकिन जैसे ही उसमें आत्म-विश्वास जाग्रत हुआ, वैसे ही सम्मोहन का असर उस पर से जाता रहा।"[3] सम्मोहक पात्र वही होते हैं जो निर्बल इच्छा शक्ति वाले व्यक्तियों के चरित्र को निम्न करने की इच्छा रखते हैं। अहंग्रस्त पात्र अधिकतर सम्मोहन विद्या का प्रयोग करते हैं। 'सम्मोहन'

1- "पर्दे की रानी" -'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण 1983 ई० पृष्ठ 126

2- "मुक्तिपथ" - 'इलाचन्द्र जोशी' 48, 49

3- "त्याग का भोग" - 'इलाचन्द्र जोशी' पन्द्रहवाँ परिच्छेद

के बारे में जोशी जी कहते हैं - "हिप्नोटिज्म् की जो कला वास्तविक रूप में प्रभावोत्पादक सिद्ध होती है वह किसी के सिखाये से आयत्ताधीन नहीं होती कुछ विशिष्ट बाह्य नियमों के यथातथ्य पालन से वह सच्चे रूप में फलित नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ विशेष असाधारण क्षण ऐसे आते हैं जब अन्तश्चेतना का कोई विशेष सुप्त भाग सहसा स्वतः जाग्रत हो उठता है, और इस उदात्त अवस्था में वह इच्छित व्यक्ति पर जैसा भी प्रभाव डालना चाहता है उसमें निश्चित रूप से सफल होता है।"[1]

जोशी जी के इस उद्धरण के सम्बन्ध में जब हम सिल्विया की इस कला के दर्शन करते हैं तो पाते हैं कि उसने मनिया के अन्तर्मन की गहरी खुदाई करके अभीष्ट बीज-वपन किया है।

पात्रों के आन्तरिक उद्वेलन और पापग्रन्थि के उद्घाटन के लिए जोशी जी हेल्युसिनेशन विधि अपनाने में भी नहीं चूकते। पात्रों के मन में पड़ी ग्रंथियों का विश्लेषण जोशी जी ने हेल्युसिनेशन (निराधार प्रत्यक्षीकरण) द्वारा 'सन्यासी' में किया है। सियारों की आवाज सुनकर नन्दकिशोर के दुष्कृत्य उसके नेत्रों के सम्मुख नाच उठते हैं - "शांति की स्मृति को अब तक अंतस्तल में छुपाये रहोगे। वह मृत्यु पर्यन्त पल भर के लिए तुम्हें चैन नहीं लेने देगी। जितनी गहराई में उसे दबाओगे उतने ही प्रवेग से वह मौका पाते ही- ऊपर को उछल पड़ेगी।"[2]

'प्रेत और छाया' में जब भी पारसनाथ और मंजरी मिथुन करने की स्थिति में आते हैं मंजरी की मृतमाता की विकराल प्रेतात्मक छाया पारसनाथ के सामने नाच उठती है। हालांकि यह उसका भ्रम है। यह मात्र उसके अचेतन में

1- "त्याग का भोग' - इलाचन्द्र जोशी, तृतीय संस्करण 1972 ई० पृष्ठ 49, 50
2- "सन्यासी" - 'इलाचन्द्र जोशी', सप्तम आवृत्ति सं० 2030 वि०
पृष्ठ 389

दबी पापवृत्ति और भय भावना है।

स्वप्न विश्लेषण' द्वारा भी जोशी जी ने चरित्रसृष्टि की है। "जोशी जी के पात्रों के अचेतन मन में दबी पड़ी दुःखद अनुभूतियां जो उनकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं को जन्म देती हैं, बीच-बीच में उनके स्वप्नों तथा दिवास्वप्नों में भी अभिव्यक्ति पाती रहती है।"[1] इनके पात्रों के स्वप्नों में दबी मैकेनिज्म मिलती है जो फ्रॉयड ने बतलाई है। 'जहाज का पंछी' उपन्यास में 'कन्डेन्सेशन मैकेनिज्म द्वारा नायक के बचपन के घर पड़ोस और पास पड़ोस को बचपन में खेले मेले आदि सभी एक स्वप्न में मिलते हैं। इसी के साथ लीला भी आती है और 'डिस्प्लेसमेंट मैकेनिज्म' द्वारा नायक की अपनी भावनाएं उससे हटकर लीला की भावनाओं के रूप में प्रकट होती हैं। भागना वह चाहता है पर स्वप्न देखता है कि लीला भाग रही है। 'प्रेत और छाया' में मंजरी का वह स्वप्न, जो वह अपनी मां की चारपाई के पास देखती है, 'डामेटाईजेशन मैकेनिज्म ' द्वारा उसके दुःखात्मक जीवन की चिन्ताओं और एकाकीपन को पुष्ट करता है- "वह प्रेत और छायाओं के किसी घोर दुःस्वप्न लोक में किसी दुर्गम पहाड़ी पथ पर एकाकी चली जा रही है- किसी अज्ञात रहस्यमय अनिर्दिष्ट स्थान में बसेरा ढूंढने के लिए जैसे समय बहुत कम है और चलने में शीघ्रता न करने से अनन्त अन्धकारमय काल रात्रि उसे चारों ओर से घेरकर अपने विकराल जबड़ों से डस लेगी, वह हाँफती हुई, ठोकरें खाती हुई केवल चली जा रही है, कहाँ पहुँचने पर उसे विश्राम मिलेगा, इसका कुछ भी भान उसे नहीं है।"[2]

इस प्रकार जोशी जी की चरित्र सृष्टि में फ्रॉयड द्वारा वर्णित सभी

1- "हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास" - डा० रणवीर रांगा संस्करण 1961 पृष्ठ 419

2- "प्रेत और छाया" - 'इलाचन्द्र जोशी' चतुर्थ संस्करण - सं० 2035 वि० पृष्ठ 119

'स्वप्न संघटन' (ड्रीम मैकेनिज्म) काम करते दिखाई देते है।

'केस हिस्ट्री विधि' (पूर्व वृत्तात्मक विधि) भी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चरित्रों की अनुभूतियों को एकत्र करने में काफी उपयोगी होती है। इलाचन्द्र जोशी ने 'जहाज का पंछी' उपन्यास में इस प्रणाली का जमकर प्रयोग किया है। पात्रों के पूर्ववृत्त उनकी अपनी जुबानी में मिलते है जो उनकी स्थितियों जटिलताओं, गहन अनुभूतियों के चित्र खींचते है। मिस लाइमन के चक्कर में काम करने वाली सुजाता, अमला, तुलिया आदि के पूर्ववृत्त, करीम बाबा की आप बीती ये सब पूर्ववृत्त मानसिक यंत्रणाओं, विक्षिप्तताओं आदि के कारणों पर प्रकाश डालते हैं। ये स्त्री पात्रों के पूर्ववृत्त तो मुख्यत: उनकी 'अतृप्त सेक्स वृत्ति' को दर्शाते हैं तथा पुरुष पात्रों के पूर्ववृत्त 'आर्थिक समस्याओं से 'जुड़ते मानसिक असन्तुलन' को व्यक्त करते हैं।

पात्रों के मन: रोगों को पकड़ने के लिए जोशी जी ने 'शब्द-सह-स्मृति' (वर्ड एसोशिएशन टेस्ट) परीक्षण भी अपनाया है। 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ 'विवाह' शब्द सुनकर चौंक उठता है और एकदम भाग जाता है। इसके द्वारा स्पष्ट है कि अपने मां-बाप के वैवाहिक-जीवन को देखकर उसे 'विवाह' शब्द ही घृणित लगने लगा। उसके जीवन की दु:खद घटना सामने आ गयी। 'त्याग का भोग' में नृपेन्द्र के लिए 'भीरू' शब्द चौंकाने वाला लगता है। इसके द्वारा उसे अपनी मां की आत्मा की आवाज सुनाई देती है। 'जहाज का पंछी' में लीला जब 'गंगा-यमुना में आँसू जले सुनती है तो उसकी आँखे गीली हो जाती हैं।

चित्र प्रदर्शन द्वारा जोशी ने नीन्दनी के भीतरी (अचेतन) व्यक्तित्व की चीरफाड़ की है।

'मुक्त-आलंग प्रणाली' (फ्री एसोशिएशन) द्वारा जोशी जी ने '

'निर्वासित' के धीराज के व्यक्तित्व का दर्शन कराया है। जब सम्मोहन प्रणाली में सम्मोहक के साथ पात्र तदात्मीकृत नहीं हो पाता है तो पात्र को आराम से मित्रवत् भाव के साथ अपनी विगत घटनाओं या अनुभूतियों का वर्णन करने को कहा जाता है। वातावरण तैयार होते ही पात्र अपना मन का बोझ हल्का करने लगते हैं। 'धीराज' का मुक्त आलाप रूप में मन को खोलकर रख देना वास्तव में जोशी जी के चरित्रांकन का उत्कृष्ट नमूना है।

'बाधकता-विश्लेषण' द्वारा निर्वासित का धीराज पुनः अपनी कहानी सुनाता जाता है। महीप एक मनश्चिकित्सक बनकर धीराज की संकोच दूर करता है।

'अंतर्विवाद' द्वारा भी जोशी जी ने चरित्रसृष्टि की है लेकिन वह उतनी सफल नहीं है। यद्यपि यह विधि आत्मकथात्मकता के कारण अनिवार्य हो गयी है।

इन सब प्रणालियों के अतिरिक्त जोशी जी के चरित्रांकन की सबसे प्यारी विधि है- मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या देना जोशी जी की चरित्र-चित्रण की कला का नमूना है। जोशी जी ने मनोविश्लेषण को इसलिए अपनाया जिससे पात्रों के अचेतन मन की निर्मम चीरफाड होकर वह बिलकुल स्वस्थ हो जाए। इलाचन्द्र जोशी जी के अधिकांश नायक और नायिकाएं न्यूरोटिक हैं। उनका अचेतन किसी न किसी ग्रंथि से ग्रसित है जो उसे शांति से जीने नहीं देती है। फ्रायड के अनुसार- रोगी को उसकी कुण्ठा से परिचित करा देने से वह अपने को हल्का महसूस करता है।

इलाचन्द्र जोशी ने 'लज्जा', 'सन्यासी', 'निर्वासित,' 'पर्दे की रानी', 'त्याग का भोग', 'मुक्तिपथ', 'जहाज का पंछी' आदि सभी उपन्यासों में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति अपनायी है। रुग्ण-ग्रस्त पात्रों के मानसिक रोगों की पीरफाड़ 'मनोविश्लेषण' द्वारा सरलता से की जा सकती है। जोशी जी मानव मनोविज्ञान के अद्भुत पारखी हैं। अतः पात्रों की प्रत्येक क्रिया और व्यवहार को दर्शाने के लिए उन्होंने पात्रों द्वारा मनोविश्लेषण करवाया है। जोशी जी के उपन्यासों के पात्र स्वंय का तो मनोविश्लेषण करते ही हैं, अन्य पात्रों की गुत्थियां सुलझाने के लिए भी मनोविश्लेषण करते हैं। 'सन्यासी' का नायक नन्दकिशोर अपने मन का विश्लेषण इस प्रकार करता है- "सच बात तो यह थी कि ईर्ष्या के भाव ने क्षण-भर एक पल के लिए भी मेरा साथ नहीं छोड़ा था। अन्तर केवल इतना ही था कि किसी समय वह मन के एकदम भीतर दब जाता था और कभी बाहरी सतह पर आकर उथल-पुथल मचाने लगता था।"[1]

'पर्दे की रानी' में जब गुरुजी अपनी शादी करते हैं उस समय निरंजना अपने मन का विश्लेषण करती हुई कहती है:- "वास्तव में मेरे भीतर एक भयंकर उथल-पुथल मचने लगी थी। गुरुजी के विवाह की सूचना पाते ही मेरे हृदय को अप्रत्याशित रूप से एक जबर्दस्त धक्का लगा जिसके कारण विचित्र प्रकार की भावनाएं तल से उठकर उमड़-उमड़ कर ऊपर सतह की ओर आने लगीं। उन सब अस्पष्ट भावनाओं में से एक का रूप मेरे आगे कुछ स्पष्ट सा हो रहा था। उसमें निश्चय ही ईर्ष्या का समावेश था पर वह ईर्ष्या भी एक विचित्र प्रकार की। उसमें अभिमान की एक सुलगुलाहट भी थी। पर क्यों यह ईर्ष्या ? किसलिए यह

1- "सन्यासी" -'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति - सं० 2030 वि० पृष्ठ 210

अभिमान ?"[1] इतना ही नहीं टेलीपैथी द्वारा भी जोशी जी पात्रों को खोलने में कोई दिक्कत नहीं दिखाते हैं। 'त्याग का भोग', 'निर्वासित' में यह विधि देखने को मिलती है।

इस तरह जहां एक ओर जोशी जी अपने उपन्यासों में मनोविकृत और असाधारण पात्रों को स्थान देते है, वहीं दूसरी ओर उनके चरित्रांकन के लिए परम्परागत विधियों के अतिरिक्त नवीन मनोवैज्ञानिक विधियों भी अपनाते है। चरित्र-सृष्टि में जोशी जी का यह निरालापन उन्हें मनोवैज्ञानिक चरित्र-प्रधान उपन्यासों का जनक बना देता है। 'चरित्रांकन' के समय लेखक की स्थिति चित्रकार के समान रहती है जिस प्रकार चित्रकार की तूलिका की एक ही रेखा चित्र के स्वरूप को बना और बिगाड़ सकती है, उसी प्रकार रचना में पात्रों के चरित्र-चित्रण की उपयुक्त शैली औपन्यासिक पात्रों को अमर भी बना सकती है - - - - -।"[2]

जोशी जी ने भी चरि-चित्रण की उपयुक्त मनोवैज्ञानिक शैलियों द्वारा अपने पात्रों को अमर नहीं लेकिन अविस्मरणीयबना दिया है।

(4) देशकाल और वातावरण में मनोविज्ञान और उसका विश्लेषण :-

उपन्यास में मानव-जीवन का ही चित्रण होता है। अतः पात्रों का चरित्र देश-काल की परिस्थितियों में सजीव रूप से प्रकट होना अनिवार्य है।

1- "पर्दे की रानी" - 'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण 1983 ई० पृष्ठ 210, 211

2- "जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन" - डा० बलराज सिंह राणा प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 36

बाबू गुलाब राय के अनुसार -

"जिस प्रकार अंगूठी में जड़े जाने पर ही नगीने की शोभा होता है, उसी प्रकार देशकाल की पृष्ठ भूमि के साथ ही घटनाओं और पात्रों का व्यक्तित्व पूरी तौर पर उभरकर स्पष्ट होता है।"[1]

जीवन की सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक सभी परिस्थितियों का प्रकाशन उसमें अनिवार्य होता है। सामाजिक, राजनैतिक उपन्यासों में देशकाल- वातावरण की प्रधानता रहती है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में भी पारिवारिक और सामाजिक वातावरण का सृजन होता है। लेकिन अन्तर्जगत् की भावभूमि पर उतरने के कारण 'मानसिक-वातावरण' इन उपन्यासों की मांग होता है।

जोशी जी उपन्यासों में बाह्य वातावरण की अपेक्षा मानसिक वातावरण अधिक प्रबल है। "उनके उपन्यासों में वातावरण केवल प्राकृतिक सौंदर्य की छटा दिखाने अथवा बाह्य परिस्थिति का उद्बोधक न होकर, पात्र मनःस्थिति से संयोजित है। उन्होंने पात्र के सुख-दुःख, हर्ष-शोक, आशा-निराशा अथवा ईर्ष्या-अनुराग के सजीव चित्रण के लिए वातावरण का उपयोग किया है।"[2]

जोशी जी के उपन्यासों में यदि हमें विकृति-चित्रण भी देखने को मिलता है, तो वह पात्रों की मनःस्थिति के ही अनुरूप रहता है। उदाहरणार्थ - 'सन्यासी' में जहाँ एक ओर जोशी जी चन्द्रोदय दिखा रहे हैं, वहीं उनके नायक नन्दकिशोर के मन के भाव भी उससे तादात्म्यीकृत हो उठे हैं:-"बहुत देर तक योगनिद्रा की सी अवस्था में स्थिर, अचल बैठा रहा। आखिर पूर्व की

1- "सिद्धान्त और अध्ययन" - 'बाबू गुलाब राय' पंचम संस्करण 1975 पृष्ठ 102

2- "हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास"- डा० श्रीमती ओम शुक्ल संस्करण जुलाई 1964 पृष्ठ 287

ओर नवोदित चन्द्रमा का पिंगलालोक विभासित होता हुआ दिखाई दिया। ज्यों-ज्यों वह और चढता गया, उसका प्रकाश भी रजतोज्ज्वल रूप धारण करने लगा। सारी सैकत भूमि निर्मल हास की शुभ्र छटा से पुलकित, अनिर्वचनीय आनन्द के अकूल प्लावन से विमोहित हो उठी।"[1] 'लज्जा' में भी सान्ध्य-कालीन वातावरण लज्जा की मनःस्थिति को द्योतित करता है :-

"बाहर अभी थोड़ा बहुत उजाला था, पर भीतर अँधेरा होने लगा था ----- सान्ध्यकाल की इस विशेष घड़ी में ही कोई अलौकिक माया वर्तमान रहती है मेरा ही मानसिक अवस्था उस समय विकृत हो गयी थी, मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकती पर एक प्रकार की अभूतपूर्व चंचलता से मेरा हृदय आन्दोलित होने लगा । मैं सुख-दुःख और जीवन-मृत्यु के अतीत आनन्द की एक अनिर्वचनीय वेदना का अनुभव करने लगी।"[2] 'पर्दे की रानी' में भी प्राकृतिक छटा के वर्णन से पात्र की मनःस्थिति का उद्घाटन हुआ है। इन्द्रमोहन के साथ केम्पटी फाल' देखने गयी निरंजना ने जब झरने को देखा तो उसे लगा कि झरना केवल बाह्य प्रकृति में ही नहीं बह रहा है, वह तो उसकी अन्तःप्रकृति में भी बह रहा है।- "मुझे ऐसा लग रहा था जैसे निर्झर की धाराएं केवल बाह्य प्रकृति में ही नहीं फूट रही है, बल्कि मेरे भीतर की प्रकृति की सहस्रों अन्धगुहाओं से भी अनन्त-स्रोत मुक्त वेग से उमड़ चले हैं। ----- ---आज वर्षों बाद प्रथम बार मैंने अपनी आत्मा में एक अनिर्वचनीय निर्मलता का अनुभव किया और सब प्रकार की ग्लानि के भार से उसे मुक्त पाया। मुझे ऐसा बोध होने लगा कि पाप और पुण्य, सुख और दुःख के जो-जो अनुभव मुझे जीवन में हुए हैं वे सब अत्यन्त तुच्छ है, वह निर्झर जिस प्रकार

1-"संन्यासी" -'इलाचन्द्र जोशी', सप्तम आवृत्ति, सं० 2030 वि० पृष्ठ 79, 80
2-"लज्जा" - 'इलाचन्द्र जोशी', तृतीय संस्करण, 1982 ई० पृष्ठ 121

कठिन पाषाण-खण्डों और हरित-तृण तरुओं से आच्छन्न कोमल स्थानों के ऊपर समभाव से बहा चला जा रहा है- न एक के ऊपर टकराने का उसे कोई दुःख है, न दूसरे के ऊपर स्निग्ध गति से बहने में कोई सुख उसी प्रकार मुझे भी अपने जीवन की गति को तदनुरूप बनाना होगा: न कठोर संघर्षों से मुझे शंकित होना चाहिए, न अति-कोमल परिस्थितियों में सुलोलित सुख का अनुभव करना चाहिए।"[1] 'प्रेत और छाया' के सोलहवें परिच्छेद के अन्त में जोशी जी ने 'सूर्यास्तकाल" द्वारा मंजरी की मन:स्थिति का उद्घाटन किया है। जिससे एक प्राकृतिक घातापूर्ण मानसिक वातावरण बन उठा है :- "उस पेड़ के पास ही एक मन्दिर का बुर्ज डूबते हुए सूर्य की सुनहली आभा से चमक रहा था। उस पर झलकता हुआ प्रकाश मंजरी को, न मालूम क्यों, एक अपूर्व रहस्यमयी आशा से काँपता सा लग रहा था। - - - -
उसे ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे चौबीस घंटों के भीतर, मृत्यु के सदृश योजन-व्यापी महासागर में डूबती उतराती हुई, वह अचानक, अप्रत्याशित रूप से फिर एक बार जीवन के तट पर आ पहुँची हो।"[2]

जलाचन्द्र जोशी ने प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन द्वारा पात्र की मन:स्थिति के अनुकूल वातावरण तैयार किया है। अन्तर्जगत् की प्रधानता के कारण सम्पूर्ण वातावरण पात्रों के मनोभावों से लिप्त दिखाई देता है। डा० मधु जैन लिखती हैं - " वस्तुत: इन [मनोवैज्ञानिक] कथाकारों के समक्ष बाह्य-जगत की अपेक्षा आन्तरिक-जगत् की प्रधानता रहती है। उनके पात्र संसार की राहों में भटकने की अपेक्षा मन की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर विचरते दिखाई देते हैं। मानों

1- 'पर्दे की रानी" - 'जलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण 1985 ई० पृष्ठ 176

2- 'प्रेत और छाया"- 'जलाचन्द्र जोशी' चतुर्थ संस्करण सं० 2035 विक्रमी पृष्ठ 140

संसार का उनके लिए कोई अस्तित्व ही न हो। यही कारण है कि इन कथाकारों का वातावरण पात्रों की भावनाओं से ओत-प्रोत दिखाई पड़ता है।"[1]

इलाचन्द्र जोशी जी ने भी वातावरण के इसी रूप को अपनाया लक्ष्य बनाया है। उन्होंने मानसिक-वातावरण सृजन हेतु कई विधियां अपनायी हैं जिनमें प्रमुख :-

1- संगीत द्वारा वातावरण निर्माण

2- मनःस्थिति द्वारा वातावरण निर्माण

3- आत्मकथा द्वारा वातावरण निर्माण

संगीत द्वारा वातावरण -सृजन आज के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार को बहुत प्रिय है। अज्ञेय, जोशी तो इस कला में माहिर हैं। कहीं बांसुरी की मादक-धुन मादक-वातावरण निर्मित करती है, तो कहीं पियानों की मधुर-आवाज स्वप्निल वातावरण निर्मित करती है। उदाहरणार्थ - जोशी जी के प्रथम उपन्यास 'लज्जा' में जब लज्जा का भाई राजू (रंजन) संगीत की पार-वाद्य धुनें निकालता है तो लज्जा का मन स्वप्निल हो उठता है:- " और मैं? मैं रह-रहकर इस आनन्दमय संगीत की तरंगों से कंपित होती जाती थी। कॉलेज की लड़कियों के गाम्भीर्य-हीन हास-विलास से उकताकर, घर के विषाद मय और वैचित्र्यहीन जीवन से घबराकर मैं इस अनन्त-सृष्टि में अपने को अकेली, असहाय, निःसंगिनी और उपेक्षिता समझ रही थी। आज का यह संगीत मुझसे कहने लगा - 'इस विपुल जीवन में तुम्हारी भी सार्थकता है - तुम भी एक दिन संसार भर के पुजारियों की मुग्ध पुजारिनों की पूजा पाकर नारी का सौन्दर्य विभासित यौवनोन्मत्त जीवन सार्थक करोगी।"[2]

1-"यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण " डा० मधु जैन
प्रथम संस्करण 1977, पृष्ठ 383

2-"लज्जा" - 'इलाचन्द्र जोशी' तृतीय संस्करण 1982 ई पृष्ठ 32

'सन्यासी' के पच्चहत्तरवें परिच्छेद के अन्त में जयन्ती नाव में बैठकर गाना गाती है- "अकेली न जइयों राधे जमुना के तीर। तो नन्दीकिशोर पर इस गीत का क्या मानसिक प्रभाव पड़ा देखिए :- " प्रभात की शीतल वायु के मन्द झकोरों से उनकी घूर्ण- झलकें मृदु-मृदु दोलित हो रही थीं, पलकें झुम-झुम पड़ती थीं, उनका सारा मन, सारी आत्मा एक अलौकिक उन्माद के रस में परिपूर्ण रूप से निमग्न होकर भाव विभोर हो रही थी। मैं मन्त्र मुग्ध के समान विह्वल होकर उसकी उस समयकी अपरूप छवि को निहार-निहार कर एक अवर्णनीय मधुर-वेदना की पुलक से विकल हो रहा था, और उस स्वर्गिक संगीत की स्वर लहरी में अपनेपन को बहाकर सब सुध-बुध खोये बैठा था। मेरे मन की आँखों, जो कुछ समय से मेरे भीतर के गहन अँधकार में बन्द पड़ी थीं, एकाएक खुल गयीं और उनके आगे एक निराली, चित्रमय रंगीनी छा गयी।"[1]

इसी प्रकार 'पर्दे की रानी' उपन्यास में भी जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक वातावरण की सृष्टि संगीत द्वारा ही की है। जैसे ही इन्द्रमोहन जी प्यानो के तारों को टुनटुनाना शुरू करते हैं निरंजना को उसकी स्वरलहरी मोहाविष्ट करने लगती है उसके मन के तार ढीले पड़ जाते हैं और उसका चरित्र सामने आने लगता है - "उस आश्चर्यजनक शब्द-तरंग का उन्मादकारी प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया और धीरे-धीरे मेरी शिराओं और धमनियों में प्रवाहित होने वाली रक्त धाराएं पूर्ण वेग से उमड़ उठीं। एक ऐसी विचित्र अनुभूति से मेरे समस्त शरीर, मन और आत्मा में अस्थिरता आ गयी कि उसका ठीक-ठीक वर्णन करना मेरे लिए साध्यातीत है। मैंने यह स्पष्ट अनुभव किया कि मेरे मन के अतल गह्वर में एक अनोखी मंथनक्रिया चलने लगी, जिसके फलस्वरूप

1-"सन्यासी"-'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति, सं० 2030 वि० पृष्ठ 351

प्रेम और घृणा, राग और द्वेष, पीड़न और प्रतिहिंसा तथा और भी बहुत सी प्रवृत्तियाँ एक-एक करके उमड़ कर ऊपर को आने लगीं और उन सबके मिश्रण से एक विराट घृणित जाल ने मेरे मन की ऊपरी सतह को चारों ओर से छा लिया।"[1]

'जहाज का पंछी' उपन्यास में भी गीतों द्वारा वातावरण का सृजन किया गया है।

पात्रों की आत्मकथा द्वारा भी जोशी जी ने प्रसंगानुकूल मानसिक वातावरण सृजित किया है। पात्र अपनी विवृत्तियों की गाथा सुनाते-सुनाते कारुणिक वातावरण उपस्थित कर देते हैं। उदाहरणार्थ - 'संन्यासी' में जयदेव और शान्ति की आत्मकथाएँ करुणा पूर्ण वातावरण निर्मित करती हैं। 'प्रेत और छाया' में मंजरी की आत्म विश्लेषण, निर्वासित में शारदा तथा धीराज के आत्मकथात्मक विश्लेषण कथा के विकास के दृष्टिकोण से यथोचित वातावरण उत्पन्न करते चलते हैं। 'त्याग का भोग' में मन्मथा और वीरेन्द्र की आत्मकथाएँ भी उचित मानसिक वातावरण तैयार करके पात्रों की वृत्तियों का उद्घाटन करने के साथ-साथ कथा-विकास में भी योग देती हैं।

मनःस्थिति द्वारा मानसिक वातावरण का सृजन मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। अतः जोशी जी के समस्त उपन्यासों में मनःस्थिति के चित्रण मानसिक वातावरण तैयार करते हैं। उदाहरणार्थ— 'निर्वासित' में महीप की रूढ़ भावनाओं के चित्रण द्वारा जोशी जी ने मानसिक वातावरण तैयार किया है:-

---

1.- "चर्दे की रानी" - 'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण 1983 पृष्ठ 59

"उस नये टायरों वाले तांगे के चलने से जो एक सनसनाहट की आवाज आ रही थी, वह घोड़े की निरन्तर गतिशील टापों की आवाज से मिलकर जैसे - आसन्न-रात्रि के निविड़ वायुमण्डल में एक अत्यन्त वेदना के दलित हाहाकार की उच्छ्वासित श्वासें फूंक रही थी - - - ।"[1]

'लज्जा' उपन्यास में मनःस्थिति के चित्रण द्वारा वातावरण सृजित किया गया है। उदाहरणार्थ - जब 'लज्जा' और डा० कन्हैयालाल पिक्चर देखकर लौटते है। उनके चारपाईयों पर लेटने के समय जो वातावरण सृजित हुआ है देखिए :- "मैं चारपाई पर लेट गयी और डाक्टर साहब भी मेरी और मुँह करके पास वाले एक कोच पर लेट गये। प्रेम की इस मोहोत्पादक स्तब्ध रात्रि में हम दो प्रणयी उस निर्जन कमरे में, उस आलस्य-विलासमय तन्द्रावस्था में, बिना किसी बाधा या रुकावट के निर्मुक्त भाव से अवस्थित थे, पर एक प्रकार की अनोखी धुकधुकी से क्यों मेरा हृदय आन्दोलित हो रहा था? क्या डाक्टर साहब का भी यही हाल था?"[2]

'सन्यासी' में मनःस्थिति के चित्रण द्वारा मानसिक वातावरण उपस्थित हुआ है। "खा पीकर शांति बजाहत सी लेट गयी तो पाषाण-भर की वही अच्छेद्य जड़ता उसी प्रायान्धाकार में मेरी आत्मा को दबोचने लगी। एक भौतिक लोक के अज्ञातमय, पाप लोक की क्लेदाक्त ग्लानि, पाताललोक की अंधगुहाओं के अव्यक्त अवसाद ने चारों ओर से घनीभूत होकर, मेरी छाती को ऐसी बुरी तरह जकड़ लिया कि मुझे ऐसा मालूम होने लगा जैसे मेरा -

---

1- "निर्वासित" - 'इलाचन्द्र जोशी, सप्तम संस्करण सं० 2022 वि० पृष्ठ 98

2- "लज्जा" - 'इलाचन्द्र जोशी', तृतीय संस्करण 1982 ई० पृष्ठ 97,98

दम घुटा जाता हो।"[1]

'त्याग का भोग' उपन्यास में भी मनःस्थिति के चित्रण में उपयुक्त वातावरण का सृजन हुआ है - चाँदनी रात में नृपेन्द्र और शोभना जब नौका विहार कर रहीं हैं तो उनकी मनःस्थिति के चित्रण द्वारा जोशी जी ने मानसिक वातावरण तैयार किया है। "हम दोनों मौन थे, हमारे चारों ओर जो रूप सागर लहरा रहा था उसमें मन के भीतर उमड़ती हुई भाव-धाराएं मिलकर एकाकार होने के लिए आकुल हो रहीं थीं। उस अस्पष्ट आकुलता का केवल अनुभव ही किया जा सकता था, वाणी उसके अनुभव में विघ्न ही डालती। शायद इसीलिए हम दोनों में से किसी को मुँह खोलने की प्रवृत्ति नहीं होती थी। डांडों के छपाक-छपाक शब्द के ताल में ताल मिलाते हुए मन के भी किसी अज्ञात कोने में एक मीठा क्रन्दन हो उठता था।"[2]

'प्रेत और छाया' में भी जोशी जी मनःस्थितियों के चित्रण द्वारा उपयुक्त मानसिक वातावरण उत्पन्न करते हैं। जैसे - 'भारतनाथ के भीतर जो विकट द्वन्द्व चक्र चल रहा था, जो घनघोर संघर्ष मच रहा था, उसका यथार्थ वर्णन नहीं हो सकता। उसकी आँखों के आगे मंजरी के स्नेहकरुण आर्त और असहाय रूप की प्रतिच्छाया लाख हटाने की चेष्टा करने पर भी फिर-फिर नाच उठती थी, और उस निराट नादान और अनाथ बच्चे की अस्फुटीकारी की मूक हाहाकार भरे स्वर में बजती जाती थी।"[3]

इसी प्रकार जोशी जी के अन्य उपन्यासों में भी मनःस्थिति के

1- "सन्यासी" - 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति सं0 2030 विक्रमी पृष्ठ 129

2- "त्याग का भोग" -'इलाचन्द्र जोशी', तृतीय संस्करण 1972 ई0 पृष्ठ 363

3- "प्रेत और छाया"- 'इलाचन्द्र जोशी' चतुर्थ संस्करण सं0 2035 विक्रमी पृष्ठ 296

चित्रण द्वारा अनुकूल वातावरण तैयार हुआ है। अपने पात्रों के सूक्ष्म मानसिक विश्लेषण के कारण जोशी जी तदनुरूप मानसिक वातावरण तैयार करते हैं। बाह्य वातावरण की अपेक्षा 'मानसिक वातावरण' उनके उपन्यासों का गौरव अधिक बढ़ाता है। आधुनिक युग में वातावरण का महत्व दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। मनुष्य परिस्थितियों का दास है अपने परिवेश का दास है अतः जब तक वह परिवेश, जिसमें वह सांस लेता है, चित्रित न होगा तब तक मनुष्य के चरित्र की विशेषताएं स्पष्ट न होंगी। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार अपने पात्रों को सांस लेने के लिए आन्तरिक वातावरण पर बल देते हैं, वे बाह्य वातावरण का चित्रण यदि करते भी हैं तो उस सीमा तक अब तक वह पात्र के मनोरहस्य को प्रकट करे। इलाचन्द्र जोशी जी ने भी बाह्य वातावरण को वहीं तक ग्रहीत किया है जहाँ तक उनके कथ्य मात्र पात्रों के मनोरहस्य उद्घाटित होते हैं। आन्तरिक वातावरण के चित्रण में जोशी जी अधिकतर "मनोविश्लेषण- की प्रयोगशाला' तैयार करते हैं जिसके वातावरण में रहकर पात्रों के अन्तर्मन के रहस्यों का उद्घाटन होता है। श्री नारायण अग्निहोत्री तो वातावरण चित्रण का उत्कृष्टतम रूप वह मानते हैं जिसमें दृश्य मात्र ही से भावोद्रेक होने लगे।"[1] जोशी जी के उपन्यासों में ऐसा भावोद्रेक पूर्ण वातावरण स्थान-स्थान पर मिलता है। इस प्रकार के भावोद्रेकपूर्ण वातावरण इसलिए प्रस्तुत किए गये हैं ताकि यह स्पष्ट होता चले कि उनके उपन्यासों के पात्र किन-किन परिस्थितियों से गुजर रहे हैं।

1- "उपन्यास - तत्व एवं रूप विधान" - 'श्री नारायण अग्निहोत्री'
प्रथम संस्करण 1962 पृष्ठ 155

(5) भाषा-शैली में मनोविज्ञान और उसका विश्लेषण :- इलाचन्द्र जोशी मनस्तत्व के अनूठे विश्लेषक हैं। वे अपने उपन्यासों में सूक्ष्म मनोविश्लेषण को अधिक महत्व देते है, अत: उनकी भाषा भी इस सूक्ष्मता की अनुचरी बनी है। पात्रों के चरित्रिक विश्लेषण, उनकी प्रवृत्तियों की व्याख्या और आन्तरिकता के उद्घाटन के प्रयास में जोशी जी की भाषा भी उन्हीं रंगों में रंग गयी है। पात्रों के भाव-प्रकाशन और मानसिक घात-प्रतिघातों के चित्रण की दृष्टि से ही भाषा का रूप निर्धारित हुआ है। पात्रों के मन की द्वन्द्वात्मक स्थिति के चित्र खींचने के लिए उन्हें वैचारिक-उपमाएं अधिक जँची हैं। वैचारिक उपन्यासों के प्रयोग के कारण उनकी भाषा में काव्यमयता और आलंकारिकता जैसे गुण भी समाविष्ट हो गये है। स्वभाव-वैचित्र्य दिखाने के कारण भाषा चित्रात्मक हो उठी है। पात्र जब भावावेश में आ जाते है तो भाषा भी 'भावप्रवाहिनी' बन जाती है। वहाँ पर जोशी जी अपने दर्शन या चिन्तन को प्रकट करते हैं वहाँ भाषा में विवेचनात्मक (दार्शनिक) शक्ति प्रबल हो उठती है। इस प्रकार उनकी भाषा में विविधता प्रचुर मात्रा में मिलती है। डा० प्रताप नारायण टण्डन के शब्दों में - "एक उपन्यासकार अपनी कृति में जिस भाषा का प्रयोग करता है वह दोहरे अर्थ में महत्व रखती है। प्रथमत: तो वह उपन्यासकार के मन में कथा के वैचारिक स्वरूप को व्यक्त करती है जिसके लिए उसके पास यही एक माध्यम होता है और इसके द्वारा वह उसे पाठकों तक पहुँचाने में समर्थ होता है और द्वितीयत: वह अपने उपन्यास में जिन पात्रों की रचना करता है, अपने-अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व में वे भी पृथक-रचना से युक्त होकर अपने हृदय की विविध अनुभूतियों और भावनाओं की प्रतीति दूसरों को करा देते हैं।"[1]

1- "हिन्दी उपन्यास कला" -'डा० प्रताप नारायण टण्डन'
प्रथम संस्करण 1965, पृष्ठ 253, 254

जोशी जी की भाषा भी कथा के विचारों को वहन करती है साथ ही पात्रों की भावानुभूतियों को ढोती चलती है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम विविध स्थितियों में उनकी भाषा के प्रयोग पर निम्नवत् प्रकाश डाल रहे हैं :-

1- व्यक्ति- वैशिष्ट्य के आधार पर भाषा का प्रयोग

2- कथा-वर्णन में भाषा का प्रयोग

3- विश्लेषणात्मक स्थलों में भाषा का प्रयोग

4- भावात्मक स्थलों में भाषा का प्रयोग

5- चिंतन प्रधान स्थलो में भाषा का प्रयोग

6- वर्णनात्मक स्थलों में भाषा का प्रयोग

जोशी जी ने व्यक्ति-वैशिष्ट्य के आधार पर भाषा के प्रयोग किए हैं। जिस वर्ग या कोटि के पात्र उनके उपन्यासों में प्रयुक्त हुए हैं, उनके अनुकूल ही भाषायी प्रयोग भी हुए हैं। पात्रों के अनुकूल भाषा का उपयोग ही उपन्यास की सफलता का आधार है। जोशी जी के उपन्यासों में जो पात्र शिक्षित हैं उनकी भाषा शुद्ध और प्रांजल है। उनकी भाषा में विशेष रूप से शब्दावली की तत्समता का ध्यान रखा गया है। 'लज्जा' का राजू, 'जहाज का पंछी' का नायक, 'त्याग का भोग' का नृपेन्द्र रंजन, 'पर्दे की रानी' की निरंजना, चन्द्रशेखर, 'ऋतुचक्र' के दादा मिलन कुमार, 'संयासी' का नन्दकिशोर, 'मुक्तिपथ' का राजीव आदि सभी बौद्धक तथा सुशिक्षित पात्र हैं। अतः इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा सामान्य व्यक्तियों की भाषा से उच्च स्तर की है। ऐसी भाषा 'प्रवाहपूर्णता' के गुण से मण्डित है।

उदाहरणार्थ - 'लज्जा' के राजू की डायरी का एक अंश देखिए - "एक दिन मेरे अपरूप सौन्दर्य-मंडित शरीर का भी यही हाल होगा। मर्मर-प्रस्तर की सजीव मूर्ति के समान मेरा सुन्दर, सुडौल, सुगठित और चलता-फिरता हुआ शरीर विकृत, विगलित और गतिहीन होकर जिस अवस्था को प्राप्त होगा उसका अनुभव नहीं किया जा सकता।"[1] 'पर्दे की रानी' में निरंजना भी अपनी सुशिक्षित भाषा में ही आत्म विश्लेषण करती है - "इस प्रकार अतल-विलासिता के बीच में मेरी जीवन-धारा बही चली जा रही थी। मेरा विव्यापक, कल्पनाप्रिय हृदय रेन्द्रजालिक स्वप्न छाया से घिरे हुए एक अस्वाभाविक और अवास्तविक जगत् में विचरता रहता था और एक विचित्र रंगीन विषादमयी अनुभूति की लालसा-माया से सब समय विह्वल और विभोर रहता था।"[2] 'मुक्तिपथ' के राजीव में भी भावुकी शालीनता के दर्शन होते हैं। 'सन्यासी' का नन्दकिशोर तो पूरे उपन्यास में सुशिक्षित होने के कारण प्रायः संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करता है- " मेरे बाल्यकाल का निरुद्देश्य, सरल सौन्दर्यमय जीवन पुलक-स्पंदन से मृदु-मृदु लहराने लगता है- अव्यवस्थित, सहज-स्वाभाविक जीवन के मन्द-मन्द वेग से निस्पन्दित उस निराले ग्राम्य खण्ड को छोड़े हुए सहस्रों वर्ष हो गये।"[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षित नायक-नायिकाएँ अपनी अलग भावपूर्ण भाषा का प्रयोग करते हैं।

जोशी जी के उपन्यासों में पुलिस, अध्यापक, धोबी, जमींदार, वेश्याएँ डाक्टर, विद्यार्थी, बंगाली, भिखारी, पक्षधाम, पूँजीपति, सुधारक, ईसाई,

---

1- "लज्जा" - 'इलाचन्द्र जोशी' - तृतीय संस्करण 1982 ई० पृष्ठ 154

2- "पर्दे की रानी"-'इलाचन्द्र जोशी'-संशोधित संस्करण 1983 ई० पृष्ठ 38

3- "संन्यासी" -'इलाचन्द्र जोशी'- तृतीय आवृत्ति, सं० 2030 विक्रमी पृष्ठ 52

आदि कई प्रकार के पात्रों का समावेश है। अतः इन पात्रों की अलग-अलग भाषा है। हर वर्ग अपने स्तर की भाषा का प्रयोग करता है। जहाँ बंगाली पात्र आते हैं वे अपनी भाषा के लहजे में बोलते हैं। देखिए :-

"हमारे हिंयां भी जोरूर आईएगा। जोरूर, जोरूर।"[1]

निम्नवर्ग के पात्र अपनी भाषा बोलते हैं :- "साला एक नौजवान्यां को पकड़ लाया है। छोकरी है तो हसीन।"[2] 'जहाज का पंछी' में जिस तरह पात्रों की भरमार है उसी प्रकार पात्रानुकूल भाषा भी मिलती है। एक बेश्या की चलताऊ भाषा देखिए :-

"आखिर बुला ही लाउन अपने भतारों को, क्या कर लिया उन्होंने? सत्यानाशी, कीड़े पड़ेंगे, कीड़े।"[3] "सुबह के भूले' उपन्यास में देहाती पात्रों की भाषा भी उन्हीं के स्तर की है - "तुम भी अच्छी ठठोली करते हो देवर, झिमया बोली। 'मैं अब इस उमिर में क्या सीखूँगी पढ़ना। जिन्दगी के इतनी बरिस गृहिस्ती में बिता चुकी हूँ बाकी उमिर भी इसी तरह कट जायेगी।"[4]

कहने का तात्पर्य यह है कि जोशी जी ने पात्र-वैशिष्ट्य के आधार पर भाषा का प्रयोग किया है।

कथा-वर्णन में जोशी जी ने सन्तुलित और प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग किया है। जहाँ पर उपन्यासकार कथा-सूत्रों को स्पष्ट करता है वहाँ भाषागत

1- "संन्यासी"- 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति, सं० 2030 वि० पृष्ठ 182

2- — तदैव — पृष्ठ 118

3- "जहाज का पंछी" - 'इलाचन्द्र जोशी'

4- "सुबह के भूले" - 'इलाचन्द्र जोशी' संस्करण 1984 पृष्ठ 23

सन्तुलन उत्कृष्ट है। उदाहरणार्थ - 'जहाज का पंछी' उपन्यास में कथा-सूत्र को स्पष्ट करने में भाषायी संतुलन देखें :- "उसके अन्तर के जिस तार को मैं छूना चाहता था, उसे न छूकर न जाने उसके अन्तर का कौन अज्ञात और अलक्षित तार मैंने अपने भावोद्गार से झंकृत कर दिया और तब पूँछा जाय तो मेरा वह आकस्मिक भावोद्गार एक प्रकार का अर्द्धस्वगत् ही था। फिर भी उसका यह विचित्र प्रभाव लीला पर पड़ा कि वह आवेग विह्वल होकर लहता मेरे पावों पर गिर पड़ी।"[1]

इलाचन्द्र जोशी जी मे विश्लेषणात्मक स्थलों में वैसी ही भाषा का प्रयोग किया है जब जोशी जी पात्रों की अन्तःप्रवृत्तियों और अन्तःप्रेरणाओं के विश्लेषण में जुटते हैं तो सूक्ष्म और कठिनता से पकड़ी जाने वाली मनोवृत्तियों के स्पष्टीकरण के लिए वे विश्लेषणात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं। क्योंकि विषयवस्तु के मन की तरफ अग्रसर होने से भाषा भी मन की ओर अग्रसर होती जाती है। डा० मधु जैन मे भाषा की सूक्ष्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति के बारे में कहा है - "ज्यों-ज्यों उपन्यास साहित्य का विकास मन की ओर होता गया है, त्यों-त्यों उसकी भाषा भी अधिकाधिक सूक्ष्म होती गयी। मन जैसे अमूर्त विषय को मूर्त बनाने के लिए भाषा को भी अमूर्त और सूक्ष्म बनना पड़ा।"[2] जोशी जी भी मन की अमूर्त प्रवृत्तियों जैसे अहं, स्वार्थ, प्रतिहिंसा आदि को मूर्त बनाने अर्थात् उनके उद्घाटन के लिए सूक्ष्म विश्लेषणात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ :- 'पर्दे की रानी' का गुरु चन्द्रशेखर जब निरंजना के स्वभाव का विश्लेषण करता है तो भाषायी

1- "जहाज का पंछी" - 'इलाचन्द्र जोशी' पृष्ठ 282

2- "यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण" - डा० मधु जैन
प्रथम संस्करण, 1977 ई० पृष्ठ 274

विश्लेषणात्मकता देखिए :- "यह निश्चित है कि तुम एक प्रतिभाशालिनी नारी हो और प्रतिभा एक ऐसी अस्वाभाविक चीज है जिसकी उत्पत्ति और विकास कभी स्वाभाविक वातावरण में हो नहीं सकता। प्रतिभा का प्रस्फुटन तभी होता है जब किन्हीं रहस्यमयी कारणों से ऐसे कुछ विजातीय संस्करण व्यक्ति की आत्मा में बद्धमूल हो जाते हैं जो उसे स्वजाति और समाज से छिन्न करके या तो किसी विराट समाज के बीच में लाकर खड़ा कर देते हैं, या विश्व के मध्याकर्षण के केन्द्र से च्युत करके उसे शून्य में निरुद्देश्य भटकने के लिए छोड़ देते हैं।"[1]

इस प्रकार सूक्ष्म मनोभावों के विश्लेषण में भाषा की भी विश्लेषणात्मक हो उठती है।

भावात्मक स्थलों में जोशी जी ने भावुकता पूर्ण काव्यमय भाषा का प्रयोग किया है। भावधारा में बह जाने से भाषा काव्यमय हो उठती है उदाहरणार्थ - 'लज्जा' की नायिका 'लज्जा' को ही लें जब वह भावावेश में बहती है तो उसकी भाषा भी भावपूर्ण हो उठती है :-"हाय मेरे भगवान इस घृणामयी नारी की क्या गति होगी। किस विकराल अंधकारमय, अनन्त-शून्यमय, निविड़ अवसादमय गह्वर की ओर इस क्रूरा, उत्तेजिता, हिंसामयी रमणी को तुम धकेले लिए जाते हो। हे मेरे अदृश्य देवता! इस विपुल शून्य की अनन्त छाया में क्या कहीं भी मेरे लिए त्राण नहीं है।" 'संन्यासी' का नायक चन्द्रशेखर जब भावमग्न होता है तो भाषा में काव्यमयता उत्पन्न हो जाती है- "यमुना की धीर मन्थर गति, उसका अनुपम रंग, चंचल रोदन-क्रन्दन तरल-अविरल हास कृष्ण के युग में भी वैसा ही था, जब

1- "पर्दे की रानी" -'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण, 1966ई० पृष्ठ 100

गोपियाँ शंकित वक्ष से, कम्पित पगों से, हृदय में मूर्च्छा-मुग्ध वेदन लेकर उसमें जल भरने आती होंगी, इसके बाद अनेकों युगों के अनेक हिन्दू राजाओं ने उसे परम प्रेम से अपनाया होगा, उसके बाद मुगल बादशाहों के युग में हरम की अलबेली बेगमों के विनोद के लिए उसका जल नहर के रूप में रंग-महल के भीतर जाकर फौव्वारे के रूप में स्फुरित होता होगा।"[1]

'मुक्तपथ' में राजीव की भावपूर्ण दशा का वर्णन करते समय जोशी जी की भाषा कवित्वमय हो उठी है :- "वह ऐसा अनुभव करने लगा, जैसे वह लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में नहीं, बल्कि एक महाश्मशान में टहल रहा है। वह सब कोलाहल उस श्मशान के भूत-प्रेत, यक्ष-पिशाचों की हास्य लीला है।"[2]

चिन्तन प्रधान स्थलों में जोशी जी की भाषा दार्शनिक हो चली है। जहाँ कहीं भी जोशी जी का सूक्ष्म चिन्तन सामने आता है, भाषा दार्शनिकता को लेकर आगे बढ़ती है। उदाहरणार्थ :- 'पर्दे की रानी' उपन्यास में जब निरंजना' और 'शीला' का वार्तालाप चलता है तो निरंजना सुख-दुःख की व्याख्या करती हुई कहती है :- "सुख केवल मोहमयी कल्पना है और दुख जीवन के प्रतिपल का प्रत्यक्ष सत्य। सुख तारों-दृश्यों के मोहक उच्छ्वासों का केवल फेन है और दुख उस फेन के नीचे की वास्तविक जड़ता।"[3] 'त्याग का भोग' उपन्यास में तो हमें दार्शनिक भाषा के दर्शन कई जगह होते हैं-"मेरा आदर्श यह है कि राष्ट्र की, बल्कि विश्व की- उत्पादक शक्तियों का विकास अधिक से अधिक संभावना तक पहुँच जाए और उस परिपूर्ण उत्पादन का उपभोग

1- "सन्यासी" - 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति सं2030वि० पृष्ठ 20
2- "मुक्तपथ" - 'इलाचन्द्र जोशी' संस्करण 1983 ई० पृष्ठ 5,6
3- "पर्दे की रानी"-'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण 1983ई पृष्ठ 18

समग्र जनता समभाव से करे राष्ट्र की सामूहिक पूँजी का नियन्त्रण और सम-विभाजन राष्ट्र के सच्चे प्रतिनिधियों का एक विश्वसनीय संस्था करें -- उस दिन उसकी उपलब्धि के लिए उपयुक्त, सहज और सीधे उपाय भी अपने-आप उसके आगे प्रकट हो जायेंगे, और फिर कोई भी प्रतिरोध उसके उस सामूहिक कल्याणकारी मार्ग में ठहर नहीं सकेगा।"[1]

इस प्रकार चिन्तन प्रधान स्थलों पर जोशी जी ने दार्शनिक भाषा का प्रयोग किया है।

वर्णनात्मक स्थलों पर उनकी भाषा में कोई लाघव-विशेष नहीं है। प्राय: ऐसे स्थलों पर भाषा प्रवाहहीन सी है। इसलिए इस पर प्रकाश डालना व्यर्थ है।

जोशी जी की भाषा-शैली जो मनोवैज्ञानिक रूप देखने को मिलता है, वह है भावानुगमन का। मन:स्थिति के चित्रण के लिए उन्होंने वैज्ञानिक भाषा का प्रयोग किया है जो सर्वथा नवीन है। तरह-तरह की वैज्ञानिक उपमाओं द्वारा जोशी जी पात्रों के अन्दर की उठापटक को चित्रित करते है उदाहरणार्थ :- 'सन्यासी' में जयन्ती की 'विस्मय जनक' दृष्टि को 'एक्स-रे' से तुलना करते हुए वे कहते है :- "जब कभी वह अपनी स्वभावत: विस्मित दृष्टि की किरणों को किसी व्यक्ति की ओर केन्द्रित करती तो ऐसा जान पड़ता है, जैसे - 'एक्स-रे' की तरह उसके शरीर के बाह्यावरण को भेदकर उसके मर्म का अणु-अणु देख लेगी।"[2]

1-"त्याग का भोग" -'इलाचन्द्र जोशी' -तृतीय संस्करण 1972ई० पृष्ठ 285

2-"संन्यासी"- 'इलाचन्द्र जोशी' संस्करण 1988ई० पृष्ठ338

'मुक्तपथ' में राजीव के मन में उठने वाले घृणा और प्रतिहिंसा के बवंडर की वैज्ञानिक उपमा देखिए :- "राजीव के भीतर बहुत देर से घृणा और प्रतिहिंसा की भावनाएं गुल बन्द किए हुए स्टीम के बॉयलर के धुएं की तरह पुंजीभूत होती जा रही थीं।"[1]

'त्याग का भोग' उपन्यास में कुमेन्द्र रंजन के मर्म पर पड़ने वाले आघातों की वैज्ञानिक उपमा देखिए :- "लोहे की भट्टी में गर्म किए हुए लाल लाल हथौड़ों की निर्मम चोटों से मेरे मन के दर्पों से बंद लगाये हुए लोहे के दरवाजे पिघलने लगे थे।"[2]

'प्रेत और छाया' के दयानाथ के मन में उठने वाले हिंसा-प्रतिहिंसा के तूफान देखिए:- "उस रात वह प्राय: एक बजे तक पलंग पर बंधनग्रस्त भेड़िए की तरह छटपटाता हुआ करवटें बदलता रहा। रह-रहकर कालकूट से भी अधिक तीव्र और उग्र विषयुक्त हाईड्रोजन से उसकी छाती बैलून की तरह फूल उठती थी परम विस्फोट के लिए।"[3]

'निर्वासित' में महीप की मन:स्थिति का चित्रण उपमामयी भाषा में इस प्रकार किया गया है।- [महीप का] जो रक्त इतने दिनों तक बर्फ की तरह ठण्डा बनकर अत्यन्त जड़ और उदासीन रूप धारण किए हुए था वह बिजली के हीटर की सी गरमी से केवल पिघला ही नहीं है, बल्कि काफी गरमा गया है, और धीरे-धीरे उस स्थिति को पहुँचता जा रहा है, जब वह संभवत: पूर्णतया खौल भी सकता है।"[4]

1-"मुक्तपथ" -'इलाचन्द्र जोशी' संस्करण -1963 ई० पृष्ठ -8
2-" त्याग का भोग" -'इलाचन्द्र जोशी'-तृतीय संस्करण 1972 ई० पृष्ठ
3-"प्रेत और छाया" - 'इलाचन्द्र जोशी'-चतुर्थ संस्करण सं0203ई0 पृष्ठ 49
4-"निर्वासित" - 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम संस्करण सं0 2022 वि० पृष्ठ 169

जोशी जी न केवल वैज्ञानिक उपमाओं का प्रयोग करते हैं बल्कि साधारण से साधारण उपमाओं द्वारा भी वे पात्रों की मनःस्थिति की तीव्रता पर प्रकाश डालते हैं। उदाहरणार्थ -वे"पर्दे की रानी' निरंजना पर इन्द्रमोहन के व्यक्तित्व प्रभाव का वर्णन करते हैं - "कोई यात्री कृष्ण पक्ष की किसी रात्रि में किसी जहाज पर सवार होकर कुछ ऊँघते और कुछ सोते हुए अकूल समुद्र की यात्रा के लिए निरुद्देश्य चल पड़े, रात-भर उसे इस बात का पता न चल पावे कि उसका मल्लाह उसे किस दिशा की ओर, किस देश की ओर ले जा रहा है, और सुबह को उसे कुछ अद्भुत प्रकृति के और विचित्र रीति-रस्मों को मानने वाले विजातीय मनुष्यों के बीच एक छोटे टापू में अकेला छोड़ कर वह जहाज मल्लाह सहित गायब हो जाए तो उस पथिक की जो मानसिक स्थिति होगी, मनमोहन बाबू के यहाँ आने के बाद से वही दशा मेरी भी होरही थी।"[1]

इस प्रकार वैज्ञानिक और सामान्य उपमाओं द्वारा जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक तथ्यों को उघाड़ने व उनको पुष्ट करने का श्लाघ्य प्रयास किया है।

वाक्य-गठन, शब्द-शिल्प, लोकोक्ति और मुहावरों की नियोजना, नवीन भाषायी प्रयोगों की दृष्टि से जोशी जी का उपन्यास साहित्य मनोवैज्ञानिकता को और पुष्ट करता है।

जोशी जी ने संक्षिप्त और सुदीर्घ दोनों प्रकार के वाक्य गठित किए हैं। इनके उपन्यासों में विचारों और भावों की मांग के अनुरूप ही वाक्य गठन हुआ है। सामान्य वार्तालापों में वाक्य छोटे-छोटे तथा विश्लेषण तथा वाद-विवादों में सुदीर्घ वाक्य प्रयुक्त हुए हैं।

1- "पर्दे की रानी" -'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण 1983 ई० पृष्ठ 75

'शब्द-शिल्प' भी जोशी जी के उपन्यासों में अनूठा है। जोशी जी के पात्र रोगी भी हैं, डक्टर भी। आस्तिक भी है, नास्तिक भी। साहित्यकार है और अनुपढ़ गवांर भी। धनाढ्य भी है और दरिद्र भी। इसी तरह लगभग अनेक तरह के पात्र है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि भाषा को भी वही मोड़ दिया जाए जो पात्रों में आता है। जोशी जी पात्रानुरूप, भाषा में परिवर्तन करने में माहिर हैं। वे तत्सम, तत्भव, देशी विदेशी सभी प्रकार के शब्दों को अपनी भाषा का आधार बनाते हैं। शिक्षित पात्र विशुद्ध तत्सम और विदेशी शब्द बोलने में नहीं हिचकिचाते। उदाहरणार्थ- आभ्यांतर, विपुल, नवमल्लिकामय, मोहच्छन्नकारी, मधुमय आदि संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्द और प्रेजेन्ट, प्रेस्क्राइब, पोजीशन, हिप्नोटिक, डुप्लीकेट, एटीकेट, इन्टेलेक्चुअल, फ्रीमेल, एडवेंचर, रिस्टवाच, एक्जर्शन, सुपरफ्लुअस, हारिबुल आदि अंग्रेजी शब्द शिक्षित पात्रों की भाषा में प्रयुक्त हुए है। संक्षेप में यही कहना है कि इनके उपन्यासों में अंग्रेजी शब्दों की बहुतायत है। 'लज्जा' में – प्रेस्क्राइब, रिस्टवाच, लिवर, एग्जरशन आदि शब्द है तो 'सन्यासी' में – ऑलवेज एक्सेप्टेड, कल्चर, टेलीपैथी, सुपरफ्लुअलमैन आदि शब्द प्रयुक्त हुए है। 'प्रेत और छाया' में फिट, टेबुल, कन्ट्रीब्यूट, पैरेसाइट्स आर्डर आदि शब्द मिलते है। 'त्याग का भोग' में रेडीमेड, अण्डवियर, हेयरपिन, काटेज, मार्केटिंग आदि शब्द धड़ल्ले से प्रयुक्त हुए है। 'पर्दे की रानी' 'सुबह के भूले,' 'मुक्तिपथ', 'जहाज का पंछी' आदि सभी उपन्यास अंग्रेजी शब्दों से भरे पड़े हैं।

अरबी, फारसी, उर्दू के शब्द भी जोशी जी के उपन्यासों में बहुतायत

से मिलते हैं। उदाहरणार्थ - खामख्याली, रकीबियों, दस्खत, इत्तिफाक, इत्तिला, इलाज, शरीफ, कैफियत, बेअख्तियार, बक़वास आदि ।

अशिक्षित ग्रामीण जनों की भाषा हेतु देशराज व तद्भव शब्दों का प्रयोग जोशी जी ने किया है। "ऊल जलूल, अली-गली, नौसिखिया, हक्का-बक्का, गुईयां, नम्बरी, लुच्चा, भलमनसाहत आदि ।

इस प्रकार जोशी जी ने शब्द शिल्प में स्वतन्त्रता और स्वच्छन्ता से काम लिया है। जोशी जी की भाषा में मूर्ति-विधायिनी शक्ति एक महान गुण के रूप में दिखती है। पात्रों की भावभंगी और मानसिक स्थिति का मूर्त चित्रण उतारने में उनकी भाषा सक्षम है।

लोकोक्तियों और मुहावरों को भी जोशी जी ने अपनी भाषा में स्थान दिया है। डा० प्रताप नारायण टण्डन के अनुसार -"एक सफल भाषा वही होती है, जो उपन्यास की कथा, काल और पात्रों के अनुरूप हो। उसमें स्थानीय मुहावरों और लोकोक्तियों का भी यत्र-तत्र उपयोग हो जिससे उसकी गतिशीलता नष्ट न हो।"[1] जोशी जी ने यह ध्यान रखा है कि लोकोक्तियाँ समाज के अनुभवों की सूत्र लेख हैं। अतः उन्होंने व्यक्ति के चित्रण में भी समाज को न खोकर मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। 'आँखें चार हो तो, उम्मीद पर पानी फेरना, हवाई किले बांधना आदि मुहावरे तथा 'ऊधो मन माने की बात, दुई न होहिं एक संग भुवालू हंसब ग्वाई फुलाइब गालू, आदि लोकोक्तियाँ उनके भाषा-सौन्दर्य में वृद्धि करती है।

1- "हिन्दी उपन्यास कला" - 'डा० प्रताप नारायण टण्डन'
प्रथम संस्करण -1965, पृष्ठ 235

जोशी जी ने भाषा के क्षेत्र में नवीन प्रयोग किए हैं। भावों और विचारों की सशक्तता प्रदान करने के लिए उन्होंने विज्ञान का सहारा लेकर भाषा को नया गौरव प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त कई-कई भाषाओं के नूतन सम्मेलन भी प्रस्तुत किए हैं। जैसे 'युग-पैशाच', 'राक्षसाभाव' आदि।

अस्तु, जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक विषय वस्तु के विवेचनार्थ भाषा को कई मोड़ देकर उसे मनोवैज्ञानिक बना दिया है।

6- <u>उद्देश्य में मनोविज्ञान और उसका विश्लेषण</u> :- साहित्यकार जब किसी कृति का सृजन करता है तो समकालीन आस्थाएं, विचार व सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक व नैतिक परिवर्तन तथा विविध अन्वेषण उसकी कृति पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभाव अवश्य डालते हैं। साहित्यकार की कृति का केन्द्रबिन्दु मानव ही होता है तो मानव द्वारा मानव के लिए किए गये परिवर्तनों, अन्वेषणों आदि से वह अछूता क्यों रहे ? साहित्यकार को इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर अपनी दार्शनिक चिन्तन क्षमता का विस्तार करने का अवसर अपनी कृति में मिलता है। उपन्यासकार शशिचन्द्र जोशी के उपन्यास भी विविध सामाजिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक क्रान्तियों के प्रतिबिम्ब हैं। 'फ्रायड', 'एडलर', 'युंग' जैसे मनोवैज्ञानिकों ने अपने सिद्धान्तों को परखने की कुशी ? चुनौतियाँ साहित्य के सम्मुख रखीं और पश्चिमी साहित्य की 'व्यक्तिवादी विचारधारा' ने भारतीय उपन्यासकारों के लिए आज के बौद्धिक युग के

मानव को समझने की एक नई दृष्टि दी । स्वतन्त्रता के बाद समाज की आस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों में भी उपन्यासकारों को प्रभावित किया। उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी का उपन्यास-साहित्य भी इन विविध सिद्धान्तों, आस्थागत परिवर्तनों को लेकर ही मुखरित हुआ है। समाज और व्यक्ति के अन्दर फैली विकृतियों को मनोविज्ञान के विविध औजारों द्वारा चीरफाड़ करके दूर करना ही उनका मुख्य उद्देश्य रहा है। 'डा० सुधीर कुमार ' जोशी जी के उपन्यासों के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं :- "जोशी जी का ध्येय सदा से यह रहा है कि समाज में जो संक्रामक रोग व्याप्त हो गये हैं, जिनके कारण समाज अव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है, एक चतुर सर्जन की भाँति उसकी चीरफाड करके समाज के रूप को स्वस्थ और सुन्दर बनाना।"[1]

समाज में उनके व्यक्ति ऐसे होते हैं जो समाज की विसंगतियों के प्रत्यक्ष या परोक्ष कारणों से व्यक्तिगत स्तर पर मानसिक कष्ट भोग रहे होते हैं, उनके मन में कई सामाजिक कुरीतियों के कारण ग्रंथियाँ पड़ जाती हैं, फलस्वरूप वे 'स्पष्टीकृत रति' और 'परपीड़न रति' जैसे मनोव्यापारों का शिकार हो जाते हैं। इलाचन्द्र जोशी का प्रमुख उद्देश्य इन्हीं ग्रंथियों पर प्रकाश डालते हुए उनका मनोवैज्ञानिक समाधान करना रहा है। एक ग्रंथि के पड़ने से व्यक्ति और समाज के अन्दर आये परिवर्तन और नुकसानों की ओर भी जोशी जी ने अपनी लेखनी चलाई है।

1-"उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी, एक मूल्यांकन"- डा० सुधीर कुमार
प्रथम संस्करण सन् 1980 ई० पृष्ठ 69

'चेतन और अवचेतनमन' के रहस्यों को उद्घाटित करके मानव को उसकी जटिलता से परिचित कराना आज के भौतिक युग में अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। आज के जटिल मानव में मन, वचन और कर्म में आयी असंगति का पता चलाना और उसे दूर करना मनोवैज्ञानिक उपन्यास-कार की प्रथम आवश्यकता है। 'मानव की अंतरचेतना में जो लोभ, मोह, मद, मत्सर, हिंसा, क्रूरता और स्वार्थपरायणता आदि की अलक्ष्य पशु-प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, जब तक उनका उदात्तीकरण नहीं होगा, तब तक स्वस्थ मानवता का विकास नहीं हो सकता।"[1]

इसी उद्देश्य को लेकर जोशी जी ने अपने लगभग एक दर्जन उपन्यास सृजित किए हैं। इन सभी उपन्यासों में मानव के 'अन्तर्मन' का विश्लेषण ही प्रमुख है। 'अन्तर्मन' के इस विश्लेषण में उनकी रचनाओं का आधार 'पुरुष की अहं वृत्ति' है जिसके नीचे आई हुई नारियों के जीवन के विविध पक्षों को दर्शाना और अन्त में अधिकांशतः उन्हें 'नारीस्वातन्त्र्य' या 'नारी-मुक्ति-आन्दोलन' का बीड़ा उठाते हुए दिखाना जोशी जी का प्रधान लक्ष्य रहा है।

जोशी जी के सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पुरुष के 'अहं' पर निरंतर मनोवैज्ञानिक प्रहार हुए हैं। उदाहरण के लिए- 'सन्यासी' के नायक नंदकिशोर को ही लें। उनकी 'अहंवृत्ति' कितनी तीव्र है कि अपने सम्पर्क में आने वाली हर नारी को मानसिक प्रताड़ना देती रहती है।

1-"उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी" - 'डा० कृष्ण देव झारी'
संस्करण सन् 1975 ई० पृष्ठ 213

जोशी जी ने इसी 'अहंग्रस्त' का विश्लेषण करके 'संन्यासी' के नायक नन्दकिशोर को बाद में संन्यासी बनाकर उसके जीवन को इस ग्रस्तता से मुक्त दिखाने का प्रयास किया है।

'प्रेत और छाया' का पारसनाथ भी ग्रंथि ग्रस्त होने के कारण अपने संपर्क में आने वाली सभी नारियों से बदला लेने, उनका शील हरण करने की सोचता रहता है। 'पर्दे की रानी' का इन्द्रमोहन भी अपनी विचित्र 'अहं-भावना' के कारण शीला और निरंजना दोनों स्त्रीयों को मानसिक रूप से प्रताड़ित करता है और अपनी विचित्र ग्रंथि के कारण अपना जीवन समाप्त कर लेता है। जोशी जी ने पुरुष के अचेतनमन में छिपी पशु प्रवृत्तियों के उद्घाटन के साथ-साथ उनके जीवन को सुधारने की भी प्रेरणा अपने उपन्यासों में दी है। 'मुक्तपथ', 'जहाज का पंछी', के नायकों के जीवन की विविध मानसिक विसंगतियों को उदात्तीकृत रूप देना इसी बात का परिचायक है।

जोशी जी के उपन्यासों में प्रयुक्त अधिकांश नारी पात्र यह घोषणा करते हैं कि युग-युग से प्रताड़ित होती नारी अब और अधिक प्रताड़ित नहीं की जा सकती, उसे अपने दुर्गा रूप में आना ही होगा, विद्रोह का त्रिशूल बजाना ही होगा। जोशी जी के उपन्यासों में चाहे शशीश हो या सुनन्दा, मंजरी हो या मनिया, तुलजिया हो या लज्जा सभी पुरुषों के 'अहं' के शूल से निकल-निकल कर 'नारी स्वातन्त्र्य' का बीड़ा उठाती हैं। वे जीवन को जाज्वल्यमान बनाना चाहती हैं। 'नारी प्रगति' का उद्देश्य जोशी जी के उपन्यासों में आद्यन्त रहा है।

जोशी जी के उपन्यास केवल 'व्यक्ति' को ही लेकर नहीं चले हैं

उनका 'जनवादी दृष्टिकोण' भी उनके प्रत्येक उपन्यास में लक्षित होता है उन्होंने अपने परवर्ती उपन्यासों में पात्र के द्वारा समाज-जीवन का चित्रण किया है। 'मुक्तिपथ', 'जहाज का पंछी' इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। डाक्टर श्रीमती ओम गुप्त के शब्दों में :- " 'मुक्तिपथ' में राजीव और सुनन्दा के जीवन की सफलता और विफलता के चित्रण के साथ-साथ उन्होंने समाज में व्याप्त बंधन और विषमता में से मुक्ति का पथ खोजकर, सामाजिक आदर्श की प्रतिष्ठा की है। सामाजिक उत्थान को प्रधान और व्यक्ति को गौण बनाकर उन्होंने इसमें व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक विषमता का दिग्दर्शन कराया है।"[1] 'जहाज का पंछी' उपन्यास में भी आवारा और निरालम्ब नायक के तरह-तरह के सामाजिक अनुभव सामाजिक विसंगतियों की कलई खोलते हैं।

अतु, जोशी जी के उपन्यासों में न केवल व्यक्ति के अन्तर्मन की कहानियां हैं, न केवल नारी-स्वातन्त्र्य का बीज-वपन हुआ है अपितु उनके उपन्यास समाज मनोविज्ञान की भी सटा विश्लेषते हैं।

—

1-"हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास"- 'डा०श्रीमती ओम गुप्त' संस्करण - जुलाई 1964 ई० पृष्ठ 260

पञ्चम अध्याय

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

पंचम अध्याय

" इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण "

(अ) जोशी जी से पूर्व उपन्यासों के पात्र :- मनुष्य का जीवन किसी न किसी क्रिया के द्वारा परिचालित होता है और जीवन में अनेक प्रकार की घटनाएँ क्रिया के द्वारा ही घटित होती है इसलिए पात्र ही उपन्यास के अन्यतम तत्व होते है । पात्रों द्वारा ही जीवन के विविध पक्षों का मूर्तत्व उपस्थित होता है। डा० बेचन के शब्दों में -

"एकमात्र पात्र (चरित्र) ही कथा का मेरुदण्ड होता है। पात्र और चरित्र के इर्द-गिर्द फैला हुआ आयेन्टन ही कथा-साहित्य के लिए कच्चा माल होता है, जिसको पक्का (मिनीफार्ड) कर कलाकार, नाटक, कहानी, आख्यायिका, गल्प उपन्यास, जीवनवृत्त, आत्मचरित, अमणवृतान्त, महाकाव्य आदि का कलेवर पहनाता है ।" [1]

अस्तु पात्र ही उपन्यास के प्राण होते हैं जिनका स्पन्दन हमें उपन्यास के कथानक में यत्र-तत्र-सर्वत्र दिखाई पड़ता है । इंगलिश 'हेनरी जेम्स' ने उपन्यास को 'मानव जीवन का दर्पण' कहा है । वे कहते है कि यदि उपन्यास मानव-जीवनाभिव्यक्ति का प्रयास छोड़ दे तो चित्रकला

1- "आधुनिक हिन्दी साहित्य-उद्भव और विकास" - डा० बेचन
प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 37

के समान इसकी विचित्र दशा हो जाएगी ।"[1]

'राल्फ फॉक्स' भी उपन्यास का मूल तत्व मानव-जीवन को ही मानते हैं । वे उपन्यास को कोरा गद्य नहीं मानते । उनके अनुसार-"उपन्यास कोरा कथात्मक गद्य नहीं, यह तो मानव जीवन का गद्य है ।"[2]

प्रेम चन्द ने उपन्यास को 'मानव-जीवन का चित्र'[3] कहा है ।

स्पष्टत: पात्र ही वे तत्व हैं जो उपन्यास में विविध घटनाओं के माध्यम से अपनी कहानी कहते चलते हैं । कथा के बीच-बीच में उनकी विविध क्रियाएँ ही घटनाओं को उत्पन्न करती हैं । फलत:द्वन्द्व संघर्ष का सूत्रपात होता है और संघर्षों तथा घात-प्रतिघातों की कहानी कहती घटनाएँ एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँच जाती हैं । यह सब कृतिकार के संचालन से संभव होता है । लेकिन कृति में प्रत्यक्षत: कृतिकार का कोई अस्तित्व नहीं होता है, अस्तित्व होता है - केवल पात्रों का ।

1- "The only reason for the existance of a novel is that it does attempt to represent life, when it relinquishes this attempt the same attempt that we see on the canvas of the painter it will have arrived at a very strange pass." - Page 141
(HENRY JAMESESSAYS - "The art of fiction in literary Criticism in America" - Edited by A.B.MAN-1957)

2- The Novel is not merely fictional prose, it is the prose of main's life, the first attempt to take the whole man and given him expression"- page 20
(RALPH-FOX -"The novel and the people"-1944)

3- देखिए - "कुछ विचार" -' प्रेमचन्द' चतुर्थ संस्करण

पात्र उपन्यासकार की 'मानस-सन्तान'[1] सरीखे होते हैं। उपन्यासकार उनको अपने चिन्तन और अनुभवों की थाती सौंपकर अलग हट जाता है और वे खुलकर अपने जीवन के खेल-खेलते हैं।

उपन्यास में पात्रों की ही प्रधानता रहती है, क्योंकि जीवन के सत्य, शिव और सुन्दर रूप ये पात्र ही प्रस्तुत करते हैं और जीवन की विविध गुत्थियां सुलझाने का काम ये पात्र ही करते हैं। श्री नारायण अग्निहोत्री के शब्दों में :-

"उपन्यास का पात्र ईश्वर के द्वारासृजित व्यक्तित्वपूर्ण मानव से कहीं अधिक प्राणशक्ति वाला होता है क्योंकि वह जीवन की गर्मी मनुष्य से पाता है। सूर्य मनुष्य के लिए इतना नहीं तपता, जितना कि पैरों के नीचे की बालु। उपन्यास के पात्र में जीवन की रोचकता गाढ़े रूप में होती है, कन्डेन्स्ड मिल्क (औटा हुआ दूध) की मिठास के सदृश।"[2]

उपन्यासों में प्रयुक्त होने वाले पात्रों का वर्गीकरण विभिन्न आलोचक अपने-अपने ढंग से करते हैं। आधुनिक युग में पात्रों का महत्व अधिक होने के कारण उनके वर्गीकरण में मनोविज्ञान का सहारा लिया जाने लगा है 'फ्रेम' पात्रों को मनःस्थिति के आधार पर दो वर्गों में बाँटते हैं - (1) अन्तर्मुखी पात्र, (2) बहिर्मुखी पात्र, यद्यपि संसार के सभी उपन्यासों के पात्र इन्हीं दो कोटियों में आ जाते हैं, परन्तु मनोवैज्ञानिक

1-देखिए- "हिन्दी उपन्यास का विकास और मौलिकता" - डा० सुरेश गुप्त संस्करण- सितम्बर 1966, पृष्ठ 269

2-"उपन्यास, तत्व एवं स्वरूपविधान" -'श्रीनारायण अग्निहोत्री' प्रथम संस्करण - 1962, पृष्ठ 42

उपन्यासों में कुछ पात्रों का व्यक्तित्व सूक्ष्मता से दिखाया जाता है, अतः मूल प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए ये मनोवैज्ञानिक पात्र अपने विशिष्ट कार्यों व मूल प्रवृत्तियों के आधार पर अलग-अलग कोटि के हो जाते हैं। इनमें मुख्य हैं - असाधारण चित्तवृत्तियों के शिकार, चिन्ताग्रस्त पात्र, असामाजिक पात्र, जटिल प्रकृति वाले पात्र, अहंवादी दुर्बल पात्र।

हिन्दी उपन्यासों में मनोविज्ञान के प्रवेश के कारण पात्रों का महत्व दिन दुना रात चौगुना बढ़ता जा रहा है। इस युग के उपन्यासों में हर कोटि के मनोवैज्ञानिक पात्रों के दर्शन हो जाते हैं। जोशी जी के पात्र तो व्यक्ति-वैचित्र्य के अद्भुत नमूने हैं। जोशी जी का युग मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का युग कहलाता है। इस युग के उपन्यासों के पात्र अन्तर्मुखी और मनोग्रसित प्रधान हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का मुख्य लक्ष्य मानव के अवचेतन में प्रविष्ट होकर उसकी अतल गहराइयों में छिपी पशु प्रवृत्तियों का उद्घाटन करना होता है। अतः इन प्रवृत्तियों के उद्घाटन के लिए दुर्बल पात्र ही अभीष्ट होते हैं, जिनके माध्यम से अवचेतन की पोरफाड़ तरह हो जाती है।

जोशी जी के आगमन से पूर्व जब मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की लहर नहीं चली थी तब पात्र मात्र घटना क्रम में प्रस्तुत होते थे, अर्थात् उपन्यास में घटनाएं प्रधान होती थीं, पात्र नहीं। प्रारम्भिक उपन्यासों में पात्र मात्र पाठकों के मनोरंजन और तिलस्म-प्रदर्शन के लिए होते थे, अतः उनमें मूल-प्रवृत्तियों का बोलबाला न था, वे 'बहिर्मुखी' होते थे अर्थात् वे रंग-रूप, आकृति-प्रदर्शन और वीरता-प्रदर्शन आदि निमित्तों के लिए प्रयुक्त होते थे। किसी ऐतिहासिक घटना की पुष्टि के लिए उनका प्रयोग होता था या किसी

न किसी आदर्श की स्थापना के लिए ये प्रयुक्त होते थे। उदाहरणार्थ - 'देवकी नन्दन खत्री' के ही उपन्यासों को लें। आदर्श जीवन उपस्थित करने के लिए ही उनके उपन्यासों में पात्रों की अवतारणा हुई है। उनके पात्र 'नायक' और 'खलनायक' के रूप में प्रयुक्त होते थे। 'नायक-नायिकाएं' आदर्श स्थापना हेतु और 'खलनायक' क्रूरता प्रदर्शन हेतु सामने आते थे। 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास को ही लें। उसमें तेजसिंह और वीरेन्द्र सिंह का प्रवेश वीरता का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए ही हुआ है और क्रूरसिंह का प्रवेश क्रूरता-प्रदर्शन हेतु।[1]

गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों के पात्र भी कोई न कोई आदर्श उपस्थित करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। वे अधिकतर जासूसी के आदर्श उपस्थित करते हैं। गहमरी जी की दृष्टि में "उपन्यास लिखना और जासूसी में काम करना दोनों ही लोकोपकार के लिए है।"[2] 'जनमगोपाल' में नायक जनम गोपाल एक आदर्श जासूस के रूप में प्रस्तुत होता है।

प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों के आगमन के समय मनोविज्ञान काफी फूलने-फलने लगा था। अतः उसका प्रभाव निश्चित ही उपन्यासों पर पड़ा। फ्रॉयड, एडलर, युंग आदि मनोवैज्ञानिकों ने 'मानव' की मनोवैज्ञानिक महत्ता प्रतिपादित करके उपन्यासकारों के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त कर दिया।

1- देखें -"चन्द्रकान्ता" - 'देवकी नन्दन खत्री' - पहला हिस्सा, तीसरा बयान 29वां संस्करण 1956, पृष्ठ 6

2- "जनमगोपाल" - 'गोपालराम गहमरी' - द्वितीय संस्करण 1946 पृष्ठ 67, 68

फलस्वरूप उन्होंने संघर्षशील कुछ पात्रों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। प्रसाद' के 'तितली', 'कंकाल' दोनों उपन्यासों में ऐसे दुर्बल, हुलमुल पात्र देखने को मिल जाते हैं व विविध वर्गों से आये हुए पात्र भी देखने को मिल जाते है। प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में जगह-जगह समस्याओं से जूझते अभावग्रस्त और असामाजिक पुरुष पात्र और नारी पात्र देखने को मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ - 'तितली' के 'सुखदेव चौबे' को ही लें। ऊपर से तो वहअपने को लोगों के 'सुख-दुःख का साथी'[1] बतलाता है पर वस्तुतः वह दूसरों के सुख का ही साथी बनता है, दुःख का नहीं। 'माधुरी' अपने तरेरे बिना किसी से बात नहीं करती।[2] मधुवन की बहन राजकुमारी जीवन-पर्यन्त अभावग्रस्त ही रहती है।[3] इसी तरह कंकाल में भी 'विजय', 'तारा' तथा 'मोहन' जैसी अनाथ संतानें, यमुना की सी स्त्री, अविवाहित मातायें, गुलेनार जैसी बाल-वेश्यायें, लतिका के समान धर्मच्युत स्त्रियाँ, घंटी की सी अज्ञातकुलशील डोमनियाँ इत्यादि समाज की दृष्टि में घृणित समझे जाने वाले ऐसे ही मानव-प्राणी हैं जो जीवन की कठोर यथार्थताओं से टकराकर गिरते-पड़ते अनंत यातनाएं भोगते रहते हैं।"[4]

प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी अन्तर्मुखी पात्रों का चित्रण मिलता है लेकिन उनमें मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का अभाव सा खिलता है। जैसे - उनके 'गबन'

1- "तितली" -'जयशंकर प्रसाद' - पांचवां संस्करण, पृष्ठ 94
2- "तितली" -'जयशंकर प्रसाद' - पांचवां संस्करण, पृष्ठ 57
3- "तितली" -'जयशंकर प्रसाद' - पांचवां संस्करण, पृष्ठ 92
4- "हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास"- डा० रणवीर रांग्रा संस्करण - 1961 पृष्ठ 204

और 'गोदान' में मनोवैज्ञानिक पात्रों की छटा देखने को मिल जाती है। आदर्श टाईप पात्रों के अलावा प्रेमचन्द जी ने ऐसे पात्र भी चुने हैं जिनमें जीवन की उथल-पुथल, अभावग्रस्तता, शोषण, पीड़न आदि सभी कुछ देखने को मिलता है। डा० भटनागर जी के शब्दों में -

"प्रेमचन्द अपने पात्रों की आन्तरिक प्रेरक शक्तियों को, मानस को आन्दोलित करने वाली हलचलों तथा कार्य-व्यापारों को किसी साधारण मनोवैज्ञानिक तत्त्व के मेल में लाकर उपस्थित करने में बहुत पटु है।"[1]

प्रेमचन्दोत्तर युग मनोवैज्ञानिक क्रिया-प्रक्रियाओं और सिद्धान्तों के साहित्य में आगमन व अवतरण का युग है। "प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के मूल प्रेरणा-स्त्रोत मार्क्स और फ्रायड की अर्थ एवं मनोविज्ञान संबंधी स्थापनायें रहीं हैं।"[2]

इस युग में पात्र का व्यक्तित्व उसका आचरण, उसकी उलझन और उसका मनोसंग्राम ही उपन्यास का मूलाधार बन गया और यही सब अज्ञेय, जैनेन्द्र और जोशी आदि के उपन्यासों में मिलता है। संक्षेप में यही कह सकते हैं कि जोशी जी के पूर्व कुछ उपन्यासकारों ने पात्रों को मानसिक भावभूमि पर खड़ा करना शुरू कर दिया। डा० गिरिधर प्रसाद शर्मा के अनुसार-

---

1-"हिन्दी उपन्यास- सृजन और प्रक्रिया" -'डा० शिवबहादुर सिंह भदौरिया'
प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 137

2-"उपन्यास- सिद्धान्त और समीक्षा" -'डा० रवीन्द्र कुमार जैन'
प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ 129

"पुराने परम्परायुक्त उपन्यास केवल बाह्य सतह को छूकर ही व्यस्त रहते थे, आधुनिक उपन्यास मानव-मस्तिष्क के रंगमंच पर भावों विचारों के अभिनय का चित्र प्रस्तुत करते हैं।"[1]

अज्ञेय, जैनेन्द्र और जोशी जी प्रभृति उपन्यासकारों ने मानव के अचेतन और अवचेतन की विराट प्रक्रिया के रहस्यों से पाठकों को परिचित कराना प्रारम्भ किया। पात्रों में हीनता दूर करने के लिए क्षतपूर्ति की बात होने लगी। दमित, इच्छाओं के शिकार पात्रों के मन:पट खोलकर रखे जाने लगे। आत्मपीड़क और परपीड़क पात्रों ने भी अपनी झाँकियाँ प्रस्तुत कीं। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में पात्रों में मनोविज्ञान का वैशिष्ट्य देखकर 'डा० बेचन' उसका मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं :-

"मानसिक ग्रंथियों का बाजार गर्म हो गया है। वैयक्तिक विक्षिप्तियों और वेवसियों से ग्रस्त पात्रों के प्रवेश से सारा उपन्यास साहित्य पट-सा गया है। कोई पात्र हीनता के भाव से ग्रस्त है, किसी ने अपनी इच्छाओं का उदात्तीकरण कर लिया है। कोई ईडिपस ग्रंथि का मारा पिता को प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता है और माँ को प्रेम की नजरों से देख रहा है। हमारे उपन्यासों के बालक सेक्स की भावनाओं से प्रभावित होने लगे हैं।"[2]

1- "हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन" - डा० गिरिधर प्रसाद शर्मा
प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 88

2-"आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास" - 'डा० बेचन'
प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 127

जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, उग्र, भगवती प्रसाद वाजपेई आदि के उपन्यासों में पात्र पूर्ण रूपेण मनोवैज्ञानिक मिलते हैं। अज्ञेय का 'शेखर' 'एक जीवनी' का 'शेखर', जैनेन्द्र की 'परख' की कट्टो, 'कल्याणी' की 'कल्याणी', 'त्यागपत्र' की मृणाल आदि सभी पात्र मनोविकार ग्रस्त हैं। इनके अचेतन मन किसी न किसी ग्रंथि से परिचालित होकर उन्हें अनैतिक और असामाजिक व्यवहार करने को बाध्य करते हैं और इन्हें दुहरे-तिहरे व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। जहाँ 'कल्याणी' एक अतृप्त नारी है और स्त्री स्वातन्त्र्य का विरोध करती हुई, अपने पति के अत्याचार सहन करती हुई अनेक प्रकार के मानसिक रोगों का शिकार बनती है, वहीं 'सुनदा' उपन्यास की सुनदा एक ऐसी कुण्ठाग्रस्त नारी है, जिसमें हीनता ग्रंथि, दमित काम-वासना और विकृतवासना तीनों ही अपने-अपने रंग दिखाती हैं।

इस प्रकार जोशी जी के पूर्व जैनेन्द्र, अज्ञेय, देवराज आदि उपन्यास-कारों ने नायक और नायिकाओं के व्यक्तित्व में अनेक मानसिक दुर्बलताओं का समावेश करा दिया है। उनके नायक परम्परागत धीरोदात्त नायक न रहकर दुर्बलमना अस्वस्थ नायक हैं जो चित्तविकृतियों के शिकार होते रहते हैं। नायिकायें भी रूप सौन्दर्य मंडित न होकर प्रगल्भ और स्त्रीस्वातन्त्र्य का बीड़ा उठाने वाली तथा अचेतन मन द्वारा संचालित सी दिखती हैं। नारी पात्रों में स्त्री-स्वातन्त्र्य हेतु क्रांति के बिगुल से बजते दिखाई देते हैं। इस बिगुल वादन में 'मनोविश्लेषणवादी मनोविज्ञान' जी-जी उठा है।

[ब] जोशी जी के उपन्यासों के पात्र :- इलाचन्द्र जोशी जी की धारणा है कि आज सम्पूर्ण विश्व में जो उथल-पुथल मची है उसका मूल कारण यही है कि हम अपने अन्तर्जीवन की पूर्ण उपेक्षा करके बाह्य जीवन को ही सबसे ज्यादा महत्व देते हैं। वे कहते हैं कि जब तक मानव के अन्तर्गगत के अतल नरक का विश्लेषण नहीं किया जाए तब तक शांति की स्थापना असंभव है। वे कहते हैं -

"व्यक्ति जो है वह वही नहीं है। उसके बाहरी रूप के भीतर कितनी परतों के नीचे उसका असली रूप छिपा रहता है और यदि रात-दिन के जीवन की तुच्छता का पर्दा हटा कर किसी साधारण समझे जाने वाले व्यक्ति के भीतर हम एक भी झलक देख सकें तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहे"[1]

वे कहते हैं कि व्यक्ति के जीवन में जो भी घटनाएं घटित होती हैं वे अकारण या भाग्यवश नहीं घटित होती वरन् उन घटनाओं के बीज पहले से ही व्यक्ति के मानस में छिपे रहते हैं। उन छोटी-छोटी घटनाओं की ओट में पर्वतोच्च विशाल मानसिक प्रवाह ठाठें मारता रहता है। इन्हीं छोटी- से छोटी बातों पर यदि हम गौर करें तो जीवन के महत्वपूर्ण किन्तु उलझे हुए रहस्य आसानी से सुलझते चले जाते हैं।

1- "पर्दे की रानी" -'इलाचन्द्र जोशी' -संशोधित संस्करण 1983 पृष्ठ 1

जोशी जी ने उपरोक्त धारणा को ध्यान में रखकर उपन्यासों में ऐसे पात्रों की आन्तरिकता की निर्मम चीर-फाड़ की । जो देवताओं के समान बाहर और भीतर एक जैसे न होकर, मनुष्य की भाँति बाहर कुछ और तथा भीतर कुछ और हों । उन्हें ऐसे पात्रों की आवश्यकता न थी जो देवतुल्य चारित्रिक निष्ठा वाले दृढ़ पुरुष हों । क्योंकि वे जानते हैं कि देवता बनकर पूजा जाना आसान है, पर मनुष्य बन पाना कठिन । "उन्हें तो वे पात्र चाहिए थे जो मनुष्य हों, मनुष्य की सभी कमजोरियों को लिए हुए स्वभाव से दुखमुख और इतने संवेदनशील हों, कि छोटी से छोटी घटना भी उनके चेतन को चीर कर अचेतन में एक ग्रंथि बनकर गहरी पैठ जाए और वहाँ से उनके आचार-विचार और व्यवहार को निरन्तर प्रभावित करती हुई किसी भी परिस्थिति में उनका सन्तुलन न बैठने दे ।"[1] वे कहते हैं -

"मेरा यह विश्वास रहा है कि असाधारण परिवेश में पली हुई अचेतना के रहस्य मानव-जीवन के अन्तरीण सत्य को उद्घाटित करने में सबसे अधिक सहायक सिद्ध हो सकते हैं । अतः उनके प्रायः सभी उपन्यासों में ऐसे असाधारण या एबनार्मल पात्रों की भरमार है । पूर्णरूपेण मनोवैज्ञानिक होने के कारण इनके पात्रों के अचेतन का उलाव भी जोशी जी मानसिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा आसानी से कर लेते हैं । जोशी जी अपने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा इनके व्यक्तित्व की पर्त-दर-पर्त सरलता से खोलते चले जाते हैं । पात्रों को उनकी मूल प्रवृत्तियाँ किसी प्रकार प्रभावित करती हैं, यह उनके मनोविश्लेषण द्वारा सुगमता से बाचा जा सकता है ।

1-"हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास"-'डा० रणवीर रांग्रा' संस्करण 1961, पृष्ठ 401

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार होने के कारण जोशी जी ने अपने उपन्यासों में कम से कम पात्रों द्वारा काम चलाया है। मुख्य पात्रों के अलावा गौण पात्रों के भी अचेतन-मन की पर्तें जोशी जी ने उधेड़ कर रख दी हैं। मुख्य पात्रों के अचेतन-मन का उद्घाटन करते-करते जोशी जी यह दिखा देते हैं कि उनके पात्र अत्यन्त जटिल हैं। उनके पात्रों के संबंध में 'रवीन्द्र कुमार जैन' लिखते हैं :-

"पात्रों में अपनी हर इच्छा की अविराम पूर्ति के लिए जितनी बेचैनी है, परिस्थिति की गंभीरता के समय वे उतने ही कायर और पलायनवादी सिद्ध होते हैं।"[1] जोशी जी के पात्र आज के भौतिक-युग के अहं-चालित आत्मगत पात्र हैं। उदाहरणार्थ - 'सन्यासी' के मंदीकोर में हम उसकी आत्मनिष्ठा और उसके अहं का नग्नतम रूप देखते हैं। वह अपनी मृत अहंवादी प्रवृत्ति के कारण आरंभ से अंत तक छटपटाता रहता है। 'जयंती' का जटिल चरित्र और शर्मिला का दुहरा-तिहरा चरित्र हमें 'संन्यासी' में यत्र-तत्र देखने को मिलता है। 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ, 'त्याग का भोग' का रंजन, 'पर्दे की रानी' का इन्द्रमोहन, 'निर्वासित' का महीप आदि सभी किसी न किसी जटिलता के शिकार हैं। सभी में कोई न कोई दुर्बलता के दर्शन अवश्य होते हैं। नारी पात्रों के चयन में भी जोशी जी ने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है। उनके नारी पात्रों के भी दो वर्ग हैं। प्रथम प्रकार के वे नारी-पात्र जो परम्परा को स्वीकार करते

1.-"उपन्यास -सिद्धान्त और समीक्षा" -डा० रवीन्द्र कुमार जैन ' प्रथम संस्करण 1972, ई० पृष्ठ 91

पुरूष के अहं, काम, स्वच्छाचारिता आदि को सहन करते हुए अपने को होम कर देते हैं और दूसरे प्रकार के नारी-पात्र अधिकांश पुरूषों के अत्याचारों से पीड़ित होकर प्रबल विद्रोही बन जाते हैं । जहाँ जोशी जी अपने उपन्यासों में एक ओर प्रारम्भ में नारी का पीड़ित रूप दिखाते हैं । वहीं आगे चलकर उसे वे महान क्रांतिकारिणी और उदात्त बना देते हैं ।

इस प्रकार जहाँ एक ओर जोशी जी के उपन्यासों के पुरूष पात्र अहं काम आदि मूल प्रवृत्तियों से पीड़ित हैं वहीं दूसरी ओर नारी पात्र दुर्बल होने के साथ-साथ उदात्त वृत्तियों से प्रेरित हैं । यदि हम इनके सभी उपन्यासों के पात्रों की मनोवैज्ञानिकता पर प्रकाश डालें तो हमें इनके उपन्यासों में मुख्य रूप से निम्नांकित कोटियों के पात्र मिलते हैं :-

§1§ उदात्त वृत्ति वाले आदर्श पात्र,

§2§ सामान्य पात्र,

§3§ विकृत विकृतियों के शिकार पात्र,

§4§ असामाजिकता के शिकार पात्र,

§1§ <u>उदात्त वृत्ति वाले आदर्श पात्र</u> :- जहाँ तक उदात्त वृत्ति वाले आदर्श पात्रों का प्रश्न है, जोशी जी के उपन्यासों में ऐसे पात्र प्राय: प्रारम्भ में नहीं मिलते । जैसे-जैसे पात्रों का मानसिक द्वंद्व होता जाता है वैसे-वैसे वे उदात्त होते चले जाते हैं । लेकिन कुछ पात्र जो प्रारम्भ से अंत तक अपनी उदात्त मनोवृत्ति का परिचय देते हैं उनमें से प्रमुख हैं :- 'बलदेव', 'माधवी दीदी', 'राजीव' ।

'सन्यासी' उपन्यास का बलदेव एक ऐसा प्रभावशाली व्यक्तित्व है जिसे हम सामान्य पात्र नहीं कह सकते हैं। वह एक आदर्श पात्र है जिसके माध्यम से जोशी जी ने आत्मसम्मान, विद्रोह, कर्मण्यता आदि का दिग्दर्शन कराया है। वह एक विकासशील पात्र है उसके एक-एक वाक्य से क्रांति की लपटें उठती दिखाई पड़ती हैं। वह स्वयं निर्धन है इसलिए निर्धनों के प्रति उसके मन में अपार करुणा है। वह एक तार्किक नवयुवक है जो अनेक तर्कों के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत करता है। गरीबों को पिसते देखकर वह भगवान के प्रति नास्तिक हो उठता है। उसका हृदय श्रद्धा और विश्वास की भावनाओं से प्रेरित है। उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता- 'आत्म-सम्मान की भावना' है। वह अपनी बहन और मौसी के साथ रहता हुआ अपने 'आत्मसम्मान' की रक्षा करता है। हर कठिनाई का सामना डँटकर करता है। नन्दीकिशोर की सहायता-भावना को ताड़कर वह कहता है:-

"मैं व्यर्थ के अभिमान के कारण आपकी सहायता को अस्वीकार करने की मूर्खता नहीं करूँगा, पर मैं इस समय कर्ज के तौर पर आपसे कुछ रुपया चाहूँगा, दान के रूप में नहीं।"[1]

स्पष्टतः वह जीवन की उदात्त वृत्तियों से प्रेरित है। 'लज्जा' उपन्यास की 'माधवी दीदी' भी ऐसी ही पात्र है जो जीवन की उदात्त वृत्तियों से प्रेरित है। यह नारी पात्र भारतीय संस्कृति की देन है। माधवी दीदी के जीवन की उदारता, सादगी, उच्च भावना आदि को देखकर

1-"सन्यासी" - 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति, सं० 2030वि० पृष्ठ 205

ऐसा लगता है कि 'सादा जीवन-उच्च विचार' उक्ति ही इनका चरित्र है। वे भारतीय नारी के आदर्श रूप और उसके गौरव को अपने अन्दर समेटे हुए है। अपने पति की मृत्यु के समय भी वे कर्तव्यभावना को ही ध्यान में रखती है, क्योंकि उन्हें अपने दीनू, राजू का ख्याल है, उनके आदर्श और उदात्त व्यक्तित्व का परिचय हमें राजू की डायरी के इस अंश से मिलता है - "कितनी शांति, करुण और साथ ही वज्र-कठिन दृढ़ता से उन्होंने इस घोर संकट के समय भी अपना गांभीर्य कायम रखा। पति की मृतावस्था के समय कैसी अलौकिक आभा से उनका मुखमण्डल प्रदीप्त हो रहा था, अपने चिर जीवन की इस आराध्य देवी को मैंने अत्यन्त श्रद्धा के साथ मन-ही-मन प्रणाम किया।"[1]

'मुक्तपथ' उपन्यास का नायक राजीव भी उदात्तचरित्रों वाला आदर्श पात्र है। उसमें क्रांतिकारियों की सी विद्रोह भावना, युगद्रष्टा की सी दूरदृष्टि तथा कर्मयोगी की सी सतत कर्म करने की लगन है। उसमें सामान्य मानवों से अलग उदात्त गुणों की ऐसी भीड़ हो गयी है, मानो वह उदात्त चरित्रों वाला मानवेतर प्राणी हो। स्वभाव से वह अत्यन्त संयमी, अध्यवसायी और कठिन साधना में रतयुवक है। सुनन्दा जैसी विधवा नारी के हृदय को भी वह अपने गुणों द्वारा वश बना लेता है। मानसिक रूप से भी वह सबल है। उसने यौन-भावना को परिष्कृत करके इस ऊर्जा को सृजनात्मक बनाकर समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत किया है। इस प्रकार

1- "लज्जा" - 'जैनेन्द्र जोशी' तृतीय संस्करण- 1982 ई० पृष्ठ 153

'मुक्तिपथ' में भी उदात्त वृत्ति से प्रेरित आदर्श पात्र देखने को मिल जाता है ।

जोशी जी के उपन्यासों में अधिकांशतः गौण-पात्र ही उदात्त मानवीय गुणों से प्रेरित हैं, क्योंकि उनका लक्ष्य तो दुर्बल और असाधारण मानवों के मन की चीरफाड़ करना है, अतः मुख्य पात्र तो विकृत चित्त और मनोविकारग्रस्त ही मिलते हैं । हाँ अन्त में जाकर कोई-कोई पात्र उदात्तीकृत हो जाते हैं, क्योंकि उनके मन का मैल तब तक धुल चुका होता है । उनके उपन्यासों की कुछ नारियाँ अन्त में जाकर उदात्तवृत्तियों वाली हो जाती हैं । उदाहरणार्थ - 'सन्यासी' की नायिका 'शीला' को ही लें आरम्भ में वह एक सामान्य पात्र के रूप में मिलती है । लेकिन जब जोशी जी की लेखनी उसके अचेतन की चीरफाड़ कर देती है तो वह चित्तविकृति की शिकार सी लगती है, पर अन्त तक आते-आते वह उदात्तवृत्तियों वाली हो जाती है । जब तक वह नन्दकिशोर जैसे पुरुष के अहं का शिकार होती है उसके चरित्र की उदात्तवृत्तियाँ नहीं मिलतीं हैं, लेकिन जैसे ही नन्दकिशोर के प्रबल शिकंजे से उसे मुक्ति मिलती है उसका हृदय दया, माया, ममता, आदि गुणों से खिल उठता है । उसका साहस, विद्रोह, नारी-जीवन के लिए आदर्श है । ऐसे ही 'भैरवी', 'सुनन्दा', आदि का भी व्यक्तित्व है । जब तक वे पुरुषों के अहं के तले दबी रहती है, उनके आन्तरिक गुण प्रस्फुटित नहीं होते, लेकिन जैसे-जैसे उन्हें इससे मुक्ति मिलती जाती है वे स्वाभिमानी, विद्रोहिणी, आत्मसम्मान से युक्त हो उठती हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जोशी जी के उपन्यासों में यद्यपि उदात्तचरित्रों वाले आदर्श पात्र कम ही मिलते हैं, लेकिन जो दो चार पात्र आरंभ से ही उदात्त हैं वे अपने व्यक्तित्व की गरिमा से आदर्शमय हो उठते हैं । प्राय: ये ही पात्र, जो गौण से दिखते हैं, आरम्भ से अन्त तक आदर्श पात्रों के रूप में दिखते हैं । 'डा बेचन ' ने उनके आदर्श पात्रों के बारे में लिखा है :-

"उनके उपन्यासों में कतिपय उपनायक तथा नायक-नायिका के साथ एक मंगलमूर्ति पात्र और होता है, जिसके व्यक्तित्व की कल्याणकारी स्निग्ध छाया सारे उपन्यास को अपनी आभा से आलोकित किए रहती है।"[1]

§2§ <u>सामान्य पात्र</u> :- जोशी जी का लक्ष्य केवल दुर्बल और असाधारण चित्त वाले व्यक्तियों के मन की व्याख्या करना रहा है । अत: उनके उपन्यासों में मुख्य पात्रों के रूप में कोई ऐसा पात्र नहीं मिलता जो सामान्य पात्रों की श्रेणी का हो । हाँ, मुख्य पात्रों को छोड़कर शेष पात्रों में हमें कुछ पात्र सामान्य कोटि के मिल जाते हैं । ये पात्र तो केवल मुख्य पात्रों के चरित्रों के उद्घाटन में सहायता हेतु प्रयुक्त होते हैं । इसके अतिरिक्त इनके उपन्यासों में सामान्य या स्वस्थ पात्र विविध समस्याओं की जानकारी देने के लिए प्रयुक्त हुए हैं । 'सन्यासी'

1-"आधुनिक हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास" -'डा० बेचन'
प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 152

उपन्यास में कोई ऐसा मुख्य पात्र नहीं जो सामान्य हो । हाँ, नन्दकिशोर के दोस्त उमापति, विश्वनाथ, तोती जी, प्रोफेसर कृष्ण कुमार और त्रिपाठी जी ऐसे पात्र हैं जो सामान्य पात्र हैं । उनका जीवन मानव के सहज गुण-दोषों पूर्ण है । ये सामान्य पात्र केवल प्रसंगवश ही प्रयुक्त हुए हैं, अन्यथा जोशी जी का 'सन्यासी' तो केवल एक 'मानसिक-चिकित्सालय' के रूप में सामने आता है जिसमें प्रायः सभी पात्र मानसिक रोगी हैं । 'लज्जा' उपन्यास में भी सामान्य पात्रों के रूप में केवल काका, लीला, माधवी, की माँ ही सामान्य व स्वस्थ पात्रों की श्रेणी में आती हैं । 'लज्जा' उपन्यास में भी जोशी जी का लक्ष्य केवल नायिका 'लज्जा' की चित्तवृत्तियों का उद्घाटन करना रहा है, अतः सामान्य पात्रों का कोई महत्व नहीं है । प्रसंगवश ही यत्र-तत्र एक दो सामान्य कोटि के पात्र प्रयुक्त हुए हैं । 'प्रेत और छाया' उपन्यास में पारसनाथ के दोस्त ही सामान्य पात्रों की परिधि में आये हैं। यद्यपि पारसनाथ प्रारम्भ में सामान्य पात्र लगता है लेकिन जैसे ही उसके मन में 'ईडिपस ग्रंथि' पड़ जाती है, उसका चरित्र विकृत और विभाजित हो जाता है । 'मंझरी' भी प्रारम्भ में सामान्य दिखती है लेकिन जब्से वह पारसनाथ जैसे ग्रंथि पीड़ित व्यक्ति का शिकार बनती है उसका चरित्र भी असाधारण हो जाता है । 'भंडिनी' एक सामान्य पात्र है । उसके जीवन में सामान्य लोगों जैसे उतार-चढ़ाव, प्रेम, काम, आदि भावनाएँ मिलती हैं। वह एक वेश्या थी, लेकिन आदर्श गृहिणी बनने के लिए वह मुखौरिया जी से शादी करती है। मुखौरिया जी उसे पैसों के लालच में अमानुषिक कृत्यों के

लिए प्रेरित करते हैं, परन्तु वह अपने अन्तर में नारीत्व का गुण दीप जलाये हुए हैं। इससे लगता है कि वह ले उपन्यास की एक मात्र सामान्य पात्र है, जिसके जीवन में 'मंजरी' जैसी जटिलतायें नहीं हैं। लेकिन जहाँ-जहाँ जोशी जी उसके अन्तर में प्रविष्ट होते हैं, वहाँ ऐसा लगता है कि वह भी एक 'रचनार्मक' पात्र है। इसीलिए जोशी जी के उपन्यासों के पात्रों के वर्गीकरण में बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ता है। कोई आलोचक चंदन्नी को सामान्य पात्र बतलाता है तो कोई असामान्य। इसका एक मात्र कारण जोशी जी का मनोविश्लेषण है। जैसे-जैसे जोशी जी पात्रों के मानस की अँधेरी गुफाओं में पहुँचते जाते हैं, उन्हें वहाँ पर अनेक विशेषताओं और असामान्यतायें मिल जाती हैं जिनके उद्‌गम से इनके पात्र सामान्य होते हुए भी असामान्य लगने लगते हैं।

'पर्दे की रानी' में शीला और चन्द्रशेखर सामान्य कोटि के पात्र कहे जा सकते हैं। ये केवल मुख्य पात्र के चरित्रोद्‌घाटन में सहायक है। उनका अपना चरित्र सामान्य प्राणियों जैसा है। 'शीला' के चरित्र में सामान्य नारियों जैसे गुण विद्यमान है। नम्रता, सहिष्णुता, स्नेह, ममता, पति परायणता उसके चारित्रिक गुण है। वह विरंजना के सम्पर्क में आकर उसकी प्रिय सखी बन जाती है। यथार्थ पति को पाकर उसके सम्मान को बढ़ाना वह अपना कर्तव्य समझती है। जब उसे पता चलता है कि उसका पति इन्द्रमोहन, विरंजन पर बुरी तरह से आसक्त है तो वह 'स्लो प्वाइजन' को सहर्ष स्वीकार लेती है। यह सामान्य नारी चरित्र की झलक है कि

जब एक पुरुष दूसरी नारी को चाहता है तो उसकी स्त्री उसको चुपचाप सहन करती जाती है और बात अधिक बढ़ने पर वह अपनी जीवन-लीला भी समाप्त कर लेती है । 'शीला' ऐसी ही सामान्य भारतीय नारी है जो प्रतिनिधि रूप में हमारे सामने नारी के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करती है। दूसरा सामान्य पात्र 'चन्द्रशेखर गुप्त' है । यह पात्र मानसिक रूप से स्वस्थ है । उसके हृदय में सामान्य मानवोचित गुण जैसे - समाजसेवा, कर्तव्यपरायणता, निष्कपट सेवाभाव आदि विद्यमान हैं । इसके अतिरिक्त सामान्य मानवोचित दुर्बलताएँ, जैसे - 'निरंजना' को ट्यूशन पढ़ाते-पढ़ाते उससे प्रेम हो जाना, भी विद्यमान है, वह कामवासना के प्रबलत्व से ग्रस्त नहीं है और न ही नैतिक चेतना से शून्य है । वह एक सामान्य सामाजिक प्राणी है ।

'त्याग का भोग' उपन्यास में मुख्य पात्रों में कोई भी सामान्य नहीं है । अन्य गौण पात्रों में वीरेन्द्र, त्रिशीय और शशांक तथा कन्हाईलाल ही सामान्य पात्रों की कोटि में आते हैं । जोशी जी अपने इन सामान्य पात्रों पर विशेष ध्यान नहीं देते वे तो केवल अपने दुर्बल व क्लीव पीड़ित पात्रों के जीवन की विविध विशेषताओं के दिग्दर्शन हेतु ही इन पात्रों का सृजन करते हैं ।

'मुक्तिपथ' की प्रमिला को हम सामान्य पात्र की परिधि में ले सकते हैं । वह एक सामान्य नारी की भाँति राजीव और सुनन्दा के संबंधों को बढ़ावा देने में सहायता करती है । वह जन कल्याण के क्षेत्र में

सुनन्दा की मदद करती है । 'विजय' जैसे धनवान कृपण को सबक सिखाने के लिए ही वह उससे शादी करती है । उसका जीवन जोशी जी की अन्य नारियों की तरह उठा-पटक भरा नहीं है ।

'पुवह के भूले' उपन्यास में महावीर और क्रीमया सामान्य पात्र हैं। महावीर एक सामान्य पात्र है जिसमें मानवता के सभी गुण विद्यमान है । क्रीमया के प्रति प्यार में वह वासना-प्रदर्शन नहीं करता है । वह एक कर्तव्यनिष्ठ पुरुष की तरह भोजन वस्त्र तथा अन्य वस्तुओं की व्यवस्था घर के सदस्यों के लिए करता है । जोशी जी का यह पात्र बाहर और भीतर से सामान्य ही है । उपन्यास की तीसरी सामान्य पात्र है - क्रीमया । वह प्रेमचन्दयुगीन नारी का प्रतिनिधित्व करती है । उसका चरित्र ऐसा है कि सामान्य मनुष्य का हृदय उसके प्रति करुणा से भर उठता है । वह अनेकों कष्ट उठाती हुई अपने सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों जैसे - गिरिजा, महावीर, किशन आदि सभी को प्यार करती है । विधवा होने के बाद वह पुनर्विवाह करती है । परिवार की सुरक्षा के लिए वह आत्मोत्सर्ग तक कर देती है । उसका सारा चरित्र सामान्य मानवीय गुणों से आप्लावित है ।

'निर्वासित' उपन्यास में सामान्य पात्रों के नाम पर हमें 'नीलिमा' और 'श्रीमती खन्ना' के ही दर्शन होते हैं । इनमें सामान्य नारियों की भाँति ही जीवन जीने की कला सिखलाई पड़ती है । 'नीलिमा' का प्रारंभिक जीवन अत्यन्त चंचल है । उसकी माँ श्रीमती खन्ना उसे ठाकुर लक्ष्मीनारायण से शादी करने के लिए उसी प्रकार बाध्य करती है जिस प्रकार समाज में धनवानों के जीवन से आकृष्ट होकर कुछ लोग लड़कियों की शादी जबर्दस्ती

उन्हीं से कर देते हैं । 'नीलिमा' अपने प्रेमी महीप को छोड़कर ठाकुर से शादी कर लेती है । और जीवन में कठोर-यातनाएं सहन न कर पाने के कारण ठाकुर को छोड़कर चली आती है । इस प्रकार वह एक सामान्य नारी की तरह ही अपने जीवन की शुरुआत करती है । लेकिन आगे चलकर हम देखते हैं । कि कैसे-कैसे जोशी जी उसके मन की परतें खोलते हैं, उसकी वास्तविक छवियां उसका संघर्षशील मन उसे सामान्य पात्रों से अलग लाकर खड़ा कर देता है ।

'चतुष्क' उपन्यास में 'प्रतिमा' भी एक सामान्य नारी है । जीवन में जब उसे खुलकर जीने का मौका मिलता है तो वह उससे इन्कार नहीं करती है । पुनः जब वह वापस अपने पूर्व जीवन में आती है तो उसे कोई पश्चात्ताप नहीं होगा । दादा मिलन कुमार भी सामान्य पात्र है जिसमें मानव स्वभाव की दुर्बलताएं-सबलताएं दोनों वर्तमान है । अपनी अधेड़ावस्था में वह प्रतिमा जैसी नारी के साथ प्रणय के खेल खेलने से नहीं चूकते हैं। एक सामान्य मानव की तरह वह भी यौन-जीवन का तिरस्कार नहीं करते हैं । वे उसे दीमत न करके उसका उपभोग करते हैं । इस प्रकार जोशी जी के उपन्यासों में दुर्बल और जटिल पात्रों के बीच में यदाकदा सामान्य पात्र भी दिख जाते हैं, जो जटिल पात्रों के मनोविश्लेषण से उत्पन्न बोझिलता को अपने मानवोचित गुणों से हल्का कर देते हैं ।

(3) चित्त विकृतियों के शिकार पात्र :- जोशी जी के उपन्यासों तीसरी कोटि के ही पात्रों (चित्त-विकृतियों के शिकार पात्रों) की भरमार है। उपन्यास के नायक-नायिकाएं प्राय: चित्त-विकृतियों की शिकार है। इसका एक मात्र कारण यह है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार होने के कारण जोशी जी का अभीष्ट केवल दुर्बल और असाधारण पात्रों की मनोवृत्तियों की छानबीन करना था जिससे कि उनकी दुर्बलताओं का हलाल करके उन्हें उदात्त बनाया जा सके। पात्रों की असाधारण चित्तवृत्ति ही चित्तविकृति कहलाती है। वस्तुत: चित्तविकृति स्वत्व-विभाजन के कारण ही होती है। सामान्यतया विकृत-चित्त व्यक्ति का चेतन मन अपने नैतिक आदर्शों को पकड़े रहता है। जबकि अचेतन-मन अनैतिक वासना के पीछे पड़ा रहता है। इस द्वन्द्व के फलस्वरूप ही मानव का चित्त-विकृत हो जाता है। जोशी जी के उपन्यास ऐसे ही चित्त-विकृत पात्रों की कहानी कहते है। उनके उपन्यासों में प्राय: सभी नायक चित्तविकृत ही मिलते है। जिनका "चरित्र मिट्टी के घरौंदे की तरह बनता-बिगड़ता रहता है ये परिस्थितियों के दास होते है और घटनाओं के साथ में कठपुतली की तरह नाचते रहते है।"[1] उदाहरणार्थ - 'सन्यासी का नन्दीकिशोर एक चित्तविकृत पात्र है। जीवन भर चेतन और अचेतन के द्वन्द्व की चक्की में पिसते रहने का कारण उसका व्यक्तित्व खण्डित हो उठा है। कभी वह अच्छा व्यवहार करता है तो कभी बुरा। आरम्भ से ही 'जयन्ती' और 'शांति के सम्पर्क में आने से उसका अहं उस पर चोटें करता है। चेतनमन उसे

1-"उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन" -
डा० बलराज सिंह राणा, प्रथम संस्करण 1976, पृष्ठ 35

शांति को भगाने के लिए मना करता है पर अचेतनमन हावी होकर उसको अनैतिक कार्य के लिए प्रेरित करता है । उसका अचेतनमन दमित वासनाओं का घर है, अतः समय की खाद मिलते ही उसकी ये प्रवृत्तियां अंकुरित हो जाती हैं । और उसे चित्तविकृति का शिकार बनाती है । ऊपर से वह जितना तरल है अन्दर से ही उतना ही अहं पूर्ण । उसका यही दोहरा व्यक्तित्व उसे 'असामान्यता' की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है । 'शांति'और 'जयन्ती' का व्यक्तित्व भी चित्तविकृति का अनुपम उदाहरण है । शांति जहाँ एक ओर करुणा सजल, भावुक, कोमलमना नारी है वहीं परिस्थितियों की चपेट में आकर वह स्वाभिमानी, धैर्यवान, नारी बन जाती है । उसका व्यक्तित्व दोहरा हो उठता है । उसका दोहरा व्यक्तित्व यह स्पष्ट करता है कि वह एक चित्तविकृत पात्र है । 'जयन्ती' तो वस्तुतः जोशी जी की मनोवैज्ञानिक लेखनी से निकला अद्भुत मनोवैज्ञानिक केस है । वह जहाँ एक ओर संकोचशील, मितभाषी है, वहीं शादी के बाद वह रहस्यमयी, स्वाभिमानिनी नारी के रूप में उपस्थित होकर 'चित्तविकृति' का शिकार हो जाती है । वास्तव में मिट्टी के घरौंदे की तरह उसका चरित्र बनता और बिगड़ता रहता है ।

'पर्दे की रानी' की निरंजना में भी चित्तविकृति के लक्षण होते हैं । उसके अचेतन और चेतन का द्वन्द्व उसके चरित्र को विकृत कर देता है । शीला के प्रति ममता भाव होने पर भी वह उसके सर्वनाश के लिए तुली रहती है । वह नहीं चाहती कि वह शीला के पति को हथियाकर शीला के सर्वनाश

का कारण बने । परन्तु वह जो नहीं करना चाहती वही हो जाता है । अपने स्वभाव की विचित्रता पर उसे स्वयं आश्चर्य है ।" [1]

जब तक उसका चेतनमन यह भुला रहता है कि वह एक सूनी पिता तथा वेश्या माँ की बेटी है तब तक उसका व्यक्तित्व स्थिर रहता है परन्तु जैसे ही उसका अचेतनमन उस पर हावी हो उठता है वह बिल्कुल विरत हो उठती है । 'इन्द्रमोहन' में भी नैतिक चेतना उसका विवेक और उसका संयम सब परिस्थितियों के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं । और उसका चरित्र विकृत हो उठता है ।

उसका जीवन असाधारण वृत्तियों का अखाड़ा बन जाता है । जहाँ एक ओर निरंजना के प्रति उसका मन समर्पण की भावना से प्रेरित है वहीं वह आत्महत्या जैसे कृत्य करके अपनी असाधारण वृत्ति का परिचय देता है ।

'त्याग का भोग' का नृपेन्द्र और मन्या दोनों ही परिस्थितियों के दास हैं परन्तु मन्या तो समय के साथ अपने को परिस्थितियों से अलग कर लेती है । तो भी जोशी जी बीच-बीच में मन्या की असाधारण वृत्तियों का उल्लेख कर देते हैं । कभी वह नृपेन्द्र को चाहती है तो कभी उससे दूर भागती है । अंत में जाकर वह उदात्त वृत्ति वाली नारी के रूप में प्रस्तुत होती है।

'प्रेत और छाया' की 'मंजरी' भी असाधारण मनोवृत्तियों की शिकार पात्र है । 'प्रेमपद्म-ग्रंथि' से पीड़ित जब तक पारसनाथ के साथ रहती है तब तक उसका विद्रोही व्यक्तित्व सुषुप्तावस्था में पड़ा रहता है लेकिन जैसे

1- देखें - "चर्दे की रानी" - 'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण 1965 पृष्ठ 164

ही वह पारसनाथ के असामाजिक व्यक्तित्व से अलग होती है उसके अन्दर छिपे दूसरे व्यक्तित्व का प्रस्फुटन हो उठता है। 'मंजरी' मर्क में ही स्वर्ग बनाकर रहती है। वह अपने पांवों पर खड़ी होकर पुरुषों को धक्का देने से पीछे नहीं हटती है।

'मुक्तिपथ' की सुनन्दा का व्यक्तित्व भी असाधारण-वृत्तियों से युक्त है। प्रारम्भ में जहाँ वह वैधव्य जीवन आसानी से बिताती है वहीं राजीव के भावों से उसके अन्दर यौन-भावना का दमित रूप पुनः अंकुरित होने लगता है। वह राजीव के साथ भाग जाती है - 'मुक्ति निकेत' में काम करने। परन्तु कुछ समय बाद जब उससे उकताकर वह भाग खड़ी होती है तो आश्चर्य होता है -'उसके आचरण पर'। इस प्रकार 'सुनन्दा' में भी असाधारण वृत्तियों का समावेश है, चेतन और अचेतन की उठापटक है। अतः वह भी चित्त-विकृति की शिकार है। विजय भी विकृतचित्त वाला पात्र है।

'निर्वासित'के पात्रों में 'नीलिमा', 'भारदा' दोनों का व्यक्तित्व दोहरा है। उनके चेतन और अचेतन में लगातार द्वन्द्व उठता है। अन्त में ये क्रांति का रूप धारण करके विद्रोहशील हो उठती है।

'सुबह के भूले' की गुलबिया में जहाँ एक ओर हीनता की भावना घर कर गयी है वहीं दूसरी ओर उसका मन इस भावना को दूर करने के लिए छटपटाता रहता है। कभी वह अपना नाम गिरजा रखती है तो कभी गुलबिया। गुलबिया में समाज्ञ लोगों के बीच बैठकर पार्टी बाजी करने की भावना जोर मारती है, परन्तु परिस्थितियों के हाथ में पड़कर भी वह

बाद में अपने को संभाल लेती है । इस प्रकार उसका चरित्र भी असाधारण वृत्तियों का केन्द्र है । दोहरे व्यक्तित्व को जीती हुई गुलबिया अंत में समाज के सामने आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत होती है ।

'लज्जा' की लज्जा का तो कहना ही क्या ? नायिका लज्जा का मन द्वन्द्वों का अड्डा है जहाँ पर काम मूलक प्रेम और भ्रातृ-प्रेम के मध्य भीषण द्वन्द्व चलता हैं । वह पहले तो डा० कन्हैयालाल जैसे लम्पट व्यक्ति के चक्कर पड़कर उसकी दीवानी हो जाती है परन्तु जब उसका भाई राजू आत्महत्या कर लेता है और पिता की भी सदमे से मृत्यु हो जाती है तो उसका मन घृणा से भर उठता है । इस प्रकार 'लज्जा' में हमें असाधारण चित्तवृत्तियों के दर्शन होते है । उपन्यास का अन्य पात्र 'राजू' भी चित्तविकृतियों का शिकार है । वह एक स्वस्थ नौजवान है परन्तु जैसे ही उसे पता चलता है कि उसकी बहन 'लज्जा' एक अनैतिक पुरुष के साथ रंगरलियाँ मनाती है तो उसका व्यक्तित्व खण्डित हो जाता है । वह दिन-रात लोप में डूबा रहता है । अन्त में अपनी जान दे देता है । प्रारम्भ में उसमें 'जीवन-वृत्ति' के लक्षण मिलते हैं परन्तु बाद में परिस्थितियों का दास बनकर वह अपने चित्त को अशान्त कर लेता है । वह मानसिक रूप से अस्वस्थ होकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर लेता है ।

इस प्रकार ओशी की के सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के मुख्य पात्र अर्थात नायक-नायिकायें चित्तविकृतियों की शिकार है । हालांकि बाद में

उनमें से कुछेक अपने दोहरे व्यक्तित्व को समाप्त कर सुदृढ़-व्यक्तित्व वाली बन जाते हैं । जोशी जी के सभी मुख्य मनोवैज्ञानिक पात्र किसी न किसी ग्रंथि या मानसिक वृत्ति से पीड़ित होकर चित्त-विकृति के शिकार हो जाते हैं।

(4) असामाजिकता के शिकार पात्र :- इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में दुर्बल पात्रों का चित्रण अधिक हुआ है, अतः उनमें से कुछ पात्र ऐसे भी मिल जाते हैं, जो असामाजिकता के शिकार है, जो उदाहरण के लिए 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ और भुजौरिया जी ऐसे ही असामाजिकता के शिकार पात्र है । जीवन के नैतिक मूल्यों का इनके जीवन में कोई स्थान नहीं है । 'पारसनाथ' तो मानों अनैतिक, असामाजिक आचरण करने के लिए ही प्रयुक्त हुआ है । उसकी असामाजिकता के बारे में 'डा० सुखदेव शुक्ल' लिखते हैं :-

"अपनी प्रेमिकाओं के साथ विश्वासघात करने और इन्हीं असहाय अवस्था में छोड़ने में उसे पाशविक सुख मिलता है, इसलिए कांची, मंजरी और नंदिनी को पुराने कपड़ों की तरह त्यागकर भी वह स्वस्थ चित्त बना रहता है।"[1]

भुजौरिया जी के रूप में एक और असामाजिक पात्र को सृजन जोशी जी ने किया है । भुजौरिया जी पैसे के लोभ में ऐसे अनैतिक कर्म करता है ।

1-"हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता"-'डा० सुखदेव शुक्ल' संस्करण - सितम्बर 1966, पृष्ठ 281

जिनको हमारे समाज में कोई मान्यता नहीं मिली है । वह अपनी बीबी नन्दिनी देवी को बड़े-बड़े लोगों की अंकशायिनी बनने को कहता है। "सामाजिक कसौटी पर किये जाने स्वच्छन्द यौन-अपराध जोशी जी के पात्रों की विवशता है ।" 1

'त्याग और भोग' का नायक नृपेन्द्ररंजन भी असामाजिकता का शिकार पात्र है । वह मनिया के प्रति शारीरिक आकर्षण के कारण उसे अपने अधिकार में लाने के लिए उचित-अनुचित का ख्याल नहीं करता है । जब वह तेजाब गिरने से कुरूप हो जाती है, तो उसे न चाहकर अपने मित्र वीरेन्द्र की पत्नी शोभना के साथ अवैध सम्बन्ध स्थापित कर लेता है । विश्वासघात, बलात्कार और हत्या जैसे इन असामाजिक पात्रों के साधारण कर्म हैं ।

जोशी जी के 'लज्जा' उपन्यास में डा० कन्हैयालाल जैसा पात्र भी असामाजिकता का शिकार है । वह काम-ग्रंथि से इतना अधिक पीड़ित है कि 'लज्जा' को मानसिक रूप से न चाहकर उसके शारीरिक सौन्दर्य पर आसक्त हो जाता है । पर 'लज्जा' से अलग जाते ही वह अपना आश्रय अन्य नारियों को बना लेता है । कमलिनी और उसकी सखियों पर भी वह अवैध रूप से अधिकार जमाता है । इस प्रकार जोशी जी के इस उपन्यास में भी डा० कन्हैयालाल जैसे असामाजिक पात्र की अवतारणा हुई है ।

जोशी जी के असामाजिक पात्र नैतिक बंधनों को कच्चे धागे के

1- "उपन्यास- सिद्धान्त और संरचना" - 'डा० रवीन्द्र कुमार जैन' प्रथम संस्करण -1972 ई० पृष्ठ 91

समान मानते है । वे अपनी काम-तृप्ति के सामने नैतिक-अनैतिक, कर्तव्य-अकर्तव्य आदि का विचार नहीं करते । ऐसे पात्र उस सभ्य की आदिमकालीन बर्बरता की याद दिलाते हैं । जब मानव पर पाशविक सभ्यता का आवरण चढ़ा था । जोशी जी के असामाजिक पात्रों के संबंध में 'सुलदेव शुक्ल' लिखते हैः-

"ये नायक वस्तुतः मानव की आदिकालीन बर्बरता के नवीन संस्करण हैं ।"[1]

हम देखते है कि जोशी जी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में सभी कोटियों के पात्र मिल जाते हैं । जहाँ उनके उपन्यासों में उदात्तवृत्तियों से प्रेरित आदर्श पात्र हैं, वहीं सामान्य मानवीय गुण-दोषों से युक्त सामान्य पात्र भी हैं । यदि एक ओर असाधारण वित्तवृत्तियों के शिकार कुण्ठाग्रस्त और लग्न मानस पात्र है तो दूसरी ओर असामाजिकता के पंक में लिपटे हुए अनैतिक पात्र भी हैं । पात्र-वैचित्र्य के उत्कृष्ट नमूनों के रूप में जोशी जी के प्रत्येक उपन्यास की निराली ही छटा है । चाहे वह 'जहाज का पंछी' हो चाहे 'सुबह के भूले' । उपन्यासों की पृष्ठ भूमि सामाजिकता को छूती होने पर भी पात्र मनोवैज्ञानिक ही मिलते हैं । उनके पात्रों की सामान्य विशेषताओं को रेखांकित करते हुए 'रवीन्द्र कुमार जैन' लिखते हैं :-

"हर अपराध पर पछताना और नए अपराध करना, यह भी उनके प्रायः सभी पुरुष पात्रों

1-"हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता" -'डा० सुलदेव शुक्ल'
प्रकाशन - सितम्बर 1966, पृष्ठ 282

की खास प्रवृत्ति है । ये पात्र यौनमूलक आत्मचेतना के सम्राट हैं, किन्तु लोकचेतना क्यों ही उनके सामने आती है, वे स्वयं को हीन और अपराधी मानकर पछताने लगते हैं ।"[1]

(ख) जोशी जी के उपन्यासों के पुरुष पात्र एवं उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण :-

इलाचन्द्र जोशी मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के लेखक हैं । अतः उन्होंने अपने उपन्यासों में जिन पात्रों का सृजन किया है वे भी यथार्थ जगत् के ही प्राणी हैं । जोशी जी ने यथार्थ जगत् के प्राणियों के मध्य से दुर्बल पात्रों को ही चुनकर अपने उपन्यासों में उनको स्थान दिया है । उन्होंने अपने दुर्बल पात्रों को जीवन के रंगमंच पर खुला छोड़ दिया है । वे अपनी प्रकृति परिस्थिति और संस्कारक के अनुसार ही विकसित हुए हैं । जोशी जी अपने पात्रों की चारित्रिक पीरफाड़ के मध्य स्वयं नहीं आते बल्कि तटस्थता पूर्वक उनका चित्रण करते चलते हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में दुर्बल प्रकृति के व्यक्तियों को ही कथानायक बनाया है । 'त्याग का भोग' उपन्यास के अंत में जोशी जी का कथानायकों सम्बन्धी मन्तव्य उल्लेखनीय है । नायक नृपेन्द्ररंजन उपन्यासकार को अपनी कथा सुनाकर उपन्यासकार से कहता है - - -

"मैं समझता हूँ कि आपको नये उपन्यास के लिए कुछ न कुछ मसाला

1-"उपन्यास: सिद्धान्त और संरचना" -'डा० रवीन्द्र कुमार जैन'
प्रथम संस्करण 1972 ई० पृष्ठ 91

अवश्य ही मिला होगा । ------ पर एक कठिनाई आपको पड़ेगी । आपका कथानायक बड़ा ही दुर्बल-प्रकृति, चारित्रिक शक्ति से एकदम रीक्त, बेपेंदे का सा लोटा सिद्ध होगा ---- "इसका उत्तर देते हुए उपन्यास-कार स्पष्ट करता है - "मेरे लिए यही एक प्रलोभन है । वीर नायकों की गाथा लिखने वाले उपन्यासकारों की कमी नहीं है पर दुर्बल-स्वभाव व्यक्तियों को कथानायक बनाने का सौभाग्य अकेले मुझे ही प्राप्त है । इस सम्बन्ध में आप निश्चिन्त रहें।" ।

आधुनिक युग में संसार में जितनी भी श्रेष्ठ रचनाएं पायी जाती हैं, उनके नायक दुर्बल तथा अन्य पात्र दुर्बल प्रकृति हैं । पिछले सौ वर्ष की रचनाओं में जैसे 'दास्तायवस्की' के 'अधकचरा युवक', 'मूर्ख' आदि, शरद बाबू के 'चरित्रहीन', 'देवदास', 'श्रीकान्त' आदि, 'टालस्टाय' के 'अन्नाकेरेनिना', 'गोर्की' के 'ये तीनों' आदि ऐसे ही उपन्यास हैं, जिनके नायक दुर्बल चरित्र हैं । जोशी जी के उपन्यासों के प्रायः सभी नायक ऐसे ही दुर्बल प्रकृति के हैं । उनके अनुसार "भावुकता के रंग में रंगे हुए काल्पनिक चित्र की अपेक्षा यथार्थ रेखाओं द्वारा अंकित सहज मनोवैज्ञानिक चित्र अधिक महत्वपूर्ण और जीवन की वास्तविकता को समझाने में अधिक सहायक सिद्ध होते हैं ।" [2]

1- "संन्यास काभोग" - 'इलाचन्द्र जोशी'- तृतीय संस्करण 1972ई० पृष्ठ 624

2-"विश्लेषण" - 'इलाचन्द्र जोशी' पृष्ठ 166

वे अपने दुर्बल नायकों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं:-

"राजनीतिक शक्तिमत्ता अथवा शक्ति प्रसार के मद से अंध, हिंसा-प्रतिहिंसा के रोग से ग्रस्त, युद्ध त्रस्त, जीवन संघर्ष में पिसा हुआ अन्ना-भाव से जर्जर, भूत से पिताड़ित, वर्तमान से दलित और भविष्य की अनिश्चित आशंकाओं से शंकित आज का सम्पूर्ण मानव-जगत् ही मानों विकारग्रस्त हो उठा है। इसलिए कोई भी ईमानदार, यथार्थवादी उपन्यासकार वास्तविक जीवन में किसी ऐसे नायक को खोज नहीं पाता जो मनोविकारग्रस्त न हो और लोहे के समान, सुदृढ़-चरित्र, नैतिक दृष्टि से अत्यन्त उन्नत और जीवन में उच्च आदर्शों को अपनाये हुए हों।"[1]

स्पष्ट है कि आज के बौद्धिक और भौतिक युग में दृढ़ चरित्र वाले उदात्त नायक ढूँढना कठिन है। अतः जोशी जी ने अपने उपन्यासों में ऐसे ही मनोविकार ग्रस्त, नैतिक दृष्टि से पतित पुरुष पात्रों को अपने उपन्यासों का उपजीव्य बनाया है।

जोशी जी मनोविज्ञान के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। अतः उन्होंने अपने दुर्बल नायकों के मानस की चीरफाड़ विविध मनोवैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा की। मनोविश्लेषण जैसे तीक्ष्ण छुरे से जोशी जी ने अपने दुर्बल पात्रों की अन्तर्निहित प्रवृत्तियों की चीरफाड़ की है। "पारदर्शक में मनोविश्लेषण शैली का प्रयोग उन्होंने इसी उद्देश्य से किया है, क्योंकि ऊपर से सभ्य-सुसंस्कृत व्यक्ति के मानस में छिपी भयानक दुष्प्रवृत्तियों, कुण्ठाओं, दमित

1-"विश्लेषण" - 'इलाचन्द्र जोशी' पृष्ठ 196

वासनाओं आदि के अभिव्यक्ति का एक मात्र उपाय मनोविश्लेषण ही है।"[1]

जोशी जी के उपन्यासों में पुरुष पात्रों के मन की दमित-वासनाएं उनके चेतन-अचेतन की उठा-पटक, विविध-प्रेमचर्या, उनकी मानसिक-ग्रंथियां और उनके मानसिक क्रिया-व्यापार सभी कुछ देखने को मिलता है। अपने मनोविश्लेषण के माध्यम से वे अपने पुरुष पात्रों के मन की इन सभी स्थितियों का विश्लेषण बड़ी सूक्ष्मता से करते हैं। जोशी जी के सभी उपन्यासों में नायक या पुरुष पात्र अचेतन से परिचालित है। फ्रॉयड, एडलर, युंग, आदि के मनोविज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तों का पूर्ण परिपाक जोशी जी के उपन्यासों के पुरुष पात्रों में देखने को मिलता है। यहाँ पर हम उनके उपन्यासों के प्रमुख पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं :-

नन्दकिशोर :- 'सन्यासी' उपन्यास का नायक नन्दकिशोर एक सुन्दर मेधावी युवक है जो कलकत्ता यूनिवर्सिटी में एम०ए० प्रीवियस का अध्ययनरत है। छात्रावास में उसका जीवन बड़े आनन्द से बीत रहा था। वह आध्यात्मिक प्रवृत्ति का भी परिचय देता है। वह संस्कृत का विद्यार्थी होते हुए भी अंग्रेजी व पाश्चात्य (यूरोपीय) दार्शनिकों के अध्ययन में निष्णात था।"[2]

एक नियम नीति निष्ठ छात्र के रूप में उसकी प्रारम्भिक झलक देखने

1-"धरती की रानी" -'इलाचन्द्र जोशी' - संशोधित संस्करण 1983 ई० (आवृत्ति) पृष्ठ 2

2- देखें-"सन्यासी"-'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति सं2030विक्रमी पृष्ठ 10

को मिलती है । उसकी मनोभूमि प्रारम्भ में इस अप्राकृतिक आनन्दमय संसार में निर्मुक्त और निर्द्वन्द्व होकर विचर रही थी । वह ऐसे संस्कारों में पला व्यक्ति है जिसमें नारी की छाया से भागने का कठोर बन्धन है । अर्थात उसके मन में वासना दमित रूप में पड़ी है । विद्याव्यसनी नन्दकिशोर के जीवन में जैसे ही 'जयन्ती' के सौन्दर्य का आगमन होता है तभी से उसका अचेतनमन कुलबुलाने लगता है । आगरे में जयन्ती के निकट-सम्पर्क से उसके अचेतन में दबी काम वासना चेतन पर पड़े झीने पर्दे को फाड़कर बाहर निकलने को मचल उठती है । उसके साधारिक अचेतन में रूढ़ वासना का बांध टूट जाता है। वह स्वयं कहता है -

"सामने एक देवकन्या खड़ी है, ऐसा मोहन रूप मैंने उसके पहले कभी नहीं देखा था । स्तम्भित, विभ्रान्त होकर काठ की मूर्ति की तरह उसकी ओर देखता रह गया ।"[1]

रूप के प्रति एक अदम्य पिपासा जो उसके तरुण मन की अतल गहराइयों में सुप्त पड़ी थी, जयन्ती के मादक रूप को देखकर जाग उठी । उसका सारा नियम-संयम टूटने लगा । चेतनमन के अंकुश के कारण उसके मन में अन्तर्विरोध उत्पन्न हो जाता है । वह यौनकुण्ठा के कारण 'ईडिपस-ग्रंथि' से ग्रस्त हो उठता है । उसके चेतनमन का अंकुश देखिए :-

"तीन बार दिन इसी तरह बिता कर वापस चलने का विचार किया। पूरी छुट्टियाँ यहीं बिताता, पर इस घर

1-'सन्यासी'- 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति संवत 2030 विक्रमी पृष्ठ 14

के प्रति एक जबर्दस्त मोह का भाव मन को जकड़ता जाता था, और उसे छोड़कर कहीं जाने को किसी तरह जी नहीं चाह रहा था। विशेष करके इस कारण से ही मैं यथाशीघ्र उसकी माया त्यागकर चल देना चाहता था संस्कार का अंतस्तल में यह अनुभव कर रहा था कि यदि तत्काल इस माया-बंधन को न काट सका तो चिर-जीवन फिर इससे मुक्ति पाना असम्भव हो जायेगा ।" [1]

अनारत आकर अवेतन के उद्वेलन के कारण उसके मन की दशा अस्थिर ही रहती है । यहाँ भी उसकी 'दीमतवासना' उसे शांति से मिलने के लिए व्याकुल करती है । यहाँ चेतन (सुपर इगो) उसे नियंत्रित करने की कोशिश करता है परन्तु वासनाजन्य प्रबलता उसे विद्रोह करने पर मजबूर करती है । अवेतन की जीत हो जाती है । अवेतन में दीमत वासना को प्रेम का रूप देकर वह उसे चेतनमन हेतु इस प्रकार ग्राह्य बना लेता है - "इस बन्धनहीन विपुलाकांक्षा के आगे समाज का पीड़न तथा संसार का बन्धन कितना तुच्छ है । शांति मुझे प्यार करती है और मैं उसे चाहता हूँ, क्या इतना ही यथेष्ट नहीं है ।" [2]

इस प्रकार उसके अवचेतन की दीमतवासना का विस्फोट बड़े ही अस्वाभाविक तरीके से होता है । शांति को भगाकर वह चेतनमन में यह सोचता है कि यह बड़ा सम्मानजनक कार्य है । किन्तु उसके अवचेतन की

1-"सन्यासी" -'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति सं० 2030वि० पृष्ठ 41, 42
2-"सन्यासी" -'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति सं० 2030वि० पृष्ठ 80

छलना से छले गये अचेतनमन से एक आवाज आती है कि यह सब पाप है। शांति जब इलाहाबाद में रहती हुई विवाह की बात कहती है तो उसके चेतनमन में एक आन्दोलन सा उठता है और वह शांति के प्रति अपने अहं का प्रदर्शन करने लगता है। एक ओर उसका 'अचेतन' (इड) वासना से चीख रहा है तो दूसरी ओर 'चेतनमन' (सुपर इगो) प्रेम का झूठा दम्भ भरता है वहीं तीसरी ओर उसका 'अर्ध चेतन' (इगो) तर्क करता है - "यदि केवल हृदयों का पारस्परिक प्रेम पाना ही हम लोगों के लिए महत्वपूर्ण बात थी तो शांति को अपने साथ यहाँ लाकर समाज तथा संसार के प्रति विद्रोह की घोषणा करके इतने बड़े बखेड़े का भार अपने ऊपर लेने की आवश्यकता ही मुझे क्या थी।"[1]

अपनी वासना की लालसा की पूर्ति के लिए वह 'चेतनमन' (सुपर इगो) को भी तैयार कर लेता है। वह शांति को तैयार देखना चाहता है। शांति के अस्वीकार करने पर वह अपने अचेतन की व्याख्या करता हुआ कहता है:-

"मेरे बाह्य मन का आदर्श चाहे कितना ही ऊँचा हो, पर मेरा अन्तर्मन तो जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों से गठित मानव-प्रकृति के विरुद्ध नहीं जा सकता था। भागने के समय मेरे भीतरी मन का यह पाप स्वयं मुझसे छिपा हुआ था। अब वास्तविकता के संघर्ष से वह फूट पड़ा था।"[2]

1-"सन्यासी" - 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति, सं० 2030वि० पृष्ठ 126

2-"सन्यासी" - 'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति, सं० 2030वि० पृष्ठ 132

शिमले में पुनः जब वह जयन्ती को देखता है तो उसकी काम-वासना फिर से हिलोरे लेने लगती है। शांति के प्रति अन्याय की भावना उसे जयन्ती से शादी करने को रोकती है। अन्तर्मन पुनः चेतन से संधि करने को लालायित हो उठता है। वह जयन्ती से शादी इसलिए करता है कि वह अचेतन जन्य संस्कारों वश {'इड' के कारण} उसके स्वाभिमान को कुचल सके। उसके वासनाजन्य चरित्र की समीक्षा करते हुए 'डा० भदौरिया जी' लिखते हैं :-

"नन्दकिशोर उन व्यक्तियों का साधारण प्रतीक है, जो वर्जनाओं से उत्पन्न अपने संकोच को नैतिक व्यवधानों अथवा पीड़ित आदर्शवाद की चादर में ढंक लेने का प्रयास करते हैं।"[1]

नन्दकिशोर का जीवन न केवल काम-वासना से ग्रस्त है वरन् अचेतन मन में जमा हुआ अहं भी विस्फोटक रूप में सामने आता है। उसके अहंकारी रूप के बारे में जयन्ती कहती है :-

"आप में बहुत से अच्छे गुण हैं कुछ गुण तो असाधारण हैं। आपका हृदय बाहर से चट्टान से भी कठोर मालूम होने पर भी भीतर वह मोम से अधिक कोमल है। कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान भी आपका बहुत बढ़ा-चढ़ा है पर-पर - - - - आपके स्वभाव में एक बड़ा भारी दोष है। वह यह कि आप बड़े अहंकारी हैं। आपका अहंभाव हद दर्जे तक बढ़ा हुआ है।"[2]

1-"हिन्दी उपन्यास:सृजन और प्रक्रिया"- डा० शिव बहादुर सिंह भदौरिया प्रथम संस्करण 1981 पृष्ठ 167

2-"सन्यासी" -'इलाचन्द्र जोशी' - सप्तम आवृत्ति सं० 2030 विक्रमी पृष्ठ 363, 364

उसका समस्त व्यवहार अहंभावना से परिचालित है। जिसके कारण वह स्वयं जीवन में तो दुख के बीज बोता ही है, दूसरों के जीवन में भी अमंगल उत्पन्न कर देता है। नन्दीकिशोर के अहं के कारण ही जयन्ती की उन्मादावस्था आँखों में वेदना, क्रोध और करुणा का अनोखा मिश्रण झलकता है। इसके लिए वह पुरुष[नन्दीकिशोर] के अहं को ही दोषी ठहराती है। रंगीत को भगाकर इलाहाबाद ले जाने में नन्दीकिशोर को गर्व का अनुभव इसी लिए होता है क्योंकि वह 'अहं' की तीव्र भावना से ग्रसित है। 'डा० कृष्ण देव झारी' उसके बारे में लिखते हैं:-

"प्रह्लाद के मनु की तरह अपनी वासनापूर्ति में देरी या बाधा के प्रति आशंका से वह बौखला उठता है। रंगीत से जरा-जरा सी बात में वह इसी कारण से नाराज होता है।"[1]

नन्दीकिशोर का अहं वादी मन समय-समय पर निर्मम हो उठता है। वह उसे बनी-बनाई बातें सुनाने में कोई कसर नहीं छोड़ता। बलदेव के प्रति रंगीत की श्रद्धा के कारण उसका अहंवादी मन क्रोध से उत्तेजित हो उठता है। जयन्ती के प्रसंग में भी उसका 'अहं' सामने आकर विनाश लीलाएं प्रस्तुत करने लगता है। उसके 'अहं' का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि वह जयन्ती से इसलिए शादी नहीं करता है कि वह उससे प्यार करता है अपितु वह जयन्ती को अपने अधीन करके उसके गर्व को चूर-चूर करने के लिए शादी करता है। वह अपने अहंमन्य चित्त के पूर्ण भावों की व्याख्या करते हुए स्वयं लिखता है:-

"जयन्ती से विवाह में इसलिए करने नहीं जा रहा था कि मैं

1-"उपन्यासकार-इलाचन्द्र जोशी" - डा० कृष्ण देव झारी
संस्करण सन् 1975 ई० पृष्ठ 216

अपने एकांगीण जीवन की अपूर्णता को पूर्ण करूँ बल्कि इसलिए कि उस तेजस्विनी नारी के स्वभाव में एक शांत और संयत यथापि दुर्दमनीय गर्व का जो भाव दिखाई दिया था उसे अकारण ही चूर-चूर करने की एक प्रतिहिंसा पूर्ण भावना मेरे मन में समा गयी थी ।"[1]

सम्पूर्ण उपन्यास में नायक 'ईगो' द्वारा परिचालित दिखता है। आलकेन्द्रित नन्दकिशोर की प्रेमचर्या में 'परपीड़न रीति' की प्रधानता है । वह जयन्ती और शांति के साथ प्रेम तो करता है परन्तु उसके प्रेम में सर्वत्र 'परपीड़न रीति' (सैडिज्म) ही परिलक्षित होती है। शांति से प्रेम करते समय वह जगह-जगह पर उसे मानसिक पीड़ा पहुँचाता है । जयन्ती से विवाह करके उसे मृत्यु की आत्मघाती शैय्या पर सुला देना उसकी 'परपीड़न-रीति' का ही उदाहरण है ।

'नन्दकिशोर' के चरित्र में मुक्तवृत्तियों का भ्रूवत्व भी देखने को मिलता है । 'जीवन-वृत्ति' और 'मरणवृत्ति' दोनों का ही सामंजस्य उसके व्यक्तित्व में हुआ है तभी तो उसके उत्कट प्रेम में उत्कट घृणा के भी दर्शन होते है ।

'अहं' और 'काम' के कुसमायोजन के फलस्वरूप उसके चरित्र में 'हीनता-भावना' (इन्फीरियारिटी कॉम्प्लेक्स) का भी समावेश हो जाता है। बलदेव और केलास जैसे लोगों से मिलने पर उसका मन 'हीनता' का

1-"सन्यासी" -'इलाचन्द्र जोशी' सप्तम आवृत्ति संवत 2030 वि० पृष्ठ 338

शिकार हो उठता है । उसके अचेतन-मन के गहन गह्वरों में दबी 'काम-वासना' (प्रभुत्व कामना), संदेहशीलता आदि का अवांछित निष्कासन नन्दकिशोर के व्यक्तित्व को कुंठित कर देता है। इच्छाओं के दमन के कारण ही उसका व्यक्तित्व 'हीनता-ग्रस्त' हो उठता है ।

नन्दकिशोर के चरित्र में एक प्रमुख बात यह दिखती है कि वह मानसिक रोगी हो जाने के कारण 'दुःस्वप्नों' का शिकार बनता जाता है । जोशी जी ने कथानायक के चरित्रका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने हेतु 'स्वप्न-मनोविज्ञान' का भी प्रयोग किया है । सम्पूर्ण उपन्यास में "नन्दकिशोर भावुक, यौनवर्जना के रोग से पीड़ित, कामासक्त, अहंप्रिय, संशयशील, अव्यवस्थित एवं अपरिपक्वबुद्धि तथा चंचलमन वाला चित्रित किया गया है । परिणामस्वरूप वह आत्मघाती, नीच प्रवृत्तियों का प्रतीक एवं भर्त रूप है । उसका कलुषित पाप पंकिल जीवन का पक्ष ही अपने भयानक रूप में पाठक को दिख पड़ा है।"[1]

उसके चरित्र का मूल्यांकन करते हुए 'डा० रवीन्द्र कुमार जैन' लिखते हैं :-

"नन्दकिशोर में अन्तर्घुटन है, अति वैयक्तिकता है और है उसमें दम तोड़ती कामनाओं के संघर्ष का अन्तःसुफानी-सागर-जिसके बबूले सतहों पर भी उठते हैं । उसमें मरणोन्मुखी दौड़-धूप ही है, जीवन की सच्ची

1-"इलाचन्द्र जोशी - मूल्यांकन - ' डा० सुधीर कुमार '
प्रथम संस्करण सन् 1980 ई० पृष्ठ 129

गीत और आभा नहीं।"[1]

'डा० रामशोभित प्रसाद सिंह' के शब्दों में :-

"फ्रॉयड की काम-ग्रंथि रहस्य के प्रभुत्व प्रवृत्ति और सार्त्र के अस्तित्ववाद के आलोक में 'सन्यासी' के नायक नन्दकिशोर की मनोदशा का चित्रण किया गया है।"[2]

इन्द्रमोहन :- 'पर्दे की रानी' उपन्यास का नायक इन्द्रमोहन यूरोपीय शिक्षा-दीक्षा में पला हुआ आधुनिक मानव है। उसका जीवन फ्रॉयड द्वारा प्रतिपादित 'सुख सिद्धान्त' (प्लेजर प्रिंसिपल) और यथार्थ सिद्धान्त' (रियालिटी प्रिंसिपल) के संघर्ष का उत्कृष्ट उदाहरण है। फ्रॉयड के अनुसार- मनुष्य किसी भी अनुभूत सुख को छोड़ना नहीं चाहता है। वह चाहता है कि उसका सुख अमरत्व प्राप्त करे और उसकी इच्छाओं की तत्काल पूर्ति हो जाय - चाहे भले ही उसका परिणाम कुछ भी हो। यह मनुष्य की सुख-प्रवृत्तियों की माँग होती है जिन पर उसकी 'विवेक बुद्धि' कोई अंकुश नहीं रख पाती है। विवेक बुद्धि लगातार इस प्रयास में रहती है कि उसे सामाजिक बनाये रखे अर्थात अचेतन और अर्ध-चेतनमन को चेतन मन हर प्रकार से समझाने की कोशिश करता है परन्तु चेतनमन की ओर से

1- "उपन्यास : सिद्धान्त और संरचना" -'डा० रवीन्द्र कुमार जैन' प्रथम संस्करण सन् 1972 ई० पृष्ठ 210

2- "हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दोत्तर काल" -'डा० राम शोभित प्रसाद सिंह' प्रथम संस्करण सन् 1981 ई० पृष्ठ 440

जरा सी ढील हो जाने पर 'अचेतनमन' पर पड़ा अंकुश जैसे ही हटता है तो मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियां आदिम युगीन नग्न-नृत्य के लिए मचल उठती हैं इस प्रकार मनुष्य की इन पाशविक प्रवृत्तियों और नैतिक बुद्धि में निरंतर संघर्ष चलता रहता है।[1]

इन्द्रमोहन निरंजना को देखकर 'अहं' (ईगो) चालित हो उठता है। उसका 'अचेतनमन' निरंजना को पूरा पा लेने के प्रयास में बार-बार 'चेतन-मन' को दबाने के प्रयास करता है परन्तु समाज के भय से उसके 'अचेतन-मन' में पा लेने की यह प्रवृत्ति दमित सी होती रहती है। निरंजना के कौमार्य का उपभोग लक्ष्य सा बन जाता है। इस कार्य को पूरा करने के लिए 'चेतनमन' उसे विवाह जैसे सामाजिक कार्य को करने के लिए बाध्य करता है।

1- "Under the influence of the instinct of ego for self-preservation, it (pleasure principle) is replaced by the 'reality principle' which without giving up the intention of ultimately attaining pleasure yet demands and enforces the postponement of satisfaction, the renunciation of manifold possibilities of it and the temporary endurance of pain, on the long and circuitous road to pleasure"

page 5

By- FREUD

("Beyond the pleasure principle" - 1924)

विवाह की आँड में वह उसे पा लेना चाहता है। यहाँ पर 'सुख-सिद्धान्त' और 'यथार्थ-सिद्धान्त' में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है । अन्त में वह पत्नी शीला को 'स्लो प्वायजनिंग' का शिकार बनाकर निरंजना के कौमार्य को भंग ही कर देता है। विचित्र है - उसकी 'काम-ग्रंथि' ।

इन्द्रमोहन का चरित्र 'अहं' और 'काम' के द्वन्द्वों का सुन्दर उदाहरण है। 'अहं' की पूर्ति के लिए वह शीला से विवाह करता है। निरंजना से अपने विवाह की बात स्पष्ट करता हुआ यह आत्म विश्लेषक पात्र इन्द्र-मोहन कहता है:-

"मैंने विवाह क्यों किया, यदि इसका यथार्थ कारण मैं बताऊँ तो क्या आप विश्वास करेंगी, निरंजना देवी । ---- मैंने विवाह इस आशा से किया कि इस बात से आपके मन पर मेरे संबंध में अच्छी धारणा जम जायेगी । मेरे भीतर जो एक आवारा गर्दी का भाव मुझे सब समय शैतान की कला बाजियों के चक्कर में डाले रहता था वह स्थिरता मुझे केवल विवाहित जीवन से प्राप्त हो सकती थी । मैं अपनी अज्ञात में यह आशा रखता था कि जीवन के किसी चरम अवसर पर कहीं न कहीं फिर एक बार आपसे भेंट होगी । उस महत्व पूर्ण मिलन की तैयारी के उद्देश्य से ही अपने जीवन का गठन एक विशेष आदर्श के अनुसार करने पर तुला हुआ था। मेरे विवाह की केवल यही एक सार्थकता थी।"[1]

अपने 'अहं' की पूर्ति के लिए वह 'गुरु चन्द्र शेखर गुप्त' पर भी गोली चलाता है। 'डा० विमल सहस्रबुद्धे' इन्द्रमोहन के चरित्र पर विचार

1-"पर्दे की रानी" - 'इलाचन्द्र जोशी' संशोधित संस्करण सन् 1983 ई०
पृष्ठ 181, 182

व्यक्त करती हुई लिखती हैं :-

"इन्द्रमोहन के नारकीय विचारों को पढ़कर पाठक की मानसिक वेदना पके फोड़े के समान दर्द करने लगती है। पाठकों ने यह भी नहीं सोचा होगा कि पूर्व-प्रेयसी से मिलन की तैयारी के लिए विवाह ही आवश्यक है जिससे उसकी शैतानी प्रवृत्ति छिप सकती है। निरंजना को पाने के लिए शालीनता का ऐसा नया प्रयोग करके अपने व्यक्तित्व की छाप डालना सचमुच ए एक बहुत विचित्र उपाय है, ऐसे उपायों को पढ़कर पाठकों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।"[1]

'काम-वासना' के प्राबल्य के कारण उसका जीवन ग्रंथिमय हो जाता है। जब वह अपने पिता मनमोहन को निरंजना पर आसक्त हुआ देखता है और जब उसे गुरु चन्द्र शेखर की निरंजना के प्रति उम्दी प्रेम भावना का भान होता है तो उसका मन ग्रंथिल हो जाता है। उसी कारण उसके अन्दर की 'प्रभुत्व-वृत्ति' उसे निरंजना को पाने के लिए बाध्य करने लगती है। 'डा० सुलदेव शुक्ल ' के अनुसार :-

"काम-वासना की प्रबल आंधी के आगे उसकी नैतिक चेतना, उसका विवेक और उसका संयम टिक नहीं पाता और पाशविकता के हाथ की कठपुतली बनकर वह अनैतिक आचरण करता रहता है।"[2]

इन्द्रमोहन की प्रबल 'काम-वासना' में 'मरण-वृत्ति' [थैनटास] प्रबल हो उठती है। फ्रॉयड के अनुसार 'मरण-वृत्ति' में मनुष्य के मन में

1-"हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"- डा० विमल - सक्सेना
संस्करण मार्च 1974 ई० पृष्ठ 331

2- "हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता" -'डा०सुलदेव शुक्ल'
संस्करण सन् 1966 ई० पृष्ठ 281

स्पर्धा होती है जैसे - दूसरों को परेशान करना, दूसरों पर आक्रमण करना दूसरों से प्रतिस्पर्धा करना इत्यादि । यह सब मृत्यु कामना के ही विविध रूप हैं । इस वृत्ति में 'परपीड़न रीति' प्रबल हो जाती है। इसमें अपनी प्रेमिका को या प्रेमी को पीड़ा पहुँचाकर लैंगिक आनन्द और तुष्टि पाने की भावना प्रबल हो जाती है। इन्द्रमोहन की काम-वासना में 'मरण-वृत्ति' ही उसको विनाश के कगार पर ले जाती है। यही वृत्ति उसे पत्नी शीला को तंग करने के लिए बाध्य करती है, यही वृत्ति उसे चन्द्र शेखर पर गोली चलाने को बाध्य करती है और यही वृत्ति उसे निरंजना को मानसिक आघात पहुँचाते हुए अपनी काम-पिपासा शांत करके अपने को रेल की पटरियों पर क्षुब्ध कर मृत्यु का वरण करने को बाध्य करती है।

सम्पूर्ण उपन्यास में नायक इन्द्रमोहन विभिन्न मनोवैज्ञानिक सिध्दान्तों के के घेरों में घिरा हुआ मनोवैज्ञानिक जैसा नजर आता है ।

<u>डाक्टर कन्हैयालाल</u> :- 'सन्ध्या' उपन्यास का नायक डा० कन्हैयालाल एक अनैतिक और असामाजिक व्यक्तित्व वाला पात्र है। डा० कन्हैयालाल की अनैतिक प्रवृत्तियों को देखकर ऐसा लगता है जैसे जोशी जी ने उसे नैतिक स्वेच्छाचार की खुली छूट दे दी है।' कामोपभोग' और 'आत्मतुष्टि' जैसी पशु-प्रवृत्तियों का सामना करता हुआ डा० कन्हैयालाल दुर्बलताओं के कारण इन्द्रिय सुख को ही अपने जीवन का परम उद्देश्य मानता है। ऐसा लगता है जैसे वह सामान्य सभ्य मानव न

होकर आदि कालीन बर्बर नर का प्रतीक है। 'काम-ग्रंथि' से पीड़ित इस पात्र से नीति-अनीति की बातें जैसे मीलों दूर है। अपने 'काम' की पूर्ति हेतु वह लज्जा जैसी रूप-यौवना को अपने जाल में फँसाता है लेकिन लज्जा के यहाँ से बाहर निकलते ही वह लज्जा के कालेज की जाने कितनी ही लड़कियों के साथ प्रेम प्रलंभ चलाता है। लज्जा तो उसके प्रेम-पाश में फँसकर उससे विवाह तक करने की बात सोच लेती है। डाक्टर की असामाजिक प्रवृत्तियों का पर्दाफाश करती हुई लज्जा की सहेली कमलिनी कहती है :-

"पर तेरे साथ ब्याह होगा कैसे ? वह तो कॉलेज की सभी लड़कियों को अपने बाहु की डोरी में एक साथ बाँधने का इरादा किये बैठे है।"[1]

कितना अनैतिक, असामाजिक चरित्र है- डा० कन्हैयालाल का ! बोरी जी जैसे मनोविज्ञान के सहारे यह बताना चाहते है कि मानव के अन्दर 'अचेतन-मन' में दबी पड़ी पशु प्रवृत्तियाँ कभी मरती नहीं है, वे अवसर पाते ही अपना नर्तन करने लगती है।

लज्जा को जब अपने भाई तथा काका की मृत्यु का शोक और उनकी मृत्यु के कारणों का आभास होता है तो वह डाक्टर की कामवेष्टाओं का तिरस्कार कर देती है। इस समय डाक्टर लज्जा को छोड़कर अन्य सुकुमारियों की तरफ लपकने लगता है। कन्हैयालाल का मन तो काम-पिपासा और कामोपभोग की वासना से पीड़ित है। डाक्टर के चरित्र के माध्यम से

1- "लज्जा" - 'शशिचन्द्र जोशी' - तृतीय संस्करण सन् 1982 ई० पृष्ठ 100

इलाचन्द्र जोशी जैसे यह दिखाना चाहते हैं कि 'यौन-अतृप्ति' का शिकार पुरुष उत्कट काम-पिपासा से ग्रस्त होकर किस हद तक असामाजिकता का शिकार हो उठता है ।

पारसनाथ :- 'प्रेत और छाया' उपन्यास का प्रतिभाशाली और दुर्बल नायक पारसनाथ 'इडिपस-ग्रंथि' द्वारा परिचालित एक न्यूरोटिक पात्र है। सम्पूर्ण उपन्यास में उसका चरित्र चित्र-विकृत है । पारसनाथ को जब पता चलता है वह एक जारज-पुत्र है, उसकी मां व्यभिचारिणी थी, तो उसकी मानसिक स्थिति विकृत हो उठती है। वह 'इडिपस-ग्रंथि' का शिकार हो उठता है। उसका विश्वास समस्त स्त्रियों से उठ जाता है। संसार की समस्त स्त्रीयों में वह अपनी व्यभिचारिणी मां की छाया देखता हुआ उनके नारीत्व से खिलवाड़ करता है। यद्दीप वह अपने चेतन-मन में अपने जन्म की स्मृति को दबा कर रखना चाहता है परन्तु उसका अचेतन मन बार-बार विद्रोह करके विस्फोट फैला करता है। वह अपनी इडिपस-ग्रंथि के कारणों को स्पष्ट करता हुआ कहता है :-

"इस प्रकार के नारकीय वातावरण में रहने के कारण मैं मनुष्य समाज के प्रति विद्रोह, प्रतिहिंसा और घृणा की आग को सुलगाता चला आया हूँ। जिस दिन मुझे पहले पहल मालूम हुआ कि मैं अपनी मां के प्रेमी का पुत्र हूँ न कि उसके पति का, उस दिन जो विस्फोट मेरे भीतर हुआ उसने मेरे जीवन के स्वप्नों और आदर्शों को उलट दिया।" ।

।-"प्रेत और छाया" - 'इलाचन्द्र जोशी' - चतुर्थ संस्करण सवत् 2035 वि० पृष्ठ 151

मंजरी, कांची, मंदिनी इत्यादि स्त्रियां उसकी मानसिक विकृत्ति का शिकार बनती है । मंजरी को संकट की स्थिति में यद्यपि वह उसकी सहायता करता है लेकिन अचेतन पालित होने के कारण वह प्रेम का ढोंग रचाकर उसके 'सतीत्व' को नष्ट कर देता है । भोली भाली मंजरी को निकट असहाय अवस्था में छोड़कर वह उसे दर-दर की भिखारिणी बना देता है । मंजरी के कौमार्य को वह भंग करके अन्य स्त्रियों की तलाश में रहता है जिससे वह स्त्री जाति से अपने अपमान का बदला ले सके ।उसे अब एक विवाहिता नारी मंदिनी मिलती है। वह उसे भी भगा ले जाता है और उसे अपने जीवन का परम सुख मानता है। वह सोचता है:-

"एक विवाहिता नारी को भगाने में जो सुख है, वह किसी अविवाहिता स्त्री के साथ भागने में किसी भी हालत में प्राप्त नहीं हो सकता। किसी कुमारी और शीलवती सुन्दर स्त्री का पातिव्रत खंडित करने से हम नरक के कीड़ों की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा की पूर्ति होती है । इसलिए आज मेरे मानवीय जीवन की परम सफलता का दिन है- क्योंकि मैं केवल इस स्त्री का पातिव्रत खंडित करने में ही सफल नहीं हुआ हूँ, बल्कि वह आज हर तरह से मेरे अधीन है।"[1]

विकृत मस्तिष्क किस तरह का पाशविक आनन्द प्राप्त कर सकता है और कैसी पाशविक महत्वाकांक्षा बनाकर वह सफल होता है!

1- "प्रेत और छाया" - 'इलाचन्द्र जोशी' चतुर्थ संस्करण, सं० 2035 वि० पृष्ठ 297

'हिंसा-प्रतिहिंसा' के भाव पारसनाथ की रंग-रग में समाये हैं। यही कारण है कि वह अपने पिता को 'तिलचट्टी-दानव' कहता है। जैसे ही उसके चेतनमन और अचेतनमन में द्वन्द्व बढ़ जाता है। उसकी प्रवृत्ति हिंसात्मक हो उठती है। कारण यह है कि उसके 'अचेतन-मन' में पड़ी पशुप्रवृत्तियाँ अपना ताण्डव नर्तन करने लगती हैं।

पारसनाथ के प्रेम में सर्वत्र 'परपीड़न' के भाव पाये जाते हैं। तभी तो वह जिस-जिस स्त्री के सम्पर्क में आता है उसका जीवन नर्क बनाता चलता है।

'हीनता की ग्रंथि' से ग्रसित होने के कारण पारसनाथ का जीवन एक बेपेंदे के लोटे के समान हो जाता है। सारे उपन्यास में वह परिस्थितियों और वातावरण का दास बनकर इधर-उधर लुढ़कता रहता है। लेकिन जैसे ही उसके पिता अपनी मरणावस्था में उसे यह सूचित करते हैं कि वह जारज-पुत्र नहीं है वैसे ही उसके मन में पड़ी हुई गांठ खुल जाती है, उसका चरित्र पूर्णतः बदल जाता है। वह समाज का बड़ा हितैषी बन जाता है। अपनी सम्पत्ति वह गरीबों में दान दे देता है। मैंजरी से मिलने पर वो उससे क्षमा याचना करता है तथा उसके अस्पताल के लिए वह आर्थिक सहायता भी करता है। हीरा जैसी स्त्री के साथ आदर्श पति का धर्म निभाता है। जोशी जी इस पात्र के माध्यम से यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि "मनुष्य के बाह्य आचरण का बहुत कुछ रूप मनोग्रंथियों द्वारा ही निश्चित होता है। ये ग्रंथियां प्रभावकों के कारण व्यक्ति में उत्पन्न होती हैं।"[1]

1-"हिन्दी उपन्यास: सृजन और प्रक्रिया" - डा० विप्र बहादुर सिंह भदौरिया प्रथम संस्करण सन् 1981 ई० पृष्ठ 115

जोशी जी का यह पात्र पारसनाथ 'वाट्सन' के 'वातावरणवादी सम्प्रदाय' की भी पुष्टि करता है। वाट्सन का मत है कि वातावरण द्वारा ही मनुष्य का व्यक्तित्व निर्मित होता है। अच्छे वातावरण में बच्चे को मनचाहा बना सकते हैं। और खराब वातावरण में उच्च घरों के बच्चे भी चोर, डाकू, बदमाश बनाये जा सकते हैं। यही बात पारसनाथ पर भी लागू होती है।वह एक एम०ए० पास उच्च शिक्षित नवयुवक है तथा 35 लाख रुपयों का एक मात्र दावेदार भी। लेकिन वह तो गंदे वातावरण में अपना जीवन बिताता है। वह तवलचियों, वेश्याओं, भिखारियों के साथ मित्रता स्थापित करने को बाध्य है तथा सिगरेट पीना और कर्ज लेकर उसे चुकाना ही उसके नित्य कर्म बन गये हैं, चाँदनी जैसी वेश्या के टुकड़ों पर वह आश्रित है।" [1]

अतः उसका जीवन भी वैसा ही हो गया है। गंदे वातावरण के फलस्वरूप उसमें गंदगी का आरोपण हुआ है।

महीप :- निर्वासित उपन्यास का नायक महीप एक कुण्ठाग्रस्त व्यक्ति है जो अपनी हीन भावना को छिपाने के लिए सम्पूर्ण उपन्यास में बहुविधि उपाय करता दीख पड़ता है। उसका जीवन 'क्षतमूर्ति' और

1-"देसिल-प्रेत और छाया" - 'इलाचन्द्र जोशी' - चतुर्थ संस्करण संवत् 2035 वि० पृष्ठ 338

'अतिक्षतिपूर्ति' का सुन्दर उदाहरण है। वह एक छोटे कद और बहुआ रूप वाला व्यक्ति है इसलिए उसके मन में अपने शारीरिक-गठन के कारण हीनता-ग्रंथि' (इन्फीरियॉरिटी काम्पलेक्स) बन जाती है। वह अतिशय व्यक्तिवादी कुण्ठाग्रस्त व्यक्ति है। अपने शरीर की कमी की पूर्ति के लिए वह आई०सी०एस० की उपाधि प्राप्त करता है। वह अपनी कायिक -हीनता को अपनी सक्षम अध्यवसायी वृत्ति द्वारा दूर करता है उसके चरित्र पर 'एडलर' का 'क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त' अक्षरशः लागू होता है। उसका सम्पूर्ण जीवन अचेतन मन के संकेतों पर नाचता रहता है। उपन्यास के आरंभ में वह एक कवि के रूप में सामने आता है और अन्त में एक क्रांति-कारी के रूप में उसका जीवन समाप्त होता है। कवि हृदय होने के कारण वह नारी के प्रणय की आकांक्षा करता है, वह नीलिमा की ओर इसीलिए आकृष्ट होता है। लेकिन जब-जब वह नारियों की ओर बढ़ता है अपने शरीर की बनावट के कारण उसे उनसे 'वात्सल्य' ही मिलता है। प्रणय की इस विफलता से वह 'ग्रंथिमय' हो जाता है। दो वर्षों तक उसका अज्ञातवास में रहना उसकी हीनता का ही परिचायक है। जब वह देखता है कि उसकी प्रेमिका नीलिमा की शादी ठाकुर लक्ष्मी नारायण से हो गयी है तो वह अपनी भावनाओं को दूसरी दिशामें विस्थापित कर लेता है। भावनाओं का यह विस्थापन उसे क्रांतिकारी दल बनाने की ओर अग्रसर करता है। यद्यपि वह बार-बार 'क्षतिपूर्ति' द्वारा अपने चरित्र को बनाता है लेकिन बार-बार की असफलतायें उसे कुण्ठा के कगार पर पहुँचाती रहती हैं ।

ठाकुर लक्ष्मीनारायण जब नीलिमा को त्याग देते हैं तो पुनः वह

अपनी पूर्व प्रेमिका नीलिमा से प्रणय-निवेदन करता है लेकिन शारदा देवी का पत्र उसे पुनः प्रीति की आग में झोंक देता है। वह ठाकुर लक्ष्मीनारायण के मकान पर उस समय पहुँचता है जब शारदा देवी के षड्यंत्र से उनका मकान आग की लपटोंमें स्वाहा होने लगता है। उस समय वह ठाकुर लक्ष्मीनारा-यण के कोप का शिकार बनकर जेल की भयंकर यातनाएं भोगता हुआ अपना जीवन समाप्त कर देता है। बार-बार की हीनता की भावनाएं उसके जीवन को नर्क के कीड़ों की तरह अपना जीवन समाप्त करने को बाध्य करती हैं। जोशी जी ने इस पात्र के माध्यम से एक ऐसे 'ग्रीथलम' पुरुष की कहानी कही है जो बार-बार उससे छुटकारा पाने का प्रयत्न करता हुआ अपना जीवन होम कर देता है।

ठाकुर लक्ष्मी नारायण :- इलाचन्द्र जोशी द्वारा लिखित 'निर्वासित' उपन्यास में ठाकुर लक्ष्मी नारायण जैसा पात्र भाग्यवादी प्रवृत्ति के परिप्रेक्ष्य में आये हुए सुकुमा मानव का प्रतिनिधित्व करता है। उच्च वर्ग के बीच पला-बढ़ा एवं उसका प्रतिनिधित्व करता यह पात्र भारतीय जमींदारों के कुत्सित रूप का बखान करता है। अपने कुकर्मों के कारण वह मनुष्य रूप में भी राक्षस लगता है। उसके भीतरी और बाह्य रूप में जमीन आसमान का फर्क है। वस्तुतः ठाकुर लक्ष्मी नारायण के भीतर क्रूरता कूट-कूट कर भरी है। उसकी ओढ़ी हुई शालीनता के भीतर एक

खतरनाक व्यक्ति के संस्कार लिये हुए हैं। शारदा देवी उसे धूर्त और रंगा हुआ सियार कहती हैं। वह कहती हैं कि यदि कुपक्रों की लम्बी सूची तैयार की जाये और उनकी प्रत्येक काली करतूत का विस्तृत इतिहास तैयार किया जाये तो समाज का रोम रोम आतंक से सिहर कर बबूल के कांटों की तरह खड़ा हो जाये। कुमारियों के कौमार्य का खंडन ठाकुर की दिन चर्या का अनिवार्य अंग है। आपादमस्तक विलासिता के पंक में डूबे हुए ठाकुर लक्ष्मी नारायण के चरित्र का विश्लेषण करते हुए डाक्टर राम शोभित प्रसाद सिंह लिखते हैं :-

"गरीब रियासत की दीन-हीन जनता के साथ बर्बरता का व्यवहार अपने ही घर में अपनी ही पत्नी नीलिमा के साथ अमानुषिकता का चलन शराब पीकर नशे में घोर पातक कृत्य करने वाला यह प्राणी एक निंदनीय कीट के समान हेय है, किन्तु विचित्र है यह बात कि यह 'समाज-रक्षित' है। इसीलिए कि सामाजिक अधिकार और आर्थिक प्रभुत्व का बल उसे प्राप्त है जिसके द्वारा नैतिकता को भी उसने अपनी चेरी बनाकर रखा है। ठाकुर लक्ष्मी नारायण सिंह का चरित्र एक प्रतिनिधि चरित्र है जो तत्कालीन भारतीय जमींदारों का प्रतीक है।"[1]

राजीव :- 'मुक्तिपथ' उपन्यास का नायक राजीव प्रेमचन्दीय रंग में रंगा हुआ पात्र है। वह जोशी जी के दुर्बल पात्रों की परिधि

1-"हिन्दी उपन्यास, प्रेमचन्दोत्तर काल" -'डा० रामशोभित प्रसाद सिंह' प्रथम संस्करण सन् 1981 ई० पृष्ठ 447

से न गुजरकर सामाजिक परिधि से होकर गुजरा है। इस पात्र के अन्दर व्यक्ति की अपेक्षा समाज कल्याण की भावना अधिक भारी है । जोशी जी ने इस पात्र के माध्यम से अपने मनोवैज्ञानिक विचारों का भी वर्णन किया है। यह समाज की कुव्यवस्थाओं से जूझने वाला व्यक्ति है। उसने अपनी यौन-भावना को दीमत करके उसकी ऊर्जा को रचनात्मक रूप दिया जोशी जी मानव मनोविज्ञान के कुशल पारखी हैं अतः उनके उपन्यासों के हर पात्र में मानव-मन की विचित्रताओं और मूलप्रवृत्तियों का ही विश्लेषण हुआ है। जोशी जी का यह पात्र जहाँ अपनी यौन-ऊर्जा को उदात्त रूप देता है वहीं सुनन्दा के काम-निवेदन के सामने उसका यह उदात्त रूप ढहने सा लगता है। जोशी जी इस पात्र के माध्यम से यह दिखाना चाहते हैं कि केवल समाष्टि-कल्याण की भावना से ही जीवन सफल नहीं हो सकता जब तक उसमें व्यक्ति का ध्यान नहीं रखा जाता है। अपने समन्वयवादी दर्शन की पूर्ति के लिए राजीव जैसे सबल पात्र की सृष्टि की है। उपन्यास के प्रारम्भ में राजीव एक बेरोजगार नवयुवक की हैसियत से प्रवेश करता है। वह लखनऊ में सुनन्दा के भाई के यहाँ ठहरता है और सुनन्दा के सौन्दर्यपूर्ण जीवन को देखकर वह उसके जीवन में मुक्ति के बीज बोने लगता है, उसे विद्रोहिणी बनाने के लिए उसमें पुनः कोमल भावनाओं का संचार करता है। जैसे ही सुनन्दा राजीव के दर्शन से प्रभावित होती है उसका मन अन्तर्द्वन्द्वों से पूर्ण हो जाता है। राजीव अपने 'अहं' के तले सुनन्दा को कुचलना चाहता है । वह सुनन्दा के साथ अलग एक घर में रहने लगता है।

वहाँ पर अपनी कठिन-साधना के बल पर वह मुक्ति-निकेतन की स्थापना करता है। सुनन्दा उसकी प्रेरक शक्ति है। समाज की कुव्यवस्थाओं को दूर करने में वह सुनन्दा का सहारा लेता है। लेकिन वह सुनन्दा के मन की कोमल भावनाओं को नहीं छू पाता। उसके लिए समाज ही सब कुछ है। सुनन्दा को साथ रखकर भी वह उसके जीवन के रेगिस्तान को हरा-भरा नहीं कर पाता है। जोशी जी इस पात्र द्वारा यह दिखाते हैं कि समष्टि को अधिक महत्व देने से और 'व्यक्ति' को भूलकर कोई भी व्यक्ति सफल नहीं हो सकता है। राजीव उपन्यास के अन्त में पुनः अकेला हो जाता है, सुनन्दा उसे छोड़कर चल देती है। इस प्रकार राजीव का चरित्र उदात्त गुणों से पूर्ण है, वह समष्टि का कल्याण चाहता है। केवल श्रम ही उसके जीवन का लक्ष्य है। राजीव श्रम द्वारा मुक्ति चाहता है, परन्तु श्रम में विश्राम न लेकर वह गलत रास्ता अपनाता है।

रंजन (नृपेन्द्ररंजन) :- 'त्याग का भोग' उपन्यास का नायक नृपेन्द्ररंजन दुर्बल स्वभाव वाला ढुलमुल पात्र है। उसके अन्दर भी कामवासना का प्राबल्य है। दुर्बुद्धा मनोवृत्ति के फलस्वरूप उसके अन्दर आदिम काल से शोषण की चली आ रही प्रवृत्ति ने उसे 'अहं' ग्रस्त बना दिया है। वह अपनी इस दुर्बुद्धा मनोवृत्ति के कारण मनिया जैसी भोली-भाली लड़की का सारा सामान नकद पैसे देकर खरीद लेता है। मनिया

के प्रति आकृष्ट होकर ही वह उसके साथ रहने लगता है। प्रबल कामवासना का शिकार होने के कारण वह धर्म परिवर्तन करके भी उससे शादी करने को तैयार हो जाता है। मन्निया के साथ कॉटेज में रहता हुआ, अपनी बुर्जुवा मनोवृत्ति का परिचय देता हुआ वह उसे गर्भवती बना देता है। मन्निया अपने बच्चे को आठ महीने तक पालती है। रंजन मन्निया को कलकत्ते ले जाता है। जहाँ उसका मित्र अपनी सुन्दर पत्नी शोभना के साथ उसका स्वागत करता है। यहाँ पर भी वह अपनी वासनाजन्य विकलता को जब शान्त नहीं कर पाता तो अपने मित्र वीरेन्द्र की पत्नी से अवैध संबन्ध कायम करता है। जब मन्निया एक दुर्घटना में अपनी चेहरे की सुन्दरता खो देती है तो वह मन्निया की तरफ से बिमुख हो जाता है। मन्निया यहीं पर तेज बुखार से पीड़ित अपने बच्चे को खो देती है। रंजन यहाँ पर पूरी तरह से शोभना का उपभोग करता है। मन्निया यह सब देखकर जब उसे छोड़ कर चली जाती है। रंजन अपनी मनोवृत्ति के अनुसार शोभना के साथ रहने लगता है। मन्निया के चेहरे पर प्लास्टिक सर्जरी करवाकर वापस आने पर पुनः वह उसके सुन्दर रंग रूप की ओर मुग्ध होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रंजन मात्र रूप-लोभी है। वह धनवान होने के कारण शासक-वृत्ति का परिचय देता है । जब उसे पता चलता है कि वह सुन्दर चेहरे वाली नारी मन्निया ही है और कोई नहीं तो वह उससे माफी माँगता है लेकिन मन्निया अहं को चूर-चूर कर देती है। इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास में रंजन बुर्जुवा मनोवृत्ति से ग्रस्त अहंवादी नायक के रूप में प्रस्तुत होता है। काम-वासना के उद्दाम वेग के कारण वह सर्वत्र असामाजिक पुरुष के रूप में आता है।

§८§ जोशी जी के उपन्यासों के नारी-पात्र एवं उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण :- इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में 'नारी-पात्र' दो प्रकार से उभर कर हमारे सम्मुख आते हैं । प्रथम प्रकार की वे नारियाँ हैं जो परम्पराओं को स्वीकारती हुई पुरुष के 'अहं', 'काम', 'अत्याचार' और 'शोषण' को झेलती हुई उसकी बलि हो जाती हैं। दूसरे प्रकार की नारियाँ वे नारियाँ हैं जो पुरुष के 'अहं' और 'काम' आदि पर प्रहार करती हुई प्रबल विद्रोहिणी का रूप धारण करती हैं । डाक्टर विमल सहस्रबुद्धे जोशी जी की विद्रोहिणी नारी पात्रों की विशेषताएं बतलाती हुई लिखती हैं :-

"द्वितीय वर्ग की नारियाँ ऐसे पुरुष के प्रति प्रतिहिंसा लेकर अपने समस्त जीवन में मानसिक संग्राम करती हुई प्रगति के साथ आगे बढ़ती हैं और समाज में अपना स्तर ऊँचा रखती हैं। उनकी एक और विशेषता है, पुरुष के प्रति जबर्दस्त प्रतिहिंसा की भावना तो रखती ही हैं, इसके अतिरिक्त उन पर ऐसा जबरदस्त मानसिक प्रहार करती हैं कि उनकी आँखें खुल जाती हैं। पुरुष ऐसी नारियों के सामने हार खाते हैं और उनकी मानसिक और दैवी शक्ति का लोहा मानते हैं।"[1]

"शेक्सपीयर के नाटकों की तरह जोशी जी की नायिकाएं नायकों से कहीं अधिक प्रचन्ड और प्रभाव शाली हैं।"[2]

1-"हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण" - 'डा० विमल सहस्रबुद्धे'
संस्करण -मार्च 1974 ई० पृष्ठ 284

2-"आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास"-'डा० केसरी'
प्रथम संस्करण सन् 1971 ई० पृष्ठ 152

इस प्रकार यदि हम जोशी जी के नारी पात्रों का विश्लेषण करते है तो प्रथम वर्ग में-'पर्दे की रानी' की शीला और 'संन्यासी' की जयन्ती का चरित्र आता है। ये पुरुष के परम्परागत अत्याचारों को सहती हुई अपना जीवन स्वाहा कर देती हैं । जयन्ती अपने पति नन्दकिशोर के अत्याचारों को सहती हुई अपने जीवन में हार मानकर आत्म हत्या कर लेती है जबकि शीला अपने पति इन्द्रमोहन के स्त्री-प्रताड़न का वरण करती हुई मृत्यु का शिकार बनती है। दूसरे वर्ग के पात्रों में 'पर्दे की रानी' की निरंजना, 'प्रेत और छाया' की मंजरी और नन्दिनी, 'मुक्तिपथ' की सुनन्दा, 'निर्वासित' की शारदा, 'सुबह के भूले' की गुलबिया, 'त्याग का भोग' की मनिया इत्यादि आती हैं। ये अपनी विद्रोहात्मक स्थिति में आने से पूर्व सर्वसाधारण पात्र लगती है परन्तु जैसे-जैसे उनकी समस्याएं बढ़ती जाती हैं इन पर अत्याचार और'अहं' का कुचक्र चलने लगता है वैसे-वैसे ये 'मनो-विकृत' सी होने लगती हैं, लेकिन जैसे ही ये आत्मकामी पुरुषों के चंगुल से छुटकारा पाती हैं, अपने को स्वावलम्बनी और उदात्त चरित्रवादी बना लेती है।

जोशी जी के उपन्यासों में नारियों के वेश्या-जीवन और विधवा-जीवन का चित्रण अधिक मिलता है। "जोशी जी का उपन्यासकार व्यक्तित्व दो विरोधी तत्वों से निर्मित है- एक है उनकी यथार्थपरक दृष्टि, जिसके लिए वह मनोविज्ञान के साधन से यथार्थ को बड़ी ही निर्ममता से प्रकट करते है, दूसरा है उनका परम मानवीय रूप, जहाँ से वह बार-बार जीवन तक परिस्थितियों के भयजाल या छल-छल में, वहीं स्त्री को स्वतन्त्र

और मुक्त देखना चाहते हैं। यही कारण है कि जोशी जी ने युग-युग से प्रपीड़ित एवं प्रताड़ित नारी शोषण का वर्णन करते हुए उसकी आत्मा की मुक्ति का प्रयत्न किया है।"[1]

जोशी जी के उपन्यास 'नारी-मुक्ति आन्दोलन' के गढ़ हैं जिसका नेतृत्व मंजरी, शांति, सुनन्दा, गुलीबया जैसी नायिकाएं करती हैं। ये नायिकाएं मानसिक विकृतियों लेकर ही विकास पाती हैं। ये नायिकाएं अपने स्वतन्त्र विवेक से काम लेती हुई पुरुष परिचालित नियमों को ही सर्वस्व न मानकर अपने निजी अनुभवों से उनकी परख करती चलती हैं। शरद की नायिकाओं की तरह ये सुकुमार वेदना में घुल-घुल कर मरने वाली नायिकाएं नहीं हैं। वेश्यावृत्ति जीती हुई भी ये यशपाल की 'दिव्या' की तरह ही आदर्शोन्मुखी हो उठती हैं। "जोशी जी की नायिकाओं ने नये युग की संवेदना और नयी चेतना से प्रभावित होकर अपनी अवमानित अवस्था में अपना उद्धार करने का बीड़ा उठाया है। अपनी कोरी भावुकता को छोड़कर उन्होंने विवेक से काम लिया है और अहंवादी नायकों के प्रति विद्रोही होकर अपने स्वतन्त्र निर्माण का पथ अकेले ही, स्वयं अपने पराक्रम से पकड़ा है।"[2]

1-"हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"- डा० विमल सक्सेना दे
संस्करण - मार्च 1974 ई० पृष्ठ 289

2-"हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"- डा० विमल सक्सेना दे
संस्करण मार्च 1974 ई० पृष्ठ 290

इस प्रकार हम देखते है कि जीवन के यथार्थ को भोगती हुई भी जोशी जी की नारियां मानवीय गुणों से युक्त है और मुक्ति के मोर्चे को संभाले हैं । अपवाद-स्वरूप एकाध नारी पात्र का मात्र चारित्रिक विश्लेषण हुआ है। लेकिन उन पात्रों के माध्यम से भी जोशी जी संघर्ष करने का, सचेतन होने का संदेश देना चाहते है। जोशी जी के कुछ रूग्णमानस नारी पात्र उनकी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा द्वारा स्वस्थ हो गये है । कुछ नारी पात्र केवल उनके 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। इन नारी पात्रों में 'नारी मनोविज्ञान' का अतिशय प्रयोग हुआ है। चूंकि उनका लक्ष्य मानव के अचेतनमन में पड़ी पशुप्रवृत्तियों को उघाड़ना रहा है। अतः वह सामान्य नारी पात्रों को लेकर उनके अन्तर्मन में पड़ी गांठों, मूलप्रवृत्तियों का उद्घाटन करते हैं। यहाँ हम उनके प्रमुख नारी पात्रों के चरित्र का 'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे है।

<u>लज्जा</u> :- 'लज्जा' उपन्यास की नायिका ' लज्जा एक 'कामग्रंथि' पीड़ित नारी है जिसका मन 'काममूलक प्रेम' और 'भ्रातृ-प्रेम' के अन्तर्द्वन्द्वों से घिरा हुआ है। उसका जीवन चित्तविकृतियों का शिकार है। उपन्यास के प्रारम्भ में हमें उसके जीवन में 'इलेक्ट्रा-ग्रंथि' के दर्शन होते है। अपने जीवन की हर छोटी से छोटी बात वह अपने काका से बताये बिना नहीं रहती। अपनी मां से तो वह हर बात छिपाती है।

उसके भाई राजू ने जब पहली बार कविता लिखी थी तो सबसे पहले लज्जा इस बात की सूचना अपने काका को ही देती है। काका के सामने वह निर्द्वन्द होकर बिखरती है। यौवनशीला हो जाने पर भी वह काका से लिपट-लिपट जाती है- "मैंने प्रथम यौवन में पदार्पण कर लिया था, तथापि बच्चों की तरह भरी सभा में उनके गले लिपट जाती थी । कारण क्या था, मैं नहीं कह सकती, पर काका मुझे ही सबसे अधिक प्यार करते थे।"[1]

'लज्जा' प्रारम्भ में अपने भाई राजू को बहुत प्यार करती है। उसमें भ्रातृ प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी है। उसके भ्रातृ प्रेम को इस उदाहरण से समझा जा सकता है:-

"बेंत की चोट से हम दोनों के हाथों में खून छलक पड़ा था और छाले पड़ गये थे। अपने हाथ की परवा न कर अपनी साड़ी के अंचल को मुँह की भाप से गरम कर मैं उसके हाथ सेंकने लगी। भाई की पीड़ा से मेरा कलेजा फटा जाता था। मैं उसके हाथों को सेंकती जाती थी और मेरी आँखों से आँसू बहते जाते थे।"[2]

जैसे ही लज्जा युवा अवस्था में प्रवेश करती है, घर में आने वाले एक डाक्टर कन्हैयालाल के प्रति वह कामासक्त हो उठती है। यहीं से उसके मन में 'काममूलक प्रेम' और 'भ्रातृप्रेम' में द्वन्द उठने लगता है।

1-"लज्जा" -'इलाचन्द्र जोशी' - तृतीय संस्करण सन् 1962 ई० पृष्ठ 19

2-"लज्जा" -'इलाचन्द्र जोशी' - तृतीय संस्करण सन् 1962 ई० पृष्ठ 8

'कामग्रंथि' से पीड़ित होने के कारण वह कर्तव्य-अकर्तव्य को भूल जाती है। यौन-आकुलता से संतप्त लज्जा डा० कन्हैयालाल को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए विविध युक्तियाँ बनाती है और पारिवारिक बंधनों की अवहेलना करती हुई अभिसारिका बन जाती है। वह जानती है कि राजू उसे ऐसे अनैतिक कार्य करने से मना करेगा इस लिए वह उसको बताने के लिए डा० कन्हैयालाल के साथ बाहर घूमने भी चली जाती है। यहाँ पर 'भ्रातृ-प्रेम' की अपेक्षा 'कामवासनाजनित प्रेम' प्रबल हो उठता है। वह अपने मन का विश्लेषण करती हुई स्वयं कहती है:-

"आज मैंने जो असीम दुःसाहस का काम किया था, उसके कारण भी शायद सर्वांग में कँपकँपी मालूम होती थी। कुछ भी हो, मैं मोटर में बैठे-बैठे डा० साहब के कन्धे पर हाथ रखकर तरह-तरह के स्वप्नों में मग्न हो गयी। अभिसार की इस निस्तब्ध, अंधकारमयी रात्रि में मेरा प्रेमिक मुझे बिना मिले ही मिल गया था, उसे मैं कैसे छोड़ सकती थी।"[1]

राजू को मार्ग में रुकावट समझकर उसका मन 'हिंसा-प्रतिहिंसा' की भावना से भर उठता है। वह राजू को लगातार बुलाती रहती है। डा० कन्हैयालाल के साथ अधिकाधिक रहने के लिए 'औचित्य-स्थापन' का सहारा लेती है। वह 'मारी-बाधित' के माध्यम से अपने वासना मूलक प्रेम को पुष्ट करती है।

लज्जा के इस काम मूलक प्रेम में 'परपीड़न-रति' जाग्रत हो उठती है। इसी लिए वह अपने भाई राजू को मानसिक रूप से पीड़ित करती

1- "लज्जा" - 'उषाप्रभात जोशी'- तृतीय संस्करण 1982 ई० पृष्ठ 16।

रहती है। अंत में वह अपने भाई की मृत्यु का कारण बनती है। हिंसा - प्रतिहिंसा के भाव उसमें अन्त तक विद्यमान रहते हैं। जब उसका भाई राज्य मर जाता है तथा काका भी तदर्थ का शिकार हो जाता है तो डाक्टर कन्हैयालाल के प्रति उसका मन घृणा और प्रतिहिंसा की भावना से भर उठता है। वह निराश होकर सोचती है- "यदि मैं भले घर की मालिक न होकर ताड़का राक्षसी होती तो उन दोनों की छाती फाड़कर खून पीकर उन्हें मोटर सहित निगल जाती।"[1]

इलाचन्द्र जोशी जी ने 'लज्जा' के चरित्र के माध्यम से मनःप्रसूत-जनित काम लहरों के साथ प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न घृणा और प्रतिहिंसा की भीषण भावनाओं की मनोविश्लेषणात्मक झांकी दिखाई है।

निरंजना :- 'पर्दे की रानी' उपन्यास की नायिका निरंजना एक अपूर्व सौन्दर्य युक्त शिक्षिता नारी है। वह एक अच्छे वातावरण में पलने वाली लड़की है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही वह 'हीनता-ग्रंथि' का शिकार हो जाती है। जब उसे पता चलता है कि वह एक वेश्या माँ की बेटी है तथा उसका बाप कुली था तो उसमें यह विचित्र 'हीनता-ग्रंथि' पड़ जाती है। निरंजना अपने अचेतन मन में इस बात को दबाती रहती है।

1-"लज्जा"- 'इलाचन्द्र जोशी' - तृतीय संस्करण सन् 1982 ई० पृष्ठ 162

वह जिस वातावरण में पली है उसके कारण उसका 'इगो' (अपेक्षाभाव) उसके व्यवहार को संयत रखता है लेकिन जैसे ही उसके अपेक्षाभाव पर पड़ा हुआ पर्दा हटता है उसका सम्पूर्ण चरित्र अपेक्षाभाव द्वारा ही परिचालित होने लगता है। हीनता की ग्रंथि के कारण उसका व्यवहार बदल जाता है। वह पुरुषों के विषय में कहती है :-

"मैं तो एक प्रेयसी की कल्पना से या संसर्ग से उन्हें शांति नहीं दिलाती। प्रत्येक नारी उनके लिए बर्फ का एक टुकड़ा है। अनन्त वासना की धधकती हुई आग से झुलसे हृदय की तप्त प्यास बुझाने के लिए वे बर्फ के उन टुकड़ों पर टूट पड़ना चाहते हैं।"[1]

'हीनता-ग्रंथि' के फलस्वरूप ही उसने हिंसा-प्रतिहिंसा, घृणा-प्रेम आदि वृत्तियाँ पैदा हो जाती हैं। वह मानसिक रूप से असंतुलित हो उठती है। अपने इस स्वभाव का विश्लेषण करती हुई वह कहती है:-

"सचमुच, मेरे स्वभाव में बहुत नीचता आ गयी है। क्योंकि मेरे हृदय की हरियाली एकदम झुलस गयी है, इसलिए जब मैं किसी दूसरे हृदय की हरियाली को लहलहाते हुए देखती हूँ, तो मेरे अज्ञात में मेरे भीतर ईर्ष्या की आग धधकने लगती है और मैं सतत यह प्रयत्न करती हूँ कि उसके हृदय की सरस भावनायें और मधुर स्वप्न भी मेरे ही समान झुलस जायें।"[2]

निरंजना एक वेश्या-पुत्री है यह संस्कार उसके 'अपेक्षाभाव' में जगा है अतः उसका व्यवहार भी वेश्याओं की ही तरह दिखता है। वह

1-"पर्दे की रानी" -'इलाचन्द्र जोशी' -संशोधित संस्करण 1983ई० पृष्ठ 21, 22
2-"पर्दे की रानी" -'इलाचन्द्र जोशी' -संशोधित संस्करण 1983ई० पृ० 23

इन्द्रमोहन को अपने जन्मजात संस्कारों के कारण हाव-भाव दिखाकर अपनी ओर आकर्षित करती है। उसका 'चेतनमन' इन्द्रमोहन से घृणा करता है परन्तु उसके 'अचेतनमन' में उसे रिझाने की प्रवृत्ति है। 'वंशानुक्रम और वातावरण' का उस पर स्पष्ट प्रभाव है। चेतनमन के प्रभाव के कारण वह होटलकाण्ड में अपने आपको सुरक्षित रख लेती है। 'अचेतनमन' द्वारा चालित होने के कारण निरंजना का मन एक बार फिर वासनाग्रस्त हो उठता है। 'चेतनमन' द्वारा चालित होने के कारण ही वह इन्द्रमोहन के आगे आत्म-समर्पण करने से हिचकिचाती है परन्तु इस अंतर्द्वन्द्व के कारण उसमें हिंसा-प्रतिहिंसा के भाव प्रबल हो उठते हैं। वह अपने 'अचेतनमन' द्वारा चालित होने के कारण इन्द्रमोहन को शीला की हत्या के लिए परोक्ष रूप से उकसाती है:- "नहीं इन्द्रमोहन जी, जब तक शीला जीवित है तब तक आप मुझसे हार्दिक इस तरह की आशा न करें।"[1]

'अचेतनमन' में छिपी माँ-बाप के प्रति घृणा के कारण ही वह शीला की हत्या करवाती है। जब वह इन्द्रमोहन के आगे गाड़ी में आत्म-समर्पण करती है तो उस समय उसका व्यवहार 'वंशानुक्रम के नियम' द्वारा संचालित होता है। पिता के प्रति भरी घृणा के कारण वह इन्द्रमोहन द्वारा शीला की हत्या की बात जानकर उसे फटकारती है, उसे नीच, हत्यारा आदि कह कर आत्म-हत्या करने के लिए बाध्य करती है। शीला और इन्द्रमोहन की हत्या के बाद उसका मन कुछ शांत होता है। गुरु

1- "पर्दे की रानी" -'इलाचन्द्र जोशी' -संशोधित संस्करण सन् 1965 ई० पृष्ठ 190

चन्द्रशेखर द्वारा मानसिक उपचार करने (मन की हीनता की गांठ खोलने) के उपरान्त वह स्वस्थचित्त नारी बन जाती है तथा इन्द्र मोहन के गर्भ को सहर्ष स्वीकारती हुई 'मातृत्व पथ' की ओर बढ़ती है। उसके हृदय में 'घृणा', 'प्रतिहिंसा' के अतिरिक्त जो अन्य भाव है उनका प्रस्फुटन 'मनोग्रंथि' खुलने के बाद ही होता है। जोशी जी का यह नारी पात्र स्पष्ट करता है कि मनोग्रंथि पीड़ित व्यक्ति का कार्य सदा समाज विरोधी तथा विनाशक ही होता है परन्तु ग्रंथि से छुटकारा पाते ही वह अपना सामाजिक दायित्व भली-भांति समझने लगता है।

निरंजना के चरित्र में 'जीवन-वृत्ति' और 'मरण-वृत्ति' दोनों के द्वन्द्व के दर्शन होते हैं। 'प्रेम' और 'घृणा' का द्वन्द्व उसमें तब दिखता है जब वह इन्द्रमोहन के प्रति उत्कट प्रेम दर्शाकर उसकी कामोपासना शांत करती है और अंत में उससे उत्कट घृणा करके उसको आत्म-हत्या हेतु बाध्य करती है। डा० एस०एन० गणेशन निरंजना में 'अज्ञात प्रतिहिंसा', 'इलेक्ट्रा' (पितृ-प्रणय ग्रंथि) आदि प्रवृत्तियों से उठे द्वन्द्व की समीक्षा करते हुए लिखते हैं :- "नायिका में विकृतियों का खेला घटाटोप है कि एक विकृति दूसरी विकृति से इस भांति संश्लिष्ट है जिससे किसी भी विकृति का पूर्ण आभास न मिलकर विरोधाभास ही हाथ लगता है।"[1]

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इलाचन्द्र जोशी की यह नायिका विविध विकृतियों का शिकार होती हुई भी अन्त में जीवन के

1- "हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन" -डा० एस०एन०गणेशन ' संस्करण सन् 1962 ई० पृष्ठ 107

मंगलमय पक्ष का वरण करती है।

नीलिमा :- 'प्रेत और छाया' उपन्यास की नारी पात्र नीलिमा आत्मविश्वासी, अध्यवसायी और उच्चाकांक्षाओं से भरी ऐसी नारी है जो समाज की परिस्थितियों की मार से वेश्या-जीवन जीती है। वह भुवौरिया जी की ब्याहता पत्नी है परन्तु धूर्त भुवौरिया धनलोलुपता के कारण अपनी पत्नी को राजा साहब के यहाँ कुछ दिनों के लिए भेजना चाहते हैं। वेश्या-जीवन से मुक्ति पाने के लिए ही वह भुवौरिया जी की पत्नी बनी है। भुवौरिया जी की संपट प्रवृत्ति नीलिमा को अन्यत्र आश्रय ढूढने पर मजबूर करती है। वह जिस चित्रकार पारसनाथ से चित्रकारी सीखती है उसी से अपने शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। पति को पाकर भी वह अब आदर्श जीवन नहीं बिता पाती तो पारसनाथ को अपना दिल लोलकर दिखाती है। पारसनाथ उसके जीवन को आदर्श मय न बनाकर उसके सतीत्व के साथ खिलवाड़ करता है। भुवौरिया और पारसनाथ दोनों द्वारा अपने नारीत्व के लुटते जाने पर वह मानसिक अशांति का शिकार बनती है फलस्वरूप अन्य चारा न पाकर पुनः वह वेश्यावृत्ति अपना लेती है। वह कलकत्ता में वेश्या-जीवन बिताती हुई भी पारस के सुधरने का इन्तजार करती है। महाबंक में भी कमलिनी जैसी मिलकर वह जीवन के आदर्शों की सुगन्ध फैलाती है। पारसनाथ द्वारा कहे गये यह वाक्य उसके अन्तःकरण की शुद्धता को व्यक्त करते हैं :- "तुमने मेरे सच्चे अर्थों में प्रेम किया था और

तुम्हारे संग में रहकर यह स्वप्न देखने लगी थी कि जिस कठोर कारागार की गंदी काल-कोठरी में मैं इतने दिनों तक बन्द पड़ी थी, उससे मुक्त करके तुम मुझे एक सुन्दर जीवन के आदर्श-पथ पर ले जाओगे ----"[1]

लखनऊ में एक मुजरे में ठाकुर वीरेन्द्र सिंह नीलिमा के आदर्श चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं - "अपने जीवन में मैं बहुत सी वेश्याओं के घनिष्ठ-सम्पर्क में आया हूँ। उस अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि नीलिमा बाई बाहर से एक ठेठ वेश्या का जीवन बिताने पर भी भीतर से विद्रोही नारी है। उसकी अन्तरात्मा में वेश्यापन की बू-बास भी नहीं है। ----- यह जो नारी आर्थिक विवशता से या समाज की कुव्यवस्था की बाध्यता से मेरे आगे हाव-भाव बताकर गा रही है, यह कभी पुरुषों द्वारा किए जाने वाले सैकड़ों अमानुषिक अन्यायों के भार से दबी है। फिर भी यह अपने अन्तर के अगम मन्दिर में शुभ नारीत्व का कभी न बुझने वाला दीपक जलाये हुए है।"[2]

यहाँ जोशी जी का हृदय नारी सहानुभूति से द्रवित हो रहा है। नीलिमा के वेश्याजीवन को दिखाकर वह नारी की महान आत्मा को जगाना चाहते हैं। कीचड़ में खिलने वाले कमलों की तरह नीलिमा के वेश्याजीवन

1-"प्रेत और छाया" -'इलाचन्द्र जोशी', चतुर्थ संस्करण, सं0 2035 विक्रमी पृष्ठ 304

2-"प्रेत और छाया"-'इलाचन्द्र जोशी', चतुर्थ संस्करण, संवत् 2035 विक्रमी पृष्ठ 329, 330

तुम्हारे संग में रहकर यह स्वप्न देखने लगी थी कि जिस कठोर कारागार की गंदी काल-कोठरी में मैं इतने दिनों तक बन्द पड़ी थी, उससे मुक्त करके तुम मुझे एक सुन्दर जीवन के आदर्श-पथ पर ले जाओगे - - - "[1]

लखनऊ में एक मुजरे में ठाकुर वीरेन्द्र सिंह नन्दिनी के आदर्श चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं - "अपने जीवन में मैं बहुत सी वेश्याओं के घनिष्ठ-सम्पर्क में आया हूँ। उस अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि नन्दिनी बाई बाहर से एक ठेठ वेश्या का जीवन बिताने पर भी भीतर से विशुद्ध नारी है। उनकी अन्तरात्मा में वेश्यापन की बू-बास भी नहीं है। - - - - - यह जो नारी आर्थिक विवशता से या समाज की कुव्यवस्था की बाध्यता से मेरे आगे हाव-भाव बताकर गा रही है, यह कमी पुरुषों द्वारा किए जाने वाले सैकड़ों अमानुषिक अन्यायों के भार से दबी है। तिस पर भी वह अपने अन्तर के अगम मन्दिर में शुभ नारीत्व का कभी न बुझने वाला दीपक जलाये हुए है।"[2]

यहाँ जोशी जी का हृदय नारी सहानुभूति से द्रवित हो रहा है। नंदिनी के वेश्याजीवन को दिखाकर वह नारी की महान आत्मा को जगाना चाहते हैं। कीचड़ में खिलने वाले कमलों की तरह नन्दिनी के वेश्याजीवन

1-"प्रेत और छाया" -'इलाचन्द्र जोशी', चतुर्थ संस्करण, सं0 2035 विक्रमी पृष्ठ 304

2-"प्रेत और छाया"-'इलाचन्द्र जोशी', चतुर्थ संस्करण, संवत् 2035 विक्रमी पृष्ठ 329, 330

स्वीकारती न तो वह किसी की करुणा की भिखारिणी है और न ही आत्मकरुणा उसके मन में जगी है। शारीरिक और मानसिक स्वस्थता के कारण ही वह राजीव से बातें करने और एकान्त में ठहाके लगाने से नहीं डरती है। उसके जीवन में संघर्षों और अन्तर्द्वन्द्वों का प्रवेश तब होता है, जब राजीव उसे घर गृहस्थी की चारदीवारी को तोड़कर बाहर निकलने की सलाह देता है। वह कहता है - "घर-गिरस्ती की यह चहार दीवारी चा चाहे कैसे ही मजबूत स्पात की बनी क्यों न हो, वह तुम्हारे समान तेजस्विनी नारी को अपने घेरे में सदा के लिए नहीं बांध सकती।"[1]

राजीव की इन बातों से उसके मन में हाहाकार मचने लगता है। वह इस दुःसह अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित होकर छटपटाती हुई राजीव से कहती है- "मुझ अनाथिनी को आप किस अछोर और अकूल की ओर खींच ले जाना चाहते है? मुझ -- अबला और असहाया नारी को इसी संकरी चहार-दीवारी के भीतर गलने दीजिए।"[2]

समाज के कड़े बन्धन तोड़ने की शक्ति उसमें है, इस बात पर सुनन्दा विश्वास नहीं करती है। भारतीय विधवा नारी का चोला पहनने के कारण सुनन्दा बाहर निकलने से डरती है परन्तु राजीव के शब्द उसके 'अवरोधन' की प्रत्येक गुहा में जाकर एक-साथ गूँजने लगते है। उसका मन विचलित होने लगता है। पुरानी मान्यताओं व सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष

1-"मुक्तिपथ" -'इलाचन्द्र जोशी' पेपर बैक संस्करण, 1983ई0 पृष्ठ 32

2-"मुक्तिपथ" -'इलाचन्द्र जोशी' पेपर बैक संस्करण, 1983ई0 पृष्ठ 49

करने लगता है।

रूढ़ियों से विद्रोह करने के बाद राजीव के साथ वह शरणार्थियों की बस्ती में जाती है। वहाँ पर 'मुक्ति-निवेश' में अपनी अत्यधिक सक्रियता दिखलाती है। वह निवेश की संचालिका बन जाती है। देहाती शरणार्थियों को वह उद्योगपरक शिक्षा देती है ताकि वे अपनी जीविका आसानी से चला सके। इस प्रकार कर्तव्यनिष्ठा, सेवाभाव और अध्यवसाय के कारण अपने सैध्दान्य के कलंक को धो डालना चाहती है। वह यह दिखा देना चाहती है कि नारी में कितनी प्रगतिशीलता व सृजनात्मक शक्ति है।

सुनन्दा एक सर्वबुध्दि प्रधान विद्रोहिणी नारी है वह राजीव से अव्यक्त प्रेम करती है, ऐसा प्रेम जिसमें न तो चंचलता है और न उच्छृंखलता। राजीव के प्रति वह कृतज्ञ है क्योंकि उसी के बन्धों का सहारा लेकर वह स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण करती है। राजीव द्वारा आदर्शवाद की सीमा का उल्लंघन करने पर वह पुनः विद्रोह कर देती है। राजीव के सामने केवल श्रम ही श्रम है। विश्राम नहीं । वह सुनन्दा के श्रम को स्वीकारता है लेकिन उसके प्राणों को नहीं । इसीलिए उसका पीड़ित मन कराह उठता है। वह कह उठती है :- "मैंने सारे पिछले बन्धनों को तोड़कर जो आपका साथ दिया था, वह केवल इस मुग्धमत आशा से कि मेरे अन्तर्दीपन की अनन्त-प्रसारित जलती हुई मरुभूमि को भी आप अन्तःप्राणों के अविरल स्नेहरस से सींच-सींचकर, बाहर की बंजर भूमि की तरह ही उर्वरा और हरा भरा बना पायेंगे पर आपको तो मेरे बाहरी श्रम की आवश्यकता थी।

भीतर के स्नेह-रस-सिंचित आश्रय की नहीं - - - ।"[1]

डाक्टर रणवीर रांग्रा ने तुलन्दा के इस विद्रोह पर 'यौन-मुक्ति' का आरोप लगाया है।[2] परन्तु विमल लखनऊ दे इस 'यौन-मुक्ति' नहीं मानती है। उनका कहना है - "यौन-मुक्ति बिना परिवार और कर्तव्य से की जा सकती है। इस प्रकार 'यौन-मुक्ति' का आरोप लगाना प्रायद्वीय आँख से तोलना है।"[3]

वस्तुतः यदि तुलन्दा में 'यौन-मुक्ति' होती तो राजीव के साथ रहती हुई पहले से ही न निकलती, अन्त में जाकर वह अपने भीतर की जमीन को सूनी और सूनी क्यों कहती ? वस्तुतः उसका प्रेम 'यौन-समस्या ग्रस्त प्रेम नहीं है, एक आदर्श और उदात्त प्रेम है। अपने इस उदात्त प्रेम को स्वीकार न किये जाने पर वह राजीव के 'अहं' को कुचलती हुई मुक्ति-निषेध छोड़कर चल देती है। वह एक तुलनशील, कड़ियों को तोड़ने वाली विद्रोहिणी नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

मीनया :- 'त्याग का भोग' उपन्यास की नायिका मीनया का जीवन प्रारम्भ में वित्तवृत्तियों का शिकार हो जाता है परन्तु उपन्यास के अन्त में हम उसे पुरुष के 'अहं' को चकनाचूर करने वाली विद्रोहिणी

1-"मुक्तिपथ"-'इलाचन्द्र जोशी,' संस्करण 1983ई० पृष्ठ 201
2-देखिए-हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास- डा०रणवीर रांग्रा संस्करण सन् 1961 ई० पृष्ठ 417
3-"हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"- डा० विमल लखनऊ दे संस्करण, मार्च 1974 ई० पृष्ठ 313

नारी के रूप में देखते हैं जो मानसिक विकृतियों द्वारा अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व निर्मित करती है। उपन्यास में जोशी जी ने उसके दुराग्रह व्यक्तित्व के विभिन्न उतार-चढ़ावों का दिग्दर्शन कराया है।

मनिया, बकराता से भागकर मंसूरी की सड़कों की मरम्मत के काम में लगे हुए मजदूरों के साथ काम करके पेट काटकर कुछ पैसे बचाती है और उन पैसों से बिसाती की एक दुकान खोलती है। प्रारम्भ में उसकी आदतें निम्न स्तर की पाई जाती है। जीवन के प्रति प्रारम्भ में उसका कोई स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं है। उसका बौद्धिक और मानसिक विकास केवल परिस्थिति वश ही हुआ है, किसी लक्ष्य द्वारा नहीं। वह जितनी ही तरल सीधी-साधी है उतनी ही हठीली, जितनी भोली-भाली है उतनी ही क्रोधी, जितनी अधिक प्रेम करती है उतनी ही अधिक घृणा।"[1]

उसका पिता बौद्ध और मां हिन्दू स्त्री थी। पिता के प्रति अत्यधिक स्नेह के कारण वह बौद्धधर्म स्वीकारती है परन्तु मानसिक अपरिपक्वता और धार्मिक ज्ञान न होने के कारण वह सिरिल्या के ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट हो जाती है। भूपेन्द्र रंजन जब डिप्लोमेटिक कला द्वारा उसे अपने वश में करके उससे शादी करना चाहता है तो वह ईसाई धर्म ग्रहण करके और भूपेन्द्र को भी ईसाई धर्म ग्रहण करा के उससे शादी करती है। उसका जीवन चित्तविकृतियों का शिकार है वह जानती है कि उसकी मां दरबारी थी इसलिए मां की ओर से सजा पाने के लिए वह ईसाई धर्म में

1-देखिए - "त्याग का भोग"- 'इलाचन्द्र जोशी' तृतीय संस्करण सन् 1972 ई० पृष्ठ 161, 162, 163

हीन हो जाती है। इस हीन मनोभावना के कारण कि वह एक हत्यारी माँ की बेटी है, वह ग्रसग्रस्त हो जाती है। फ्रॉयड का कथन है कि मन में अपराध भाव होने से मन ग्रसग्रस्त हो जाता है और इस कारण मनुष्य अपना मन धार्मिक भावनाओं में लगाता है। मनिया भी अपनी हत्यारी माँ के कारण अपराधग्रस्त होकर धर्मभीरु हो उठती है। धर्म में लीन होकर वह ईश्वर से अपनी माँ की तरफ से क्षमा माँगने के लिए प्रायश्चित करती है। एडलर का कथन है कि - व्यक्ति अपने 'हीनत्व के कारण ही ईश्वर में श्रद्धा रखता है। क्योंकि जो प्रकृति का संचालक है वह निश्चय ही महान विभूति है। मनिया भी अपने में हीनत्व की भावना रखने के कारण ईश्वर को महान रूप में देखती है। वह सुरेन्द्रांजन को ईसाई धर्म अपनाने को कहती है। वह कहती है - "मैं प्रभु ईसा के चरणों में अपना मन-प्राण अर्पित कर चुकी हूँ। अब केवल एक ही रास्ता तुम्हारे और मेरे बीच शारीरिक और मानसिक संबन्ध स्थापित हो सकने का रह गया है।"[1]

सुरेन्द्रांजन द्वारा ईसाई धर्म ग्रहण करने पर वह उससे शादी कर लेती है। मातृत्व को अपनाने के बाद उसे स्वप्न में ईसा बच्चे के रूप में माँ मरियम की गोद से आते दिखाई देते हैं।

मनिया की धार्मिकता किसी सुदृढ़ नींव पर नहीं टिकी है। इसलिए उसके बच्चे की मौत के साथ ही उसका देवता भी मर जाता है। मनुष्य में जब किसी मानसिक शक्ति का विकास चरम सीमा तक हो जाता है। उस पर विरोधी शक्तियों की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। 'मनिया'

1-"त्याग का भोग" -'इलाचन्द्र जोशी' तृतीय संस्करण सन् 1972 ई० पृष्ठ 125

का इस प्रकार नास्तिक हो उठना इसी 'प्रतिक्रियाकरण' का परिणाम है। वह कहती है - "मेरे बच्चे के साथ ही मेरा देवता भी मर गया है। कल्पना के जिस पुतले को मैं इतने दिनों तक अपनी आत्मा में सारी श्रद्धा सारा प्रेम अर्पित किए रही वह आज कल्पना में ही विलीन हो गया है। उसके अस्तित्व की कोई भी निशानी अब मेरे पास नहीं रह गयी है।" [1]

यहीं से मीनया के मन को एक नयी दिशा मिलती है। उसके पुत्र की मौत और उसका तेजाब से विकृत चेहरा उसे विद्रोहिणी बना देता है। नृपेन्द्रनंदन के शोभना की ओर आकृष्ट होने के कारण मीनया का मन खिन्न होने लगता है मन के इस विद्रोह को वह शांत भाव से सहन करती हुई वह व्यक्तिगत जीवन के मोहन को त्याग देती है। नृपेन्द्रनंदन के 'अहं' को कुचलती हुई उसे छोड़कर चली जाती है। तेजाब से विकृत चेहरे की प्लास्टिक सर्जरी करवाकर वह मंजुला के रूप में प्रकट होती है। 'कन्हाईलाल' के 'जनसमन्वय केन्द्र' की मुख्यमंत्री बनकर वह अकाल पीड़ितों की सेवा करती है। नृपेन्द्रनंदन पुनः उसके रंग-रूप की ओर आकृष्ट होता है। मंजुला उसे खूब तड़पाती है। वह नृपेन्द्रनंदन की हिप्नोटिक कला की धज्जियां उधेड़ कर रख देती है। अपने वास्तविक रूप में आकर मीनया बताकर वह एक क्रान्तिकारिणी विद्रोहिणी नारी की तरह नृपेन्द्र को कठपुतली की तरह नचाती है। नृपेन्द्र जैसे धनवान की सारी सम्पत्ति जनसमन्वय केन्द्र को दिलवाकर बुर्जुवा समाज की अहंवादी प्रवृत्ति पर वह भीषण कुठाराघात करती है।

1-"हिन्दी उपन्यासों में "त्याग का भोग"-'इलाचन्द्र जोशी'
तृतीय संस्करण सन् 1972 ई० पृष्ठ 457

मीनिया के चित्रण में जोशी जी ने, लगता है कि अतिवाद से काम लिया है। नारी को प्रगति पथ पर बढ़ाने के चक्कर में उन्होंने मीनिया को काफी स्वच्छन्द और उच्छृंखल व्यवहार वाली बना दिया है। जहाँ उसकी सुनन्दा केवल श्रम, बाहरी श्रम की याचना न करके बन्धन की भी याचना करती है वहीं मीनिया केवल श्रम चाहती है कोई विश्रान्ति, कोई बंधन नहीं चाहती। वह वृषेन्द्र को निरन्तर प्रेम से वंचित रखती है। डा० विमल लक्ष्मबुद्धे उसके चरित्र का वर्णन करती हुई कहती है:-

"मीनिया इड़ा के समान व्यावसायिक बुद्धि है, जो मनुष्य को बुद्धि द्वारा मात्र तर्क-वितर्क के निर्मम जाल में उलझाकर सुख-शांति और प्रेम से वंचित करती है।" [1]

गुलाबिया:- 'सुबह के भूले' उपन्यास की नायिका गुलाबिया एक साधारण दूध वाले की लड़की है। उपन्यास में उसके जन्म से यौवन तक के विकास का वर्णन किया गया है। जोशी जी इस पात्र के माध्यम से यह दिखाना चाहते हैं कि परिस्थितियों के फेर में पड़कर मनुष्य का जीवन क्या-क्या रूप धारण करता है। गुलाबिया नायिका के बचपन का नाम है। वह जब अभिजात्यवर्गीय लोगों के बीच पढ़ने जाती है तो अपना नाम बदल लेती है। यह सब उस पर वातावरण का प्रभाव है। 'वाट्सन' के अनुसार- मनुष्य जिस वातावरण में अधिक रहता है उसी का प्रभाव उस पर अधिक पड़ता है।

1-"हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"-डा० विमल लक्ष्मबुद्धे
संस्करण मार्च सन् 1974 ई० पृष्ठ 32।

गुलीबया भी जब कॉलेज जाती है तो वहीं के रंग में रंग जाती है। वह अपना नाम गुलीबया से बदलकर गिरिजा कुमारी रख लेती है। जब उसकी प्रिंसपल उससे पूँछती है कि तुमने अपना नाम क्यों बदला ? तो वह कहती है - "गुलाब का फूल अच्छा लगता है, पर 'गुलीबया नाम अच्छा नहीं लगता है। उससे देहातीपन की 'बू' आती है।"[1]

यह उदाहरण यह भी स्पष्ट करता है कि गुलीबया में देहाती और निम्नवर्गीया होने के कारण 'हीनता की भावना' घर कर गई है। इस हीनता की भावना की पूर्ति वह 'एडलर' के श्रेष्ठतापूर्ति के सिद्धान्त के अनुसार अपना नाम बदलकर और अपने को उच्चवर्ग में स्थापित करके दूर करना चाहती है। क्योंकि - 'गुलीबया' नाम की ध्वनि मात्र से वह न जाने क्यों, अपने को एक अत्यन्त दीन-हीन असहाय और पीड़ित लड़की समझने लगती थी, जिसकी आँखों में सब समय कीच लगा हो, धूल पर मक्खियाँ बैठती हों और जो फटे मैले कपड़े पहने, सिमटी सिकुड़ी सी घर के एक कोने में निपट उपेक्षित अवस्था में पड़ी रहती हो और गिरिजा। क्या मीठा नाम है। उसे दूसरे के मुँह से सुनते ही वह अपने को विजयिनी समझने लगती है - - - - ।"[2]

गुलीबया गिरिजा बनकर अपनी बुद्धिमत्ता से सबको चकित कर देती है। वह अपने छात्र-जीवन में हर वादविवाद प्रतियोगिता में भाग लेती है। 'आत्म-लघुता' की भावना को छिपाने के लिए वह अनेक भाषाएं

1-"सुबह के भूले" -'शशांक जोशी'- संस्करण सन् 1984 ई० पृष्ठ 66

2-"सुबह के भूले " -'शशांक जोशी'-संस्करण सन् 1984 ई० पृष्ठ 67

सीखती है उसका स्वभाव शांत और संयत है किसी भी व्यक्ति को आसानी से प्रभावित कर लेने की उसमें अद्भुत क्षमता है। मोहनदास जैसा उच्चवर्गीय व्यक्ति भी आसानी से उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है।

जीवन में नया आवरण पाते ही वह नया व्यक्तित्व धारण करती है। फैशनेबुल समाज में आने के कारण वह निर्मोही प्रकृति की हो जाती है अपने सगों तक को वह भूलने लगती है। इतना सब होते हुए भी वह एक महत्वाकांक्षिणी नारी है। उसके मन में सम्पूर्ण संसार को परास्त करने की प्रबल लालसा है। मोहनदास और रंजना क्लब की महिला सदस्यों को जब यह पता चलता है कि वह एक निम्नवर्गीय परिवार की लड़की है तो वे उसका खूब अपमान करतीं हैं। अपने अपमान से पीड़ित होकर वह 'अतृप्ति-पूर्ति' के सिद्धान्त के अनुसार फिल्म जगत में प्रवेश करती है वह यहाँ पर अपनी निजी कुण्ठाओं को अन्त सामाजिक कुण्ठाओं में करके प्रगति और उत्थान के विशाल राजमार्ग पर अग्रसर होती है। फिल्म दुनिया की कृत्रिमता से ऊबकर वह अपनी सारी कमाई गरीबों में बांट देती है और पुनः अपने प्राचीन जीवन में लौट आती है तथा बचपन के साथी किशन की जीवन-संगिनी बनती है। जोशी जी ने इस पात्र में इतनी अधिक गतिशीलता प्रदान की है कि वह एक 'टाईप पात्र' होने से बच गयी है।

'गुलीवर' के माध्यम से जोशी जी यह संदेश देते है कि निजी-जीवन की कुण्ठा को सार्वजनिक कुण्ठा बनाकर सबके उत्थान के लिए संलग्न होने पर मन की कुण्ठा स्वतः ही समाप्त हो जाती है।

मंजरी:- 'प्रेत और छाया' उपन्यास की नायिका मंजरी उपन्यास के प्रारम्भ में सामाजिक और पारिवारिक हीनता से ग्रस्त एक शिक्षित स्त्री के रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत होती है। माँ की मृत्यु और अन्य आर्थिक संकटों ने इसके मन में 'हीनता' और 'दुर्बलता' भर दी है। नायक पारसनाथ के आर्थिक रूप से सहारा देने पर उसमें पड़ी उक्त ग्रंथियाँ धीरे-धीरे विलीन होने लगती हैं। उसके अचेतन मन में जमी 'आत्मरक्षा' की मूल प्रवृत्ति भी सम्यक अनुकूल पाते ही जाग उठती है। इसी प्रवृत्ति के कारण ! वातावरण के प्रभाव के कारण! मंजरी में संकटों का मुकाबला करने की प्रवृत्ति जाग उठती है। पारसनाथ के साथ रहती हुई "मंजरी को ऐसा बोध होने लगा था जैसे वर्षों तक धूल से भरी उलझी हुई, अस्वाभाविक और अवास्तविक परिस्थितियों के बीच जीवन बिताने के बाद उसके जीवन का क्रम अचानक किन्हीं देवी हाथों से मुक्त पड़ा है, और वह सहज, स्वाभाविक और ठीक परिस्थितियों के बीच में अपने आप बिना किसी चेष्टा के, किसी रहस्यमय नियम के क्रम से आ पड़ी है।"[1]

एडलर का 'व्यक्तिवादी मनोविज्ञान' यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक पारिवारिक और वैवाहिक रूप को अपने जीवन

1-"प्रेत और छाया" - इलाचन्द्र जोशी: चतुर्थ संस्करण सं० 2035वि० पृष्ठ 155

में विकसित करने की शक्ति रखता है और उसे विकसित रूप में आगे बढ़ाता है। व्यक्ति की उक्त परिस्थितियाँ ही उसमें विशिष्ट मानसिकता का बीज बोती हैं। मंजरी की समस्याएं भी उसे अभिव्यक्ति हेतु प्रेरित करती हैं। प्रारम्भ में वह बेचारा बनती है परन्तु पारस का सहारा मिलते ही उसमें पारिवारिक व वैवाहिक जीवन जीने की लालसा बलवती हो उठती है वह पारसनाथ के साथ रहती हुई वैवाहिक बंधन में बंधना अधिक उचित समझती है-

"मेरा तो यह विश्वास है कि मनुष्य में सभ्यता और संस्कृति के विकास से जितने भी सामाजिक नियमों का अविष्कार किया है, उन सबमें विवाह की व्यवस्था ठीक है। मैं यहाँ तक अनुमान करती हूँ कि भविष्य में भी मानव-समाज चाहे कितना ही अधिक उन्नत और प्रगतिशील क्यों न बन जाये किसी भी हालत में वह विवाह बंधन को तोड़ने की बात नहीं सोच पायेगा।"[1]

मंजरी समाज में रहने के लिए विवाह जैसी रीति को अनिवार्य मानती है। पारसनाथ के साथ पति-पत्नीवत संबंध स्थापित हो जाने के बाद वह 'मातृत्व' को स्वीकार करना अपना कर्तव्य समझती है।परन्तु पारसनाथ के मन में पहली ग्रंथि उसे किसी भी स्त्री को सुखमय जीवन न

1- "प्रेत और छाया" - इलाचन्द्र जोशी: चतुर्थ संस्करण- सं० 2035वि० पृष्ठ 177

बिताने देने को विवश करती है। अतः वह मंजरी के गर्भ को गिराना चाहता है। यहीं से शुरू होता है - मंजरी का अन्तर्द्वन्द्व। उसमें जीवनदृष्टि का संचार होने लगता है। पारसनाथ के असहाय छोड़कर चले जाने पर जब वह अपने रिक्थ को निःसहाय पाती है तो उसका मन विद्रोह कर उठता है। उसके मन में प्रतिहिंसा की ज्वाला जलने लगती है। यही ज्वाला उसमें 'जीवन-दृष्टि' का संचार करती है। उसका व्यक्तित्व यहीं से बदल जाता है। उसमें जीने की ललक और पारसनाथ से बदला लेने की ललक भर उठती है। वह पारसनाथ के प्रतिघाती मन पर चोट करने के लिए जीना चाहती है।-

"मैं क्यों मरूँ ? अभी तो मैंने जीवन को देखा ही क्या है, समझा ही कितना है? अभी तो मैंने केवल अपने अनुभव हीन सरल स्वभाव के कारण धोखा खाया है- ---- उससे अगर मैं न उबर पाई, और उससे लाभ न उठा पाई तो मेरी इस कायरता को धिक्कार धिक्कार है। मैं नहीं मरूँगी, नहीं मरूँगी ------ मेरे वह अधम व्यक्ति जो अपने ही हाथों से रचे हुए नरक के बीच में गले तक डूब चुका है। ---- पर मैं इस घोर नरक के अनुभवों को यदि स्वर्ग की छाया में परिणत न कर पायी तो मैंने क्या किया!"[1]

मंजरी में चरम संकट के समय अपने नवजात रिक्थ की बीमारी के

1- "प्रेत और छाया" - इलाचन्द्र जोशी: चतुर्थ संस्करण- सं० 2035वि० पृष्ठ 314

समय की स्थिरता और दृढ़ता देखकर हैरान हो जाना पड़ता है। बच्चे की मृत्यु उसे स्वावलम्बी बनकर पारस जैसे नरक के कीड़ों को सजा देने के लिए बाध्य करती है। मैत्री का व्यक्तित्व यहीं से उदात्तीकरण की ओर अग्रसर होता है। पढ़ाई-लिखाई करके वह डाक्टर बनकर अपने पैरों पर खड़ी हो जाती है और समय आने पर वह पारसनाथ के 'अहं' पर तीव्र चोट करती है। पारसनाथ के बच्चे के बीमार होने पर उसे अपने बच्चे के बीमार होने और मरने के चित्र आते हैं और वह पारसनाथ को उसी स्थान पर नीचा दिखाती है उसे धूर्त और हत्यारा आदि कहकर उसके 'अहं' को कुचलती है।[2]

जोशी जी इस नारी के माध्यम से पुरुष के विकृत 'अहं' पर कुठाराघात करते हैं। वे अंजरी जैसी नारियों के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि विपरीत परिस्थितियों और संघर्षों के मध्य ही व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्मित होता है। जहाँ उसे किसी सहारे की जरूरत नहीं पड़ती है।

शांति :- 'संन्यासी' उपन्यास की प्रमुख नारी-पात्र शांति लगभग 20 वर्षीया एक सुन्दर, सहृदयता, भावुक और निष्कपट नारी है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में यह नारी स्वभाव से भावुक होते हुए भी

1- देखें - "प्रेत और छाया" - इलाचन्द्र जोशी चतुर्थ संस्करण-सं० 2035वि० पृष्ठ 401, 404

एक साहसी नारी का प्रतिनिधित्व करती है। अनेक मनवोचित गुणों के होने पर भी उसमें अतृप्त काम-वासना की पूर्ति की चाह भी है। जब वह नन्दकिशोर को बनारस में पान वाली दुकान पर देखती है तो इसी 'काम-वृत्ति' के कारण ही वह उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है। नन्दकिशोर इस तथ्य को स्वयं स्पष्ट करता हुआ कहता है- "दोनों महिलाएं कपड़ा खरीदने के बाद चलने लगी । उनमें जो अपेक्षाकृत छोटी थी और खद्दर की साड़ी पहने थी, वह चलते-चलते बीच-बीच में पीछे की ओर मुँह फिराकर सलज्ज, सविभ्रम मुझे घूर रही थी। नजर लड़ते ही संकोच के कारण मैं आँखें नीचे की ओर झुका लेता था और वह भी।"[1]

उसकी काम-वृत्ति इतने से ही सीमित नहीं रहती है। नन्दकिशोर के अपने दोस्तों के साथ आगे बढ़ जाने पर बार-बार मुड़-मुड़कर उसकी ओर देखना[2] इसी बात का द्योतक है कि उसमें 'विपरीत लिंगी प्रेम' की स्वाभाविक पिपासा है।

जोशी जी की नारियाँ यद्यपि प्रारम्भ में पुरुष के आधीन रहने में अपने में सुख का अनुभव करती है परन्तु वैसे ही उनके 'अहं' पर चोट जाती है वैसे ही वे कड़कती बिजली की भाँति उनका 'अभिमान' जाग

1- 'सन्यासी" - इलाचन्द्र जोशी: सप्तम आवृत्ति, सं० 2030वि० पृ० 50

2-देखें-'संयासी"-इलाचन्द्र जोशी:सप्तम आवृत्ति, सं० 2030वि० पृ० 51

उठता है। शांति का चरित्र भी 'आत्म-सम्मान' और 'अभिमान' के इसी विद्युज्ज्योति से आलोकित है। जब नन्दकिशोर शांति के साथ रहने लगता है तो खाने-पीने के प्रश्न पर नन्दकिशोर के यह कहने पर कि तुम्हें यहाँ बड़ी असुविधा होगी, शांति कहती है —— "मेरी समस्या हल करने की कोई जरूरत नहीं है। समस्या। मुझे क्या कोई अनाथाश्रम की स्त्री समझ लिया है, जो व्यवस्था मेरे अन्न-वस्त्र के उपाय का प्रश्न आपके आगे उपस्थित हुआ है? यह व्यवस्था आपको ही मुबारक रहे।"[1]

जीवन के चरमतम अनुभवों से उसकी बुद्धि का विकास नायक नंदकिशोर की अपेक्षा तीव्र गति से होता है। शांति के चरित्र में 'नारी-मनोविज्ञान' का अधिक प्रयोग हुआ है। नारी-सुलभ सहीलापन, उसके चरित्र में विद्यमान है। बनारस में नन्दकिशोर के कमरे पर पहुँचने पर जब वह उससे कहती है कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। तो स्वभावतः वह आगा-पीछा न सोचकर मात्र अविवेक और सहीलेपन का परिचय देती है। उसका बार-बार रूठ करना और बात-बात में रूठ जाना तथा बाद में उसके लिए पश्चात्ताप करना यह 'नारी-मनोविज्ञान' का उत्कृष्ट नमूना है। इलाहाबाद में नन्दकिशोर से अपने कमरे में सोने की जिद करना और उससे बुरा उदास होते ही उदासी का कारण पूँछना उसके परम्परागत नारी-स्वभाव का परिचायक है

1- 'सन्यासी' - इलाचन्द्र जोशी, सप्तम आवृत्ति, सं० 2030वि० पृष्ठ 94

देखिए ——

"मैं यही तो पूँछती हूँ कि तुम्हारा चित्त ठिकाने पर क्यों नहीं है ? बात क्या है, कुछ मैं भी जानूँ । कहकर उसने थाली मेरे आगे रख दी। उफ़ । नारी स्वभाव की यह हठकारिता । यह विशेष-विशेष अवसरों पर मनुष्य को पागल तक बना सकती है, इस बात पर मुझे पूरा विश्वास है। - - -"[1]

शांति का हृदय जहाँ एक ओर नन्दकिशोर के प्रेम में पगा है अर्थात उसमें उत्कट प्रेम है, वहीं दूसरी ओर उसके द्वारा छली जाने पर उसमें नन्दकिशोर के प्रति घृणा के भी बादल मँड़राने लगते है।

"नारी सब कुछ सह सकती है, अपने प्रियतम के कटु वचन भी सह सकती है, पर सह नहीं सकती अपने प्रियतम द्वारा किसी पुरुष के प्रति अपने चरित्र पर झूठा संदेह।"[2]

शांति अपने ऊपर किसी पर-पुरुष पर अनुरक्त होने का लांछन स्वीकार नहीं कर पाती है। वह नन्दकिशोर के 'अहं' पर लात मारकर उसे छोड़कर चली जाती है । वह अप्रत्यक्ष रूप से नन्दकिशोर के अचेतनमन में जमें 'अहं' पर जबर्दस्त मानसिक प्रहार करती है। वह किसी के आगे दया, और सहायता की भील मांगने वाली नारी नहीं है। नन्दकिशोर

1-"संयासी" - 'इलाचन्द्र जोशी' - सप्तम आवृत्ति - पृष्ठ 226

2-"हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"-डॉ०विमलसहस्रबुद्धे संस्करण - मार्च 1974 ई०:पृष्ठ 302

की 'संदेहशील प्रवृत्ति' का प्रवाहन करने, उस पर मानसिक प्रहार कर उसको सबल बनाने हेतु वह उसे छोड़कर चली जाती है और केदारखण्ड जाकर अध्ययन व्यवसाय में लग जाती है। जोशी जी की यही वह नारी है जिसने वर्षों पहले ही 'आज की नारी' की भविष्यवाणी कर दी थी। वह अपने पुत्र को वहीं केदारखण्ड में जन्म देती है। वहीं पर तुम्बरा नामक नारी उसे पालती है। नन्दीवक्षोर के आने पर वह उसे पुत्र ललन को सौंपकर उससे अलग गुप्त स्थान पर चली जाती है। हमें यहाँ बरबस ही रामायण की सीता की याद आ जाती है जब वह राम के मिलने पर दुबारा उनके साथ न जाकर अपने बच्चे को सौंपकर पृथ्वी के विवर में समा जाना उचित समझती है, फ्रॉयड के अनुसार वर्गीत 'मूल प्रवृत्तियों का प्रभुत्व' हमें शशि के चरित्र में दृष्टि गत होता है। अन्य दृष्टियों से वह एक सामान्य पात्र की हीसियत है।उसके अवेतन-मन में एक ओर कोमलता के पुष्प खिलते हैं, वहीं कठोरता के कैक्टस भी है। यही सामान्य प्रवृत्ति है। जोशी जी नारी की इसी कठोरता को मान देकर, विद्रोह का सम्मान करके नारी को आदिकाल से चले आ रहे पुरुष के 'अहंभाव' से मुक्ति दिलाना चाहते हैं। शशि के माध्यम से उन्होंने यही सिद्ध करना चाहा है।

* * * * *
* * * *
* * *

षष्ठ अध्याय

आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों और जोशी जी के उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तुलना

षष्ठ अध्याय

" आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों और जोशीजी के उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तुलना"

§1§ इलाचन्द्र जोशी एवं प्रेमचन्द :- हिन्दी उपन्यासों में 'मनोविज्ञान-शास्त्र' के प्रथम प्रयोक्ता के रूप में प्रेमचन्द का नाम उल्लेखनीय है। यूरोप में फ्रॉयड, एडलर, जुंग, गेस्टाल्ट तथा वाट्सन आदि मनोविश्लेषणशास्त्रियों ने जो मनोवैज्ञानिक सिध्दान्त खोजे उनका प्रभाव आधुनिक साहित्य पर भी पड़ा। हिन्दी का उपन्यास-साहित्य भी इन सिध्दान्तों व खोजों से प्रभावित हुआ। वैसे तो अज्ञेय, जैनेन्द्र और जोशी को ही उपन्यास-साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक विचार धारा वाले उपन्यासकार कहलाने का गौरव प्राप्त है, लेकिन इन सबके पूर्ववर्ती उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द ने भी अपने परवर्ती उपन्यासों में आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि डाली। "प्रेमचन्द ने सहज मानवीय व्यापारों को मनोवैज्ञानिक स्थितियों से जोड़कर उनमें एक सहज तीव्रमानवीय रुचि पैदा कर दी। उनके आरंभिक उपन्यासों में घटनाओं की सृष्टि का भी प्रयास लक्षित होता है, पर धीरे-धीरे वे इस पुराने रोग से मुक्त होते गये और "गोदान' में पहुँचकर उन्होंने किस्सागोई की कला को प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की जो 'घटनाओं' पर नहीं मनोवैज्ञानिक स्थितियों से दीप्त सहज-सामान्य-मानवीय-व्यापारों पर जीती है।"[1]

1- "हिन्दी साहित्य का इतिहास" - डा० नगेन्द्र, द्वितीय संस्करण 1982, पृष्ठ 584

षष्ठ अध्याय

"आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों और जोशी जी के उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तुलना"

॥।॥ जैनेन्द्र जोशी एवं प्रेमचन्द :- हिन्दी उपन्यासों में 'मनोविज्ञान-शास्त्र' के प्रथम प्रयोक्ता के रूप में प्रेमचन्द का नाम उल्लेखनीय है। यूरोप में फ्रॉयड, एडलर, युंग, वेस्टारट तथा वाट्सन आदि मनोविश्लेषणशास्त्रियों ने जो मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त खोजे उनका प्रभाव आधुनिक साहित्य पर भी पड़ा। हिन्दी का उपन्यास-साहित्य भी इन सिद्धान्तों व खोजों से प्रभावित हुआ। वैसे तो अज्ञेय, जैनेन्द्र और जोशी को ही उपन्यास-साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक विचार धारा वाले उपन्यासकार कहलाने का गौरव प्राप्त है, लेकिन इन सबके पूर्ववर्ती उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द ने भी अपने परवर्ती उपन्यासों में आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि डाली। "प्रेमचन्द ने सहज मानवीय व्यापारों को मनोवैज्ञानिक स्थितियों से जोड़कर उनमें एक सहज तीव्रमानवीय रुचि पैदा कर दी। उनके आरंभिक उपन्यासों में घटनाओं की सृष्टि का भी प्रयास लक्षित होता है, पर धीरे-धीरे वे इस पुराने रोग से मुक्त होते गये और "गोदान" में पहुँचकर उन्होंने किस्सागोई की कला को प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की जो 'घटनाओं' पर नहीं मनोवैज्ञानिक स्थितियों से दीप्त सहज-सामान्य-मानवीय-व्यापारों पर बीती है।"[1]

1- "हिन्दी साहित्य का इतिहास" - डा० नगेन्द्र,
द्वितीय संस्करण 1982, पृष्ठ 584

प्रेमचन्द का रचनाकाल वह काल है जब चारों तरफ क्रान्ति और संघर्ष, पूँजीवाद और सर्वहारा वर्ग का संघर्ष चल रहा था। ऐसे काल में जन्मा साहित्यकार-मन भी संघर्षों व जटिलताओं की कहानी मनोविज्ञान के धरातल पर प्रस्तुत करने में सफल हुआ। यद्यपि प्रेमचन्द के उपन्यासों में वह मनोवैज्ञानिक पुट नहीं है जो इलाचन्द्र जोशी जी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में है, तथापि पात्रों को सामाजिक परिवेश में रखकर भी उनके अन्तर्मन के अन्दर झांकने में जो मनोवैज्ञानिक चातुरी प्रेमचन्द ने दर्शायी वही परम्परा आगे चलकर पुष्ट हुई। उनके उपन्यासों में असामान्य पात्रों की भी सृष्टि हुई है, चरित्र-चित्रण की मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का भी प्रयोग हुआ है, साथ ही पात्रों को न केवल सामाजिक वातावरण मिला है अपितु मानसिक वातावरण का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। प्रेमचन्द की भाषा में मनोविज्ञान की तुलिका का प्रयोग हुआ है। 'अन्तर्द्वन्द्व', 'कुण्ठा', 'निराशा', सभी के अंकन में मन की जितनी सफल भाषा प्रेमचन्द ने प्रयुक्त की है उतनी इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में नहीं मिलती।

इलाचन्द्र जोशी जी का उद्देश्य व्यक्ति के अचेतनमन में होने वाली उठा-पटक, द्वन्द्वों, विकारों आदि का सूक्ष्म चित्रण रहा है तथा अन्तर्मन के चित्र दिखाने के साथ-साथ व्यक्ति को स्वस्थता और सबलता की ओर अग्रसर करना भी रहा है। प्रेमचन्द ने भी अपने उपन्यासों में उद्देश्य को प्रबल माना है। उनका कहना है - "जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उतरने का अनुभव करे, उसके सद्भाव जाग उठें, वही सफल उपन्यास है।"[1]

1- "कुछ विचार" - प्रेमचन्द : चतुर्थ संस्करण - पृष्ठ 7।

कुछ अर्थों में जोशी जी व प्रेमचन्द जी का उद्देश्य समान है। दोनों व्यक्ति के जीवन में चित्र प्रस्तुत करने के बाद उपन्यास का उदात्तीकृत अंत चाहते हैं। दोनों उपन्यासकारों के लक्ष्य के मूल में मानव की दुर्बलताओं का परिशोधन व परिमार्जन ही है, परन्तु लक्ष्य तक पहुँचने के रास्ते [कथावस्तु] अलग-अलग हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों का लक्ष्य मानव-मन का परिष्कार रहा है। उनके अनुसार - "साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। ---------- वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, - हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है।"[1] इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कथावस्तु का आधार 'मानव-जीवन' को बनाया है और उसके माध्यम से मानव-जीवन के विविध पहलुओं और समस्याओं की ओर प्रवृत्त हुए हैं। इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में कथा का आधार सम्पूर्ण मानव-जीवन न होकर मात्र क्षणिक घटनाएं व कुण्ठाएं हैं अर्थात् उन्होंने मानव के सम्पूर्ण जीवन के चित्र न खींचकर जीवन के अन्दर से कुछ घटनाओं, कुछ उलझनों, कुछ कुण्ठाओं को अपनी कथावस्तु का आधार बनाया है। वे "फ्रॉयड के मनोविश्लेषण विज्ञान की पुस्तकों में दिये गये रुग्ण-मानस व्यक्तियों के व्यौरों से अपने उपन्यासों की कथावस्तु लेते हैं।"[2] प्रेमचन्द की कथा के आधार मानव-जीवन की सामाजिक आर्थिक समस्याएं हैं, जबकि इलाचन्द्र जोशी जी की कथा के आधार व्यक्ति की वैयक्तिक समस्याएं हैं जो कभी-कभी सामाजिकता के धरातल को भी छूती चलती हैं। 'प्रतिज्ञा', 'निर्मला', 'सेवासदन', में

1- "कुछ विचार" -प्रेमचन्द : चतुर्थ संस्करण - पृष्ठ 52

2- "हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष" - शिवदान सिंह चौहान, पृष्ठ 162

नारी जीवन की अनेकानेक समस्याओं को ही आधार मिला है जबकि जोशी जी के उपन्यासों में नारी-जीवन के सम्पूर्ण को नहीं वरन् कुछ अंशों जैसे काम, प्रेम, स्वातन्त्र्य को ही आधार मिला है।

प्रेमचन्द का 'प्रतिज्ञा' उपन्यास 'पूर्णा' की दीन दशा को प्रतीकीकृत करता है और 'विधवा-समस्या' को लेकर आगे बढ़ता है। 'सेवासदन' में 'सुमन' की कथा द्वारा 'दहेज-प्रथा', सामाजिक कठोरता आदि के दुष्परिणामों को चित्रित करते हुए यह बताया गया है कि नारी विवशता की हालत में ही वेश्या बनती है। 'निर्मला' में भी निर्मला के अनमेल वैवाहिक जीवन को कथा का आधार बनाया गया है। 'गबन' में कथावस्तु का आधार 'जालपा' की आभूषण-प्रियता है। इसके अलावा प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में समाज की आर्थिक व राजनैतिक समस्याओं को भी छुआ है। प्रेमचन्द्र का युग राजनैतिक उथल-पुथल का युग है, अतः 'प्रेमाश्रम', 'कायाकल्प', 'रंगभूमि', 'गोदान', 'कर्मभूमि' सभी में जन-जीवन के सभी पहलुओं को छुआ गया है। ऐसे समस्याओं के चित्रण में जोशी जी व प्रेमचन्द जी में पर्याप्त साम्य है, परन्तु प्रेमचन्द ने इन समस्याओं पर मुख्य रूप से प्रकाश डाला है, जबकि जोशी जी ने प्रसंगवश इन समस्याओं को छुआ है। हाँ, जोशी जी व प्रेमचन्द एक समस्या को लेकर समान रूप से चिन्तित दिखते हैं वह समस्या है - 'नारी-समस्या'। दोनों ही उपन्यासकार 'नारी-मनोविज्ञान' के मर्मज्ञ हैं।

इलाचन्द्र जोशी जी ने व्यक्ति के अन्तर्मन की कथा कहने के लिए [कथावस्तु प्रारम्भ करने के लिए] मुख्य रूप से तीन मनोवैज्ञानिक शैलियाँ अपनाई हैं :- 'आत्मकथात्मक', 'पूर्वदीप्ति', और 'स्वगतकथन' द्वारा। प्रेमचन्द ने कथा का आरम्भ अधिकांशतः संकेत प्रणाली द्वारा किया है। इसके अतिरिक्त

उन्होंने 'भविष्यवाणी प्रणाली' द्वारा भी कथा का विकास किया है। उदाहरण के लिए 'प्रतिज्ञा' उपन्यास का प्रारम्भ भावी घटना, भावी समस्या की ओर संकेत करके किया है - "अरे यह क्या? कहाँ तो चारों तरफ हाथ ही हाथ देख पड़ते थे, कहाँ अब एक हाथ भी नजर नहीं आता। हमारा युवक-इतना कर्तव्यशून्य, इतना लालसहीन है। मगर नहीं - वह देखिये, एक हाथ अभी तक उठा हुआ है। वही एक हाथ युवक मण्डली के लाज की रक्षा कर रहा है। सबकी आँखें उसी तरफ फिर गयीं- अरे, यह तो बाबू अमृतराय हैं।"[1]

'गबन' का प्रारम्भ भी 'संकेत-प्रणाली' द्वारा ही हुआ है। 'जालपा' की आकस्मिक प्रियता से गबन का प्रारंभ हुआ है- "बहू जी, चार दिन में तो बिटिया को असली चन्द्रहार मिल जायेगा। ---------- बालिका के आनंद की सीमा न थी। शायद हीरों से भी उसे इतना आनंद न होता।"[2]

'गोदान' की कथा का प्रारम्भ भी संकेत प्रणाली द्वारा ही हुआ है। शरतचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों के प्रारम्भ में 'पूर्वदीप्ति' व 'आत्मकथा' का प्रयोग हुआ है अतः समस्याएँ उनके उपन्यासों में प्रारम्भ से नहीं आ जाती। उनके उपन्यासों में पात्र की मनःस्थिति का वर्णन प्रारम्भ से ही प्रमुख होता है। प्रेमचन्द ने कथा-विकास में रोचकता व गढ़न लाने के लिए नाटकीय और कौतूहलपूर्ण घटनाओं का भी सहारा लिया है। उदाहरण के लिए- 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर व गायत्री के आलिंगनबद्ध होने पर सहसा विद्या का कमरे में प्रवेश नाटकीयता से कथा को गति देता है।"[3]

1- "प्रतिज्ञा" - प्रेमचन्द्र, ब्यां संस्करण 1953, पृष्ठ 4
2- "गबन" - प्रेमचन्द, ब्यां संस्करण 1946, पृष्ठ 2
3- देखें - 'प्रेमाश्रम' - प्रेमचन्द, पृष्ठ 345

'गबन' में रमानाथ का पता लगाने के लिए नायिका जालपा शतरंज के नक्शे का विज्ञापन देती है। जिसे रमानाथ कलकत्ते में देवीदीन के घर बैठा हल करने की सोचता है। विज्ञापन देने वाली घटना से कथा को आगे गति मिलती है।"[1] 'गोदान' में राय साहब के उत्सव में मि० मेहता का सहसा प्रवेश उपन्यास के गति की दिशा ही बदल देता है।"[2] कथा को समाप्त करने के लिए प्रेमचन्द कई पात्रों की मृत्यु, हत्या, आत्महत्या आदि का सहारा लेते हैं और कथानक को स्वेच्छापूर्ण मोड़ प्रदान करते हैं। 'निर्मला' में निर्मला की मृत्यु, 'रंगभूमि' के अन्त में सूरदास की मृत्यु, 'गोदान' में होरी के दुःखपूर्ण जीवन का अन्त, ये सभी पाठक की मनोदशा को अनुरंजित करते हुए दुःखान्त समापन की ओर जाते हैं।

कथावस्तु में मनोवैज्ञानिकता का समावेश प्रेमचन्द ने पात्रों के जीवन की उहापोहमयी स्थिति के अंकन द्वारा किया है जबकि इलाचन्द्र जोशी जी का प्रधान लक्ष्य 'कथावस्तु' नहीं है इसलिए मनोवैज्ञानिक आग्रह की अधिकता के कारण इलाचन्द्र जोशी जी के कथानकों में शैथिल्य सा आ गया है। प्रेमचन्द की कथावस्तु मानव-जीवन के बहिर्जगत् के साथ उसके अन्तर्जगत् का वर्णन करती है जबकि इलाचन्द जोशी जी की कथावस्तु अन्तर्जगत् के वर्णन के मध्य यदा-कदा प्रसंगवश बहिर्जगत् का चित्रण करती है। प्रेमचन्द की कथावस्तु का परिवेश अति-व्यापक है जबकि जोशी जी की कथावस्तु का परिवेश सीमित है। जोशी जी के कुछेक उपन्यास विषाद स्वल्प हैं जिनकी कथावस्तु का परिवेश विशाल है जैसे- 'जहाज का पंछी', 'जीवन की प्रेरणा'। प्रेमचन्द के उपन्यासों में कथा-

---

1 - देखें - 'गबन' - प्रेमचन्द ब्यां संस्करण, पृष्ठ 179
2 - देखें - 'गोदान' - प्रेमचन्द संस्करण, 1981, पृष्ठ 45

वस्तु में मनोविज्ञान ढूँढने के लिए हमें प्रयत्न करना पड़ता है परन्तु इलाचन्द्र जोशी जी की कथावस्तु में मनोविज्ञान ढूँढना नहीं पड़ता वरन् वह स्वतः ही स्फुटित होता चलता है। "कथानकों में आवश्यकतानुसार स्वाभाविकता लाने के लिए इच्छानुकूल मोड़ देना बाधाओं, अड़चनों और पेंचीदगियों की सृष्टि करना और उनका कौशलपूर्वक समाहार करते हुए कथानक को समगति से विकसित करना प्रेमचन्द की कलागत विशेषता है।"[1] इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में कथावस्तु में अतिशय नाटकीयता सी दील पड़ती है। सामान्य मानव को भी यदि कोई मानसिक आघात आकस्मिक रूप से लगता है तो वह तुरन्त असामान्य सा हो उठता है। यही बात हमें जोशी जी के कथानकों में दील पड़ती है जिसे 'नाटकीयता' का नाम देकर हम उनके कथानकों की गति पर 'मान्दता' व 'शैथिल्य' के दोष से आरोपित करने लगते हैं।

'पात्र-चयन' के सन्दर्भ में इलाचन्द्र जोशी जी और प्रेमचन्द्र में पूर्ण वैषम्य है। इलाचन्द्र जोशी जी के नायक नायिकायें साधारण वर्ग के प्राणी नहीं हैं। उन्हें पात्रों का जमघट नहीं पसंद है इसलिए थोड़े से ही पात्रों को लेकर उपन्यास का सृजन करते हैं। आज पात्रों के चरित्र-चित्रण में मनोविज्ञान का समावेश अनिवार्य सा हो गया है। मानव-मन की गहराईयों में उतरने के लिए जोशी जी ने दुर्बल और अस्वस्थ पात्रों का चयन किया है। इच्छा-शक्ति के अभावों से झूझते जोशी जी के मनोवैज्ञानिक पात्र मनोवैज्ञानिक उपचार के बाद स्वस्थता व सबलता प्राप्त करते हैं, जबकि प्रेमचन्द के प्रारंभिक उपन्यासों में पात्रों की बहुलता है। प्रेमचन्द के अनुसार, "उपन्यास जीवन की आलोचना है।"[2] उनके उपन्यासों के पात्र 'टाईप्ड पात्र' हैं।

1- "आधुनिक हिन्दी उपन्यास में वस्तुविन्यास"-डा० रोजनी त्रिपाठी संस्करण, मई 1973 पृष्ठ 113

2- देखें- "कथा विचार"- प्रेमचन्द : चतुर्थ संस्करण पृष्ठ 6

ये जनसाधारण के मध्य से चुने गये हैं। निम्न-वर्गीय व मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं और समस्याओं को दर्शाने के लिए प्रेमचन्द जी ने साधारण पात्रों की ही अवतारणा की, यद्यपि उन्होंने उनकी स्थिति दर्शाने के लिए कुछ उच्च-वर्गीय पात्रों का भी चयन किया है। "उनके उपन्यासों में गद्दीधारी महन्तों से लेकर वेश्याओं तक, दार्शनिकों से लेकर मनचलों और फाकामस्तों तक प्रायः सभी श्रेणियों के पात्र आ गये हैं।"[1] इलाचन्द्र जी के उपन्यासों के पात्र मुख्यतः अभिजात्यवर्गीय हैं। उच्च संभ्रान्त परिवारों के पुरुषों के ओढ़े हुए शिष्टाचरण का पर्दाफाश करने के लिए इलाचन्द्र जोशी जी ने प्रायः धनाढ्य नायकों का ही चयन किया है।

जोशी जी के उपन्यासों में केवल पात्रों के 'अन्तः-व्यक्तित्व' को ही वाणी मिली है जबकि प्रेमचन्द के उपन्यासों में पात्रों के समाजगत् जीवन अर्थात् 'बाह्य-व्यक्तित्व' को निखारा गया है। उनके पात्र अधिकतर बहिर्मुखी हैं। इस 'बहिर्मुखी व्यक्ति' के जीवन के अन्दर झांकने की प्रेमचन्द की दृष्टि मनोवैज्ञानिक रही है। प्रेमचन्द के उपन्यासों के पात्र 'वंशानुक्रम और वातावरण' की उपज हैं। वे भी हीनता व उच्चता ग्रंथि (इन्फीरियारिटी एण्ड सुपीरियारिटी कॉम्पलेक्स) से ग्रस्त हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में धीरे-धीरे कथावस्तु के मध्य 'व्यक्तित्व' ने अपना अस्तित्व बनाना प्रारम्भ किया। उनके "नायक समाज की नैतिक व्यवस्था में सुधार करने की योजना प्रस्तुत करते हुए भी समाज के नैतिक अनुशासन के समक्ष

1- "हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास"- डा० श्रीमती ओम शुक्ल संस्करण- जुलाई 1964, पृष्ठ 101

नत मस्तक होकर इसकी आज्ञा शिरोधार्य करने में सदैव तत्पर रहते हैं।"[1] जबकि इलाचन्द्र जोशी जी के नायक अत्यन्त व्यक्तिवादी धरातल पर जीने के कारण अतिशय अहंकेन्द्रित, अतिशय अन्तर्मुखी हैं।

पात्रों के चयन में प्रेमचन्द ने जहाँ "समाज-मनोविज्ञान" का आश्रय वहीं इलाचन्द्र जोशी जीने 'व्यक्तिवादी मनोविज्ञान' विशेषत: "मनोविश्लेषणावादी सम्प्रदाय" का आश्रय लिया है।

दोनों ही उपन्यासकार 'पात्र-परिचय' की परम्परागत प्रणाली का आश्रय लेते हैं। 'मुक्तिपथ', 'सन्यासी', 'जहाज का पंछी', 'दिवाली', 'सुबह के भूले', आदि उपन्यासों में नारी व पुरुष दोनों तरह के पात्रों का परिचय उनकी आकृति उनकी वेशभूषा के आधार पर दिया गया है। वस्तुत: पात्र-परिचय के क्षेत्र में इलाचन्द्र जोशी जी प्रेमचन्दी रंग में रंगे हुए हैं। प्रेमचन्द के अधिकांश उपन्यासों में पात्रों का आकृति-वर्णन ही उनका परिचय देता है। उदाहरणार्थ 'निर्मला' के लाला तोताराम को ही ले लें - "वकील साहब का नाम था- मुंशी तोताराम। सांवले रंग के मोटे-ताजे आदमी थे। उम्र तो अभी चालीस से अधिक न थी, पर वकालत के कठिन परिश्रम ने सिर के बाल पका दिये थे।"[2] पात्र की स्थिति का परिचय देकर भी उपन्यासकार उसके व्यक्तित्व का परिचय देता है।

पात्रों का 'चरित्र-चित्रण' मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के उपन्यासों का प्राणतत्व है। प्रेमचन्द ने भी यह स्वीकार किया है - "उपन्यास चरित्रों

1- "हिन्दी उपन्यास का विकास और मौलिकता" - डा० सुखदेव गुप्त संस्करण- सितम्बर 1966, पृष्ठ 274

2- "निर्मला" - प्रेमचन्द : 9वां संस्करण - 1952, पृष्ठ 3-4

के विकास का ही विषय है, उसमें विकास दोष है तो उपन्यास कमजोर हो जायेगा।"[1] प्रेमचन्द ने अपने पात्रों के व्यक्तित्व के उद्घाटन के लिए मुख्यतः तीन प्रत्यक्ष विधियों को अपनाया है : 'स्वभाव', 'मनोदशा', और परस्पर विरोधी पात्रों का चित्रण'। 'प्रतिज्ञा', 'सेवासदन', 'कायाकल्प', 'गोदान' सभी उपन्यासों में स्वभाव के विश्लेषण द्वारा पात्रों का चरित्र उद्घाटित हुआ है। 'गोदान' के होरी को देखिये :- "होरी गँवार था। लाल पगड़ी देखकर उसके प्राण निकल जाते थे, लेकिन मस्त सांड पर लाठी लेकर पिल पड़ता था। वह कायर न था, मरना और मारना दोनों ही जानता था।"[2]

इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में चरित्र उद्घाटन की यह प्रवृत्ति बिलकुल नहीं दिखती है। हां, 'मनोदशा' के चित्रण में दोनों उपन्यासकारों ने महान सफलता अर्जित की। पात्रों के मन की स्थितियों के चित्रण में प्रेमचन्द और इलाचन्द्र जोशी जी में पर्याप्त साम्य है। 'निर्मला' में अधेड़ उम्र के मुंशी तोताराम से जबरदस्ती ब्याही गयी निर्मला के मानसिक सन्ताप एवं अतृप्ति का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण देखिये:- 'बांका सवार बूंदे लद्दू खच्चर पर सवार होना कब पसन्द करेगा, चाहे पैदल ही क्यों न चलना पड़े। निर्मला की दशा उसी बांके सवार की थी। वह उस पर सवार होकर उड़ना चाहती थी, उस उल्लासमयी विद्युतगति का आनन्द उठाना चाहती थी, लद्दू के हिनहिनाने और कनौतियाँ खड़ी करने से क्या आशा होती।"[3]

1- "कुछ विचार" - प्रेमचन्द चतुर्थ संस्करण पृष्ठ 68
2- "गोदान" - प्रेमचन्द संस्करण 1981, पृष्ठ 63
3- "निर्मला" - प्रेमचन्द 9वाँ संस्करण 1952, पृष्ठ 42

पात्रों के अन्तर्मन के चित्रण का सर्वप्रथम कार्य उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द द्वारा ही सम्पन्न हुआ। पात्रों के मन में ऐसी अनेक ग्रंथियों का जमाव होता है जिनको खोले बिना हम उनके यथार्थ स्वरूप से वंचित रहते हैं। ग्रंथियाँ, जो पात्र स्वयं जानता है, पर सामाजिकता के टूटने के भय से या अभीतकता के भय से उनका उल्लेख नहीं कर पाता। "अपने पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए प्रेमचन्द भी विभिन्न मनोस्थितियों में अपने पात्रों में उठ रही विचारों की तरंगों, उनकी परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों द्वारा उत्पन्न अन्तःसंघर्ष, उनकी गुप्त इच्छाओं तथा महत्वाकांक्षाओं, उनके भावजगत के सुख-स्वप्नों आदि का चित्रण करते हुए या अन्य पात्रों से करवाते हुए उनके हृदय में बैठते जाते हैं।"[1]

इलाचन्द्र जोशी जी की भाँति प्रेमचंद सर्वत्र मनोजगत् के विश्लेषण में नहीं रमते हैं। ऐसा करने से उनके उद्देश्य प्राप्ति में बाधा आती है। प्रेमचन्द का उद्देश्य मनोविज्ञान के सिद्धान्तों की व्याख्या करना नहीं था, फिर भी पात्रों की असंगत सी प्रतीत होने वाली स्थिति का पता लगाने उनके अव्यक्त प्रेरकों (सैटेन्ट मोटिव्स) को ढूँढने का प्रयत्न उसी तरह करते हैं जिस तरह इलाचन्द्र जोशी जी पात्रों के असामान्य व्यवहार की प्रेरणा का पता लगाने को सदा तत्पर रहते हैं। जिस प्रकार इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यास 'पर्दे की रानी' में निरंजना के अंदर इन्द्रमोहन का पिता मनमोहन मोहित होकर उसे अपने वश में करना चाहता है, परन्तु निरंजना पूर्व संस्कार वश उसे प्रेम नहीं कर पाती और पितृवत् स्नेह की अभिलाषा में उसके हम-उम्र पुत्र इन्द्रमोहन

1- "हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास" - डा० रणवीर रांग्रा, प्रथम संस्करण 1961, पृष्ठ 184

को अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है, कुछ उसी प्रकार 'निर्मला' उपन्यास की नायिका निर्मला मुंशी तोताराम जैसे अधेड़ पति को पाकर 'मानसिक-नपुंसकता' की स्थिति में अपने सौत के पुत्र मंसाराम से अनचाहे ही प्रेम करने लगती है। 'नारी-मनोविज्ञान' के चित्रण में जोशी व प्रेमचन्द - एक जैसे स्थान के दावेदार हैं। 'विपरीत-लिंग' के हम-उम्र प्रेम के चित्रण में प्रेमचन्द में 'निर्मला' में महान सफलता अर्जित की। 'निर्मला' के दाम्पत्य-जीवन की असफलता के कारण खोजने के लिए वे उसके अन्तःकरण में विश्लेषणात्मक दृष्टि लेकर उतरे।"[1] 'सेवासदन' की सुमन के दाम्पत्य की असफलता का पता लगाने के लिए प्रेमचन्द ने उसके अवचेतन मन में झांका है। 'पितृ-ग्रंथि'(इलेक्ट्रा-काम्पलेक्स) द्वारा परिचालित सुमन अपने पति गजाधर में भी वही छवि देखना चाहती है जो अपने पिता में देखती थी। "सुमन का अवचेतन मन अपनी तृप्ति के लिए गजाधर में वही गुण ढूँढने लगा जिसके कारण उसका पिता उसे अपनी ओर आकृष्ट किए हुआ था।"[2] सुमन के चरित्र में 'ग्रंथि' पड़ने का वही कारण था। इसी ग्रंथि के विद्रोह स्वरूप वह वेश्या-जीवन अपनाने को बाध्य होती है।

प्रेमचन्द और इलाचन्द्र जोशी की दोनों के ही उपन्यासों में 'यौन-समस्या' पात्रों की जटिलताओं, उनकी समस्याओं की जननी बनकर प्रकट हुई है। प्रेमचन्द ने 'किशोरावस्था' के प्रेम के भी चित्र खींचे हैं जबकि जोशी जी के उपन्यासों के युवक व युवती पात्र इस समस्या से ग्रसित नहीं है। प्रेमचन्द ने इस समस्या के चित्रण में 'किशोर-मनोविज्ञान' का आश्रय लिया है।

1- देखें - "निर्मला" - प्रेमचन्द 9वाँ संस्करण 1952 पृष्ठ 128
2- "सेवासदन" - प्रेमचन्द पृष्ठ 21

पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण में जो सफलता इलाचन्द्र जोशी जी ने अर्जित की वह प्रेमचन्द को नहीं मिली। सूक्ष्म मनोविज्ञान के दृष्टिकोण के अभाव के कारण प्रेमचन्द उतने तीव्र अंतर्द्वन्द्व को चित्रित नहीं कर सके जितनी कि उनके पात्रों में परिस्थितियों के अनुसार आवश्यकता थी। अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति आते ही प्रेमचन्द "निर्लेप लेखक के से मुख" को लेकर आगे बढ़ जाते हैं।

जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी जी को 'आत्म-विश्लेषण' की प्रणाली प्यारी है, उसी प्रकार प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासों में आत्मविश्लेषण प्रणाली का प्रयोग हुआ है। 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर 'संन्यासी' के नायक नन्दकिशोर की तरह ही आत्मविश्लेषण करता हुआ कहता है - "निस्वार्थ सेवा करना मेरा कर्तव्य है। प्रयोगशाला स्थापित करके मैं कुछ स्वार्थ भी सिद्ध करना चाहता था। कुछ लाभ होता, कुछ नाम होता। परमात्मा ने उसी का दण्ड मुझे दिया है।"[1] 'कायाकल्प' का नायक चक्रधर भी जेल की कोठरी में बन्द होकर 'आत्मविश्लेषण' करता है।

मनोविज्ञान-परक उपन्यासों में पात्रों के अन्तर्मन के रहस्योद्घाटन के लिए कुछ नवीनतम मनोवैज्ञानिक विधियाँ अपनायी गयीं जैसे- 'स्वप्न-पद्धति' 'पत्र-प्रणाली', 'गीत-पद्धति' व 'फैंटेसी' आदि। इलाचन्द्र जोशी जी के पूर्व प्रेमचन्द्र ने भी इन प्रणालियों का यत्र-तत्र प्रयोग किया। "फैंटेसी" या "मिथ्याभास" का सफल प्रयोग 'सेवासदन' व 'प्रेमाश्रम' में देखने को मिलता है। पात्रों के चारित्रिक विश्लेषण के सन्दर्भ में 'रंगभूमि' के अंतिम पृष्ठों में 'सूरदास' के मनोन्मुक्त जीवन की झाँकी "फैंटेसी" द्वारा प्रस्तुत की गयी है। जैसे -

---

1- "प्रेमाश्रम" - प्रेमचन्द पृष्ठ 132

"बस-बस, अब मुझे क्यों मारते हो? तुम जीते मैं हारा। यह बाजी तुम्हारे हाथ रही, मुझसे खेलते नहीं बना * * * * * * * * * तुम खेलने में निपुण हो हम अनाड़ी हैं * * * * * * हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोये तो नहीं, धांधली तो नहीं की।"[1]

इलाचन्द्र जोशी जी ने पात्रों के विश्लेषण में 'स्वप्न-पद्धति' का आश्रय लिया है। "विप्लवी" 'प्रेत और छाया', 'सन्यासी' इन सभी प्रमुख उपन्यासों में स्वप्नों के विश्लेषण द्वारा भावी घटनाओं की सूचना मिलती है। 'प्रेमाश्रम' में मनोहर के 'स्वप्न' द्वारा उसकी 'आत्मग्लानि' पर प्रकाश डाला गया है। 'गबन' में रमानाथ का 'स्वप्न' जालपा की तेजस्विता का परिचय देता है।

अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की भाँति प्रेमचन्द ने भी पात्रों के चरित्र की प्रवृत्तियों का विश्लेषण 'पत्र-प्रणाली' द्वारा किया है। इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में पत्रों द्वारा पात्रों के चरित्र का विश्लेषण नगण्य रूप में ही हुआ है। 'मुक्तिपथ' में विमल के मरणोपरान्त मिला गया एक पत्र मिलता है जो उसकी मनःस्थिति के प्रस्फुटन में सहायक है। 'लज्जा' में राजू की डायरी द्वारा उसकी मनःस्थिति प्रकट होती है। प्रेमचन्द ने 'सेवासदन', 'रंगभूमि' व 'कर्मभूमि' में इस प्रणाली के सहारे पात्रों के जीवन का चित्रण किया है।

पात्रों के व्यक्तित्व के उद्घाटन के लिए 'गीत-शैली' का प्रयोग मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की विशिष्ट उपलब्धि है। प्रेमचन्द और इलाचन्द्र जोशी दोनों ने ही 'गीत-प्रणाली' द्वारा पात्रों के व्यक्तित्व का उद्घाटन किया है। 'प्रेमाश्रम' में "ज्ञानशंकर" द्वारा गाया गीत उसकी वासनामय प्रवृत्ति का चित्रण

1- "रंगभूमि"- प्रेमचन्द पृष्ठ 93।

करता है:-

"मैं तो हरत विरह की पीर ।

प्रेमदाह को शीतल करता मेरे अश्रु को नीर ।।"[1]

मनोरमा के गीत द्वारा उसके मनोभावों को वाणी मिली है :-

"करूँ क्या, प्रेमसमुद्र अपार -- ।"[2]

पात्रों की चारित्रिक स्थिति के विश्लेषण में प्रेमचन्द और जोशी जी दोनों ही ने पुरातन पद्धति व नवीन मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का आश्रय लिया है । जोशी जी में मनोवैज्ञानिक आग्रह व केवल व्यक्ति-चित्रण के कारण मनोविज्ञान की अन्य नवीन प्रणालियों का भी प्रयोग हुआ है । प्रेमचन्द के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चरित्र-विश्लेषण पद्धतियाँ बलात् नहीं प्रविष्ट हुई है ।

'संवाद-सौष्ठव की दृष्टि से दोनों उपन्यासकारों की तुलना करने पर प्रेमचन्द के संवाद अधिक जीवन्त जान पड़ते हैं जबकि इलाचन्द्र जोशी जी के संवादों में अतिशय दार्शनिकता का पुट आ गया है । जोशी जी के संवाद मनोवैज्ञानिक आग्रह के कारण 'स्वगत-भाषण' के रूप में अधिक दिखते हैं। विवेचना व विश्लेषण का प्राधान्य होने के कारण जोशी जी के संवाद प्रेमचन्द के छोटे-छोटे मार्मिक प्रसंगपूर्ण संवादों से भिन्न कोटि के है ।

प्रेमचन्द और इलाचन्द्र जोशी जी की भाषा शैली में बहुत समानता मिलती है । चित्रोपमता, काव्यमयता, सूक्ति प्रधान व मुहावरेदार शैली का दोनों ने मुक्तकर प्रयोग किया है । मन के उतार-चढ़ाव दर्शाने वाले स्थलों पर

1- "प्रेमाश्रम" - प्रेमचन्द पृष्ठ 336
2- "संन्यासी" - प्रेमचन्द पृष्ठ 206

भाषा में विश्लेषणात्मकता आ गयी है। 'सूरदास', 'रमानाथ', जालपा जैसे असामान्य पात्रों की मानसिक ऊहापोह में प्रेमचन्द की भाषा भावुकतामय काव्यात्मकता से सिक्त हो गयी है।

देशकाल और वातावरण की दृष्टि से प्रेमचन्द और इलाचन्द्र जोशी जी में पर्याप्त साम्य है। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की भाँति प्रेमचन्द ने कथ्य से हटकर वातावरण की सृष्टि नहीं की है। उनके उपन्यासों में उपस्थित सामाजिक वातावरण यद्यपि जोशी जी से उसका वैषम्य दिखलाता है लेकिन इस सामाजिक वातावरण में भी उन्होंने मनोनुकूल वातावरण ही अधिक सृजित किया है। जोशी जी पात्रों की मनःस्थिति के अनुसार ही वातावरण का सृजन करते हैं। 'ऋतुचक्र' में दादा मिलन कुमार और 'प्रीतमा' के अधेड़वस्था के रोमांस चित्रण में उन्होंने तदनुकूल प्राकृतिक वातावरण (पहाड़ी क्षेत्रों का) की सृष्टि की है। 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया' तथा 'त्याग का भोग' में भी प्राकृतिक वातावरण केवल पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप ही सृजित हुआ है। प्रेमचन्द भी ऐसे मानसिक स्थिति के उद्घाटक प्राकृतिक वातावरण को लाने में सिद्धहस्त हैं। 'प्रतिज्ञा' की सान्ध्य छटाओं में 'प्रेमा' की मनःस्थिति का तदात्मीकरण देखिए :-

"सन्ध्या हो गयी थी। आकाश में एक-एक करके तारे निकलते आते थे। प्रेमा के हृदय में भी उसी प्रकार एक-एक करके स्मृतियाँ जाग्रत होने लगीं। देखते-देखते सारा गगन-मंडल तारों से जगमगा उठा। प्रेमा का हृदयाकाश भी स्मृतियों से आच्छन्न हो गया, पर इन असंख्य तारों से आकाश का अन्धकार क्या और भी गहन नहीं हो गया था।"[1] 'गहन' में भी जालपा की

1- "प्रतिज्ञा" - प्रेमचन्द 8वाँ संस्करण 1958 ई० पृष्ठ 46

मनोदशा को आकाश में दौड़ते मेघ खण्डों के साथ विचित्र किया गया है। 'रंगभूमि' में विनय की मनोदशा का चित्रण विरोधितापूर्ण वातावरण में किया गया है। देखिए :-

"पावस ने उस जन-शून्य कठोर, निष्प्रभ, पाषाणमय स्थान को प्रेम प्रमोद और शोभा से मण्डित कर दिया है, मानों कोई उजड़ा हुआ घर आबाद हो गया हो किन्तु विनय की दृष्टि इस प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर नहीं। वह चिन्ता की उस दशा में है, जब आँखें खुली रहती हैं और कुछ नहीं सूझता, कान खुले रहते हैं और कुछ सुनाई नहीं देता।"[1]

पात्रों के व्यक्तित्व के उद्घाटन के लिए जोशी जी की तरह प्रेमचन्द ने भी मानसिक वातावरण की सृष्टि की है। मानसिक अवसादों को दर्शाने में उनका चातुर्य दर्शनीय है। गोदान में होरी की मृत्यु से पूर्व का मानसिक वातावरण देखिए:-

"आज दस बजे से ही लू चलने लगी और दोपहर होते-होते तो आग बरस रही थी x x x x x x x x दोपहर की छुट्टी हुई तो वह बेदम हो गया था। ऐसी थकन उसे कभी न हुई थी। उसके पाँव तक न उठते थे। देह भीतर से झुलसी जा रही थी। उसने न स्थान ही किया और न चबेना। उसी थकन में अपना अंगोछा बिछाकर एक पेड़ के नीचे खो रहा, मगर प्यास के मारे कण्ठ सूखा जाता था।"[2]

अग्रिम घटनाओं की सूचना देने के लिए मानसिक वातावरण का सृजन वस्तुतः प्रेमचन्द युग में एक नवीन मोड़ का परिचायक था जिसको इलाचन्द्रजोशी,

---

1- "रंगभूमि" - प्रेमचन्द पृष्ठ 186
2- "गोदान" - प्रेमचन्द संस्करण 1981 पृष्ठ 299

अज्ञेय, जैनेन्द्र जैसे मनोवैज्ञानिकों ने अधिकाधिक पुष्ट किया। उपन्यासों में 'पात्रों' की अवतारणा पर बल देने के कारण प्रेमचन्द मनोविज्ञान के अधिकाधिक निकट आते गये हैं। इसीलिए उनके उपन्यासों में वातावरण तत्व को भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान मिला जितना जोशी जी के व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने मानव-मन का उतना अगाध मनोवैज्ञानिक अध्ययन तो नहीं किया जितना जोशी जी ने अपनी प्रखर प्रतिभा और अनुभव बल द्वारा किया है, परन्तु चरित्र-सृष्टि और वातावरण-सृजन में वे जोशी जी की तरह ही सफल हुए हैं। "कुशल जराह के समान प्रेमचन्द ने तत्कालीन भारतीय समाज की निर्मम चीरफाड़ करके पहले स्वस्थ और अस्वस्थ प्रवृत्तियों को अलग किया और फिर अपनी समस्त शक्ति उन अन्ध विश्वासों और कुरीतियों के उन्मूलन में लगा दी जो उनके जीवन के स्वस्थ विकास में बाधक बनी हुई थी।"[1]

मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली के बीज-वपन का प्रारंभिक कार्य प्रेमचन्द ने ही किया। 'गबन' में मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं और परिस्थितिजन्य प्रतिक्रियाओं का उतना ही सफल मनोविश्लेषण हुआ है जितना जोशी जी की 'लज्जा' में। 'गोदान' में तो सर्वत्र ही मानव-मन का सूक्ष्म विश्लेषण मिलता है। "धन्य-धैधन्य' परिस्थितियों में विविध मनःस्थितियों की प्रतिक्रियात्मक संभावनाएँ सफलतापूर्वक इस उपन्यास में चित्रित की जा सकी हैं।"[2] डा०तिवारी

1- "हिन्दी वाङ्मय"- 20वीं सदी - डा०नगेन्द्र, प्रथम संस्करण 1972 पृष्ठ-187

2-"हिन्दी उपन्यास:सृजन और प्रक्रिया"-डा०शिवबहादुर सिंह भदौरिया, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ- 137

अज्ञेय, जैनेन्द्र जैसे मनोवैज्ञानिकों ने अधिकाधिक पुष्ट किया। उपन्यासों में 'पात्रों' की अवतारणा पर बल देने के कारण प्रेमचन्द मनोविज्ञान के अधिकाधिक निकट आते गये हैं। इसीलिए उनके उपन्यासों में वातावरण तत्व को भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान मिला जितना जोशी जी के व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने मानव-मन का उतना अगाध मनोवैज्ञानिक अध्ययन तो नहीं किया जितना जोशी जी ने अपनी प्रखर प्रतिभा और अनुभव बल द्वारा किया है, परन्तु चरित्र-सृष्टि और वातावरण-सृजन में वे जोशी जी की तरह ही सफल हुए हैं। "कुशल चितेरे के समान प्रेमचन्द ने तत्कालीन भारतीय समाज की मर्म चीरफाड़ करके पहले स्वस्थ और अस्वस्थ प्रवृत्तियों को अलग किया और फिर अपनी समस्त शक्ति उन अन्ध विश्वासों और कुरीतियों के उन्मूलन में लगा दी जो उनके जीवन के स्वस्थ विकास में बाधक बनी हुई थी।"[1]

मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली के बीज-वपन का प्रारंभिक कार्य प्रेमचन्द ने ही किया। 'गबन' में मानव-स्वभाव की दुर्बलताओं और परिस्थितिजन्य प्रतिक्रियाओं का उतना ही सफल मनोविश्लेषण हुआ है जितना जोशी जी की 'लज्जा' में। 'गोदान' में तो सर्वत्र ही मानव-मन का सूक्ष्म विश्लेषण मिलता है। "भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में विभिन्न मनःस्थितियों की प्रतिक्रियात्मक संभावनाएँ सफलतापूर्वक इस उपन्यास में चित्रित की जा सकी हैं।"[2] डा०प्यारी

1- "हिन्दी वाङ्मय"- 20वीं शती - डा०नगेन्द्र, प्रथम संस्करण 1972 पृष्ठ-187

2-"हिन्दी उपन्यास:सृजन और प्रक्रिया"-डा०शिवबहादुर सिंह भदौरिया, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ- 137

जबकि जोशी जी का मूड सर्वत्र रोमांटिक उच्छृंखलता का दृष्टिगत होता है। उनका लक्ष्य पाठक को आश्चर्य चकित और उत्तेजित करने का है। उद्वेग और आवेश प्रधान मूड होने के कारण जोशी जी के उपन्यासों में वह गांभीर्य नहीं है जो अज्ञेय जी के उपन्यासों में है।

इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय कुमार दोनों ही उत्कृष्ट कोटि के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रणेता हैं। 'कुंठाग्रस्त', समस्याग्रस्त पात्रों के जीवन के कुछेक या एक ही हिस्से को लेकर दोनों उपन्यासकारों ने उपन्यास-सृजन किया है परन्तु 'उद्देश्य पक्ष' दोनों का ही अलग-अलग है। "जहाँ अज्ञेय कुमार ने व्यक्ति के अहं को जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया है और अहमन्यता को समाज के कल्याण के लिए विनाशकारी माना है, वहाँ इलाचन्द्र जोशी जी ने झूठे अहंग्रस्त का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व संयोजन करने का प्रयास किया है।"[1] दोनों ही उपन्यासकारों का लक्ष्य 'अहंग्रस्त व कुंठाग्रस्त' मानव का चित्रण है। दोनों ही उपन्यासकारों ने व्यक्ति की मानसिक हलचलों, दमित-तप्त हृदय आंतरिक पुकारों तथा उसके मन के प्रच्छन्न भावों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। इसलिए दोनों ही उपन्यासकारों के उपन्यासों में 'कथा-तत्व' गौण हो गया है। यह गौणत्व अज्ञेय के उपन्यासों में अधिक है। अज्ञेय कुमार पाठकों को कहानी में उलझाकर नहीं रखते हैं "कहानी के माध्यम से मानव-मात्र की पेचीदगियों और गहराईयों में जो उतारना चाहते हैं और मानव की मूल प्रवृत्तियों का परिष्कार करना चाहते हैं।"[2] कहानी कहना उनका मुख्य लक्ष्य नहीं है।"[3] इसलिए 'कथावस्तु' में प्रवाहहीनता, एकसूत्रता

1- "हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास"-डा० श्रीमती ओम शुक्ल
संस्करण - जुलाई 1964, पृष्ठ 292

2- "हिन्दी उपन्यास का विकास और मौलिकता"- डा० सुखदेव शुक्ला
संस्करण- सितम्बर 1966 पृष्ठ 138

3- देखें "सुनीता" - अज्ञेय (भूमिका)

के दायित्व से वे मुक्त होकर चले हैं जबकि जोशी जी के उपन्यासों में यद्यपि सर्वत्र एक-सूत्रता का अभाव है पर क्रमबद्धता जैनेन्द्र से अच्छी है। 'परख' उपन्यास की भूमिका में वे लिखते हैं - "मैंने जगह-जगह कहानी के तार की कड़ियां तोड़ दी हैं। वहाँ पाठक को थोड़ा कूदना पड़ता है और मैं समझता हूँ, पाठक के लिए यह थोड़ा अवांछनीय है - अच्छा ही लगता है।"[1] जोशी जी की भाँति जैनेन्द्र भी हर उपन्यास के मूल में एक ही चरित्र या एक ही द्वन्द्व या एक ही मनोविकार को लेकर चलते हैं। उदाहरणार्थ - 'परख' में सत्यधन की आदर्श से लिपटी वृत्ति के नीचे से जो 'स्वार्थपरता' दिखलाई पड़ती है। उसी का उद्घाटन 'परख' में हुआ है। 'सुनीता' में हरिप्रसन्न की कामभावना पूर्ण 'मनोग्रंथि' ही कथा का मूल आधार बनती है। 'कल्याणी' में आधुनिक समाज की उच्च शिक्षा प्राप्त आधुनिका 'कल्याणी' के 'मानसिक अन्तर्द्वन्द्व' को प्रमुखता दी गयी है।

जोशी जी के उपन्यासों में कथानकों की विशेषता यह है कि उनके पात्रों में कुछ नाटकीय ढंग से पड़ती ही दिखाई देती है और एक विस्तृत घटनाचक्र भी उसके पीछे रहता है जबकि जैनेन्द्र के कथानकों में 'घटनाचक्र' तो नाम मात्र को भी नहीं दिखते। उपन्यास के लिए उन्होंने विस्तृत कैन्वास के स्थान पर छोटे कैन्वास के काम बताया है। मानव-मन के गहन तल में प्रवेश करने पर जो जो पेचीदगियाँ या चरित्रता उनके हाथों में आयी है उन्हीं के जीवन चित्र उनके कथानकों में अंकित है। जोशी जी के उपन्यासों में कथानक विश्लेषण के साथ-साथ संश्लेषण का भी भाव लिए हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में 'स्पर्धा' और 'समर्पण' ये दो वृत्तियाँ ही आन्तरिक संघर्ष के आधार है।"[2]

1- देखें - "परख" - जैनेन्द्र (भूमिका) पृष्ठ 5
2- देखें - "हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण" - महेन्द्र चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण 1962, पृष्ठ 117, 118

जैनेन्द्र कुमार के कथानकों में दार्शनिक -चिंतन की प्रधानता के कारण कथानक अत्यन्त रहस्यमय और दुरूह हो गये हैं। वे अपनी इस रहस्यात्मकता का उद्घाटन 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' में करते हुए लिखते हैं - "रहस्य तो जीवन का मर्म ही है। वह बंधे तो कैसे ? प्रयत्न करने से वह और रहस्यात्मक हो जाता है।"[1] कह सकते हैं कि जैनेन्द्र के कथानक भावात्मक दर्शन से परिचालित हैं - जबकि जोशी जी में अर्द्धचेतक मनोविश्लेषण ही प्रमुख है। उनके सभी उपन्यास चरित्र प्रधान हैं। जैनेन्द्र के कथानकों में मूलकथा के अतिरिक्त प्रासंगिक कथाओं का अभाव है जबकि जोशी जी के कथानकों में अवान्तर प्रसंग आते रहे हैं। उपन्यासों में कथासूत्र टूटने पर जैनेन्द्र का पाठक अपनी बुद्धि से उन्हें जोड़ता है जबकि इलाचन्द्र जोशी का पाठक इस स्थिति तक नहीं आ पाता। जैनेन्द्र कुमार के कथानकों की गति तीव्र नहीं जैनेन्द्र के उपन्यासों में विचारों और तर्कों से बोझिल हो जाने से 'कथावस्तु' लंगड़ाने लगती है। 'डा०देवराज उपाध्याय' के शब्दों में - "जैनेन्द्र में कथावस्तु नहीं के बराबर है। जितनी है भी, वह बहुत ही अड़-खाबड़ है, उसमें सहज-सुथरा प्रवाह नहीं है। वह चलती है तो पर लंगड़ाती हुई, उसमें कोई क्रमिक विकास नहीं है। आपने मेढकी को देखा होगा- - - - - - - - - - - - वह रहती है, रहती है वह कूदकर एक छलाँग में दूसरी जगह चली जाती है। उसी तरह जैनेन्द्र की कथा देखने में स्थिर है, पर दूसरी छलांग में कूदकर दूसरे सिरे पर - - - - ।"[2]

जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास की कथा के विकास में कहीं भी एक भी बड़ी घटना के दर्शन नहीं होते। कथा तो उनके लिए एक साधन मात्र है - साध्य है-

---

1-"साहित्य का श्रेय और प्रेय"-जैनेन्द्र, संस्करण 1953, पृष्ठ 400
2-"जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन"- डा० देवराज उपाध्याय संस्करण 1972, पृष्ठ 35

'मूल प्रवृत्तियों का उद्घाटन'। कथावस्तु की खींचतान के मध्य जीवन-सूत्रों की व्याख्या होती चलती है। तीव्र मनोवैज्ञानिकता के आग्रह में केवल जीवन-सूत्र ही उद्घाटित हुए हैं। कथानकों की संक्षिप्तता जैनेन्द्र जी को जोशी जी से अलग करती है। जैनेन्द्र के कथानकों में 'संकेतात्मकता' का इतना प्राबल्य है कि यह विशेषता उनकी 'मौलिकता' बन गयी है। घटना कथानक के विकास में उन्होंने घटना को न दर्शाकर घटना के 'संकेत-मात्र' से ही सर्वत्र काम चलाया है। 'सुनीता', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'परख','त्याग-पत्र' सभी में मात्र घटनाओं का संकेत है। उदाहरणार्थ- 'सुखदा' में और लाल और सुखदा के पारस्परिक आकर्षण की घटना मात्र एक संकेत से पता चलती है :-"किनारों के बीच से बंधी जिन्दगी का प्रवाह किनारों के साथ थोड़ा-थोड़ा रगड़ लेता हुआ, और कभी मानों क्रीड़ावश उन किनारों के बाहर भी झांक लेता हुआ, चला जा रहा था, कि इतने में बाहर का एक झोंका मुझे छू गया और वह ऐसा आया कि मुझे अवकाश भी नहीं मिला और मैं उसकी हो गयी।"[1]

इसी प्रकार 'त्याग-पत्र' में जैनेन्द्र जी ने मृणाल की पति से अनबन और उससे अलगाव होने की घटना को केवल इस संकेत से सूचित किया है- "तेरी मां ने मुझे धक्का देकर पराया बना दिया है पर मुझे जहाँ भेज दिया गया है प्रमोद, मेरा मन वहाँ का नहीं है। तू एक काम करेगा - - - - - - -।"[2]

जैनेन्द्र के कथानकों की संक्षिप्तता से पाठक को रोचकता में कोई कमी नहीं महसूस होती क्योंकि उनके कथानकों में इलाचन्द्र जोशी जी जैसी अनावश्यक भाषण-बाजी नहीं है। पाठकों के औत्सुक्य का जैनेन्द्र को निरन्तर ध्यान

1- "सुखदा" - जैनेन्द्र - संस्करण 1982, पृष्ठ 12
2- "त्याग-पत्र" जैनेन्द्र - संस्करण 1983, पृष्ठ 17

रहता है। प्रारम्भ से अंत तक रहस्यमयता का आवरण पाठक की जिज्ञासु वृत्ति को तीव्र करता है। वे स्वयं लिखते हैं - "पाठक ज्यों-ज्यों बढ़े आगे का सब कुछ उसे आकस्मिक सा ही जान पड़ना चाहिए। साहित्य-रचना के लिए यह गुण अनिवार्य है।"[1]

'सस्पेन्स' द्वारा पाठक के औत्सुक्य को जाग्रत करने के लिए जैनेन्द्र समय-समय पर कथा में रहस्यवाद का सहारा लेते हैं। 'सुखदा' में सुखदा और लाल दोनों द्वारा हरीश की खोज करने का सूत्र देना ही 'सस्पेन्स-प्रधान' विवरण है - "

"चलते-चलते मील भर हम निकल आये होंगे। मैं कुछ समझ न पा रही थी ---------- वह धीमे-धीमे अँधियारी बढ़ती जा रही थी। घाट पीछे छूट गया था अब वह दीखता भी न था। बना और पक्का जो था सब पीछे रह गया था, आगे उजाड़ और बियाबान आता जा रहा था। मैंने कहा- 'लाल' लाल ने सिर्फ कहा, रुको नहीं चलो।"[2]

इलाचन्द्र जोशी जी में 'सस्पेन्स' जैसा कोई वातावरण नहीं है। हाँ आकस्मिक घटनाएं पाठक के औत्सुक्य का वर्धन करती हैं। 'सन्यासी' में नन्द-किशोर के शान्त जीवन में रुक्मिणी जयन्ती का प्रवेश, पुनः शान्ति का उसके जीवन में आकस्मिक आगमन आकस्मिकता की सृष्टि करके कथा को गति देता है। इसी प्रकार अन्य उपन्यासों में भी नाटकीय और आकस्मिक घटनाओं से कथा का विकास होता है।

1- "साहित्य का श्रेय और प्रेय" - जैनेन्द्र, संस्करण 1953, पृष्ठ 39
2- "सुखदा" - जैनेन्द्र, संस्करण 1982, पृष्ठ 164

जैनेन्द्र के कथानकों का उपसंहार पाठकों के लिए प्रश्न पैदा करता है। जोशी जी के उपन्यासों का अन्त अधिकांशतः उदात्तीकृत और आशामय व्यौरित द्वारा होता है। उनके उपन्यासों में पैदा होने वाला अवसाद भी पात्रों का शोधन (सब्लीमेशन) करता चलता है। संश्लेषणात्मक वृत्ति का कारण उनके उपन्यासों का अन्त आदर्शवादी हुआ है जबकि जैनेन्द्र जी के उपन्यासों का लक्ष्य केवल मानव के जीवन-सूत्रों की व्याख्या के कारण उनके उपन्यासों का उपसंहार दुःखान्त और प्रश्नान्त हुआ है।

'त्याग-पत्र' का अन्त पश्चात्ताप पूर्ण है। अपनी बुआ 'मृणाल' की मृत्यु का समाचार पाकर जब प्रमोद को इतना पश्चाताप होता है कि वह 'जज' पद से इस्तीफा दे देता है अर्थात् 'अवसादपूर्ण समापन' उनके इस उपन्यास की विशेषता है।

'कल्याणी' की नायिका कल्याणी अपनी अन्तर्विरोधों को झेलती हुई अन्ततोगत्वा अपने प्राण त्याग देती है। 'कल्याणी' का भी अन्त अवसादमय है - 'कल्याणी अब नहीं रही। वह मैं ही क्यों जानूं कि वह कैसे मरी? मौत में जानने को है भी क्या। मुझे खबर दोपहर बाद मिली। ----अचानक? ---------- शायद --- चलो खेल समाप्त हुआ। क्रीधर ने बताया कि अभी दोपहर तो लोग अन्त्येष्टि से लौटे हैं। मुझे सूचना मिली, तब सब निपट चुका था।"[1] 'सुनीता' और 'व्यतीत' के अन्त विषादमय है परन्तु अन्य उपन्यासों के कथानक प्रश्नान्त है। कथानकों का मनोवैज्ञानिक अन्त तो जैनेन्द्र के ही उपन्यासों में अधिक है जबकि इलाचन्द्र जोशी के कथानकों में

1- "कल्याणी" - जैनेन्द्र, तृतीय संस्करण 1953, पृष्ठ 169

उनकी जनवादी दृष्टि हावी होकर 'आदर्शवाद' की पुकार करने लगती है।

'उपन्यास-सृजन' में मनोविज्ञान के साग्रह समावेश से जैनेन्द्र और जोशी दोनों ही उपन्यासकारों का 'चरित्र-शिल्प' अधिक प्रभावित हुआ। पात्रों के अन्तर्मन के चित्रण के लिए जैनेन्द्र और जोशी ने अलग-अलग कोटि के पात्र चुने हैं। जैनेन्द्र जी ने अधिकतर मध्यवर्गीय प्रतिभासम्पन्न और विवेकपूर्ण पात्रों को अपने उपन्यासों का उपजीव्य बनाया। "मानसिक कुण्ठाओं और विकृतियों का विश्लेषण एवं चित्रण करने के लिए उन्हें ना तो बिल्कुल आदर्श अथवा अतिमानव पात्र चाहिए थे और ना ही सर्वथा निम्न कोटि के कुटिल पात्र। उन्हें ऐसे विवेक-सम्पन्न पात्रों की आवश्यकता थी, जिनमें मानसिक द्वन्द्व की सामर्थ्य हो"[1]। इसके विपरीत इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यासों के लिए दुर्बल प्रकृति के नायकों का चयन किया है। 'नन्दकिशोर', 'पारसनाथ', 'नृपेन्द्र-रंजन', 'इन्द्रमोहन', 'राजू', 'महीप' आदि दुर्बल प्रकृति के ही पात्र हैं जो भावनाओं व संवेगों की जरा सी आंधी आते ही 'मनोविदलन' के शिकार होते जाते हैं। जैनेन्द्र कुमार के सभी पात्र विवेकसम्पन्न और समर्थ हैं। 'सुनीता' में श्रीकान्त, सुनीता, हरिप्रसन्न, 'कल्याणी' में कल्याणी, डा० असरानी, 'सुखदा' में सुखदा कान्त, लाल और हरिदा, 'परख' में सत्यधन और बिहारी इत्यादि सभी पात्र पूर्ण विचारशील व्यक्ति हैं जिनमें आत्म-विश्लेषण की अद्भुत क्षमता है। जैनेन्द्र ने पात्रों के चयन में उनके 'बौद्धिक-स्तर' का विशेष ध्यान रखा है।

पात्रों की संख्या के संदर्भ में जैनेन्द्र जी इलाचन्द्र जोशी जी से काफी सतर्क रहे हैं। जोशी जी को यद्यपि पात्रों की भीड़-भाड़ पसन्द नहीं तथापि

1- "हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास"- डा० श्रीमती ओम शुक्ल, संस्करण जुलाई 1964, पृष्ठ 233

प्रसंग-वश उनके उपन्यासों में पात्रों का कुछ आधिक्य हो गया है, यद्यपि सब उपन्यासों में ऐसा नहीं है। जैनेन्द्र कुमार ने 'सुनीता' की प्रस्तावना में लिखा है :- "तीन-चार व्यक्तियों से ही मेरा काम चल गया है। इस विश्व के छोटे खण्ड को लेकर हम अपना चित्र बना सकते हैं —।"[1] अपने कथनानुसार उन्होंने हर उपन्यास में तीन या चार-पात्रों से ही काम चलाया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की मांग सदैव कम पात्रों की है क्योंकि कम पात्रों द्वारा ही अन्तर्मन की अगाधता की ओर बढ़ा जा सकता है। 'परख' में 'सत्यधन', 'कट्टो और बिहारी ये तीन पात्र हैं, 'सुनीता' में 'श्रीकान्त', 'हरिप्रसन्न' और 'सुनीता' है, 'त्यागपत्र में 'मृणाल' और 'प्रमोद' है, 'कल्याणी' में कल्याणी और अहरानी हैं। इसी तरह अन्य उपन्यास भी कम पात्रों को लेकर चले हैं। उनके विश्लेषणीय पात्रों की विवेचना करते हुए डा० देवराज उपाध्याय लिखते हैं — " वे हमारे हृदय पर क्षणिक आराम पहुँचाने वाला मर्ज का फ़ाहा नहीं रखते, वरन् हमको भीतर से जगाते हैं और कहते हैं कि तुम अपने पैरों पर खड़े हो, अपना उद्धार आप करो, दूसरों की बतायी हुई मान्यताओं पर कब तक दुनियाँ में चलते रहने का अभिनय करोगे ?"[2]

जैनेन्द्र ने उपन्यास में पात्रों को अशरीरी बनाकर प्रविष्ट किया है जबकि इलाचन्द्र जोशी जी के पात्र रंग रूप, आकृति, वेशभूषा, चाल-ढाल सभी को लेकर उपन्यास में अवतरित होते हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में पात्रों का बाहरी, आकार प्रकार शून्य प्राय है, वे सीधे मानसिक-व्यापारों के चित्रण में लग जाते हैं।

1- "सुनीता" - जैनेन्द्र पृष्ठ 7

2- "जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन"- डा० देवराज उपाध्याय, संस्करण 1972, पृष्ठ 41

'साहित्य का श्रेय और प्रेय' में वे लिखते हैं — "उपन्यास के पात्र भी यदि हम आपकी तरह ड़ेढ-ड़ेढ दो-दो मन के होने लगेंगे तो इससे दुनियाँ का कुछ नहीं होगा। उनके सच्चे अर्थ में हमें लाभ तो तभी होगा जब वे हमसे कम मांसल और अधिक मानसिक होंगे, उनमें आत्मा अधिक होगी और पंचभूत कम होगा।"[1]

जैनेन्द्र के प्रत्येक उपन्यास में पात्रों की स्थिति त्रिकोणात्मक है। दो-दो पुरूषों के मध्य एक नारी का होना ही समस्या मूलक बनता है। नारी की निजता, वैयक्तिकता, स्वच्छन्दता सभी कुछ हमें जैनेन्द्र के उपन्यासों में मिलता है परन्तु उनकी नारियाँ समर्पण की चक्की में दिन-रात पिसती रहतीं हैं। अपने पतियों से यौन-जीवन की संतुष्टि न पाकर दमित किए जाने की अवस्था में वे पर-पुरूषगामिनी हो जातीं हैं। उनकी नारियों में सर्वत्र 'यौन-कुंठा' व्याप्त रहती है। प्राचीन काल से चली आ रही पात्रों की यह यौन-कुंठा साहित्य में जैनेन्द्र और जोशी जी द्वारा ही सर्वप्रथम उठाई गयी। 'परख', और 'घृणामयी' के रचनाकाल आसपास होने के कारण दोनों में यौन-कुंठा के वहीं रूप मिलते हैं। "पूर्ववर्ती उपन्यासकारों में शुतरमुर्गी ग्रंथि [कन्सीलमेंट कॉम्प्लेक्स] के कारण वे सदा अप्रिय बातों को पर्दे में ही रहने देना चाहते थे इसलिए उनका वास्तविक रूप न दिखाकर उनकी तरफ से आँखें बन्द कर लेते थे, लेकिन जैनेन्द्र के साहित्य में 'यौन-वृत्ति' के दमन या अतृप्ति से ही उन सबके जीवन का रूप निर्णीत होता है।"[2]

जोशी जी के नारी पात्रों में 'सेक्स की कुण्ठा' उतनी प्रबल नहीं है

1- "साहित्य का श्रेय और प्रेय" जैनेन्द्र - संस्करण 1953, पृष्ठ 168

2- "हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन"- डा० एस०एन०गणेशन, प्रथम संस्करण-सितम्बर 1962, पृष्ठ 245

जितनी जैनेन्द्र कुमार के नारी पात्रों में । जोशी जी के नारी-पात्र नैतिकता के नियमों को उतना नहीं तोड़ते । उनके नारी पात्रों में एक नवीन प्रकार का 'आत्मसम्मान' है, नवीन स्वातन्त्र्य का स्वर, है, जबकि जैनेन्द्र ने उन्हें नैतिक स्वैराचार की खुली छूट दिये हुए हैं । उनकी नारी में आन्तरिक विद्रोह तो है पर वे 'विवाह' के बन्धनों को तोड़कर पुनः 'निजत्व' न स्थापित कर परपुरुष की भोग्या बनकर कभी तो गिरी हैं, तो कभी अपने वैचारिक मान्यता के इस्तेमाल से ऊपर भी उठी हैं । जैनेन्द्र की नारी में 'आत्मपीड़न-रीति' की प्रबलता है । जैनेन्द्र की नारी 'प्रीतस्पर्धा और समर्पणहीनता' के मध्य रखी गयी है। उनकी नारी में जैसे 'सतीत्व'- 'असतीत्व' का कोई प्रश्न ही नहीं नैतिक मर्यादा जैसे उन्हें तुच्छ लगती है । जैनेन्द्र की नारी के मन के मैल को निकाल-निकाल कर उन्हें कुण्ठा व विकारहीन बनाना ही अपना ध्येय समझते हैं । उनके शब्दों में -"हमारे अन्दर अनन्त अव्यक्त है । मैल उसमें है, धोल-धवलता भी उसमें है। उन सबको स्वीकार करके शनैः-शनैः उसे बाहर निकालकर अपने को रिक्त करते जाना मेरे विचार में यह बड़ा काम है । इससे अलग सृजन क्या होगा, यह मैं जानता नहीं ।"[1] इस अनन्त अव्यक्त को जैनेन्द्र ने अपनी नारियों के माध्यम से प्रकट करना चाहा है । जैनेन्द्र की नारी प्रेम के विविध रूपों को लेकर उपन्यासों में प्रकट हुई है । 'डा० विमल सक्सेना' ने इसे निम्न वर्गों में विभक्त किया है:-

1- स्वच्छन्द प्रेम (रोमांटिक या प्लेटोनिक प्रेम)
2- विवाह पूर्व प्रेम,
3- विवाहोत्तर प्रेम,
4- दाम्पत्य प्रेम,
5- दमित या कुण्ठित प्रेम,।"[2]

1- "साहित्य का श्रेय और प्रेय"- जैनेन्द्र - संस्करण 1955 पृष्ठ 12
2- "हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"-डा०विमल सक्सेना संस्करण मार्च 1974, पृष्ठ 2

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में नारी के दमित व कुंठित प्रेम को और विवाह पूर्व प्रेम को ही अधिक दर्शाया गया है। 'लज्जा' उपन्यास की नायिका लज्जा का नवयौवन का प्रेम उसके परिवार में 'कुण्ठा' का रूप धारण करता है और धीरे-धीरे वह तृप्ति का मार्ग बाहर के पुरुष डा० कन्हैयालाल के पास ढूँढता है। 'सन्यासी' में 'शीला' और 'जयन्ती' का प्रेम मानव मंदीक्षोर के अहं के नीचे दब-दब जाता है जो अंकुरित होने का मौका ही नहीं दिया जाता है। 'पर्दे की रानी' में विवाह से पूर्व निरंजना का प्रेम दिखाया गया है। इलाचन्द्र जोशी के अनेक उपन्यासों की नारियाँ प्रायः विवाह से पूर्व गर्भवती हो जाती हैं पर बाद में संभल जाती हैं जबकि जैनेन्द्र की वैवाहिक बुद्धिजीवी नारियों में ऐसा नहीं है। उनका प्रेम स्वर्गिक व पारदर्शी सा लगता है। " जोशी जी की नायिकाएं शरत् की नायिकाओं के समान अत्याचारी पुरुष के चरण सहलाने वाली नहीं हैं अपितु उनकी नायिकाएं जीवन में एक बार धोखा खाने के पश्चात् छली-कपटी पुरुष का मुंह देखना भी पाप समझती हैं।"[1] जैनेन्द्र की नायिकाओं को 'आत्म-आहुति' में जलने में भी मजा आता है। 'परख' की कट्टो को देखें - "आओ, मेरे साथ बंधते हो। बिहारी बाबू, बड़ा कीमती यज्ञ सम्पन्न करने के लिए बंधते हैं हम। सोच लो तुम, बहुत लम्बा जीवन आगे पड़ा है ——— । उस यज्ञ के लिए, सबसे सुन्दर शब्द है मेरे पास वैधव्य। अर्थ है- "आत्म-आहुति" बंधते हो?"[2]

"त्यागपत्र की अहिंसावादी नारी का विरोधी स्वरूप देखिये — "जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है। यह मेरी समझ में

1- "हिन्दी उपन्यास: प्रेमचन्दोत्तर काल" - डा० रामशोभित प्रसाद सिंह प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 445

2- "परख" - जैनेन्द्र - पृष्ठ 103-104

नहीं आता । तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूँ । तन दे सकूँगी, शायद वह अनिवार्य हो। पर लेना कैसे ? दान स्त्री धर्म है । नहीं तो उसका और क्या धर्म है ? "[1] परस्पर विरोधी विचारों को दर्शाते जैनेन्द्र के नारी पात्र भी अक्सर रहस्य की प्रहेलिकाएं बन जाते हैं । उनके हर उपन्यास की नारी अपने पतियों द्वारा ही परपुरुषगमन के लिए उकसाई, भेजी जाती हैं, यहीं जैनेन्द्र का दर्शन रहस्यात्मक हो जाता है, जबकि जोशी जी की नायिकाएं जीवन में किसी एक पुरुष से अतृप्ति पाकर या ठुकराई जाकर दुबारा किसी अन्य पुरुष के पास फटकती तक नहीं है, वे स्वयं अपने नवव्यक्तित्व को निर्मित करके उन्हीं पुरुषों के 'अहं' को चकनाचूर कर देती है। उनके चरित्रों में कोई जटिलता, कोई दुर्गम्यता नहीं दिखती है परन्तु जैनेन्द्र की नारी, लगता है जैसे विरोधी वृत्तियों के संग्राम का अखाड़ा हो । 'सुनीता' का हरिप्रसन्न के आगे निर्वस्त्र होना, 'कल्याणी' का स्वतन्त्र विचारों के बीच सतीत्व धर्म पालन, 'त्यागपत्र' की 'मृणाल' का कोयले वाले पुरुष के पास रहकर भी 'सतीत्व धर्म' का राग अलापना जाने कौन से प्रतिमान स्थापित करती है । जैनेन्द्र का दर्शन यहीं अबूझ बन जाता है । उनकी नायिकाओं की समीक्षा करते हुए भी डा० सुखदेव शुक्ला लिखते हैं — "जैनेन्द्र कुमार की प्रायः सभी नायिकाएं समाज की नैतिक मर्यादाओं की अवहेलना में किसी प्रकार की अनैतिकता नहीं देखतीं । न जाने उनके अन्दर पर-पुरुष के प्रति कैसा कौन सा तीव्र आकर्षण है जो कि बरबस अनाचार की ओर खींचता है । उनके हृदय में उठने वाले बवंडर को तो वे ही जानें किन्तु

1- "त्यागपत्र" — जैनेन्द्र - संस्करण 1983, पृष्ठ 53-54

प्रकट में उनका आचरण नैतिकता की सभी सीमाएं तोड़कर स्वैराचार का रूप धारण कर लेता है।"[1]

जोशी जी ने नारी-पात्रों की उद्भावना केवल 'नारी-स्वातन्त्र्य' के उद्घोष के लिए की जबकि जैनेन्द्र का लक्ष्य उनकी नारियों के अन्तर्द्वन्द्व के मध्य स्पष्ट नहीं होता। शायद उनकी स्त्रियाँ पुरुषों के पौरुष को चुनौती देने के लिए ही सृजित हुई हैं। वे अहिंसावादी नीति के अनुसार पुरुषों द्वारा कुचली जाकर भी उफ़ तक नहीं करतीं, लगता है, इसी नीति के द्वारा वे पुरुषों के अहं पर कशाघात करना चाहती है। शारीरिक और मानसिक आत्म-समर्पण के द्वारा वे पुरुषों के व्यक्तित्व को व्यक्तित्वहीन बना देती है। पुरुष-पात्रों में जन्मी कुण्ठा {इन्फीरियॉरिटी कॉम्पलैक्स} ही जैनेन्द्र की नारियों को 'पराजय वृत्ति' के समीप लाती है। जैनेन्द्र ने अपनी नारियों को "सदैव विरोधी से विरोधी परिस्थितियों में डालकर अग्नि-परीक्षा की है और उन्हें तपाकर मानव बनाया है — ऐसा मानव जो क्षुधा और काम से सीमित होकर भी कहीं श्रेष्ठ और श्रेयस्कर है।"[2]

जैनेन्द्र और जोशी दोनों ही उपन्यासकारों के पुरुष पात्र 'दमित-यौन-भावना' और 'अहं' की भीषणता से त्रस्त हैं। जोशी जी के 'नन्दकिशोर' 'नृपेन्द्ररंजन', 'इन्द्रमोहन', 'पारसनाथ', इत्यादि सभी का अहं अपने संपर्क में आने वाली हर नारी को प्रताड़ित करता है, हर नारी को अपने पैरों तले

1- "हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता"- डा० सुखदेव शुक्ला
संस्करण - सितम्बर 1966 पृष्ठ 299

2- "हिन्दी उपन्यास में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"-डा०विमलसहस्रबुद्धे,
संस्करण - मार्च 1974, पृष्ठ 282

रौंदना चाहता है, पर नारी की विद्रोहिणी शक्ति से टकराकर उपन्यास के अन्त तक जाते-जाते उसके अहं का उन्मूलन हो जाता है। इसके विपरीत जैनेन्द्र का 'पुरुष-पात्र' अपने 'अहं' को विनष्ट नहीं कर पाता। पुरुष के अहं का विस्फोट दिखाकर जैनेन्द्र उसके उन्मूलन का रास्ता पाठकों के ऊपर छोड़ देते हैं।

जैनेन्द्र के पात्रों में विवाहित पुरुष प्राय: हीनता-ग्रंथि (इन्फीरियॉरिटी-कॉम्प्लेक्स) के शिकार हैं। 'त्यागपत्र' में मृणाल के पति में कोई पौरुष नहीं है, कोई व्यक्तित्व नहीं है। 'सुखदा' में कान्त का जीवन भी पत्नी की आधुनिकता (एडवांसनेस) के कारण 'हीनता-ग्रंथि' से पीड़ित है। 'कल्याणी' उपन्यास की नायिका का पति डाक्टर असरानी भी इसी ग्रंथि से ग्रसित है। अपनी पत्नी के लिए ये विवाहित पुरुष न तो 'यौन-तृप्ति' ही दे पाते हैं और न ही उनके 'प्रेयसीरूप' को समझ पाते हैं। प्राय: हर विवाहित नारी का एक प्रेमी पात्र उनके प्रत्येक उपन्यास में है। उनके प्रेमी पुरुष प्राय: किसी न किसी क्रांतिकारी दल से सम्बन्धित हैं। बाजारों के खिलाड़ी ये प्रेमी पात्र ही विवाहिता नारियों के 'प्रेयसी-रूप' को समझने की चेष्टा करते हैं, या यों कहिए कि 'अज्ञात' और अपरिचित को पाने की लालसामयी ही उननारियों को इन प्रेमी-पुरुषों की तरफ मोड़ती है। ये प्रेमी पात्र वासना के पुतले हैं। इनके दो तरह के पुरुष-पात्रों के बारे में डाक्टर बेवन लिखते हैं:- "जैनेन्द्र का पहला पात्र तो प्रच्छन्न वासना-ग्रस्त है और दूसरा पात्र पुरुषत्व हीन (शिखण्डी) है। इन दोनों के बीच जैनेन्द्र का तीसरा पात्र रहा करता है जो स्त्री पात्र होता है।"[1]

पुरुषत्व-हीन सा लगने वाला शिखण्डी नायक स्वयं ही अपनी पत्नी को नैतिक स्वेच्छाचारिता की ओर बढ़ाता है। 'सुनीता' का श्रीकान्त अपनी

1- "आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास"-डा० बेवन,
प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 138

पत्नी को हीरप्रसन्न के सामने आत्मसमर्पित होने को विवश करता है। 'सुनीता' के हीरप्रसन्न के सम्मुख निर्वसन होने का प्रसंग सुनकर भी उस पर पौरुष जैसी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। 'सुलदा' का नायक 'कान्त' भी सुलदा को क्रांतिकारी दल में शामिल होने की पूरी छूट दिये हुए है। वह स्वयं चाहता है कि सुलदा क्रान्तिदल के कार्यकर्ता 'मिस्टर लाल' से अपना प्रेम सम्बन्ध स्थापित किए रहे। ऊपर से देखने में उनकी आत्मा में कचोटने जैसी कोई पीड़ा नहीं होती, पर अन्ततोगत्वा विजय क्लीं शिखंडी पुरुष की ही होती है।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में नायक के अन्दर-दम्भ और 'अहं' कूट-कूट कर भरा है। वह अपने सम्मुख किसी अन्य पुरुष से अपनी पत्नी या प्रेमिका का बोलना-बतलाना नहीं सह सकता जबकि जैनेन्द्र में स्थिति इसके विपरीत है। जैनेन्द्र के नायकों की निश्चिन्तता का वर्णन करते हुए 'डा० सुखदेव शुक्ल' लिखते है :- "ऐसा प्रतीत होता है कि आकाशचारी गन्धर्वों के समान जैनेन्द्र कुमार के नायकों को नैतिक मर्यादाओं और विधि निषेधों की कठोर भूमि पर पांव रखने की आवश्यकता नहीं है। उनके नैतिक आदर्श आकाश के समान किसी सीमा में नहीं बंध सकते हैं और न ही पकड़ में आ सकते है।"[1]

इलाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्र के उपन्यासों के नायकों में मूलभूत अन्तर यही है कि जोशी का नायक 'काम-वासनाग्रस्त' व्यक्ति है जबकि जैनेन्द्र का नायक पौरुषहीन शिखंडी।

पात्रों के चरित्र-चित्रण की प्रणालियों में पूर्ण मनोवैज्ञानिकता, दोनों उपन्यासकारों में मिलती है। 'सूतन' में सूतन मनोवैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोगों

1- "हिन्दी उपन्यास का विकास और मौलिकता"- डा० सुखदेव शुक्ल, संस्करण सितम्बर 1966, पृष्ठ 280

में जैसे जैनेन्द्र और जोशी जी में होड़ लगी हुई हो। चरित्र-चित्रण में अतिशय मनोवैज्ञानिकता के कारण जैनेन्द्र के उपन्यासों में 'जैनेन्द्रपन' आ गया है। पात्र के चरित्र-चित्रण के लिए वे गहरे से गहरे मानसिक समुद्र में उतरने में हिचकिचाते नहीं है। उनको अस्पष्ट और धुंधले चित्रों की फोटोग्राफी करने में अधिक आनन्द प्राप्त होता है। वे लिखते हैं :— "एक शब्द है, 'हार्ड फोकस' यानी चित्र की रूपरेखा का बेहद दुरुस्त होना, पर कला के लिए साफ्ट फोकस चाहिए। सचेतन-अचेतन में क्या भेद है। यही कि एक नप तुल जाता है, दूसरा ठीक नाप-तौल में नहीं आता।"[1]

इसी ठीक से नाप-तौल में न आने वाले चित्र के अंकन के लिए जैनेन्द्र जी कई मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का आश्रय ग्रहण करते हैं उदाहरणार्थ :-

1- आत्म विश्लेषण शैली,
2- डायरी शैली,
3- विभ्रम (डेल्यूसिनेशन) शैली,
4- स्वप्न शैली,
5- प्रतीकात्मक शैली,
6- मुक्त-प्रवाह (फ्री एसोसियेशन) शैली,
7- बाधकता विश्लेषण (रीजस्टेन्स-एनालिसिस)
8- अन्तर्वादवाद शैली (इन्टीरियर मोनोलाग) इत्यादि

जैनेन्द्र जी के अलावा इलाचन्द्र जोशी जी के साहित्य में भी इन शैलियों द्वारा पात्रों के अन्तर्जगत् का उद्घाटन किया गया है। डायरी शैली इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में अधिक नहीं मिलती। मनोवैज्ञानिक विचार धारा के जनक होने के कारण जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी का चरित्र-चित्रण

1- "साहित्य का श्रेय और प्रेय"- जैनेन्द्र - संस्करण 1953, पृष्ठ 186

फ्रॉयड द्वारा वर्णित 'अचेतन-मन के विश्लेषण' की लगभग सभी निर्धारित शैलियों द्वारा हुआ है। इलाचन्द्र जोशी इन शैलियों के प्रयोग में जैनेन्द्र से दो कदम ही है, क्योंकि उनके चरित्र, लगता है, किसी मानसिक अस्पताल में किसी कुशल मनःचिकित्सक की देखरेख में सुलझाये जा रहे हों। 'वर्ड हिस्ट्री', 'हिप्नोटिज्म', 'संगीत द्वारा तदात्म्यीकरण', 'शब्द-सह-स्मृति-परीक्षण' आदि कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा जोशी जी ने साग्रह अचेतनमन का विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में अचेतन के उद्घाटन के लिए कम से कम एक पात्र तो ऐसा होता ही है जो पात्र को खुलने में सहयोग दे। 'जयवर्धन' में 'विल्बर-हस्टन' तो स्वयं ही अपने मनोविश्लेषक होने की बात स्वीकार करता है —"मैं उसके {परिचय} के पास आपका चित्रत्व ले जाना चाहता हूँ।"[1] — और आगे वह कहता है :— "— मुझे आपका कर्म विवरण नहीं चाहिए, वह तो उधार है ही: आया हूँ तो अंतरंग लेने आया हूँ।"[2] मनोविश्लेषक बनकर वह उसे को 'मुक्त आलंब' की स्थिति में ले आता है और एक के बाद एक गुत्थियाँ सुलझाता चला जाता है।"[3]

'सुनीता' में सुनीता भी हरिप्रसन्न की गांठ खोलने के लिए उसे मुक्त-आलंब की स्थिति में ले आती है। 'त्यागपत्र' की मृणाल अपने भतीजे प्रमोद के सम्मुख 'मुक्त-आलंब' की स्थिति में आती है— "और मैं जाने क्या क्या बकती

1— "जयवर्धन" — जैनेन्द्र — प्रथम संस्करण पृष्ठ 18
2— "जयवर्धन" — जैनेन्द्र — प्रथम संस्करण पृष्ठ 23
3— देखें —"जयवर्धन" — जैनेन्द्र — प्रथम संस्करण पृष्ठ 130 से 140तक

रही । कहनी-अनकहनी न जाने क्या-क्या कह गयी । दुनियां में मेरे रुक तुम हो कि जिससे दुराव मुझसे नहीं रखा जायेगा ।"[1]

'आत्मविश्लेषण' तो इलाचन्द्र जोशी जी की भाँति जैनेन्द्र जी में स्थल-स्थल पर मिलता है । 'सुखदा' उपन्यास का आरंभ ही सुखदा के आत्म-विश्लेषण से होता है । अन्तर्वेवाद (स्वगत कथन) भी जैनेन्द्र के अनेक उपन्यासों में मिलते हैं ।

जैनेन्द्र जी के 'स्वगत भाषण' (इन्टीरियर मोनोलाग्स) पर्याप्त वैशिष्ट्य रखते हैं । जोशी जी के स्वगत-भाषणों में उतनी मनोवैज्ञानिकता नहीं है जितनी जैनेन्द्र के स्वगत-भाषण वाले स्थलों में पात्रों के 'अवेतन' को पकड़-पकड़ कर बाहर लाने में जोशी जी, जैनेन्द्र जी से काफी आगे हैं । जैनेन्द्र और जोशी दोनों के ही पात्र चिन्तक व आत्मविश्लेषक हैं, अतः उनके संवादों में दार्शनिकता का समावेश अधिक हुआ है । लेकिन तो भी जैनेन्द्र जी के व्योपकथन उतने उलझे हुए नहीं हैं - "जैनेन्द्र कुमार कहीं भी उलझे हुए वाक्यों को प्रयुक्त करना पसन्द नहीं करते, परन्तु छोटे-छोटे अर्थपूर्ण वाक्यों द्वारा वे गहरे मनोभावों तक पहुँच जाते हैं । उनके व्योपकथनों में भी इसी प्रकार की सहजता और परिमार्जन मिलता है, फिर भी ऐसा नहीं लगता कि उन संवादों की भाषा बोलचाल की भाषा से भिन्न है ।"[2]

मानव-मन की कुण्ठाओं, अतृप्त वासनाओं, आन्तरिक संघर्षों एवं जटिल मनोविकारों को चित्रित करते हुए जैनेन्द्र की भाषा अति समर्थ हो गयी है । उन्होंने भाषा में ओज, सामर्थ्य तथा गाम्भीर्य लाने में कोई चूक नहीं की

1-"त्यागपत्र" - जैनेन्द्र - संस्करण 1965, पृष्ठ 60

2-"हिन्दी उपन्यास कला" - डा० प्रताप नारायण टण्डन,
प्रथम संस्करण 1965, पृष्ठ 246

है । इलाचन्द्र जोशी जी की भाषा भी उतनी ही समर्थ है जितनी कि जैनेन्द्रजी की । हाँ, संस्कृतिनष्ठता और पांडिताऊपन उनकी भाषा पर कहीं-कहीं हावी हो गया है ।

वातावरण सृजन में दोनों उपन्यासकार सिद्धहस्त हैं, लेकिन दोनों में मूलभूत अन्तर यह है कि जोशी जी के उपन्यास सामाजिक वातावरण को भी लेकर चलें हैं जबकि जैनेन्द्र का वातावरण निहायत व्यक्तिवादी है । 'भीरव और दारुण' वातावरण के सृजन में जैनेन्द्र जोशी जी से आगे निकल गये हैं। अतिलघु लघु कथानकों के कारण जैनेन्द्र को अन्य प्रकार के वातावरण सृजित करने का अधिक अवसर नहीं मिला । दो चार नयी खुली पंक्तियाँ ही 'मनोनुकूलता' प्रदान करने के लिए काफी हैं । जबकि इलाचन्द्र जोशी जी का मन बड़ी देर तक इनके सृजन के लिए तैयारी करता है, तब कहीं जाकर वातावरण को मनोनुकूलता मिलती है। जोशी जी की वर्णनात्मक वृत्ति उन्हें अगाधता से बाहर आने को कहती है पर जैनेन्द्र का 'जैनेन्द्रपन' उन्हें यह नहीं करने देता । जोशी जी अपने उपन्यासों में वह जटिलता , वह उलझाव नहीं देते जिसके लिए जैनेन्द्र कुमार मशहूर है । जैनेन्द्र केवल जीवन के प्रश्नों में दिलचस्पी लेते हैं जबकि जोशी जी इसके आगे युगजीवन की समस्याओं में भी रमते हैं ।

जैनेन्द्र का अभीष्ट तो मानव का दर्द है, उसकी अन्तर्पीड़ा है। "—गया हुआ दर्द मानव की मान्यता मणि है, उसके प्रकाश में मानव का गतिपथ उज्ज्वल होगा, नहीं तो चारों ओर गहन वन है ।"[1] वे मन के दर्द को ही सब कुछ मानते हैं——" मन का दर्द अमृत है । सत्य का निवास और कहीं नहीं है । उस दर्द की साभार स्वीकृति में से ज्ञान की और सत्य की ज्योति प्रकट होगी

1- " त्यागपत्र" - जैनेन्द्र - संस्करण 1965, पृष्ठ 40

अन्यथा सब ढकोसला है और सब सत्य की पुकार अहंकार है।"[1] जैनेन्द्र जी मन के इसी अमूर्त रूपी दर्द की यशोगाथा गाते हुए अपने पात्रों को विकसित करते हैं। डा० गिरधर प्रसाद शर्मा के अनुसार — "ये [उनके पात्र] अपने मन की पालकी पर कल्पित अभावजन्य दर्द को लादे, प्रेम तन्तु को तोड़ते-तोड़ते जो मिला है, उस पर झुँझलाते, मुँह लटकाये, मंथर गति से जीवन के अन्त की ओर अग्रसर होते हैं। ये अन्तर्मुखी पात्र हैं, ये बाहर कम, भीतर ज्यादा, कामों में कम, विचारों में ज्यादा जिंदा हैं।"[2] जबकि इलाचन्द्र जोशी जी केवल मन के दर्द का चित्रण नहीं करते वरन् उस दर्द को दूर करने के विविध मनोवैज्ञानिक अस्त्रों का प्रयोग करते हैं।

(3) "इलाचन्द्र जोशी स्वं अज्ञेय" :- बीसवीं सदी के उपन्यासकारों पर फ्रॉयडीय मनोविज्ञान का प्रभाव कतई नहीं नकारा जा सकता। फ्रॉयड के अनुसार, मानव-जीवन की मूल प्रेरक व संचालिका वृत्तियाँ हैं — 'अहं', 'काम' और 'भय'। इन्हीं वृत्तियों को लेकर मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा आगे बढ़ी है। डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर के अनुसार :- "बीसवीं शताब्दी का साहित्य 'अहं' आधृत है, यदि यह कहें तो कोई आपत्ति नहीं होगी।"[3] जोशी जी के समाजवादी जनवादी व्यक्ति-वाद से अलग अज्ञेय ने मानव जीवन की मूल प्रेरणा 'अहं' का ही बयगान अपने उपन्यासों में किया है। उनकी दृष्टि सदैव 'व्यक्ति' में रही है समाज की तरफ तो वे मुड़कर भी नहीं देखते। उनकी व्यक्तिपरक दृष्टि से ही उनका कथा-साहित्य निर्मित हुआ है। उनके उपन्यास व्यक्ति और व्यक्ति के संघर्ष के

1- "त्यागपत्र" - जैनेन्द्र - संस्करण 1963, पृष्ठ 40
2- "हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन"-डा० गिरधर प्रसाद शर्मा प्रथम संस्करण 1976, पृष्ठ 96-97
3- "हिन्दी में जैनेन्द्र और उनका साहित्य"- डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 38

उपन्यास हैं। उनमें जोशी जी जैसा कोई 'वर्ग-संघर्ष' नहीं है। अज्ञेय का पूरा जीवन-दर्शन व्यक्तिवादी है। "व्यक्ति के अस्तित्व को पूरी-पूरी मान्यता देते हुए अज्ञेय जी भी मानव-जीवन को गति प्रदान करने वाली मूल प्रेरक-शक्तियों- 'अहंता', 'भय' और 'सेक्स' के सम्मुख नतमस्तक हैं।"[1] इलाचन्द्र जोशी के पात्रों की 'अन्तर्मुखीधारा' को आगे बढ़ाते हुए अज्ञेय जी ने तीन मनोवैज्ञानिक मील के पत्थर उपन्यासों का सृजन किया :-

1- 'शेखर-एक जीवनी'

2- 'नदी के द्वीप'

3- 'अपने-अपने अजनबी'

अहं, काम, भय जैसी मूल प्रवृत्तियों को आधार मानकर अज्ञेय जी ने नितान्त व्यक्ति-वैचित्र्यवादी उपन्यास 'शेखर-एक जीवनी' की रचना की। इलाचन्द्र जोशी की रचना-कला को नये ढंग से परिष्कृत करके अज्ञेय जी और अधिक सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हुए। जहाँ इलाचन्द्र जोशी जी ने अपने उपन्यासों में 'अहं' का विश्लेषण करके मानवता के कल्याण के लिए उसे उदात्त संश्लेषण करने का प्रयास किया है, वहीं मुक्तिबोध और अज्ञेय ने 'अहं' की महत्ता स्वीकारते हुए उसे अपने उपन्यासों में गौरव प्रदान किया है।

अज्ञेय अपने उपन्यासों के विषय चयन में नितान्त वैयक्तिक हैं। "व्यक्ति के अन्तर्मन की गहराईयों और ऊँचाईयों, अभावों और आकांक्षाओं को उन्होंने इतना अधिक महत्व दिया है कि इसके आगे सामाजिक प्रश्न और सामाजिक समस्यायें गौण हो गयीं हैं।"[2]

1- "हिन्दी उपन्यास का विकास और शैलियाँ" - डा० सुलदेव शुक्ल, संस्करण सितम्बर 1961, पृष्ठ 208

2- "हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास" - डा० श्रीमती ओमशुक्ल, संस्करण जुलाई 1964, पृष्ठ 292

जहां इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों का मूल उद्देश्य 'अहं' का उन्मूलन व व्यक्ति को कल्याणकारी कार्यों में लगाना रहा है, वहीं अज्ञेयजी की रचनाओं का मूल स्वर 'काम-भावना', व 'अहं-भावना' की नग्नतम व्याख्या करके उसको 'सर्वोच्च सत्ता' के रूप में प्रतिष्ठित करना है।

'शेखर- एक जीवनी' उपन्यास में 'शेखर' के अन्तर के आलोक को बाहर लाना उनका मुख्य ध्येय है। इस मायावी संसार में एक युग के प्रतीक के रूप में 'शेखर' जैसे व्यक्ति की अहं, काम जैसी मूल प्रवृत्तियों के दमन की प्रतिक्रिया स्वरूप विद्रोहवादी मानसिकता को उद्घाटित करने वाला उपन्यास 'शेखर-एक जीवनी' मनोवैज्ञानिक उपन्यास उपन्यासजगत् में मील का पत्थर बन गया है। यह उपन्यास अज्ञेय के जीवन की ही अनुभूतियों का वाहक है। वे स्वयं स्वीकारते हैं :- "मेरी अनुभूति और मेरी वेदना शेखर को अभिसिंचित कर रही है। ---- शेखर में मेरापन कुछ अधिक है।"[1] 'बालमनोविज्ञान' के मध्य जन्मा यह उपन्यास 'किशोरमनोविज्ञान' को लेकर आगे चलता है। 'नदी के द्वीप' उपन्यास पाश्चात्य उपन्यासकारों के आलोक से प्रकाशित होकर सामाजिक रीति-नीति के प्रति विद्रोह, अस्वीकार और अकेलेपन का वही सिलसिला लेकर चलता है। जीवन का चित्रण न होकर इस उपन्यास में जीवन के एक अंग का चित्रण है।

जोशी जी के उपन्यासों में जीवन के एक अंग की उतनी आगाधता नहीं है जितनी अज्ञेय जी के उपन्यासों में मिलती है। 'नदी के द्वीप' में प्रणय व्यापार, 'मुक्तभोग' और स्वेच्छाचार का जो बिगुल अज्ञेय जी ने बजाया है, वह तत्कालीन किसी भी उपन्यासकार के बस की बात नहीं थी। जोशी जी की परम्परा से

1- 'शेखर-एक जीवनी' - अज्ञेय - प्रथम भाग, भूमिका, पृष्ठ 10

अलग हटकर उन्होंने शेखर के विद्रोहीपन को सराहा है, उसके जीवन की सिद्धि उसके उत्कट विद्रोह में ही मानी है। 'नदी के द्वीप' का युक्त भोग उन्होंने जीवन के लिए परमावश्यक माना है। मुक्त वृत्तियों के निरन्तर उद्घाटन द्वारा आनंदवाद की प्रतिष्ठा व जीवन की सिद्धि की घोषणा उनके तीनों उपन्यासों में है।

व्यक्ति के अन्तर्मन को प्रमुखता देते हुए जीवन के छोटे-छोटे खण्ड प्रस्तुत करके अपने कथानकों में अज्ञेय ने पाश्चात्य प्रविधि का स्वागत किया है।

'शेखर-एक जीवनी' में शेखर के आन्तरिक एवं बाह्य जीवन का विश्लेषण करते हुए अज्ञेय जी ने उसके विद्रोही जीवन को कथा का आधार बनाया है। 'नदी के द्वीप' में भुवन और रेखा के संयोग, वियोग उनकी विवशताओं को मुक्त-सुख भरी स्थितियों और कोमल अनुभूतियों के सहारे चित्रित किया है।

कथानकों का प्रारम्भ करने के लिए अज्ञेय जी ने जोशी जी से अधिक मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावात्मक विधियों का प्रयोग किया है। इलाचन्द्र जोशीजी के कथानकों का प्रारम्भ आत्मकथात्मक शैली में हुआ है। 'लज्जा', 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'मकान का पंछी', 'विप्पी' इत्यादि अधिकांतर उपन्यास पात्रों कीआत्मकथा द्वारा ही आगे बढ़े हैं। हाँ, इस आत्मकथा शैली में कहीं-कहीं 'पूर्वदीप्ति' का सहारा लिया गया है। यह पूर्वदीप्ति 'सन्यासी' में अधिक प्रभावोत्पादक बनी है। अज्ञेय ने केवल तीन महान उपन्यास रचे जिसमें 'शेखर-एक जीवनी' का प्रथम भाग आत्मकथात्मक ढंग से शुरू हुआ है- "मैं अपने अपने जीवन का प्रत्यावलोकन कर रहा हूँ, अपने अतीत जीवन को दोबारा जी रहा हूँ। मैं जो सदा आगे ही देखता रहा, अपनी जीवन-यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पहुँचकर पीछे देख रहा हूँ कि मैं कहाँ से चलकर किधर-किधर, भूल

भटककर, कैसे-कैसे विचित्र अनुभव प्राप्त करके यहाँ तक आया हूँ।"[1]

'नदी के द्वीप' का कथानक स्मृतियों को साकार करता हुआ पूर्व-दीप्ति शैली में शुरू हुआ है। गाड़ी में यात्रा करते समय भुवन का मन पूर्व-स्मृतियों के जाल में फँसता हुआ रेखा के प्रत्यावलोकन से प्रारम्भ होता है- "रेखा से उसका परिचय लम्बा नहीं था, बल्कि परिचय कहलाने लायक भी नहीं था, क्योंकि एक सप्ताह पहले ही अपने मित्र चन्द्रमाधव के घर पर एक छोटी-सी पार्टी में इनकी पहली भेंट हुई थी और उसके बाद दो तीन बार हजरतगंज के कोने पर या काफी हाउस में उनका कुल वार्तालाप हुआ था।"[2] यह कहना अत्युक्ति न होगा कि जोशीजी और अज्ञेयजी दोनों ही अलग-अलग भावभूमियों पर खड़े होकर अपने कथानकों का प्रारम्भ एक जैसे ढंग से ही करते हैं।

जोशीजी अपने उपन्यासों में रुग्ण-ग्रस्त व्यक्तियों की कहानी छेड़-कर उनकी विचित्र मनःस्थितियों का विश्लेषण करके कथानक को विकसित करते हैं और अनेक घटनाओं व नाटकीयताओं को सृजित करके कथा को गति देते हैं जबकि अज्ञेयजी घटनाओं के वर्णन के बजाय बीती घटनाओं की स्मृतियों के चित्र खींच-खींच कर कथा को गति देते हैं, वे कथा में सुव्यवस्था की ओर ध्यान न देकर पात्र के मन में सोती हुई स्मृतियों को कुरेद-कुरेद कर कथा विकास करते हैं। अज्ञेय जी के कथानक स्मृतियों के ताने-बाने से बुने गये हैं। जोशी जी के उपन्यास विश्लेषण प्रधान हैं, अतः बाह्य घटनाओं का भी संसर्ग उन्हें मिला है। 'शेखर-एक जीवनी' का नायक शेखर अपने जीवन के बिखरे हुए व अस्त-व्यस्त

1- "शेखर-एक जीवनी" - भाग-1, अज्ञेय - पृष्ठ 15
2- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय - संस्करण 1951, पृष्ठ 12

स्मृति-चित्रों के द्वारा अपनी कथा कहता है। इन स्मृति-चित्रों में अज्ञेय जी का 'बाल-मनोविज्ञान' का प्रयोग दर्शनीय है। फ्रॉयडवादी विचारधारा का विलोकन करने पर ज्ञात होता है कि बच्चों में बचपन से ही 'काम-ग्रंथि' का विकास होता रहता है, उसके प्रकटन के जो-जो बहाने वह ढूँढता है उन सभी का सांगोपांग चित्रण अज्ञेय जी के इस कथानक में हुआ है। प्रथम भाग के कथानक की समीक्षा करते हुए डा० गिरधर प्रसाद शर्मा लिखते हैं:- "उपन्यास के प्रथम भाग में आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिध्दान्तों के प्रकाश में परिस्थितियों से प्रेरित बाल-मानस पर उठने वाली तरंगों को कलात्मक ढंग से शब्दबध्द किया है।"[1] स्मृतियों की अँगुली पकड़-पकड़ कर शेखर अपने बाल्यकाल और यौवनकाल तक के जीवन की कहानी कह देता है। शेखर के कैशोर्य की मानसिक ऊहापोह, मस्तिष्क की छटपटाहट उसकी किशोर कालीन व सम्पूर्ण शेष जीवन गाथा 'शेखर-एक जीवनी' के दूसरे भाग में चित्रित है। यौन-भावनाओं की तृप्ति-अतृप्ति के बीच झूलते शेखर के जीवन में शारदा, शशि के प्रति आकर्षण वाले स्मृति-चित्र हिन्दी उपन्यास साहित्य की अमोल निधि हैं। मनोवैज्ञानिक धरोहर के रूप में 'शेखर-एक जीवनी' का कथानक स्वतन्त्रता की खोज करता हुआ मनोवैज्ञानिक उपन्यास परम्परा में कथानक सम्बन्धी नवीन मूल्यों की स्थापना करता है। "इसके कथानक की समीक्षा करते हुए डा० नगेन्द्र कहते हैं :— "परम्पराभुक्त कालक्रमिकता के स्थान पर इसमें अनुभूति के टुकड़ों को जहाँ-तहाँ से उठा लिया गया है — एक तो रोमांटिक आवेग के कारण और दूसरे अहं - केन्द्रित होने के फलस्वरूप इसका चिंतन

1- "हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन" -डा० गिरधरप्रसादशर्मा, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 132

रचनात्मक बनते-बनते रह गया है।"[1]

जोशी जी के उपन्यासों की कथानक-कला से अलग हटकर अज्ञेय जी का दूसरा उपन्यास 'नदी के द्वीप' भी प्रयोगों के तौर पर 'मील का पत्थर' बनकर खड़ा हुआ। इस उपन्यास में कथानक में कोई एकसूत्रता नहीं है, कोई संगठन नहीं है, बस स्मृतियों की लहरें ही इसे कथा-सागर की ओर ले चलती हैं। 'रेखा' और 'भुवन' पारस्परिक प्रणय-स्मृतियाँ (प्रकृति के खुले प्रांगण में उपजी हुई), नौकुछिया-ताल की मिलन वाली घटना, तुलियन झील पर 'रेखा' और 'भुवन' के पिघलने और समर्पण करने की घटना, फिर रेखा के गर्भपात तथा दोनों के अलग-अलग द्वीपों की तरह पुनः बस जाने की घटनाएं गीतों, प्रगीतों की गलियों से होती हुई कथा को गति देती हैं।

अज्ञेय जी कथा-विकास में एक ही मानसिक भाव को निरन्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म ढंग से आगे बढ़ाने में सिद्ध-हस्त हैं। उनके इस प्रवाह में कोई नाटकीयता नहीं है। कथानक में व्याप्त अतिशय व्यक्तिवादिता ही अस्वाभाविकता की सृष्टि करती है। 'नदी के द्वीप' के कथानक का विकास उसी ढंग से हुआ है, जैसे 'पर्दे की रानी' का। 'पर्दे की रानी' में कभी निरंजना की तो कभी 'शीला' की कथा आती है। अज्ञेयजी का यह उपन्यास भी 'भुवन', 'रेखा', 'चन्द्रमाधव' और 'गौरा' की कहानियों को लेकर चलता है। पत्रों द्वारा कथा-विकास की नूतन परिपाटी अज्ञेय जी का जोशी जी से वैषम्य दिखाती है। 'शेखर-एक जीवनी' में भी कथा को 'शशि' के 'शेखर' के नाम लिखे गये पत्रों से गति मिलती है। 'गौरा', 'रेखा', 'भुवन', और चन्द्रमाधव के जीवन की घटनाएं पत्रों द्वारा उद्घाटित होती हैं।

कथा का उपसंहार करने में उद्देश्य के अनुरूप ही अज्ञेय जी सफल हुए हैं। जहां जोशी जी अपने कथानकों के अन्त में अधिकांशतः जीवन के ज्योतिर्मय पक्ष अर्थात सबलत्व

1- "हिन्दी साहित्य का इतिहास" - डा० नगेन्द्र -
द्वितीय संस्करण 1982, पृष्ठ 676

की ओर बढ़े हैं वहीं अज्ञेय जी को भी उपन्यास को नवीन आशा के साथ समाप्त करने में कोई दुःख नहीं है। दुःख में से सुख की खोज में निकले उनके दोनों उपन्यासों के पात्र आशापूर्ण ढंग से विदा लेते हैं। उनकी सुख प्रेरक शक्तियाँ विजयिनी होकर भविष्य को आशापूरित चक्षुओं से देखती हैं। "निर्मिति और कालचक्र के आगे नत-मस्तक रेखा भुवन से बिछुड़कर डा० महेश चन्द्र से विवाह कर लेती है, तो इधर भुवन भी गौरा के निस्वार्थ प्रेम की सहायता से अपनी मानसिक कुण्ठा त्यागकर पुनः स्वस्थ व प्रकृतिस्थ हो जाता है। — भुवन और गौरा के मिलन के स्थ में नदी की धारा में नये द्वीप की रचना की ओर संकेत करके कथा का अंत होता है।"[1]

अज्ञेय के उपन्यासों में 'कथा-विन्यास' सम्बन्धी निम्नलिखित नवीन विशेषताएं हैं जो उन्हें इलाचन्द्र जोशी के कथा-विन्यास से पृथकता प्रदान करती हैं :-

1- उनके कथाविन्यास में सर्वत्र चित्रात्मकता का सूत्र पात हुआ है।
2- मानव जीवन की सूक्ष्म संचारिका शक्तियाँ 'अहं', 'काम' और 'भय' ही कथा का मेरुदण्ड बनी हैं।
3- कथा का आरंभ, मध्य तथा अन्त का कोई क्रम नहीं है। अज्ञेय जी के उपन्यासों की कथा कहीं से शुरू होती है, अपनी मर्जी से इधर-उधर भटककर किसी भी मोड़ पर समाप्त हो जाती है।
4- पत्र-शैली द्वारा कथा को गति मिलती है।
5- कथा के परिच्छेदों को उनकी स्थिति के अनुसार नाम देकर कथानक सृजित हुए हैं।
6- वैयक्तिक एकान्त व तद्जन्य बौद्धिकता का उनके कथानकों में प्रचुर पुट है।

1- "हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास"- डा०श्रीमती ओम शुक्ल संस्करण जुलाई 1964, पृष्ठ 301

जोशी जी के उपन्यासों की भाँति अज्ञेय के उपन्यासों में भी 'चरित्र-चित्रण' की ही प्रधानता है। 'चरित्र-चित्रण' के लिए अज्ञेय जी ने असाधारण पात्र चुने हैं, जो उच्च वर्गीय व उच्च मध्यवर्गीय तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न हैं। अज्ञेय जी के उपन्यासों की नारी भी समृद्ध है, पर जोशी जी के उपन्यासों की नारी प्रारम्भ में इतनी धन-वैभव सम्पन्न नहीं रहती। अज्ञेय जी के पात्र जोशी जी के पात्रों से अधिक 'आत्मदर्शी' हैं, उनके जीवन के लक्ष्य विचित्र हैं। उनकी लक्ष्य प्राप्ति के ढंग भी अनुपम हैं। 'अपने-अपने अजनबी' के पात्र पूर्णतः विदेशी हैं। 'सेल्मा' और 'योके' भारतीय पृष्ठ भूमि के पात्र नहीं हैं। यद्यपि अज्ञेय के पात्र सामान्य ही है पर अपने आचरण के कारण उनका चरित्र असाधारण सा लगता है।

अज्ञेय जी ने अपने तीनों ही उपन्यासों में कम पात्रों द्वारा कथा-विस्तार किया है। 'नदी के द्वीप' में तो 'भुवन', 'रेखा', 'गौरा' और 'चन्द्रमाधव' ही हैं। हां, शेखर के जीवन का दस्तावेज प्रस्तुत करने के कारण 'शेखर-एक जीवनी' में पात्र बहुलता है, पर यह परिस्थितिजन्य है, कहीं कोई अनावश्यकता नहीं है।

अज्ञेय के पात्र सरल प्रवृत्तियों के न होकर जटिल व दुर्बोध रेखाओं द्वारा निर्मित हुए हैं। 'मन्दीक्षोर' के चरित्र की भाँति अज्ञेय के 'शेखर' में भी 'प्रेम और घृणा' दोनों प्रवृत्तियाँ निरन्तर उसके व्यक्तित्व को परिचालित करती हैं।

शेखर बाल्यकाल से ही चिन्तकों सा व्यवहार करता है। किसी भी घटना से जरा ही देर में वह आंदोलित होकर विचार मग्न हो जाता है। वह अन्तर्मुखी मानव है। जोशी जी के कुछ नायक भी जैसे:- 'राजु', 'महीप' अन्तर्मुखी हैं। गोमती तट पर सान्ध्य बेला में टहलता हुआ शेखर का विचारक

स्प केलर — " — उसका मन हटकर गोमती की लहरों पर काँपते हुए ताम्रवर्ण प्रकाश की ओर आता है और वहीं रह जाता है। उसे लगता है कि उस प्रकाश में कुछ है जो उसे बुलाता है, खींचता है, सुख देता है, पर वह उसे नाम नहीं दे पाता, "सौन्दर्य" शब्द उसके मनःक्षेत्र में अभी तक नहीं आया है। "[1]

नदी के द्वीप के मुख्य पात्र भुवन और रेखा दोनों ही नितान्त चिन्तनशील हैं। बात-बात में ही, जरा सी भावों की आंधी आते ही वे कविताभय हो जाते हैं, अपने आप में खो-खोकर अपने चिन्तन को स्पष्ट करते हैं। तुलियन झील के किनारे भुवन द्वारा फुलफिल्ड कर दिये जाने पर रेखा जब गर्भ धारण करती है तो भुवन उस स्थिति पर विचार करता हुआ कहता है — "एक तन्मयता उसने जानी है, एक अभूतपूर्व तन्मयता, लेकिन स्वयं वह जो जान पाया है उससे कुछ अधिक और कुछ अधिक गहरा रेखा उसके निर्णय से जान सकी है - अधिक गहरा क्योंकि वह स्त्री है, और स्त्री होते हुए भी उसने वह साक्ष किया है जो शायद भुवन में भी नहीं है। "[2]

अज्ञेय के पात्रों में जोशी जी के पात्रों से अधिक संवेदनशीलता है। वे जरा-जरा से आघात लगते ही सदा के लिए झनझना जाते हैं। यही संवेदनशीलता रेखा को गर्भपात के लिए उकसाती है। वह सोचने लगती है कि ऐसा करने पर भुवन पर कोई आपत्ति नहीं आयेगी।

जोशी जी के पात्रों में विविध मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश है जैसे - 'क्षति-पूर्ति', 'आरोपण', 'सादात्म्यीकरण', 'निर्देशन', 'दण्ड' पाने का

---

1 - "शेखर-एक जीवनी"- प्रथम भाग - अज्ञेय - पृष्ठ 67
2- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय - संस्करण 1951, पृष्ठ 160

अचेतन-प्रयत्न', 'उदात्तीकरण', इत्यादि। अपने 'अहं' की सुरक्षा के लिए अज्ञेय का 'शेखर' भी प्रतिक्रियाएं करता है उसमें 'विस्थापन' व 'अति-क्षति-पूर्तिकरण' 'भय' 'लिबिडो' सभी का विकास निरन्तर होता है। 'अहं' की सुरक्षा के लिए मां से अप्रसन्न शेखर दीवार की ओर मुंह करके चिल्लाता है— "आई हेट हर"।[1] शारदा द्वारा 'तिली' कहे जाने पर वह एक पेड़ की 'स्त' आकार की डाली तोड़कर अपने क्रोध को विस्थापित करता है"।[2] 'अतिक्षति-पूर्ति' के फलस्वरूप माता-पिता के द्वारा गये अमनोवैज्ञानिक व्यवहार के कारण उपजी हीनता की ग्रंथि को दूर करके वह सामाजिक व राजनैतिक विचारों का प्रवक्ता बनता है।

अज्ञेय के उपन्यासों में इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों की तरह नायकों का प्रवेश कथा के प्रारंभिक भाग में नहीं होता है। वह हमारे सामने चुपकर नहीं आता वरन् उसकी स्मृतियाँ आकर पाठक को उसकी उपस्थिति की थोड़ी बहुत जानकारी दे जाती हैं।

'शेखर-एक जीवनी' में शेखर को हम तब उपस्थित पाते हैं, जब उसका व्यक्तित्व परिपक्व हो चुका है। 'नदी के द्वीप' में भी नायक का कोई परिचय हमें पूर्ण रूपेण नहीं मिलता है। हाँ "पर्दा उठते ही उसका नायक भुवन उपन्यास के रंग-मंच पर हक्का-बक्का सा और क्यों कैसे खड़ा है, कुछ पता नहीं चलता।"[3]

जोशी जी के उपन्यासों की यह विशेषता है कि उनके उपन्यासों में नायक के अलावा अन्य पात्र स्वयं आकर अपनी व दूसरों की कहानी कहते हैं जबकि अज्ञेयजी

1- देखें - "शेखर-एक जीवनी" अज्ञेय (प्रथम भाग) पृष्ठ 25
2- देखें - "शेखर-एक जीवनी" अज्ञेय (") पृष्ठ 171
3- "हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास"- डा० रणवीर रांग्रा संस्करण 1961, पृष्ठ 443

के अन्य पात्र पहले नायक और नायिकाओं की स्मृति-पटल से हमारे सम्मुख आते हैं।

अज्ञेयजी अपने पात्रों के रूप-चित्रण अर्थात नखशिख वर्णन के प्रति उदासीन रहे हैं। जोशी जी के उपन्यासों में हमें हर मुख्य नारी और मुख्य पुरुष की 'आकृति' का वर्णन तो मिलता ही है। डूबरी और अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' में यदि हम आदि से अन्त तक नायक 'भुवन' की आकृति, रंग-रूप को चिराग जलाकर भी ढूंढ़े तो भी पता नहीं चलता कि भुवन गोरा है या काला, कोट-पहने या कुर्ता। हाँ, रेखा के बारे में एक स्थल पर जरूर लिखा है कि वह सफेद रेशम की धोती पहनती है। गौरा का आकार जरूर तीन शब्दों में दर्शाया गया है कि -

"लम्बी, छरहरु, गम्भीर गौरा।"[1]

अज्ञेय जी के नारी-पात्रों का विश्लेषण करने पर उनके तीनों उपन्यासों में आये स्वरूप और उनमें व्याप्त बुनियादी तत्वों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती हुई 'डा० विमल सक्सेना' उन्हें निम्नांकित रूप में वर्गीकृत करती है :-

1- विवेक और अनुराग का सम्मिश्रण,
2- स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत,
3- अपने और प्रिय के जीवन को सफल, सार्थक बनाने का संकल्प,
4- स्वयं से साक्षात्कार करने का संघर्ष,
5- असह्य मानसिक यंत्रणा में रहने का तत्व,
6- आत्म संस्कार और निर्माण के फलस्वरूप एकाकी जीवन,
7- चेतना की धारा में बहने वाली जीवन का गतिशीलता,
8- आनन्द, भोग वैराग्य और मृत्यु बोध के विराट क्षणों से साक्षात्कार,"[2]

1- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय - संस्करण 1951, पृष्ठ 62
2- देखें, "हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण"- डा० विमल सक्सेना, संस्करण मार्च 1974, पृष्ठ 357, 358

इन तत्वों औरविशेषताओं में से केवल एक ही तत्व 'स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष'- व्यापक रूप से इलाचन्द्र जोशी की नारियों में मिलता है। उनकी नारी में कोई ऐसा चित्र नहीं है जो अपने और प्रिय के जीवन को सफल और सार्थक बनाने का प्रयत्न कर सके। उनकी सभी नारियों में पुरुष को धिक्कारने वाली वृत्ति प्रधान रूप से मिलती है। 'रेखा' जैसी विवाहिता नारी को अपने नारीत्व को अभिव्यक्त करने का अवसर केवल 'भुवन' द्वारा मिला। अपनी चिरउपेक्षित की आग भुवन द्वारा बुझाये जाने पर रेखा गर्भ धारण की स्थिति में भी, जो कि नितान्त अनैतिक स्थिति है, भुवन के कल्याण और आत्मसम्मान के प्रति सजग रहती है। अज्ञेय जी के सभी नारी व पुरुष पात्रों में 'क्षणवाद' का महत्व है। क्षण का भोग करने से वे चूकती नहीं हैं, परन्तु अगले ही क्षण वे 'आत्मरत' हो जाती हैं, और 'एकान्त' की ओर उन्मुख हो जाती है।

जोशी जी की नारी परिस्थिति के थपेड़े खाकर ही स्वावलम्बन की ओर बढ़ती है। 'मनिया', 'गुलबिया', 'सुनन्दा', 'मन्जरी', 'शशि' सभी नारियाँ संघर्ष भरे जीवन झेलने के बाद ही 'आत्म-सम्मान' व नारी-स्वातन्त्र्य' की ओर अग्रसर होती है। अज्ञेय की महान नायिका 'रेखा' प्रारम्भ से ही स्वतन्त्र व स्वावलम्बी है। खुद वेदना झेलकर वह स्वतन्त्र बनी है। वहाँ जोशीजी की 'मंजरी', 'मनिया', तथा 'निरंजना' अपने प्रेमियों व पतियों का धिक्कारती हैं। वहीं अज्ञेय की नारी रेखा अपने भुवन से 'वेदना' पाने पर भी उसे आशीर्वाद देती है।

"— अपने जीवन को परास्त भाव से नहीं द्रष्टा भाव से ग्रहण करो, एक विशाल पैटर्न है जो तुम्हें बुनना है, तुम्हारी प्रत्येक अनुभूति उसका अंग है प्रत्येक व्यथा एक-एक तार ---------- मैं भी उसी ताने-बाने के तारों का पुंज हूँ - तुम्हारे जीवन-पथ का एक छोटा सा फूल। मेरे बिना वह पैटर्न पूरा न होता, लेकिन मैं उस पैटर्न का अन्त नहीं हूँ।

- - - - मेरा आशीर्वाद लो भुवन और आगे बढ़ो, जहाँ भी तुम जाओ, जो भी करो, मेरा प्यार और आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। मेरा विश्वास तुममें अडिग है।"[1]

ब्रह्मानन्द-सहोदर स्थी आनन्द को तो केवल क्षण भर में भी भोगा जा सकता है। अज्ञेय के पात्रों द्वारा यह सिद्ध होता है कि रेखा का 'फुलफिल-मेंट' क्षणिक भोग में है। वह कहती है - "-- अब अगर मैं मर जाऊँ तो परमात्मा के, प्रकृति के प्रति यह आक्रोश लेकर नहीं जाऊँगी कि मैंने कोई भी फुलफिलमेंट नहीं जाना - कृतज्ञ भाव लेकर ही जाऊँगी -- परमात्मा के प्रति और भुवन, तुम्हारे प्रति।"[2]

अज्ञेय जी की नारी 'प्रतीक' रूप में सामने आयी है। जबकि जोशीजी की नारी में अज्ञेय जी जैसी प्रतीकात्मकता नहीं है।

पात्रों के सृजन के बाद उनके चारित्रिक उद्घाटन की नितान्त मनोवैज्ञानिक प्रणालियाँ अज्ञेय जी के उपन्यासों में मिलती हैं। इनमें से मुख्य निम्नवत हैं:-

1- पात्रों की पूर्व स्मृति द्वारा चरित्र-चित्रण (फ्लैश बैक सिस्टम)
2- प्रत्यक्षलोकन,
3- आत्मविश्लेषण,
4- स्वप्न पद्धति,
5- चिन्ता (हेल्युसिनेशन)
6- पेंटिंग,
7- गीतों द्वारा चरित्राभिव्यक्ति,
8- पत्रों द्वारा मानसिक जगत का उद्घाटन,

1- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय, संस्करण 1951, पृष्ठ 15 272
2- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय, संस्करण 1951, पृष्ठ 159

इन सभी विधियों में अंतिम दो विधियां जोशी जी के 'चरित्र-विश्लेषण' की शैलियों से सामान्यतः भिन्न कोटि की हैं। गीतों द्वारा {चाहे वह 'भारतीय' हों या 'पाश्चात्य'} 'नदी के द्वीप' में पात्रों के अन्तरंग को जानने-परखने का सफलतम प्रयास अज्ञेय जी ने किया है। रेखा की भावनाएं सदा उसके द्वारा गाये जाने वाले गीतों में मुखरित होती हैं।

पहलगाँव की ओर जाते हुए एक चट्टान पर क्षणिक विश्राम लेने के समय 'रेखा', 'भुवन' के मुँह को चूमती हुई भावों को अभिव्यक्त करने वाला यह गीत गाती है :-

"यदि दो घड़ियों का जीवन
कोमल वृंतों में बीते,
कुछ हानि तुम्हारी है क्या ?
चुपचाप चू पड़े जीते,।"[1]

रेखा न केवल अपनी अन्तरतम् की इच्छा जाहिर करती है अपितु भुवन के मन में भी यही इच्छा उद्दीप्त करती है। उक्त गीत यही भाव व्यक्त करता है।

अपने फुलफिलमेंट के पश्चात् पहलगांव में रेखा द्वारा भुवन के लिए छोड़े गये लिफाफे में लिखा यह गीत उसकी मानसिक स्थिति को प्रकट करता है :-

"आई सेट टू माई सोलः वी स्टिल वेट विदाउट होप,
फार होप वुड बी ऑफ द रांग थिंग,
वेट विदाउट लव, फार लव वुड बी लव ऑफ द रांग थिंग,
देयर इज़ येट फेथ, बट द फेथ एंड द लव एंड द-
होप आर ऑल इन द वेटिंग।"[2]

1- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय - संस्करण 1951, पृष्ठ 148
2- देखें - "नदी के द्वीप" - अज्ञेय संस्करण 1951, पृष्ठ 161

'शेखर-एक जीवनी' में भी विविध गीतों के उदाहरण देकर लेखक पात्र की मनःस्थितियों को उद्घाटित करता चलता है। शेखर के आत्म-हत्या का प्रयत्न करने के बाद वापस लौटने पर सारी रात शशि के उसके पास रहती है और यह गीत गाती है :-

"आजि मर्मर-ध्वनि केन जागिलो रे।
आजि मम अन्तर माझे,
कोया पथिकेर पद-ध्वनि बाजे
ताई चकित-चकित धूम भांगिलो रे
आजि मर्मर-ध्वनि केन जागिलो रे।"[1]

इसी प्रकार अनेकों प्राच्य और पाश्चात्य गीतों के उदाहरण पात्रों की अन्तर की झांकी दिखाते हैं। यह चरित्र-विश्लेषण की प्रणाली अज्ञेय के समकालीनों में बिलकुल नवीन है। इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में केवल 'जयन्ती' का एक गीतांश उसकी मनः वीणा का घोष करता है -

"अकेली मत जइयो राधे,
जमुना के तीर।"[2]

पत्रों द्वारा चारित्रिक विश्लेषण की शैली भी अज्ञेय की शिल्पगत प्रौढ़ता का गान करती है। 'नदी के द्वीप' के सारे पत्र 'भुवन', 'रेखा', 'गौरा', 'चन्द्रमाधव' के चरित्रों का उद्घाटन करने में समर्थ हैं। शारीरिक भेंट के अभाव के पात्र पत्रों द्वारा मानसिक भेंट जारी रखते हैं। भुवन और रेखा के 'वायलिनिस्ट-सर्जन' के अधूरे ही गिर जाने से दोनों के मानसिक जगत में जो

1- "शेखर-एक जीवनी" - भाग-2, अज्ञेय - पृष्ठ 168
2- "सन्यासी" - इलाचन्द्र जोशी- सप्तम आवृत्ति पृष्ठ - 351

कुहराम मचता है, वह यह दर्शाता है कि किस प्रकार वे नदी के द्वीप की तरह-अलग-अलग जाकर धारा में मिल रहे हैं। रेखा द्वारा भुवन को लिखे गये एक पत्र का सूचना देखें :- "वहाँ फूल थे, सुहानी शारदीया धूप थी, और तुम थे और मेरा दर्द था। यहाँ गरम, उद्गन्ध बौखलायी हुई हरियाली है, धूप से देह घुनघुना उठती है, और तुम नहीं हो। और दर्द की बजाय एक सूनेपन है, जिसे मैं शांति मान लेती हूँ —।"[1]

चन्द्रमाधव के कुंठित व्यक्तित्व की झलक हमें भुवन द्वारा गौरा को लिखे गये निम्न पत्र से मिलती है :-

"चन्द्रमाधव भी अत्यन्त कुण्ठित व्यक्ति है - जब तक वह नहीं था, तब तक उसमें असन्तोष बहुत था पर यह रूप उसने नहीं लिया था, अब वह कुण्ठित हो चुका है और उसका असन्तोष युक्ति से परे हो गया है — कुण्ठित होना अब उसके लिए जीवन की एक आवश्यकता बन गया है, उसकी कुण्ठा और उसका वाद परस्पर दोषी है, और एक दूसरे को और गहरा पहुँचाते हैं।"[2]

इस प्रकार चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में जोशी जी अज्ञेय जी से कुछ मामलों में पीछे छूट गये हैं। वर्तमान बौद्धिक समाज में जीने वाला मनुष्य आज भी अज्ञेय जी के गीतों को याद करता हुआ अपने अचेतन मन की इच्छाओं को उनमें आरोपित करता है।

अज्ञेय के पात्रों में कथोपकथन या संवाद-तत्व तो लगभग न के बराबर है। क्योंकि उनके पात्र स्थितियों में जीते हैं, पत्रों द्वारा एक दूसरे से मिलते हैं। पल दो पल के मिलन में गीतों के अधिकाधिक प्रयोग से संवादों को उतना स्थान नहीं

1- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय - संस्करण 1951, पृष्ठ 249
2- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय - संस्करण 1951, पृष्ठ 309

मिलता है, जितना कि इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में मिलता है। जोशी जी के उपन्यासों के समस्त पात्र आमने-सामने होकर बातें करते हैं। अतः उनमें संवाद-कौशल और मनोवैज्ञानिकता देखने को मिलती है। परन्तु अज्ञेय जी के पात्र जब भी एक दूसरे से बात करते हैं उनमें उनका व्यक्तिवादी चिन्तन व काव्यात्मक शैलिकता के सिवाय और कुछ नहीं मिलता। काव्यमय संवादों द्वारा ही मनःस्थिति व अवेतन के अन्तर्द्वन्द्वों को अभिव्यक्त करते हैं।

'वातावरण-सृजन' की दृष्टि से अज्ञेय और जोशी जी की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि अज्ञेय जी इलाचन्द्र जोशी जी से गंभीर वातावरण सर्जक हैं। उनके उपन्यासों में प्राकृतिक दृश्यों की भरमार है। इन्हीं प्राकृतिक दृश्यों के द्वारा लेखक ने अपने पात्रों की मनोदशा को स्पष्ट करने का भागीरथ प्रयत्न किया है। अज्ञेय जी ने प्रकृति के हर रंग में पात्र की मानसिक दशा का आरोपण किया है। उन्होंने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों को पात्रों के अवेतन कार्य-कलापों के प्रस्फुटन के साथ जोड़ा है 'शेखर' के निराश मन का एक चित्र देखिए :-

"एक पथरीले नीले रंग की धूमिल सांझ चौतल्ले के एक अकेले कोणाकार कमरे की खुली खिड़कियों में से ठंडा और बोझीला और तेजाब की तरह चुभने वाला, तांबे की केतली की सी भारी और बदरंग चिकनाहट लिए शहर के पीछे का धुआं भीतर धँसा चला आ रहा है। ----- शेखर धुँए से आंधी पर जलन के कारण और भी निर्बल आँखों को बलात् खोले हुए खाट के एक कोने में दुबका हुआ बैठा है, और धूमिल भाव से अनुभव करता है कि यह बाहर का चित्र उसकी भीतरी अवस्था की कैसी विडम्बना है।"[1]

1- "शेखर-एक जीवनी" - भाग- एक - अज्ञेय - पृष्ठ 194-195

अज्ञेय जी के उपन्यासों में जीवन के आशामय पक्ष को दर्शाने के लिए आशापूर्ण वातावरण का सृजन हुआ है। 'नदी के द्वीप' में रेखा के स्वस्थ होने का संकेत प्रातः कालीन वातावरण द्वारा दिया गया है :-

" - - - - - - - - - स्निग्ध अलसाये शरीर की अंगड़ाई सुखद और स्फूर्तिदायक होती है, पर ठिठुरे शरीर की अंगड़ाई मानो और भी जड़ बना देती है। वह बाहर के मंडप में गयी, बादलों की चादर अब भी समान रूप से आकाश में फैली थी, पर अब उनमें एक फीकापन था। भोर होने वाला है - - - - - - - - - भुवन ने फिर घड़ी देखी - - - - - - - छः बजने को थे।"[1]

अज्ञेय जी में वातावरण को मनोनुकूल बनाने की ग़ज़ब की शक्ति है। कभी प्रकृति के उन्मादक स्थल पात्रों के अचेतन की दमित इच्छाओं को व्यक्त करते हैं, तो कभी प्रकृति के मौनमुखी रूप उनके निराशापूर्ण क्षणों को वाणी देते हैं। 'टी०एस०इलियट', 'टेनीसन', 'रवीन्द्र नाथ टैगोर,' 'जयशंकर प्रसाद' इत्यादि के गीतों के उद्धरण भी भावानुकूल वातावरण की सृष्टि करते हैं।

अज्ञेय के उपन्यासों की भाषा मन के भारी से भारी बोझ को फूलों के से भार की तरह वहन करती प्रतीत होती है। उसमें कोई बनावटीपन, कोई स्थूलता नहीं है। मन की भाषा से पात्रों के व्यक्तित्व को उद्घाटित करने में अज्ञेय जी इलाचन्द्र जोशी जी से आगे निकल गये हैं। उनकी भाषा में संवेगों व स्थितियों के सजीव चित्र उतारने की अद्भुत क्षमता है। पात्रों की अज्ञेयता को अपनी काव्यमयता के द्वारा दूर करने के कारण अज्ञेय जी की भाषा में 'संवेदन' तत्त्व की अधिक प्रधानता हो गयी है।

इलाचन्द्र जोशी की ही भाँति अज्ञेय जी की भाषा में काव्यमयता निर्बन्ध होकर विचरती है। पात्रों के सुशिक्षित व सुसभ्यतक होने के कारण

1- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय - संस्करण 1951, पृष्ठ 235

उनकी भाषा-शैली में भावात्मक स्थलों का समावेश अधिकाधिक रूप में हुआ है। "अज्ञेय जी अपने उपन्यासों में जब पात्र की कोमल मनोभावनाओं की ओर प्रवृत्त होते हैं तब उनकी भाषा काव्यमयी हो उठती है। गद्य में काव्यरस का संचार करने में अज्ञेय बहुत कुशल हैं।"[1]

ऐसा लगता है जैसी सारा छायावादी माधुर्य अज्ञेय की भाषा ने ग्रहण कर लिया हो। 'नदी के द्वीप' में रेखा अपने मनोभावनाओं की हृदतन्त्री छेड़ती हुई कहती है :-

" - - - - तुमने आँधी की तरह आकर मुझको आलोड़ित कर दिया, मुझमें अनन्त आकाश को प्रतिबिम्बित कर दिया। मुझे कहने दो, भुवन मेरी यह देह जैसे तुम्हारी ओर उमड़ी थी, वैसे कभी नहीं उमड़ी, शिराशिरा ने तुम्हारा स्पर्श मांगा, तुम्हारे हाथों का स्पर्श, तुम्हारी बाहों की जकड़ - - - और जिससे छुआ जाकर मेरा तूफान सहसा शांत हो गया, मैं फिर उसी तल पर पहुँच गयी जिस तल पर ताल सदा से था, - - ढका हुआ निश्चल, खड़े पानी का एक उद्देश्यहीन जमाव।"[2]

संकेतात्मक भाषा का होना अज्ञेय को जोशी से अधिक समर्थ बनाता है। पात्र के अलक्ष्य एवं गहन मनोभावों को वे जब शब्दों में बांधना चाहते हैं तो उनकी भाषा में संकेतों के कारण जटिलता व अबूझपन आ जाता है। गौरा के बारे में भुवन द्वारा लिखे गये ये शब्द कितने गुरु-गम्भीर हैं ---"तुमने मेरी बात नहीं समझी थी। - - - - - तुम्हारे लिए नहीं, जिसका भविष्य आगे है, भविष्य जो सुनहला हो, जिसमें हंसी हो, बालारुण की आभा हो, आलोक हो, मैं जैसे तमिस्रा का पोष्य पुत्र हूँ - इसीलिए आलोक की पूजा करता आया हूँ, कभी

1- "हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास" - डा० श्रीमती ओम शुक्ल, संस्करण जुलाई 1964, पृष्ठ 313

2- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय -संस्करण - 1951, पृष्ठ 162

दूर से, जैसा कि ठीक है, कभी निकट से, जैसा कि विपज्जनक है, कभी छूने को ललचाया हूँ, जो महान है क्योंकि छूने से आलोक बुझ जाता है।" 1

जोशी जी और अज्ञेय जी दोनों के उपन्यासों में नैतिकता का प्रश्न, सामाजिकता का प्रश्न व उनके प्रतिमान अलग-अलग हैं। जोशी जी के उपन्यासों में कहीं भी मर्यादा तोड़कर खुल्लमखुल्ला अश्लीलता नहीं मिलती। 'ऋतुचक्र' में दादा मिलन कुमार और प्रतिमा के प्रथम 'योन-मिलन' के कुछ दृश्यों में कामुकता अवश्य आ गयी है, लेकिन वह उनकी रोमांटिक वृत्ति का परिणाम है। अज्ञेय जी के उपन्यासों में पात्रों को श्लीलता, अश्लीलता की कोई चिन्ता नहीं है। उनके पात्र जीवन में 'काम', 'अहं' को विजयिनी शक्ति मानकर उनका जयघोष करते हुए खुल्लमखुल्ला उसका खेल खेलते हैं। अज्ञेय का यह व्यक्तिवादी विद्रोह उन्हें जोशी जी की नारी आकृति की मिसाल, पात्रों की भूमिका से अलग ला खड़ा करता है।

अज्ञेय जी के उपन्यास समाज में निर्भय होकर बन्धन मुक्त होकर जीने की पाश्चात्य कला का आवाहन करते हैं। 'नदी के द्वीप' में अज्ञेय की इस कला की सजीवता जगह-जगह निखारें लेती हैं :-

"सहसा भुवन ने कम्बल हटाया, मृदु किन्तु निष्कम्प हाथों से रेखा के गले के बटन खोले और चाँदनी में उभर आये उसके कुचों के बीच की छायाभरी जगह को चूम लिया, फिर अधरों-भाव से उसकी ग्रीवा को, कन्धों को, कर्णमूल को, पलकों को, ओठों को, कुचों को, - और फिर उसे निकट खींचकर ढक लिया।" 2

जबकि जोशी जी के 'ऋतुचक्र' के प्रसंग में भी इतनी स्वच्छन्दता, इतनी उन्मुक्तता नहीं है। दादा मिलन कुमार और प्रतिमा के मिलन का दृश्य इतना नग्न नहीं है:

1- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय - संस्करण 1951, पृष्ठ 323
22- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय - संस्करण 1951, पृष्ठ 152

"पगली भोली लड़की। आधे मिनट बाद दांतों को हल्के-हल्के पीसते हुए, अपूर्व मधुर पुचकार भरे स्वर में दादा बोले- और कहते हुए उन्होंने अपने हाथ को, जो अभी तक केवल प्रीतमा की अधुलती पीठ को ही घेरे हुए था, उससे आगे नहीं बढ़ा था, कुछ आगे की ओर खिसकाया। उस सीमा के बाद प्रीतमा के हाथ की दीवार खड़ी थी ----------

------आगे रास्ता नहीं मिला। उसकी सितार के तारों की तरह थरथराई हुई उँगलियाँ टटोल रही थी पर वह बहुत ही भीत-बहुत ही कंपित थी। जिस मंजिल तक वे उँगलियाँ पहुँचना चाहती थीं, वह एक सुदृढ़ रूप से सुरक्षित किले की तरह दुर्गम लग रही थी। दादा ने उस दुर्ग पर बरबस चढ़ाई करने का कोई प्रयास नहीं किया।"[1]

जोशी जी के पात्रों की तरह अज्ञेय के उपन्यासों में कोई भी पात्र खिलाफिटा या फीमल व्यक्तित्व लेकर नहीं आया है। अज्ञेय जी और इलाचन्द्र जोशी जी की तुलना करते हुए - डा० रवीन्द्र कुमार जैन ; लिखते हैं :-

-- "श्री जोशी व्यक्तिमन और समाजमन या संस्कारी मन का एक समन्वय प्रस्तुत करते हैं। व्यक्तिमन रोचक व तीक्ष्ण घटकों को पीता और फोड़ता चलता है, पर, फूटने पर पर्याप्त पछताता भी है ----- अज्ञेय ने तो स्पष्टतः यौनमन की ओर घोर वैयक्तिकता का, उसके वेगों और उँचाईयों का समर्थन किया है, उसे बौद्धिक रूप भी दिया है ------- जोशी जी में संवेगों और भावों का प्राबल्य है, जबकि अज्ञेय में भावों और वेगों का प्रवाह गौण है।"[2]

जोशी जी मन के मैल को निकालकर उसके स्थान पर सबल प्रकाश की

1- "सुनयना" - इलाचन्द्र जोशी, तृतीय संस्करण 1985, पृष्ठ 229

2- "उपन्यास- सिद्धान्त और संरचना" - तृतीय संस्करण 1972, डा० रवीन्द्र कुमार जैन, पृष्ठ 94,95

सृष्टि करते हैं, जबकि अज्ञेय जी के लिए मन की व्यथा ही गौरवमयी है मन का दर्द ही स्वयं प्रकाश है - - - - - - - - - - "इस जीवन का दर्द इसलिए मूल्यवान नहीं है कि किसी दूसरे जीवन में उसका पुरस्कार मिलेगा, इसलिए मूल्यवान है कि इस जीवन के आगे और कुछ नहीं है"[1] इसलिए अज्ञेय जी अतिशय 'व्यक्तिवाद' को, अतिशय आत्म केन्द्रता को ही सर्वस्व मानकर उपन्यास में मानवमन का चित्रण करते है : जबकि जोशी जी का साहित्य इससे आगे जाता है।

(4) <u>इलाचन्द्र जोशी एवं भगवती प्रसाद वाजपेयी</u> :- मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की परिपाटी में इलाचन्द्र जोशी जी की तुलना 'भगवती प्रसाद वाजपेयी' के परवर्ती उपन्यासों से की जा सकती है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों का रचना-काल प्रेमचन्द के पूर्व से शुरू होकर प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों की परम्परा को आगे बढ़ाता हुआ समाप्त होता है। समाज के विस्तृत प्रांगण में चली गयी इनकी रचनाएँ मुख्य रूप से मध्यवर्गीय जीवन की उथल-पुथल का चित्रांकन करती हैं। प्रेमचन्द युग इनकी रचनाओं को प्रोढ़त्व देता है, परन्तु नित नवीन अनुभवों के सहारे ये 'प्रेम और विवाह' की मनोवैज्ञानिक समस्याओं को लेते हुए - आगे बढ़ते है। डा० नगेन्द्र के अनुसार - "वाजपेयी जी का लिखना प्रेमचन्द युग से प्रारम्भ हुआ था पर नित्य नये जीवनानुभवों के सहारे युग-युगान्तरों को लांघते हुए ये अब तक चालीस से अधिक उपन्यास लिख चुके है। वाजपेयी जी के उपन्यासों की मूल समस्या है 'प्रेम और विवाह में वैमनस्य'।"[2]

1- "नदी के द्वीप" - अज्ञेय - संस्करण 1951, पृष्ठ 324
2- "हिन्दी वाङमय- बीसवीं शती - डा० नगेन्द्र- प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ 191

इनके उपन्यासों की रचना का प्रमुख उद्देश्य समाज में व्याप्त विविध समस्याओं के फलस्वरूप मानव में आयी विकृतियों का चित्रण करना रहा है। इनके सामाजिक जीवन की मनोवैज्ञानिक फोटोग्राफी करने वाले मुख्य उपन्यास हैं :- 'प्रेमपथ', 'पतिता की साधना', 'मीठी-चुटकी','पतवार', 'पिपासा', 'अनाथ-पत्नी', 'दो-बहिनें', 'त्यागमयी', 'लालिमा', 'प्रेमनिर्वाह', 'निमंत्रण', 'गुप्तधन', 'मनुष्य और देवता', 'धरती की सांस', 'एक प्रश्न', 'विश्वास का बल', 'उन्हें न कहना', 'सपना बिक गया', 'पाषाण की लोच', 'टूटा टी सैट', 'बन्धन और पानी', 'टूटते बंधन', 'कर्मपथ' इत्यादि।

इनके बाद के लगभग 20 उपन्यासों का रचनाकाल इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों के रचनाकाल का समवर्ती है। समाज में व्याप्त विषमताओं, पाश्चात्य मनोविज्ञान के अधिकाधिक प्रसार ने बाजपेयी जी के उपन्यासों को भी प्रभावित किया। इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों की तरह 'यौन-समस्याएं' इनके भी उपन्यासों की सृजन-शक्ति बनी हैं। छोटे-छोटे कथानकों को लेकर चलने वाले इनके उपन्यास "प्रेमचन्द और प्रेमचन्दोत्तर युग की कड़ी हैं। नारी और पुरुष के यौवन-गत उद्दाम आवेग का आकुल आकर्षण प्रायः उनके उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु है। भावुकता और काम-प्रवणता आज के मध्यवर्गीय जीवन की सहज दुर्बलता है।"[1]

इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यास केवल मानव की कुण्ठाओं व मन में पड़ी कामग्रंथियों केचित्रण व विश्लेषण को अंकित करते हैं। परन्तु भगवती प्रसाद वाजपेई जी के उपन्यासों में यह दर्शाया गया है कि जीवन का स्वस्थ उपभोग तो स्पृहणीय है, किन्तु जब चिर-अतृप्ति की भावना व्यक्ति-मात्र को जकड़ लेती है

1.- "हिन्दी उपन्यास, एक सर्वेक्षण" - महेन्द्र चतुर्वेदी,
प्रथम संस्करण 1962, पृष्ठ 162

तो उसमें जन्म लेते हैं- अगति, कुण्ठा, अविश्वास, और भीषण नैराश्य ।

जहाँ जोशी जी अपने उपन्यासों में दुर्बल से दुर्बल प्रकृति वाले उच्च वर्गीय या उच्चमध्यवर्गीय मानव के मानस की मनःस्थितियों को दर्शाते हैं, वहीं भगवती प्रसाद वाजपेई की पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं को चित्रित करते हैं ।

प्राचीनता और नवीनता के संघर्ष के फलस्वरूप उपजी अशांति उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं में मिलती है । "मनोवैज्ञानिक कुण्ठाएं और ग्रंथियाँ मनुष्य के स्वभाव में किस प्रकार से व्यापक परिवर्तन ला देती हैं और उसके फलस्वरूप भावनाशील व्यक्तियों के जीवन किस विकृतियों से ग्रस्त हो जाते हैं और परिणामः उन्हें किस प्रकार की विडम्बनाएं झेलनी पड़ती हैं, इसका भी चित्रण बाजपेयी जी के अनेक उपन्यासों में मिलता है ।"[1]

बाजपेयी जी भी इलाचन्द्र जोशी की तरह आदर्श व यथार्थ दोनों को लेकर चलते हैं और उनके चित्रण में मनोविज्ञान का आश्रय लेते हैं। कथानक की दृष्टि से इलाचन्द्र जोशी और बाजपेयी जी की तुलना करने पर दोनों में पर्याप्त वैषम्य दिखता है । जोशी जी के उपन्यासों के कथानक विस्तृत होने के कारण और मनोवैज्ञानिक चित्रण के आग्रह के कारण कहीं-कहीं शिथिलता की ओर बढ़ते हैं, परन्तु बाजपेयी जी के कथानकों का धरातल विस्तृत है, उनमें उतना विस्तार, नहीं है, लघुता को लक्ष्य बनाकर चलने वाले उनके उपन्यासों में समस्याओं का पर्याप्त वैविध्य है । उनके कथानकों में खलाव तो है परन्तु जीवन के विविध क्षेत्रों का भी विस्तार है ।

1- "हिन्दी उपन्यास का परिव्याख्यक इतिहास"- डा० प्रताप नारायण टण्डन, प्रथम संस्करण 1967, पृष्ठ 308

इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में कथानक किसी एक पुरुष या नारी पात्र को लेकर विकसित हुए हैं, परन्तु भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों में एक पुरुष या एक नारी को लेकर कई पात्रों की मानसिक उथल-पुथल को एक ही उपन्यास के माध्यम से चित्रित किया गया है। इनके उपन्यासों के पात्रों की आलोचना करते हुए 'रवीन्द्र कुमार जैन' लिखते हैं:-

"भावुकता, कामुकता तथा कष्ट सहन की प्रवृत्ति वाजपेयी जी के प्राय: सभी पात्रों में परिलक्षित होती है। इनके पात्र एक पराजित एवं निराशा-मूलक व्यक्तित्व लिए रहते हैं।"[1]

इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों के पात्रों में पराजेयता जैसे गुण कम मिलते हैं। परिस्थितियों से व्यापक संघर्ष उनकी पराधीन प्रवृत्ति या पराजेय प्रवृत्ति को दूर करता चलता है।

व्यक्तिक्रम के प्रति समाज की उपेक्षा और असहिष्णुता के हृदय द्रावक चित्र वाजपेयी जी की रचनाओं में सर्वत्र दृष्टिगत होते हैं, जबकि जोशी जी के उपन्यासों में पात्रों के प्रति समाज की उपेक्षा जैसे कोई लक्षण नहीं मिलते हैं। इसका एक मात्र कारण है - 'उनके पात्रों का धनाढ्य व उच्च वर्ग से संबंधित होना'। इस पूँजीपतित्व के पीछे सच्चाई का जो नग्ननर्तन मानव के अचेतनमन में होता है, उसकी अगाधता के चित्रण में जोशी जी माहिर हैं जबकि वाजपेयी जी के मध्यवर्गीय परिवारों से सम्बन्धित पात्र प्रेमचन्दी प्रभाव को लेकर चलते हैं। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व व उनके मनोविज्ञान को लेकर चलने वाले उपन्यासों को हम मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कोटि में रख सकते हैं। 'आचार्य नन्द दुलारे

1- "उपन्यास, सिद्धान्त और संरचना" - डा० रवीन्द्र कुमार जैन,
प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ 133

बाजपेयी' इनके उपन्यासों की समीक्षा करते हुए लिखते हैं - "जब कभी ये उपन्यास सामाजिक प्रगति की भूमि को छोड़कर एकान्तिक मनोवैज्ञानिक ऊहा-पोह में लग जाते हैं। तब न तो सच्चे अर्थों में क्या चरित्र-चित्रण ही हो पाता है, न उपन्यासों की सामाजिकता ही रह पाती है, जो पात्र और परिस्थितियाँ उपन्यासों में चित्रित होती हैं, वे कभी-कभी दर्शन और मनोविज्ञान के नाम पर निरुद्देश्य भावुकता या चारित्रिक दुर्बलता को ही अंकित करती हैं।"[1]

इनकी औपन्यासिक रचनाएं अधिकतर पूरे परिवार के यौन, विवाह आदि समस्याओं को लेकर चलती हैं। जोशी जी के 'सुबह के भूले' को छोड़कर बाकी उपन्यासों में पारिवारिक धरातल को विस्तृत रूप में नहीं छुआ गया है।

'प्रेम की पीड़ा' बाजपेयी जी के सभी उपन्यासों में व्याप्त है। उनके उपन्यास तज्जन्य मानसिक ऊहापोह को सर्वत्र चित्रित करते हैं। 'पतिता की साधना', 'दो-बहनें', 'निमंत्रण', 'चलते-चलते', 'अनाथ पत्नी' इन सभी उपन्यासों में प्रेम की समस्या, यौन-समस्या के मनोवैज्ञानिक चित्र मिलते हैं।

'पतिता की साधना' में नन्दा, हरी, 'दो-बहनें' का ज्ञान प्रकाश, लता, आशा, 'चलते-चलते' का राजेन्द्र और 'निमंत्रण' की मालती ये सब पात्र यौन-समस्या से ग्रस्त हैं और कष्ट-साधना में रत हैं। इन सभी पात्रों में इनकी प्रगति व विद्रोह जोशी जी के उपन्यासों की तरह ऊर्ध्वगामी न होकर अधोगामी होकर ही रह गया है। "इनके पात्र सहते अधिक हैं, कहते और करते कम हैं।"[2]

इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में पात्रों की मनोभूमि में पड़ी

1- "नया साहित्य, नये प्रश्न" - नन्द दुलारे बाजपेयी, पृष्ठ 177
2- "उपन्यास: सिद्धान्त और संरचना" - रवीन्द्र कुमार जैन, प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ 134

ग्रंथियां मनःचिकित्सा द्वारा सुलझकर पुनः स्वस्थता की ओर बढ़ती है पर बाजपेयी जी का संकल्प तो पात्रों के आन्तरिक व्यक्तित्व का, उनकी समस्याओं को तीव्र मानस-वेग से चित्रित करना रहा है। यौन-पीड़ा भोगने का रक्तारे खींचने में बाजपेयी जी सिद्ध हस्त है, पर उस पीड़ा को दूर करने का उन्नत रूप उनके उपन्यासों में नहीं है। उनके पात्र सर्वथा सामाजिक और पारम्परिक आवरणों से पृथक होकर नहीं जी पाते है, जैसे कि जोशी जी के पात्र।

भाषा-शैली की दृष्टि से भगवती प्रसाद बाजपेयी में कोई मनोवैज्ञानिकता या भ्यापन नहीं है। इसका एक मात्र कारण उन पर बढ़ा प्रेमचन्दी रंग है। प्रेमचन्द के समकालीन होने के कारण उनके प्रारंभिक उपन्यासों की जो शैली रही है वह परवर्ती उपन्यासों में भी चली है, भले ही उनके परवर्ती उपन्यास व्यक्ति के मानस की अगाधता की ओर कितना ही क्यों न बढ़ गये हों। "बाजपेयी जी समाज की उन्नति के लिए व्यक्ति का विकास अनिवार्य मानते हैं। किन्तु व्यक्ति विकास के लिए जो अनवरत संघर्ष आवश्यक है उसका इनके पात्रों में प्रायः अभाव मिलता है जिस विषम परिस्थितियों में व्यक्ति जड़वत् हो जाता है, उन्हें शब्दों में बांधने का प्रयास बाजपेयी जी ने किया है।"[1] प्रेमचन्द परम्परा से विच्युत होने के कारण शैली परक दृष्टि से वे प्रेमचन्द युग में ही आबद्ध होकर रह गये हैं। पर विषयवस्तु के धरातल पर मनोवैज्ञानिकता होने के कारण वे इलाचन्द्र जोशी जी की मनोवैज्ञानिकता की परिधि के अन्दर भी प्रविष्ट हुए हैं।

1- "हिन्दी उपन्यास: प्रेमचन्दोत्तर काल" - डा० राम शोभित प्रसाद सिंह, प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ 513, 514

(5) इलाचन्द्र जोशी एवं डा० देवराज :- डा० देवराज हिन्दी की मनोवैज्ञानिक उपन्यास परम्परा को आगे बढ़ाने, उसे और विस्तृत रूप देने वाले समर्थ मनोवैज्ञानिक कलाकार हैं। इनके उपन्यासों में केवल कथानक का आधार ही मनोवैज्ञानिक नहीं है, अपितु पात्रों की सृष्टि व उनके चरित्र-चित्रण की शैली भी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रयुक्त की गयी है। पूर्ण मनोविश्लेषणात्मक शैली का अनुगमन करते हुए डा० देवराज ने जैनेन्द्र, अज्ञेय और जोशी से विरासत में प्राप्त उपन्यास कला को और अधिक परिमार्जित किया है।

मानव समाज ने बौद्धिक स्तर पर तो नवीन जीवन-मूल्य ग्रहण कर लिए हैं परन्तु उनके भीतर उनके अचेतन में जमे हुए सदियों-दर-सदियों के प्राचीन संस्कार मानव को इतना अधिक जकड़े हुए हैं कि अभी तक वह उनके पाश से लाख छटपटाहट के बावजूद मुक्त नहीं हो सका है। बौद्धिक मान्यतायें और पुरातन संस्कारों के संघर्ष उसके भीतर निरन्तर कुण्ठाओं को ही जन्म देते रहते हैं, फलतः जीवन में उपजे शून्य से मानव निष्क्रिय व भीरु सा हो गया है। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी मानव की इसी विडम्बना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण 'डा० देवराज' के उपन्यासों में हुआ है।

डा० देवराज के उपन्यासों के अन्दर वही समस्या है जो इलाचन्द्र जोशी जी की। दोनों उपन्यासकारों की रचना प्रक्रिया का दृष्टिकोण एक ही है। डा० देवराज ने निम्नलिखित उपन्यासों की रचना की है:-

1- 'पथ की खोज' (1951 ई०)
2- 'बाहर भीतर' (1954 ई०) 'भीतर के घाव' नाम से प्रकाशित

3- रोड़े और पत्थर' ‖ 1958 ई०‖

4- 'अज्ञेय की डायरी' ‖ 1960 ई०‖

5- 'मैं वे और आप' ‖ 1969 ई०‖ 'अज्ञेय की डायरी' का अगला भाग

6- 'दूसरा सूत्र' ‖ 1978 ई०‖

इन उपन्यासों में 'पथ की खोज' नामक उपन्यास दो रूपों में प्रकाशित हुआ। "इस उपन्यास के दार्शनिक वैचारिकता की पृष्ठभूमि में उस शाश्वत् चेतना की विवृत्ति की गयी है जो समस्त मानवता का मूल प्राण है।"[1]

फ्रायडियन मनोविज्ञान का अनुसरण करने वाले इस उपन्यास में मध्य-वर्गीय एवंलोन्मुख आकांक्षों का संयत मनोवैज्ञानिक चित्र उभारा गया है। नवीनता और प्राचीनता के मध्य संघर्ष करते हुए इस उपन्यास के पात्र व्यक्तित्व-हीनता की स्थिति प्राप्त करते हैं। इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों का मूल लक्ष्य नवीन और पुरातन के मध्य होने वाले संघर्ष के फलस्वरूप आये नकलीपन को उघाड़ना है। 'डा० सुरेश सिन्हा' उनके उपन्यासों के बारे में अपनी आलोचक दृष्टि डालते हुए लिखते हैं :- "जोशी जी अपने उपन्यासों के माध्यम से उसी अहं पर प्रहार करते हैं और मानव मन के सभी नकली आवरण उतारकर उसे असली रूप में हमारे सामने रख देते हैं। व्यक्तित्व में पनपता अहं भाव वर्तमान पूँजीवादी संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है।"[2]

इसी विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए डा० देवराज के विस्तृत उपन्यास 'पथ की खोज' में भी मानव-जीवन के इसी नकारात्मक पक्ष की ओर लेखक की व्यापक दृष्टि पड़ी है। डा० देवराज के इसी उपन्यास की समीक्षा करते हुए

1- "हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास" - डा० प्रताप नारायण टण्डन, प्रथम संस्करण 1967 ई० पृष्ठ 458

2- "व्यक्तिवादी एवं निषेधवादी चेतना के संदर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा" डा० रमाकान्त श्रीवास्तव, प्रथम संस्करण 1977, से संकलित, पृष्ठ 284

'डा० त्रिभुवन सिंह' लिखते हैं :-

"मनोवैज्ञानिक उपन्यास होने तथा मनोविश्लेषणात्मक शैली का अनुगमन करते हुए भी यह उपन्यास एक मात्र यौन-ग्रंथियों के चित्र उतारने से बच गया है। परन्तु नायक के प्रेम की सीमा, प्रस्तुत सामाजिक मर्यादा का अतिक्रमण कर गयी है ------ इस उपन्यास का एक विशेषता यह है कि लेखक अन्य सामाजिक प्रश्नों की उपेक्षा नहीं करता। इसके अन्दर यत्र-तत्र मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार की आर्थिक परिस्थितियों का सम्यक ढांचा प्रस्तुत किया गया है।"[1]

जोशी जी के उपन्यासों के नायकों की ही तरह इस उपन्यास का नायक परिस्थितियों से जूझ-जूझकर नवीन दृष्टि प्राप्त करता है। नायक चन्द्रनाथ मध्य-वर्गीय परिवार का व्यक्ति है। उसका व्यक्तित्व शून्य है। साहस का भाव और तन कर खड़े रहने का दम तक उसके चरित्र में नहीं है। उसकी आन्तरिक साहस-हीनता और चिन्तनशीलता ही उसे दुर्बल बना देती है। इस तरह के अनेक उदाहरण हमें इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। नायक का चरित्र 'साधना', 'आशा' और 'सुशीला के संसर्ग से विकास पाता है। चन्द्रनाथ की पत्नी 'सुशीला' है, पर वह साधना के प्रति प्लेटोनिक किस्म के प्रेमधारा में बंधा है। चन्द्रनाथ पत्नी सुशीला के शिक्षाजन्य संस्कारों से रीक्त होने के कारण उससे गहरा सम्बन्ध भी नहीं रखना चाहता है। उसका अतिरेक 'व्यक्तिवादी' होना उसे लोकाचार से दूर ले जाता है। नवीनता व बौद्धिकता को ग्रहण करने वाला यह पात्र चन्द्रनाथ पत्नी को हेय और जड़ समझकर उससे दूर हो जाता है। उसकी यौन-भावना उसे 'साधना' के प्रति नमित करती है। "यह वासना और ——

1- "हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद" - डा० त्रिभुवन सिंह,
तृतीय संस्करण संवत् 2018 विक्रमी, पृष्ठ 347,348

आध्यात्मिकता के झीने तारों से बुना हुआ है, जो चेतना के प्रकाश में छिप नहीं पाता।"[1] प्रिया साधना उसके व्यक्तित्व उसकी कमी को देखकर उसकी उपेक्षा करती है फलतः उसके आदर्शों के सारे प्रतिमान ढह जाते हैं। आदर्शों के इन्हीं खण्डहरों पर उसके नवीन जीवन की पुनः आधार शिला रखी जाती है।

मध्यवर्ग के ध्वंसोन्मुख आदर्शों से ओत-प्रोत यह उपन्यास जोशी जी की उपन्यासकला का पूर्ण निर्वाह करता है। साधना द्वारा मानसिक रूप से प्रताड़ित होने पर ही वह 'नवजीवन' की ओर बढ़ने की चेष्टा करता है।

'पथ की खोज' की साधना में हम शीतल और मंजरी जैसा व्यक्तित्व पाते है, जो नायक चन्द्रनाथ को मानसिक धिक्कार देकर उसे उदात्तीकरण की ओर अग्रसर करती है।

'व्यक्तिवादी-मनोविज्ञान' को लेकर चलने वाले इस उपन्यास में लेखक चन्द्रनाथ के बौद्धिक और मानसिक संघर्ष का निदान व्यक्ति की भीतरी गहराइयों में उतरकर मनोवैज्ञानिक पद्धति द्वारा ढूढ़ने का प्रयास करता है।

डा० देवराज का दूसरा उपन्यास 'बाहर-भीतर' भी पूर्ण मनोवैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि में लिखा गया है। इस उपन्यास को बाद में 'भीतर के घाव' नाम से भी प्रकाशित किया गया। अपने लघुतम कलेवर में (मात्र 127 पृष्ठों में) लिखे गये इस उपन्यास में चरित्र-चित्रण का ही प्राधान्य है। शैली व वातावरण की दृष्टि से इसमें मनोविज्ञान नहीं है, परन्तु दर्शनशास्त्र के ज्ञाता कलाकार डा० देवराज की चारित्रिक पक्ष समर्थ रूप में व्यक्त हुई है।" 'बाहर-भीतर' में देवर राजन और भाभी सुमित्रा के परस्पर आकर्षण को लेकर सामाजिक मर्यादाओं के संदर्भ में

1- "आधुनिक हिन्दी उपन्यास, उद्भव और विकास" - डा० देवन,
प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 255

उनके बाहर की जड़ता और भीतर की तरलता के संघर्ष का चित्रण हुआ है। अंतत: सामाजिक मर्यादाओं से आगे दोनों के व्यक्तित्व का टूटकर बिखर जाना 'भीतर' पर 'बाहर' की विजय का परिचायक है।"[1]

इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों की तरह ही इस उपन्यास का प्रारम्भ 'आत्मकथात्मक शैली' में हुआ है। इस उपन्यास का नायक राजन आत्मविश्लेषण करता हुआ कहता है— "मैं लेखक नहीं हूँ, न विशेष साहित्यिक ही हूँ। विद्यार्थी-जीवन में कभी-कभी कहानियाँ लिख डालता था पर अब अनधिकार चेष्टा समझकर वह व्यसन छोड़ दिया है। मैं भावुक भी नहीं समझा जाता। समझा नहीं जाता, होना भी नहीं चाहता।"[2]

इस उपन्यास की 'मनोवैज्ञानिक परख' करने पर यह 'डी०एच०लारेन्स' की विचारधारा के नजदीक लगता है। लारेन्स के अनुसार, 'पुरुष का गुण है - कामना और स्त्री का गुण है-कमनीयता'। लारेन्स की इसी विचारधारा से अनुप्राणित 'सूलीसित' के नायक की तरह 'भीतर के घाव' का नायक राजन आत्मकुण्ठाओं से अनुप्राणित है। व्यक्ति और समाज के बीच चलने वाला संघर्ष ही व्यक्ति को अंतर्मुखी बना देता है और उसके विकास पथ में बाधायें उपस्थित करता है।

डा० देवराज के उपन्यास के नायक राजन के जीवन का यही आधार है। राजन अपनी शिक्षिका भाभी सुमित्रा के प्रति कैशोर्य काल से ही आकृष्ट है। परन्तु 'सामाजिकता' के बन्धनों के कारण उसके इस प्रेम में बाधा आती है।

1- "हिन्दी वाङ्मय: बीसवीं शती" - डा० नगेन्द्र,
प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 209

2- "भीतर के घाव" ('बाहर-भीतर' का परिवर्तित संस्करण), डा० देवराज
चतुर्थ संस्करण 1975, पृष्ठ 5

फलतः वह उच्च महत्वाकांक्षा के बावजूद कुंठित हो जाता है। इसी कुण्ठा के फलस्वरूप उसे शैक्षिक जगत में उतनी सफलता नहीं मिलती। "व्यावहारिक जीवन-दर्शन की पृष्ठ-भूमि में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अनुभूत्यात्मकता का चित्रण इस उपन्यास की सशक्तता में वृद्धि करता है। कथानायक एक मार्मिक मनोव्यथा की स्थिति में पड़कर व्यावहारिकता तथा आदर्शात्मकता के द्वन्द में विभ्रान्त रहता है।-- ---------- अन्ततः अनिश्चित और संघर्षमय भविष्य के विकल्प में वह अनायास सामाजिक सफलता का मार्ग स्वीकार करता है जो भविष्य में आशातीत व्यावहारिक सफलताओं के सुफल की परिणिति सिद्ध होती है।"[1]

पात्रों की अल्पता उपन्यास को चारित्रिक अगाधता प्रदान करती है। उपन्यास में प्रयुक्त छोटे-छोटे संवाद स्थिति के अनुसार पूर्ण मनोवैज्ञानिक हैं। पात्रों की मनोभूमिका व्यक्त करने में यह उपन्यास अत्यन्त सजग है। 'सुमित्रा और 'राजन' (राजेन्द्र) के संवादों से, उनकी भाषा से उनकी मनःस्थिति का अच्छा उद्घाटन होता है:-

भाभी पूर्ववत् उदास और स्थिर थीं। उस मुद्रा में वे अतिरिक्त रूप में कोमल और रमणीय लग रही थीं।

'जी में आता है, भाभी, मैंने एक नयी उत्तेजना का अनुभव करते हुए कहा- कि तुम्हें पकड़कर यहाँ से दूर ले जाऊँ, बहुत दूर ------- वहाँ से फिर कभी कोई छीनकर तुम्हें यहाँ न ला सके।' ---------- ------- 'भाभी'।, मैंने धीमे, कांपते स्वर में पुकारा। वे पहले की तरह मौन और शांत थीं।

1- "हिन्दी उपन्यास का परिवायत्मक इतिहास" - डा० प्रताप नारायण टण्डन, प्रथम संस्करण 1967, पृष्ठ 459

सहसा मैं उठकर खड़ा हो गया। भाभी की उदास स्थिरता जैसे मुझे बेध रही थी। उनके पार्श्व में खड़े होकर मैंने एक बार फिर धीरे से कहा, - 'भाभी'! और फिर दूसरे ही क्षण एक हाथ सिर पर और दूसरा ठोड़ी के नीचे डाल, नीचे झुककर उन्हें घुम लिया।"[1]

शैली की वेगात्मकता व सुगमता के कारण डा० देवराज, इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक शिल्प के नजदीक है। यद्यपि इनके उपन्यासों में मनोविज्ञान की नवीन शैलियाँ जैसे - 'सम्मोहन', 'स्वप्न-पद्धति', 'बाधकता-विश्लेषण' और 'गीत-शैली', इत्यादि नहीं मिलती है, परन्तु 'पूर्वस्मृति शैली'[फ्लैश बैक सिस्टम] व 'मनोविश्लेषक-शैली' पर आधृत इनके उपन्यास इलाचन्द्र जोशी जी की उपन्यास कला को आगे ले जाते हैं।

'रोड़े और पत्थर' उपन्यास भी अति लघु है जिसमें "आधुनिक-जीवन की संघर्ष शीलता, साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के मार्ग में कठिनाईयाँ, छोटे-मोटे सरकारी दफ्तरों की अव्यवहारिक कार्य प्रणालियाँ और नियमावलियाँ और इन सबकी पृष्ठ भूमि में एक छोटे से परिवार के विविध सदस्यों की मनोभावनाओं का सूक्ष्म चित्रण इस कृति में किया गया है।"[2] डा० देवराज लिखित यह उपन्यास जीवन की आन्तरिक समस्या को लेकर नहीं चलता वरन् बाह्य समस्याओं के चित्रण में लीन रहता है। अतः इसे हम 'मनोवैज्ञानिक-उपन्यास' की कोटि में नहीं रख सकते है।

डा० देवराज का 'अजय की डायरी' उपन्यास मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों की परम्परा में एक सशक्त कृति है। "मानव अनुभूति के दार्शनिक, आध्यात्मिक -

---

1- "भीतर के घाव" - डा० देवराज, चतुर्थ संस्करण 1975, पृष्ठ 99,100
2- "हिन्दी उपन्यास का परिष्कारात्मक इतिहास" - डा० प्रताप नारायण टण्डन, प्रथम संस्करण 1967, पृष्ठ 459

आयाम के संकेतों की गूढ़ता, मौलिक मनोविश्लेषण की सूक्ष्मता, अशक्त चरित्र मूर्त विवरणात्मकता, घटना-प्रसंगों की स्मरणीयता और सबके ऊपर कलात्मक गुम्फन की जटिल रुक्षता की दृष्टि से यह उपन्यास हमारे अब तक के कथासाहित्य में बेजोड़ है।"[1] 'चरित्र-विकास' को नयी गति देने वाले डायरी-शैली में लिखे गये। इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए डा० बेचन ने इसे जोशी जी के प्रयोगों के आगे की प्रगति का सूचक बताते हुए लिखा है,- "शायद चरित्र-विकास के अन्तर्मुखी प्रवाह में डाक्टर देवराज का यह उपन्यास एक तगड़ा धक्का है। जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी के प्रयोग के आगे की प्रगति के नये सीमान्त डा० देवराज ने छोते हैं।"[2] डा० देवराज द्वारा नितान्त नवीन 'मनोवैज्ञानिक शैली,' 'डायरी-शैली' में लिखे गये इस उपन्यास का नायक 'अज्ञेय' और नायिका 'हेम' के पारस्परिक आकर्षण की कोमल कथा को लेकर इस उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। हेम और अज्ञेय की कथा के अतिरिक्त इस उपन्यास में और कुछ भी नहीं है। उपन्यास का पूर्वार्द्ध तो अन्तर्द्वन्द्वों की उठापटक के कारण सशक्त है, पर उत्तरार्द्ध में कथानक में शैथिल्य व बिखराव आ गया है। 'अज्ञेय' के माध्यम से स्थान-स्थान पर डा० देवराज का दार्शनिक प्रवेश उसी प्रकार अखरता है जिस प्रकार इलाचन्द्र जोशी का अपने नायकों के माध्यम से लम्बे-लम्बे भाषण पूर्ण संवादों में। अज्ञेय की जीवन भर की भटकन, उसका हेम के प्रति आकर्षण उसमें निजता व साहस का अभाव दर्शाता है।

1- "हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास"-डा० प्रताप नारायण टण्डन,
प्रथम संस्करण 1967, पृष्ठ 460

2- "आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास"- डा० बेचन,
प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 256

उपन्यास में पात्रों की भरमार नहीं है। 'अज्ञेय की डायरी' में सर्वत्र मनोविश्लेषण का ही प्राधान्य है। इसी के अगले भाग के रूप में प्रकाशित उपन्यास में, 'वे और आप' में पात्रों की भरमार है, यह पात्र-बाहुल्य उसकी मनोवैज्ञानिकता पर तीव्र कुठाराघात करता है। डा० देवराज के नवीन उपन्यास 'दूसरा-सूत्र' में दो पीढ़ियों के पारस्परिक संघर्ष को पूरे यथार्थ के साथ उभारा गया है। 'ऋतुचक्र' के कथानक की भाँति ही इस उपन्यास में भी ढलती उम्र के 'प्रेम और रोमांस' पर चर्चा हुई है। सम्पूर्ण उपन्यास 'आत्मकथात्मक-शैली' में लिखा गया है। बीच-बीच में पूर्वस्मृतियों के सहारे कथा आगे बढ़ी है। एक व्यक्ति का प्रथम पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरी पत्नी के साथ अपनी प्रथम पत्नी के बेटे के साथ निर्वाह किस प्रकार होता है, उसका वर्णन इस उपन्यास में हुआ है। प्रेमचन्द के उपन्यास 'निर्मला' में जिस प्रकार निर्मला अपनी मृत सौत के बेटों- मंसा, जिया, और सिया के साथ अनुशासन पूर्ण व्यवहार करके उन्हें योग्य व काबिल बनाना चाहती है उसी प्रकार 'दूसरा-सूत्र' की अर्चना अपनी मृत सौत शोभा के बेटे सुनील को पढ़ाई लिखाई, तौर-तरीकों में अच्छा बनाना चाहती है। पर 'सुनील' की पढ़ने लिखने में कम रुचि के कारण उसकी शादी कृष्णा से कर देती है। बेरोजगारी की दशा में सुनील-कृष्णा अपने ही मां-बाप से मन मुटाव रखने लगते हैं, मां को सौतेली माँ समझकर उससे दूर रहना चाहते हैं। मुख्य पात्र वकील श्री आनन्द मोहन के वृद्धावस्था के अतृप्त प्रेम का इस उपन्यास में कई स्थलों पर दिग्दर्शन कराया गया है। अलका, प्रतिभा के साथ प्रेमालाप पूर्ण प्रसंगों में 'ऋतुचक्र' के दादा मिलन कुमार की याद दिलाते हैं। पत्नी अर्चना की मृत्यु के बाद प्रतिभा जैसी प्रेमपूरण नारी का सानिध्य वकील साहब के अचेतन मन की अतृप्ति को दर्शाता है। वकील साहब के ही

शब्दों में, " -- प्रतिभा और मेरे बीच निकटता स्थापित होने की कामना मुझमें ही अधिक थी। हर तरह की मांग और अपेक्षा की पहली अभिव्यक्ति मेरी ओर से होती।"[1] पूरे उपन्यास में पीढ़ियों के द्वन्द्व व प्रेमरोमांस की चर्चा प्रमुख रही है। इलाचन्द्र जोशी जी की ही भाँति देवराज के उपन्यास भी दार्शनिकता के नीचे से होकर गुजरते हैं।

[6] इलाचन्द्र जोशी एवं धर्मवीर भारती :- जोशी जी की उपन्यास कला को अपनी शिक्षा देने वाले ख्याति-प्राप्त साहित्यकार धर्मवीर भारती जी ने मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास-परम्परा में दो उपन्यास रचे- 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवां घोड़ा'। इलाहाबाद में साहित्यिक पत्रिका 'संगम' से ही पण्डित इलाचन्द्र जोशी जी का सान्निध्य प्राप्त करने वाले धर्मवीर भारती वस्तुतः जोशी जी की पारखी दृष्टि के कारण ही साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित हुए। 'संगम' में प्रवेश के साथ ही उनके अन्दर की साहित्य और मनोविज्ञान की सूक्ष्म पकड़ को स्पष्ट करते हुए इलाचन्द्र जोशी जी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है :- -------- कुछ ही दिनों के बाद उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वह जन्मजात पत्रकार है। साहित्य, मनोविज्ञान, सांस्कृतिक सुरुचि और पत्रकारिता का ऐसा सुन्दर समन्वित सामंजस्य मैंने और 'संगम' के सभी पाठकों ने उनमें पाया कि देखते ही बनता था।"[2]

धर्मवीर भारती के उपन्यास-सृजन से पूर्व हिन्दी का उपन्यास-साहित्य

1- "दूसरा-सूत्र" - डा० देवराज, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 107
2- "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" - 23 जनवरी 1983, पृष्ठ 25
[अग्निपथ के वे दिन", -संस्करण -इलाचन्द्र जोशी से उद्धृत]

चरित्र प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की अनेक सीढ़ियां प्रस्तुत कर चुका था। जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी जैसे मानव-मन के पारखी उपन्यासकारों ने भारती जी के सृजन को नवीन गति प्रदान की थी, फलतः 'गुनाहों का देवता' जैसे 'यौन-समस्याग्रस्त उपन्यास' की सृष्टि हुई।

धर्मवीर भारती के उपन्यासों का मूल लक्ष्य मानव की मूल-प्रवृत्तियों का उद्घाटन है। यही लक्ष्य पूर्ववर्ती मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों द्वारा पृष्ठ-भूमि के रूप में रखा गया था। इलाचन्द्र जोशी की ही भांति धर्मवीर के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' की मुख्य समस्या 'भावना एवं वासना' की है। हाँ, इलाचन्द्र जोशी में कथावस्तु का अलग-थलग से जुड़ा होना है। जोशी जी के कथानक मानव में एकाएक आयी विकृति के उद्घाटन को लेकर गति प्राप्त करते हैं, परन्तु धर्मवीर भारती का साहित्यकारमन 'गुनाहों का देवता' में नायक 'चन्दर' और नायिका 'सुधा' के किशोरावस्था के पवित्र प्रेम के फलस्वरूप पड़ी अचेतन-ग्रंथि के यथार्थ चित्रण में रमा है। नायक चन्दर, सुधा के विवाह के पश्चात 'काम-ग्रंथि' से पीड़ित हो जाता है। जिसके यथार्थ मनोवैज्ञानिक चित्र 'गुनाहों का देवता' में भरे पड़े हैं। सुधा के विवाह के पश्चात उपन्यास में मनोवैज्ञानिकता की पकड़ और अधिक गहरी होती जाती है।

जोशी जी के उपन्यासों की विशेषता है कि उनमें ग्रंथि-पीड़ित पात्रों का वर्णन उपन्यासों के प्रारंभ से ही होने लगता है, परन्तु 'गुनाहों का देवता' में यह स्थिति बाद में आती है। 'नर-नारी' के प्रेम सम्बन्धों के फलस्वरूप जन्में विकार मानव के सहज व्यवहार को कुप्रभावित करते हैं। उपन्यास की कथावस्तु में पूर्ण गठन है, कहीं भी कथातन्तु टूटे हुए नहीं दिखाई देते हैं। मुख्य कथा चन्दर और सुधा के प्रेम को लेकर चलती है परन्तु बिनती नेहु, और पम्मी की प्रासंगिक

कथाएं आकर कथा की मूलधारा में मिल जाती हैं। इस उपन्यास में कथावस्तु सम्बन्धी कोई शैथिल्य नहीं है, जैसा जोशी जी के उपन्यासों में बहुधा ही दिखाई देता है।

युवावस्था में लिखे गये भारती जी के इस उपन्यास में "एक रागबद्ध नारी के टूटते जीवन का और एक पुरुष के राग के बदलते आलम्बनों का तथा इसके परिणामस्वरूप उसकी मानसिक अवस्था का तटस्थ मनोविश्लेषण है।"[1]

भारती जी के इस उपन्यास में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की तरह कम ही पात्र हैं। मुख्य पात्र सुधा, चन्दर, बिनती और पम्मी हैं। सुधा के विवाह के पूर्व चन्दर स्वस्थ पात्र के रूप में दिखता है परन्तु विवाहोपरान्त वह चित्तविक्षिप्ति का शिकार हो जाता है, काम-अभिव्यक्ति के कारण वह गुनाह पर गुनाह करता चला जाता है। सुधा में 'आत्मपीड़न-रीति'की प्रधानता है। जयन्ती के चरित्र के समान सुधा का चरित्र भी विवाह के बाद आत्मपीड़क हो जाता है। बर्टी मनोविक्षिप्त पात्रों की श्रेणी में आता है और पम्मी कामातुप्त नारी के रूप में प्रस्तुत की गयी है।

नायक चन्दर "सुधा के प्लेटोनिक प्रेम के सहारे ऊँचा उठना चाहता है-- उसे खोकर भी स्वस्थ और सामर्थ्यवान बना रहना चाहता है। लेकिन उसका अंतर्मन इसके प्रति विद्रोह कर उठता है। मूल प्रवृत्तियों को बहुत देर तक झुठलाया नहीं जा सकता। सुधा के प्रति सात्विक या आध्यात्मिक प्रेम की प्रतिक्रिया पत्नी के प्रति उसके मन में वासनात्मक प्रेम पैदा करती है। उसके मन की गुत्थियां उसे विक्षिप्त कर देती हैं। उसका अहं और व्यक्तिवाद उसे स्वयं पराजित करता है। अपने अहं की परितुष्टि के लिए वह गुनाह पर गुनाह करता चला जाता है।"[2]

1- "हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन"-डा०गिरधर प्रताप शर्मा, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 249

2-"आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास" - डा० बेचन, प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 264

जोशी जी के 'पारसनाथ' के मन में 'डिजायर-ग्रंथि' पड़ते ही जिस प्रकार उसका अचेतन-मन हर स्त्री के प्रति वासनायुक्त हो जाता है और उसको नैतिक भ्रष्टत्व देकर ही शांत होता है, उसी प्रकार भारती जी का 'चन्दर' 'सुधा' के प्लेटोनिक प्रेम से अतृप्ति पाकर पम्मी रूपी गरल सुधा का पान करने को तत्पर हो जाता है। मध्यवर्गीय मानस की कुण्ठा और अतृप्ति का मार्मिक उद्‌घाटन इस उपन्यास की विशेषता है।

"प्रायः देखा जाता है कि परम-प्रिय से बिछुड़ने पर राग-क्षुब्ध मानस को प्रतिभा भी शान्त नहीं कर पाती है। जो हमारे प्रेम का आलम्बन होता है वह यदि हमारी मर्जी के खिलाफ किसी और का हो जाता है तो उस समय कुछ ऐसा महसूस होता है कि जैसे पैर के नीचे की जमीन ही खिसक गयी है। सारा मानसिक सन्तुलन ही बिगड़ जाता है। यही दशा डा० शुक्ला की इकलौती बेटी सुधा और उसके बाल सखा चन्द्र कुमार कपूर(चन्दर) की होती है।"[1]

बचपन में साथ-साथ रहने के कारण दोनों में प्लेटोनिक प्रेम पैदा हो जाता है परन्तु विवाह के बाद आलम्बन के अभाव में दोनों ही पात्र कुण्ठित हो जाते हैं। 'परख' की 'कट्टो', 'नदी के द्वीप' की 'रेखा', 'सन्यासी' की 'जयन्ती' की तरह ही भारती जी की 'सुधा' भी 'आत्मपीड़न-रीति' से परेशान होकर अपने जीवन के अंत की ओर अग्रसर होती है। इस उपन्यास में "भारती जी के कवि-मन ने अपने प्राणों के पूरे दर्द को निर्भय विकास दिया है और मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों का पूरा उपयोग भी।"[2]

1- "हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन" -डा० गिरिधर प्रसाद शर्मा, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 247

2- "साक्षिका" - दिसम्बर 1986, पृष्ठ 43
("धर्मवीर भारती: रचना संवेदना का विस्फोटक मूल्यांकन"- नामक लेख से उद्धृत)

चन्दर के अचेतन-मन में दबी 'काम-अभिलाषा' पम्मी के प्रेम-प्रस्ताव और उन्मुक्त समर्पण की आँधी से ज्वाला की तरह भड़क उठती है। उसका विकृत मन मनोविश्लेषित बर्टी के विचारों से सहमत होने लगता है -

"सब ओर का त्याग, साधना, सौन्दर्य, यह सब झूठा है। सुधा भी अन्तोगत्वा वही साधारण लड़की है जो क्वाँरे जीवन में पीत और विवाहित जीवन में प्रेमी की भूखी होती है।"[1] चन्दर काम-अतृप्ति की अवस्था में "घृणा-सृष्टि" से परिचालित होकर अपने देवत्व को मिटाने पर उतारू हो जाता है, पर सुधा के निरन्तर प्रयासों से चन्दर का कामातुर-मन एक बार फिर देवत्व की ओर अग्रसर होता है। सुधा के कथन- "मैं मर जाऊँगी! लेकिन तुम्हें इन्सान बनना पड़ेगा चन्दर।"[2] द्वारा लक्षित होता है कि अपने आपको मिटाकर भी वह प्रिय चन्दर को उचित दिशा में ले जाती है। सुधा के आग्रह पर चन्दर द्वारा विनती के साथ विवाह कर लेने के बाद उसके व्यक्तित्व में पड़ी विकृतियाँ पुनः दूर हो जाती हैं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भारती जी डॉ.धर्मचन्द्र जोशी जी की तरह ही सफल रहे हैं। मन के द्वन्दों व उतार-चढ़ावों का जोशी जी ने जितना मार्मिक वर्णन किया है, उतना ही हृदयग्राहक वर्णन भारती जी के 'गुनाहों का देवता' में भी हुआ है।

संवाद-कौशल की दृष्टि से 'गुनाहों का देवता' उपन्यास मनोवैज्ञानिकता के उच्च शिखर को छूता है। वैसे तो वर्णनात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास

1- "गुनाहों का देवता" - धर्मवीर भारती - उन्नीसवाँ संस्करण 1983, पृष्ठ 262,

2-"गुनाहों का देवता" -धर्मवीर भारती -उन्नीसवाँ संस्करण 1983, पृष्ठ 265,

शिल्प की प्राचीन परिपाटी को ही आत्मसात किए है परन्तु चारित्रिक उद्घाटन में स्वगत-कथन व भावात्मक (काव्यात्मक) शैली के कारण उपन्यास की मनोवैज्ञानिकता बढ़ती जाती है। वातावरण की दृष्टि से यह उपन्यास काफी सफल है। प्रकृति के विविध रूप मनोनुकूल वातावरण सृजन में काफी पर्याप्त सहायक सिद्ध हुए हैं।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास एक लघु उपन्यास है। कथ्य व शिल्प की नवीनता के कारण यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रांगण में पर्याप्त चर्चित रहा। निम्न वर्ग के चरित्रों को लेखक ने अनेक कोणों से देखा है। अनेक प्रेम-कहानियों को लेखक ने माणिक मुल्ला के व्यक्तित्व के सूत्र में बाँधकर प्रेम को वैयक्तिक पृष्ठ-भूमि से निकालकर आर्थिक व सामाजिक पृष्ठभूमि में देखा है। इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए डा० बेचन लिखते हैं : "मध्यवर्गीय अनाचार, कुरूपताओं तथा कुंठाओं को उघाड़ने के लिए भारती ने व्यंग का प्रयोग एक पैने नश्तर के रूप में किया है।"[1]

ग्रीष्मकालीन दोपहरी में माणिक मुल्ला के अकेले में घर, सरसुजे, मूँगफली के बीच में उसके मित्रों की मजलिस जमती है। यहाँ माणिक मुल्ला सात दिन तक उन्हें कहानियाँ सुनाता है। सर्व प्रथम जमुना की कहानी कही जाती है जो दो दोपहरों तक चलती है। तीसरे दिन माणिक मुल्ला महेसर दलाल तथा उसके पुत्र-पुत्रियों की कहानी कहता है। चौथी दोपहर वह अपनी दूसरी प्रेमिका 'लिली' की कहानी सुनाता है। पांचवीं दोपहर वह तीसरी प्रेमिका 'सत्ती' की कथा कहता है। सत्ती का सशक्त व्यक्तित्व उपन्यास के इस भाग की आत्मा बन गया है। छठे भाग में माणिक मुल्ला के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है।

1- "आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास" - डा० बेचन, प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 264

'सूरज का सातवां घोड़ा', 'मुक्तिपथ' जैसे उपन्यास के शीर्षक की भाँति ही प्रतीकात्मक है। जीवन की अनैतिक, भ्रष्ट और अंधी गलियों में चलते रहने के कारण सूरज के रथ के छः घोड़े बेकार हो चुके हैं, बचा है तो 'सातवां घोड़ा'। यह घोड़ा निम्न वर्ग (तम्मा, जमुना, लिली और सत्ती) के भविष्य का प्रतीक है।

उपन्यास में कथा सूत्रों में कोई गठन नहीं है। बस विवश नारी के और अधिक विखण्डन के चित्र खींचने में ही भारती जी ने अपना समय बिताया है। "इस उपन्यास में चरित्र-चित्रण कम आलोचना अधिक है, अर्थात् मन के सामने नये जगत् का कोई नया रूप लाने का प्रयत्न कम, मस्तिष्क में कुछ शब्दों के सहारे विचार जगाने का प्रयत्न अधिक है।"[1]

पात्रों के चारित्रिक-विश्लेषण के लिए भारती जी सर्वत्र उपन्यास में विद्यमान रहते हैं। माणिक मुल्ला के चरित्र की दुर्बलताओं का विश्लेषण लोक कथात्मक पद्धति के आधार पर किया गया है। "उपन्यास के अन्त में पाठक के मस्तिष्क में माणिक मुल्ला के रूप में एक ऐसा चित्र उभरता है जिसका जीवन मानवीय दुर्बलताओं के कटु अनुभवों से आपूरित है और जो मानवता के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आस्थावान है।"[2]

"इस उपन्यास के लघु कलेवर में निम्न मध्यवर्ग की निराशाओं, कुण्ठाओं मिथ्या-पाखंडों, झूठी नैतिकता और उसके खोखलेपन का मनोविश्लेषणात्मक प्रस्तुतीकरण हुआ है।"[3]

1- "हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन" - डा० गिरिधर प्रसाद शर्मा, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 251,252

2- "आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तुविन्यास"- डा० सरोजनी त्रिपाठी, प्रथम संस्करण मई 1973, पृष्ठ 252,

3- "सारिका" - दिसम्बर 86, पृष्ठ 43,
'धर्मवीर भारती: रचना संवेदना का विस्फोटक मूल्यांकन', लेख से उद्धृत ।

'नारी-जीवन' की विभिन्नाएं, उनके अन्तर्जगत् की मूल-प्रवृत्ति-जन्य उहापोह को दिखलाना दोनों उपन्यासकारों का ध्येय है। धर्मवीर भारती का कलाकार-मन-काम-अवृत्ति-जन्य परिणामों को दिखाता है, और उनके व्यापक उन्मयन का मार्ग भी प्रशस्त करता है। जोशी जी ने भी अपने प्राय: सभी उपन्यासों में पात्रों का चारित्रिक उन्मयन (सब्लीमेशन) दर्शाया है। भारती जी के 'गुनाहों का देवता' में चन्दर का विनती के साथ परिणयबद्ध होना चन्दर के चारित्रिक उदात्तीकरण को प्रकट करता है। भारती जी 'सूरज का सातवां घोड़ा' में मानिक मुल्ला के उन्नत भविष्य के प्रति आस्थावान हैं। भाषा-शैली की दृष्टि से जोशी जी और भारती जी दोनों छायावादी तत्वों की प्रधानता है। दोनों का कवि-मन उपन्यासों में भी कवित्वमय हो उठा है। 'मन:अस्थिरता' को दर्शाने के लिए दोनों उपन्यासकारों ने मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'चारित्रिक जटिलता' की दृष्टि से भारती जी के पात्रों में 'जटिलता' की कमी दिखती है। भारती जी का 'मनो-विश्लेषण' पात्र के अन्तर्मन में प्रवेश कर वहां की नग्नता को उघाड़कर उसकी जटिलता का अंत कर देता है, इसीलिए उनके उपन्यास जटिल न होकर सर्वजन ग्राह्य हैं।

जोशी जी के पात्रों की तरह भारती जी के पात्रों में उतनी उलझन नहीं है क्योंकि भारती जी का लक्ष्य समाज की नैतिकता पर प्रहार करना है।

कथा को गति देने में दोनों उपन्यासकार प्रासंगिक कथाओं का इस्तेमाल बखूबी करते हैं जिससे पात्रों का व्यक्तित्व कहीं ढका-मुंदा न रह जाये। भाषा की विशदता के लिए भारती जी के उपन्यास प्रशंसनीय हैं। उनकी भाषा भावुक मन को पकड़ने में समर्थ है। पात्रों का व्यक्तित्व दर्शाने में भारती जी ने केवल 'मनो-विश्लेषण-पद्धति' का ही अधिक प्रयोग किया है, परन्तु इलाचन्द्र जोशी जी ने

मनोविज्ञान की हर नवीन से नवीन पद्धति को चारित्रिक उद्घाटनार्थ प्रयुक्त किया है।

भारती जी के नायक नायिकाओं में सामान्य स्तर पर कोई अश्लीलता नहीं मिलती है, पर प्रेम में पराजय या काम-अभिव्यक्ति की कुण्ठा के फलस्वरूप उनके कुछ चित्रण वासनायुक्त भी हो उठे हैं। 'गुनाहों का देवता' में विस्थापन-मनोरचना (डिसप्लेसमेंट मेकेनिज्म) से पीड़ित चन्दर का पम्मी के प्रेम-पाश में बंधने व प्रेमालाप के कुछ प्रसंग अश्लीलता की सृष्टि करते हैं। "पम्मी की केश सवारें उसके माथे को रह-रहकर चूम रही थीं और चन्दर के गालों को पम्मी के वक्ष में धड़कता हुआ संगीत गुदगुदा रहा था। ---------- --- पम्मी अनंग के धनुष की प्रत्यंचा की तरह दोहरी होकर उसकी गोद में पड़ी रही। तलवार का चांद टूटकर दो टुकड़े हो गया था और वासना के तूफान ने झीने बादल भी हटा लिए थे ---------- चन्दर के गले में उसने मृणाल सी बाहें डाल दी थीं। चन्दर ने पम्मी के होठों को जैसे अपने होठों में समेट लेना चाहा -------- इतनी आग ---- इतनी आग ---- ------ नशा ---।"[1]

जोशी जी के उपन्यासों में काम-अभिव्यक्ति के फलस्वरूप पम्मी-वासना के चित्र कहीं नहीं मिलते हैं। उनके पात्र वासनात्मक पूर्ति में भी मर्यादित रहते हैं। ये सब काम वे पर्दे के पीछे करते हैं। निष्कर्षतः भारती जी इलाचन्द्र जोशी की मनोवैज्ञानिक उपन्यास-कला का सफल निर्वाह करते हैं।

1- "गुनाहों का देवता" - धर्मवीर भारती :
उन्तीसवां संस्करण - 1983, पृष्ठ 234, 235

(7) "इलाचन्द्र जोशी एवं अन्य आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार":- हिन्दी उपन्यास की मनोवैज्ञानिक परम्परा को आगे बढ़ाने में आज का अतिशय बौद्धिक व कृत्रिम वातावरण अत्याधिक सहायक रहा है। मध्यवर्गीय समाज का पारिवारिक बिखराव, स्त्री-पुरुष दोनों का स्वावलम्बी होना, नगरीय सभ्यता, ये सब मिलकर आधुनिक उपन्यासकारों को निरंतर झकझोरते रहे हैं। बदलती हुई परिस्थितियों ने उपन्यासकारों को 'व्यक्ति' के अन्दर झांकने की अद्भुत शक्ति प्रदान की है। आज के बिखराव, कृत्रिमता व जटिलता को मनोविश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत करने वाले उपन्यासकारों ने अज्ञेय, जैनेन्द्र और जोशी के मनोविश्लेषणात्मक साहित्य को अग्रगामी किया है। 'उपेन्द्रनाथ अश्क', 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना', 'नरेश मेहता', 'राजेन्द्र यादव', 'मन्नू-भंडारी', 'उषा प्रियंवदा', 'निर्मल वर्मा', 'राजकमल चौधरी', 'राजेन्द्र अवस्थी', 'कुसुम अंसल', 'मोहन राकेश', 'राही मासूम रजा', 'मृदुला गर्ग' जैसे साठ-सत्तर के पश्चात उपन्यासकारों ने मन की अज्ञात गुहाओं में प्रविष्ट होकर एक से एक उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सृजन किया है।

इलाचन्द्र जोशी जी और उपेन्द्रनाथ अश्क जी दोनों के उपन्यासों की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तुलना करने के लिए उपेन्द्रनाथ अश्क की वैचारिक पृष्ठभूमि और उनके उपन्यास साहित्य का सिंहावलोकन वांछनीय है।

अश्क जी का जन्म अभावों से जूझते हुए निम्न मध्यवर्गीय परिवार में हुआ है। मानसिक कुण्ठाओं और मैसिक वर्जनाओं ने उनके जीवन का विकास किया है। वे अन्तर्मुखी हैं। उन्होंने जीवन का विकास हेतु जो-जो रूप देखे हैं, उनको अपनी कल्पना के हल्के रंग देकर उपन्यासों के रूप में चित्रित किया है। उनके उपन्यासों में पुरुष की कुण्ठा का केन्द्र-बिन्दु 'नारी' है। "नारी ही गति है और नारी ही

अगीत। जीवन भी यही है और मृत्यु भी यही है। केवल संगिनी के उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त होने का प्रश्न है। -------- उपयुक्त जीवन संगिनी मिल गयी तो उसके जीवन का सागर हिलोरें ले उठता है और यदि अनुपयुक्त हो तो--।"[1]

इनके उपन्यासों के बारे में 'रवीन्द्र कुमार जैन' लिखते हैं - "ये नितान्त बंधनहीन जीवन के आदी स्वयं हैं और इसी जीवन-दृष्टि की छाया में उनके सभी पात्र एवं कथानक अंकुरित एवं विकसित हुए हैं। संगठन, संयम, और एकरूपता के स्थान पर विघटन, अमर्यादा एवं विशृंखलता भी आपकी कृतियों में कम नहीं मिलती।"[2]

पौराणिक आदर्शों को भंग करने वाला उनका प्रथम उपन्यास है- 'सितारों-का खेल' जिसमें पौराणिक युग की दमित-नारी को अश्क जी ने व्यक्तित्व दिया है। डालचन्द्र जोशी जी के उपन्यास भी 'नारी' को उसकी 'दमित अवस्था' से ऊपर लाना चाहते हैं। यही सिलसिला 1938 में प्रकाशित अश्क जी के 'सितारों का खेल' में जारी रहता है। अश्क जी ने "एक व्यक्ति(चेतना) के जीवन को पांच बड़े-बड़े उपन्यासों में चित्रित करने की योजना बनायी है। इसके चार भाग 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आइना', 'एक नन्हीं किन्दील', 'बांधो न नाव इस ठाँव' प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु 'डाल गियाँ' अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।"[3]

1- "गिरती दीवारें" - उपेन्द्रनाथ अश्क, पृष्ठ 226

2- "उपन्यास: सिद्धान्त और संरचना" - डा० रवीन्द्र कुमार जैन, प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ 134

3- "देखें "हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन"-डा०गिरधर प्रसाद शर्मा प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 232

'गिरती दीवारें' यथार्थवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें उपेन्द्रनाथ अश्क की चरित्र-चित्रण संबंधी अभिव्यक्ति और सशक्त हो उठी है। "चेतन का व्यक्तित्व बुरी तरह विद्रूपित है - वह हर सुन्दर स्त्री की ओर आकृष्ट होता है, उल्टे सीधे अभद्रता पूर्ण आयास भी करता है, नारी समाज के लिए एक चलता फिरता रोग बन जाता है।"[1] जोशी जी के पारसनाथ की तरह वह हर नारी को सम्पर्क में आते ही सेक्सग्रस्त हो उठता है। सेक्स-चेतना के अतिशय अभार के कारण उसका चरित्र अतिशय 'मनोवैज्ञानिक केस' के रूप में सामने आता है।

अश्क के सभी पात्रों में वही मनोवैज्ञानिक जटिलता मिलती है जो इलाचन्द्र जोशी जी के उपन्यासों में। पात्र-चयन के क्षेत्र में अश्क जी ने मध्यवर्गीय समाज को चुना है। मध्यवर्गीय समाज के बारे में डा० बेचन का मत है कि-

यह ऐसा जटिल वर्ग है जिसके हर सदस्य की गांठे अलग-अलग खिलती हैं यह ऐसा हुल्लुल वर्ग है जैसा पारा, जिसे स्थिर करके परखना भी कठिन हो। - - - - - - - - इस बीहड़ जंगल में पांव रखना साधारणतः साहस का काम नहीं।"[2]

इसी बीहड़ जंगल से निकले अश्क के पात्रों में अचेतन-मन की 'उमड़न-घुमड़न' अधिक है। इलाचन्द्र जोशी जी की कथा का आधार और मुख्य ध्येय मानव के अचेतन की कुण्ठाओं, विकृतियों का चित्रण और तत्पश्चात् उनका मानसिक उपचार है, जबकि अश्क जी के उपन्यासों का लक्ष्य व्यक्ति-व्यक्ति और व्यक्ति तथा परिस्थिति के मध्य होने वाले संघर्षों का चित्रण करना रहा है। 'गिरती-दीवारें' में 'चेतन-कुन्ती' 'चेतन-चन्दा', 'चेतन-नीला', 'चेतन-मन्नी', 'चेतन-कविराज', कविराज-रामदास के बीच की दीवारें क्रमशः यौन कुण्ठाओं की, और आर्थिक हैं। इन दीवारों के

1- "उपन्यास: सिद्धान्त और संरचना- डा० रवीन्द्र कुमार जैन,
प्रथम संस्करण 1972, पृष्ठ 135

2- "आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास" - डा० बेचन,
प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 180, 181

मध्य चेतन का व्यक्तित्व अत्यन्त जटिल हो गया है। चेतन में कुण्ठा तब पैदा होता है जब उसको मनोनुकूल पत्नी नहीं मिलती है। यही यौन कुण्ठा उसे संघर्ष और जटिलताओं के बीच खींच ले जाती है।

एक कुण्ठा पड़ जाने से मानव का सारा व्यवहार अनियंत्रित और असहज हो जाता है यही प्रकटन 'गिरती दीवारें' में हुआ है जो जोशी जी की परम्परा से निःसृत है। अश्क जी के उपन्यासों में पात्रों की भरमार है जबकि जोशी जी के उपन्यासों में पात्रों का जमावड़ा नहीं है।

चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में अश्क जी ने 'मनोविश्लेषण-पध्दति', 'प्रतीकात्मक-पध्दति', 'चेतना-प्रवाह पध्दति' का अनुगमन किया है। अश्क जी के उपन्यासों में 'वातावरणवाद' प्रबल है। 'गर्मराख', 'बड़ी बड़ी आँखें', 'पत्थर अल् पत्थर' सभी उपन्यासों में सामाजिक वातावरण को प्रमुखता मिली है। सामाजिक वातावरण के मध्य ही उनके मनोवैज्ञानिक पात्रों को गति मिली है। "एक-एक ईंट जमा करके एकान्त लगन से वे अपना कला-भवन निर्मित करते हैं, छोटी से छोटी वस्तु भी अपेक्षित नहीं रह पाती और इन सबे साथ उनके नायक के जीवन का निर्माण अपनी पूर्णता प्राप्त कर लेता है।"[1] जिस प्रकार इलाचन्द्र जोशी में स्वगत भाषणों (इंटीरियर - मोनोलॉग्स) के कारण कथावस्तु में अवरोध उत्पन्न होकर बिखराव व शैथिल्य आ गया है उसी प्रकार अश्क जी के उपन्यासों में 'चेतना प्रवाह पध्दति' अत्याधिक बलवती होने के कारण कथावस्तु में बिखराव उत्पन्न करती चलती है।

'राजेन्द्र यादव' कुण्ठाओं, रूढ़िवद्द संस्कारों से जूझते मनोवैज्ञानिक चरित्रों की सृष्टि करने वाले मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार है। अतिशय मनोवैज्ञानिक प्रयोग जोशी जी की भाँति राजेन्द्र यादव के उपन्यासों को नीरस बनाता चलता है। 'उखड़े हुए-

---

1- "आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास" - डा० बेचन, प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 182

लोग', 'प्रेत बोलते हैं', 'सड़ और गात', 'कुलटा', 'अनदेखे अनजान पुल' एवं 'मंत्रविद्ध' उपन्यास उनकी तीव्र मनोवैज्ञानिक पकड़ के परिणाम हैं। उनके उपन्यासों में भी वही 'सेक्स की भावना' विद्यमान है जिसको लेकर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का हिन्दी साहित्यत्व में आविर्भाव हुआ था।

राजेन्द्र यादव के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की समीक्षा करते हुए 'महेन्द्र चतुर्वेदी' लिखते हैं :- "वे सेक्स की भावना से अत्यधिक आक्रान्त हैं अतः अपने नारी पात्रों को वे सहज भाव से ग्रहण नहीं कर पाते। उनकीअनुपस्थिति में मानों उनकी चेतना आकस्मिक उत्तेजना से भर जाती है।"[1]

'उखड़े हुए लोग' में मध्यवर्ग के चरित्रों को लेकर उनकी कुण्ठाओं, उनकी समस्याओं को मनोविश्लेषणपरक ढंग से चित्रित किया गया है। 'प्रेत बोलते हैं' उपन्यास में निम्न मध्यवर्गीय शिक्षित युवक के जीवन की विवशताएं प्रतीकात्मक रूप में प्रकट हुई हैं। इलाचन्द्र जोशी जी ने भी पूर्वजों से प्राप्त आदिम संस्कारों को मानव के अचेतन मन में स्थापित हुआ दर्शाया है। समय पाते ही अचेतनमन के ये संस्कार व्यक्ति को कुण्ठाग्रस्त और समस्याग्रस्त बना देते हैं। राजेन्द्र यादव ने 'प्रेत बोलते हैं' उपन्यास में मानव के संस्कारों से चले आ रहे संस्कारों को प्रेत की संज्ञा दी है।'समर' के रूप में उपन्यास का नायक अपने जीवन को जितना सुखी बनाने की चेष्टा करता है उतना ही सामाजिक रूढ़ियाँ व संस्कार उसकी स्वाभाविक आकांक्षाओं को ध्वस्त करते चलते हैं। अतीत का मोह प्रेतछाया की तरह उसकी चेतना को जकड़कर उसके व्यक्तित्व को कुंठित बना देता है। इसी कुण्ठा को झेलता हुआ 'समर' उपन्यास के अंत तक 'मृतप्राय व्यक्तित्व' लेकर जीता है।

1- "हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण" - महेन्द्र चतुर्वेदी,
प्रथम संस्करण 1962, पृष्ठ 206

उपन्यासकार 'राजेन्द्र यादव' का उद्देश्य मानव को इन वास्तविक व सांसारिक प्रेतों से मुक्ति दिलाना है। यही उद्देश्य इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में भी झलकता है। 'यद्यपि दोनों ही उपन्यासकारों का उद्देश्य सामूहिक अचेतन में छिपी वृत्तियों को निकालकर उनसे मानव को मुक्ति दिलाना है परन्तु इस चरण में राजेन्द्र यादव द्वारा लिए गये पात्रों में कोई सजीव व्यक्तित्व नहीं मिलता अपितु वे 'टाइप' व्यक्तित्व वाले ही दिखते हैं।

राजेन्द्र यादव का दूसरा प्रसिद्धतम उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' है जो स्वतन्त्रता के बाद [युद्धोत्तर] स्त्री-पुरुष के टूटते-बनते सम्बन्धों को चित्रित करता है। इस उपन्यास में ह्रासशील मान्यताओं का मनोवैज्ञानिक निरीक्षण किया गया है।

पात्र-चयन के सन्दर्भ में राजेन्द्र यादव को मध्य वर्ग के शिक्षित सदस्य ही पसन्द हैं। जोशी जी के उपन्यासों में प्रायः सुशिक्षित ही मिलते हैं। परन्तु इन शिक्षितों के भीतर भी सदियों से चली आ रही मान्यताएं भरी हुई हैं। फलतः शिक्षा के बावजूद ये उखड़े-उखड़े से रहते हैं। उपन्यास में कुछ पात्र छली-कपटी हैं कुछ विवेक सम्पन्न हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में निरन्तर घुसते रहने के कारण वे जम पाने में असमर्थ हैं। दोतरफा संघर्ष के फलस्वरूप आये अन्तर्द्वन्द्व के कारण मध्यवर्गीय प्राणी का वैयक्तिक ढांचा चरमरा उठता है। इलाचन्द्र जोशी जी के जिप्सी ['त्याग का भोग'] के नायक नृपेन्द्र रंजन में जो पूँजीपति दिखाया गया है, वही पूँजीपतित्व 'उखड़े - हुए लोग' में 'देशबन्धु' नामक पात्र में है। जिस प्रकार मनिया रंजन के पूँजीपतित्व का शिकार होकर अपना व्यक्तित्व खोने लगती है पर झटका खाकर वह इस पूँजीपतित्व से घृणा करके अपने व्यक्तित्व-निर्माण का नवीन पथ खोजती है। उसी प्रकार 'जया' और 'पद्मा' नामक स्त्रियाँ देशबन्धु के सामन्ती व्यवहार से प्रताड़ित होती हैं। 'जया' तो संघर्ष कर-कर के अपने व्यक्तित्व के लिए नवपथ खोज लेती है पर 'पद्मा'

'पूँजीपति' केशवन्धु के समक्ष के आगे न झुककर 'मृत्यु' का वरण करती है। 'पद्मा' में 'बच्चनी' जैसी 'आत्म पीड़न-रीति' की प्रबलता है।

पद्मा की माँ 'मायादेवी' का चरित्र 'निर्वासित' के स्त्री पात्रों से साम्य रखता है। माया में 'सेक्स-भावना' इतनी प्रबल है कि वह पति से तृप्त पाकर भी केशवन्धु क्या अनेक पुरुषों पर डोरे डालती है। अपनी 'हीन-भावना' की पूर्ति के लिए वह यौन-व्यापार को अपनाती है। अचेतन रूप में वह अपनी पुत्री को भी सुखी नहीं देखना चाहती है। सम्पूर्ण उपन्यास में 'काम' मूलप्रवृत्ति से चालित 'माया देवी' का व्यक्तित्व विकृत रूप में आया है।

सम्पूर्ण उपन्यास में नायक शरद् का व्यक्तित्व ऊर्ध्वगामी नज़र आता है। 'शरद् में नयी राहें खोजने की चाहत है। भिन्न जाति की लड़की क्या को वह अपनी जीवन संगिनी तो बनाता है, किन्तु परम्परागत ढंग से विवाह नहीं करता है।"[1] वह चिरन्तन प्रयोगों का अभिलाषी है और नवपथ का अन्वेषी है। पूँजीपति-त्व पर प्रहार करके वह वहाँ से उखड़कर बाहर आता है।

कला-सौष्ठव की दृष्टि से राजेन्द्र यादव के उपन्यास इलाचन्द्र जोशी जी की तुलना में बीस ही हैं क्योंकि मनोवैज्ञानिक चित्रण के साथ-साथ उन्होंने मानव के अन्तर और बाह्य दोनों का चित्रण करके उपन्यासों में अतीव सन्तुलन स्थापित किया है। वातावरण सृजन में मनोविज्ञान का कोई रूप नहीं मिलता है। सामाजिक वातावरण में ही उनके पात्र जीते हैं जबकि जोशी जी के पात्रों में सामाजिकता अधिक नहीं मिलती अपितु व्यक्तित्व की अगाधता ही अधिक मिलती है। राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में चरित्र-विकास के लिए 'पूर्वदीप्ति' पद्धति/फ्लैशबैक सिस्टम।

1- "हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन" - डा० गिरिधर प्रसाद शर्मा, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 219

'वाद-विवाद' पद्धति व 'मनोविश्लेषणात्मक' पद्धति का ही प्रयोग हुआ है। अवेतन के प्रेरकों और मूलप्रवृत्तियों के चित्रण में राजेन्द्र यादव को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार 'मोहन राकेश' का साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत निबन्ध 'अँधेरे बन्द कमरे'।।१९।। प्रतीकात्मक रूप में सृजित उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इलाचन्द्र जोशी जी के 'सुबह के भूले' उपन्यास की तरह इस उपन्यास का वातावरण नागरिक जीवन के खटक-मटक पन को प्रदर्शित करता है। उपन्यास की कथा का आधार नायक 'हरवंश' व नायिका 'नीलिमा' के दाम्पत्य जीवन का संघर्ष है। इलाचन्द्र जोशी जी के 'सुबह के भूले' उपन्यास में बम्बई की तड़क-भड़क, जटिलताओं का चित्रण है। संस्कृति के नाम पर थोड़ा असंस्कृत प्रदर्शन, निरुद्देश्य वाद-विवाद, धनाढ्यों की कृत्रिमता में ओढ़ी गयी मुस्कान यही सब मोहन राकेश के 'अँधेरे बंद कमरे' में मिलता है।

इलाचन्द्र जोशी जी ने बहुत करीब से नगरीय संस्कृति के दर्शन किये हैं उसके संत्रासों को भोगा है। मोहन राकेश ने भी शहरी संस्कृति की घुटन, ऊब और कुण्ठा से भागना ही अच्छा समझा है।

शिक्षित पति को कभी-कभी अधिक शिक्षा व स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाली पत्नी मिल जाने पर उसकी पटरी नहीं बैठ पाती है। स्त्री का स्वतन्त्र व्यक्तित्व उसे खटकने लगता है। युवक-युवती जब प्रेम-विवाह करते हैं तो कुछ दिन तो वे एक आकर्षण से बँधे रहते हैं परन्तु जब वे आत्मविश्लेषण करते हैं तो उन्हें एक दूसरे के प्रति आकर्षण में 'प्रेम' जैसी वस्तु नजर नहीं आती तभी उनका स्नेहहीन दाम्पत्य-जीवन दम तोड़ने लगता है। वे पति-पत्नी न बनकर एक दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं। बस कर्तव्यबोध के कारण वे एक दूसरे के पास रहते हैं किन्तु मानसिक ग्रंथियों के

कारण वे चिन्ता भार से मुक्त नहीं हो पाते। 'अंधेरे बन्द कमरे' के मधुसूदन शुक्ला, मधुसूदन-सुषमा', 'हरवंस-नीलिमा के स्नेह सम्बन्ध आज की जिन्दगी की ऊब, कुण्ठा व विवशता: के परिचायक है। उपन्यास में "स्वीकार और अस्वीकार के मध्य झूलते पति-पत्नी के अभिशप्त जीवन के अनेक रूपों का विस्तार है।" [1] उपन्यास के नायक और नायिका दोनों के दाम्पत्य में इसी प्रकार शंकायें, ग्रंथियाँ भरी पड़ी हैं। डा० बेचन के शब्दों में - "नीलिमा और हरवंश इसी दुविधा की स्थिति में शंका तथा अनिश्चय की घाटियों में भटकते रहते हैं। वे तन से एक होकर भी मन से दूर हो गये हैं।" [2]

उपन्यास में 'मधुसूदन' नामक पात्र मैरेटर की भाँति अन्य पात्रों की कथा कहता है। तटस्थता के साथ वह अपनी भी कथा कहता चलता है। एक पत्रकार होने के कारण वह दिल्ली के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करके उपन्यास की दुनिया में अँधेरा कर देता है। दिल्ली आने पर मधुसूदन अपनी शामें हरवंस, नीलिमा और शुक्ला के साथ बिताता है परन्तु रात ठकुराईन की गन्दी कोठरी में। शुक्ला के साथ प्रतिदिन का मिलना उसकी 'लिबिडों' को जागृत करने लगता है फलत: उसके असह्य अभाव में वह दिल्ली शहर के सिर छोड़ देता है। वापस आने पर वह 'सुषमा श्रीवास्तव' नामक जर्नलिस्ट[पत्रकार] के प्रखर व्यक्तित्व से आकृष्ट हो होता है पर विवाह वह ठकुराईन की पुत्री निम्मों से ही करता है।

उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र 'हरवंश' आधुनिक पति बनने के चक्कर में अपनी जायदाद बेच देता है। पत्नी नीलिमा को शराब व सिगरेट पीना सिखाता है पति के अत्याधुनिका बन जाने पर उसके पुरातन संस्कार सक्रिय होकर उसमें द्वन्द्व, चिन्ता भर देते हैं फलत: वह मनोग्रस्त होकर 'मनस्ताप'[आक्षेपन] से पीड़ित हो उठता है।

1- "हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन"- डा० गिरिधर प्रसाद शर्मा
प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 202,

2- "आधुनिक हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास"- डा० बेचन,
प्रथम संस्करण 1971, पृष्ठ 262,

उसके मन में 'शंका' का कीट बस जाता है। 'पत्नी' से दूर रहने के लिए वह सन्धन जाना चाहता है किन्तु 'होम सिकनेस' के कारण वह 'दिवा-स्वप्नों' में विचरता है। 'शुक्ला' के प्रति भी उसमें 'डिवेन्डेंसी' उत्पन्न होकर उसे 'मनस्तापी' बना देती है। तन और मन का द्वन्द्व उपन्यास के इस पात्र में 'सुबह के झूले' की गुलबिया की तरह द्विष्टिगत होता है।

'नीलिमा' का आधुनिक व्यक्तित्व जोशी जी की तरह ही 'नारी-आजादि' की ज्योति जलाता है। अपने विकसित अहं के जोरपर वह भी पति की शंकाओं से दूर जाकर अपने व्यक्तित्व के सहारे उसे छोड़कर चली जाती है। जोशी जी की नारियाँ भी पतियों व प्रेमियों के अहं के नीचे कुचली जाना पसन्द नहीं करती हैं।

'सुषमा श्रीवास्तव' उन नारियों का प्रतिनिधित्व करती है जो यौवन के दिनों में अपनी प्रगल्भता के जरिये जिन्दगी बिता लेती है पर यौवन के उतार के बाद उन्हें उनकी ही जिन्दगी काटने दौड़ती है।

सम्पूर्ण उपन्यास में 'पूर्वदीप्ति पद्धति' द्वारा कथा विकास हुआ है जो इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों की प्रिय पद्धति है। मनोदशा के चित्रण के लिए प्रतीकात्मक पद्धति का अनुसरण हुआ है। 'अवेतनमन' के द्वन्द्वों को मोहन-राकेश ने उसी खूबी से चित्रित किया है जो खूबी इलाचन्द्र जोशी जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से पैदा की। मोहन राकेश की भाषा की समीक्षा करते हुए इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं - "मानसिक स्थितियों को व्यक्त करने में राकेश ने भाषा की लय को नये मोड़ दिये हैं, शहरी जीवन की घुटन को अभिव्यक्ति देने में शब्द जाल की खूब काट-छाँट की है। इनमें मानव-सम्बन्धों की परतों को उघाड़ने में लेखक ने आधुनिकता की चुनौती का सामना भी किया है।"[1]

1- "आज का हिन्दी उपन्यास" - इन्द्रनाथ मदान पृष्ठ 95

सप्तम् अध्याय

उपन्यास साहित्य को इलाचन्द्र जोशी की देन

सप्तम अध्याय

"उपन्यास-साहित्य को इलाचन्द्र जोशी की देन"

1- उपन्यास साहित्य में मनस्तत्व के अंगूठे विश्लेषक :- आज मानव-जीवन संघर्षों और जटिलताओं के दौर से गुजर रहा है। जीवन के मानदण्डों में भी समय के परिवर्तन के साथ-साथ तीव्र गति से परिवर्तन होता जा रहा है। बाह्य-जगत की रंगीनी और अन्तर्जगत् के सतेपन के मध्य व्यक्ति का व्यक्तित्व खंडित होता जा रहा है। ऐसे समय में साहित्यकार के सम्मुख यह प्रश्न उठता है कि वह 'किसे' अपनी कृतियों का आधार बनायें। मनोविज्ञान के क्षेत्र में होने वाली खोजों, सिद्धान्तों व प्रयोगों ने मानव के अन्तर्जगत को पढ़ने के बहुत से साधन सुलभ करा दिए हैं। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने पूर्ण रूप से मानव के 'मन' को अपने उपन्यासों का उपजीव्य बनाना प्रारम्भ कर दिया।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास-सम्राट इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास 'मन' जैसे रहस्यमय तत्व को लेकर ही आगे बढ़े हैं। जोशी जी के अनुसार-

"'मन' आदिम प्रकृति की मनुष्य को आयन्त महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ देन है।"[1]

1- "कादम्बिनी" - संपादक - राजेन्द्र अवस्थी, फरवरी 1983, पृ0 160

जोशी जी के अनुसार- " मनस्तत्व अत्यन्त सूक्ष्म, तथापि सर्वानुभूतित तथ्य है। मनुष्य का व्यक्तित्व केवल उसके शारीरिक अनुभवों तक ही सीमित नहीं रहता। साधारण शिक्षित व्यक्ति भी यह महसूस करता है कि मानव का मन हर समय उसके व्यक्तित्व पर हावी रहता है और यह भी कि यह मन उसके व्यक्तित्व का प्रधान उपकरण है। इस मन के बिना उसका अस्तित्व प्राय: नहीं के बराबर है।"[1]

मानव ऊपर से दिखने में बड़ा सभ्य, सुसंस्कृत और शालीन दिख सकता है। परन्तु वास्तव में वह ऐसा नहीं होता है। उसके 'अंतर्मन' में अनेकों विसंगतियाँ छिपी रहती हैं जो सभ्य की अनुकूल खाद मिलते ही बाहर आ निकलती हैं। जिस प्रकार पुरानी, काफी दिन से रखी हुई मदिरा का नशा ताजी मदिरा से काफी तेज होता है उसी प्रकार मानव के मन में (अचेतन में) दबी पड़ी जटिलतायें जब काफी दिन तक दबी पड़ी रहती हैं और मौका मिलते ही जब ये मानव के व्यवहार के रूप में प्रकट होती हैं तो वह अत्यधिक तीव्र और भयानक तथा गंभीर रूप धारकर मानव को मनोरोग ग्रस्त कर देती हैं। यही वस्तुत: उसके व्यवहार का यथार्थ रूप है।जीवन के इसी यथार्थ को उद्घाटित करने के लिए 'मन' जैसे गहन तल में उतरना अनिवार्य है अन्यथा यथार्थ काउद्घाटन सही रूपों में नहीं हो सकता है।

1- "कादम्बिनी" - संपादक राजेन्द्र अवस्थी, फरवरी 1988ई० पृ० 138
(मुझे तो मनोविज्ञान संस्कार से मिलता है - शशिचन्द्र जोशी)

इलाचन्द्र जोशी जी ने 'मन' या 'आत्मा' के विश्लेषण को ही सबसे कठिन मानकर उसकी चुनौती अपनी कृतियों के माध्यम से स्वीकार की है। वे लिखते हैं :-

" - - - मूल यथार्थ के तात्विक बोध की दिशा में यदि सबसे कठिन, सबसे अधिक मार्मिक पीड़ादायक और सबसे अधिक विकट उलझनों से भरा कोई रास्ता है तो वह यही आत्म विश्लेषण है। यही कारण है कि बड़े से बड़े ज्ञानी इस घोर कण्टकर, झंझटों से भरे और अत्यन्त दुर्गम मार्ग से कतराते हैं और अपनी अचेतना की एक परछाई या आधा अंग भीतर प्रवेश करने का प्रयत्न करते ही घबराकर बाहर वापस आ जाते हैं और उस निपट सतही ज्ञान के बल पर यह घोषित करने लगते हैं कि उन्होंने मानवीय अचेतना का रहस्य पा लिया।"[1]

"मन" या 'आत्मा' के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए इलाचन्द्र जोशी जी ने विभिन्न समकालीन मनोवैज्ञानिकों की खोजों और अपनी निजी जीवन के अनुभवों का प्रयोग किया तत्पश्चात उन्होंने 'मन' जैसे दुरूह विषय को अपने उपन्यासों में अध्ययन का विषय बनाया। फ्रायड द्वारा परिभाषित मन के तीन स्तरों - 'चेतन', 'अवचेतन' और 'अचेतन' में से जोशी जी ने सबसे रहस्यमय 'अचेतनमन' को ही अपने उपन्यासों में विश्लेषित किया है।

1-"अनुवर्तन" - इलाचन्द्र जोशी - प्रथम संस्करण 1968 ई० पृष्ठ 9, 10

प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यासकारों में जिस उपन्यासकार ने(जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय) ने 'मन' के विश्लेषण का बीड़ा उठाया उनमें सबसे सफल और अच्छे विश्लेषक इलाचन्द्र जोशी ही रहे हैं।

जोशी जी के उपन्यासों में 'घृणामयी' से लेकर 'कवि की प्रेयसी' तक जोशी जी के नायक-नायिकाएं विकृतमना या अस्वस्थमना ही है जिनके 'मन'(अवचेतन) में छिपी नाना गुप्त ग्रन्थियों और नाना मनोविकारों को उन्होंने 'आत्मविश्लेषण' की पैनी धार से काट-काट कर बाहर निकाला है। जोशी जी के उपन्यास शिल्प की दृष्टि से उतने प्रबल नहीं है, जितने कि मनोविश्लेषण की दृष्टि से ?

'लज्जा' उपन्यास में जोशी जी ने'लज्जा' के मन के अन्दर होने वाली उथल-पुथल का, प्रेम और घृणा के भावों का सांगोपांग वर्णन किया है। उन्होंने'लज्जा'उपन्यास की नायिका 'लज्जा' के चारित्रिक विश्लेषण में आत्मविश्लेषण की शैली अपनायी है। 'पर्दे की रानी' उपन्यास में निरंजना इन्द्रमोहन और शीला की मानसिक स्थिति को जितनी प्रौढ़ता के साथ जोशी जी ने दर्शाया है, वह प्रौढ़त्व किसी अन्य मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के उपन्यासों में दुर्लभ ही है। विकृतियों के पुंजों को इन्द्रमोहन और निरंजना के मन से निकाल-निकालकर उन्होंने मन को साफ और सुथरा बनाने का प्रयास किया है। 'निरंजना' के 'अवचेतनमन' में छठी'अहं' की भावना, क्रमानुक्रम

द्वारा निर्देशित काम-भावना जोशी जी को पग-पग पर लुभाती रही है। 'इलेक्ट्राग्रंथि' द्वारा परिचालित 'पर्दे की रानी' निरंजना का मन विकारों का आगार है परन्तु उपन्यास के अन्त में जोशी जी ने उसकी विकृतियों को विरेचित करके उसके मन को उदात्तीकृत कर दिया है। 'प्रेत और छाया' उपन्यास का नायक पारसनाथ 'इडिपस' ग्रंथि द्वारा निर्देशित है। उसका अन्तर्मन हर समय नारियों के शील हरण की बात सोचता रहता है। जोशी जी ने अपने इस उपन्यास में नायक 'पारसनाथ' के मन के भीतर पड़ी विविध गाँठों को खोलने की सतत् चेष्टा की है। 'त्याग का भोग' उपन्यास में नृपेन्द्र रंजन के मन में बुर्जुवा प्रवृत्ति दमित हुई पड़ी है जो समय पाकर बाहर आकर अपना रंग दिखा जाती है। 'मुक्तिपथ' उपन्यास में इलाचन्द्र जोशी ने सामाजिकता के धरातल को छूते हुए नायक राजीव और नायिकासुनन्दा के 'मानस-जगत्' का सुन्दर विश्लेषण किया है। 'ऋतुचक्र' उपन्यास में अधेड़ावस्था के नायक-नायिकाओं-दादा मिलन कुमार और प्रतिमा के मन का प्रकृति के साथ सुन्दर तादात्म्य स्थापित करवाया है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के उपन्यास व्यक्तिवादी अधिक होते है, अतः उनके उपन्यासों का विषय भी मानव-मन की अथाधता का अध्ययन होता है। 'मन' की अंधगुफाओं में प्रवेश करने पर वहाँ पर विभिन्न मनो-विकारों का ताण्डव नर्तन देखने को मिलता है। इसी ताण्डव-नर्तन द्वारा मानव की सम्पूर्ण व्यवहार परिचालित होता है। यदि 'मन' के इन विकारों

को दूर कर दिया जाए तो मानव पुनः अपने सहज रूप में वापस आ जाता है यही कारण है कि 'मनस्तत्व' 'मनस्तत्व' के बारे में प्राचीन काल से कवियों व लेखकों की लेखनी चलती रही है परन्तु समय-समय की अनेक समस्याएं आकर लेखकों की विचारधारा में परिवर्तन लाती रही है। यही कारण है कि ये उपन्यासों का उदयकाल और प्रेमचन्द काल मनस्तत्व की गहराईयों को मापने में असमर्थ था। प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासकारों ने मानव जीवन की जटिलताओं को देखदेखकर उन जटिलताओं के कारण जानने के लिए 'मनस्तत्व' जैसे दुर्गम मार्ग का वरण किया परन्तु उनकी दृष्टि केवल 'मनस्तत्व' पर नहीं टिकी वे आन्तरिक संघर्ष से अलग हटकर मन की उपरी पर्तों के विश्लेषण में ही लगे रहे। परन्तु इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में मन की अत्यन्त गुहाहित पर्त 'अचेतन' का विश्लेषण हुआ है। डा० शिवबहादुर सिंह भदौरिया जी उनके उपन्यासों के बारे में लिखते हैं:-

"इलाचन्द्र जोशी जी ने अपने आत्म-चरितात्मक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति के अचेतन मन के असंख्य पर्तों तले दबी पशु प्रवृत्तियों, कुण्ठाओं और विकारों का विषय के रूप में चयन किया है।"[1]

जोशी जी जब अपने उपन्यासों में नारियों के चरित्र का वर्णन करते हैं तब उनके 'मन' के विचित्र रूपों का उद्घाटन करने में कोई कसर

1- "हिन्दी उपन्यास: सृजन और प्रक्रिया"- डा० शिवबहादुर सिंहभदौरिया प्रथम संस्करण अगस्त 1981 ई० पृ० 216

नहीं छोड़ते। चाहे वह 'लज्जा' की नारी 'लज्जा' हो या प्रेत और छाया' की अंजरी, चाहे वह 'सन्यासी' की शांति हो या क्रान्ती, चाहे वह 'मुक्तमय' की सुनन्दा हो या प्रमिला सभी उभर से कितनी स्वस्थ दिखती हैं पर उनका एक दूसरा रूप भी है, उनका आन्तरिक रूप, जो समय-समय पर उनको असामान्य बनाता रहता है।

पुरुष-पात्रों के अन्तर्मन का तो कहना ही क्या? एक तो दुर्बलमना व्यक्तित्व, उस पर उनका अचेतन चालित व्यवहार। सभ्यता के आवरण के नीचे दबा यह आन्तरिक व्यक्तित्व कितना समाजघाती, कितना आत्म-घाती हो सकता है, यह इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में स्पष्ट रूप से दिखता है। सन्धीक्षोर एक बड़ा हिला प्रतिभाशाली नायक है परन्तु उसके 'अचेतन मन' में नारियों को प्रताड़ित करने की जो प्रवृत्ति जमी है, वही उसके व्यवहार की संचालिका है। नृपेन्द्ररंजन पूँजीवादी विचार धारा का व्यक्ति है, उसके मन के अन्दर उसी तरह के संस्कार जमे हैं। इन्हीं संस्कारों के वशीभूत वह मीन्धा को मानसिक रूप से दबाता चला जाता है परन्तु मीन्धा का व्यक्तित्व ऐसा वैसा नहीं है। वह तात्रावरण के प्रभाव से अपने आपको सभ्य सुशिक्षित बनाकर समाज के नृपेन्द्र रंजन जैसे पिस्सुओं से बदला लेना चाहती है और अन्त में वह नृपेन्द्र के मन के सभी विकार धोकर उसे सामान्य मानव बना छोड़ती है।

यह कहना अनुचित न होगा कि इलाचन्द्र जोशी के सभी उपन्यासों में 'मनस्तत्व' ही आधार बनकर प्रकट हुआ है। उन्होंने अपनी अधिकतम क्षमता मन के अतल सागर में डुबकी लगाते हुए बिता दी है।उनके अनुसार- "मनुष्य के उलझे और जटिल-चक्र का सैनिक तो भी सटीक परिचय नहीं प्राप्त हो सकता यदि हम मन की उलटी-सीधी गतिविधियों का सही-सही परिचय प्राप्त करने के लिए किसी कथात्मक या अन्य साहित्यिक रचना में मनोविश्लेषण का सहारा न लें।"[1] जोशी जी ने 'मनस्तत्व' का विश्लेषण करके 'मानव-मन' को परिभाषित करना अपना परम कर्तव्य समझा है। उन्होंने मन की अतीव गहराइयों में उतरकर वहाँ के दुर्भेद्यवातावरण को अपने 'मनोविश्लेषण' के मंत्र द्वारा पवित्र बनाकर पात्रों को द्वन्द्व, कुण्ठा, असमायोजन आदि मानसिक संघर्षों से मुक्ति दिलाने का सराहनीय प्रयास किया है। यही कारण है कि वे उपन्यास-साहित्य में मनस्तत्व के अच्छे विश्लेषक के रूप में जाने जाते है।

1- "आदीश्वरी" - संपादक राजेन्द्र अवस्थी, फरवरी 1983 ई० पृष्ठ 159, 160

2- मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा के प्रवर्तक एवं पथ-प्रदर्शक :- हिन्दी उपन्यास-जगत् में मनोविज्ञान के समावेश के कारण जिस मनोवैज्ञानिक उपन्यास-धारा ने जन्म लिया, उसमें निम्नलिखित विशिष्टताओं का समावेश प्रमुखता से हुआ - प्रथमतः तो उपन्यासों में पात्रों की संख्या अत्यन्त कम रखी गयी और उनके जीवन की कुछेक मनोवृत्तियों पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया अतः इन उपन्यासों में विषयवस्तु का कैनवास बहुत विशाल नहीं है। दूसरे- विषय की सीमितता के कारण उपन्यासकार का ध्यान पात्र पर ही केन्द्रित रहा जिससे पात्र के विश्लेषण में अगाधता बढ़ चली। तीसरे- चूँकि पात्र सामाजिक कम होकर व्यक्तिगत अधिक होने लगे अतः उनके अन्तर्द्वन्द्वों का तीव्र वर्णन इन उपन्यासों की विशेषता है। पात्रों का अन्तर्मुखीपन इन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की मूल विशेषता है। उपन्यासों में नये-नये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों जैसे - फ्रॉयड का 'स्वप्न सिद्धान्त' एडलर का 'क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त' और विविध मनोव्यापारों का जमकर प्रयोग होने लगा है। पात्रों के चारित्रिक विश्लेषण के लिए सबसे अधिक 'केस हिस्ट्री', 'फ्लैशबैक', 'मनोविश्लेषण' तथा 'अन्तर्विवाद' और 'मुक्त आलंब' जैसी प्रणालियों का जमकर प्रयोग हुआ। भाषा-शैली के क्षेत्र में काव्यात्मकता का पुट अधिक आ गया।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास-सम्राट इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में उक्त सभी विशिष्टताएं अपने तीव्रतम रूप में समाविष्ट हुई है। जोशी जी के

उपन्यासों में उक्त सभी विशिष्टताएं अपने तीव्रतम रूप में समाविष्ट हुई है। जोशी जी के समकालीनों में जैनेन्द्र जी ने भी उसी समय मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखने प्रारंभ किए, जिस समय जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखने प्रारंभ किए थे, परन्तु जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व उतनी तीव्रता से सामने नहीं आया जितना कि जोशी जी के उपन्यासों में । जोशी जी का उपन्यास 'परदेशी' यदि उपन्यास जगत में प्रकाशित होकर आ जाता तो शायद इस धारा के 'जनकत्व' का एक मात्र श्रेय जोशी जी को ही मिलता। जोशी जी के उपन्यासों 'हुलासी' और 'सन्यासी' ने उपन्यास जगत् में अवतरित होकर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रवर्तन का श्रेय प्राप्त किया। 'सन्यासी' में तो मनोविज्ञान का इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि आलोचकों ने इस उपन्यास को 'मनोचिकित्सा केन्द्र' की संज्ञा से विभूषित किया है।

जोशी जी के उपन्यासों में प्राय: पात्रों के जीवन की कुछ या एक ही घटना को लेकर उनके मन का भेद निकालने का प्रयास किया गया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार प्राय: जीवन की एकाध्घटना को लेकर उपन्यास की सृष्टि कर डालते हैं। इलाचन्द्र जोशी जी ने भी अपने सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जीवन की छोटीसे छोटी घटना को उपजीव्य बनाया है। 'सन्या' में प्रधान पात्री 'सन्या' के कुण्ठाग्रस्त वासना-मूलक प्रेम और प्राक्कोम में द्वन्द्व के कारण जीवन की ही झांकी दिखाई गयी

है। 'सन्यासी' उपन्यास सर्वप्रथम 'चित्रलेखा' के प्रथम वर्ष के अंकों में धारा वाहिक के रूप में पाठकों के सम्मुख आया था तभी से जोशी जी को मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार की संज्ञा मिली। इस उपन्यास के मनोवैज्ञानिक घटनाविश्लेषण, मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण तो उपन्यास साहित्य में अपनी धूम ही मचा दी। नन्दकिशोर के 'अहं' से ग्रस्त मन का विश्लेषण विविध पात्रों की सहायता से, स्वयं आत्म विश्लेषण द्वारा करवाकर जोशी जी ने उसके मन के मलिन भावों को, उपन्यास के अंत तक आते-आते धो डाला है। वसन्ती के साथ फिर वही स्वाभिमान से भरे बर्ताव,[1] बनारस में जाकर शांति देवी के पीछे-पीछे उनके घर तक पहुँच जाना और फिर उसे भगाकर इलाहाबाद ले आना,[2] ये सब अचेतनमन में सदियों से दबी पड़ी काम वृत्तियों के विस्फोटक प्रसूचन के द्योतक है। सम्पूर्ण उपन्यास में नायक नन्दकिशोर एक पहेली बना हुआ है। 'निर्वासित' उपन्यास में फ्रायड के 'लीबिडो' के सिद्धान्त के आधार पर महीप का जीवन-सूत्र प्रस्तुत करना, ठाकुर लक्ष्मी नारायण सिंह के चरित्र का 'सामूहिक अचेतन के सिद्धान्त' पर वर्णन शुद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार की ही देन हो सकते है।

जोशी जी के सभी नायक नायिकायें मनोविज्ञान की कसौटी पर खरे उतरे पात्र है। "उनके मुख्य-पात्र विश्लेषणात्मा नायक, अपने स्वभाव में अस्थिर

1- देखें- "सन्यासी" - इलाचन्द्र जोशी, सप्तम आवृत्ति, सं० 2030वि० पृष्ठ 40-41

2- देखें- "सन्यासी" - इलाचन्द्र जोशी, सप्तम आवृत्ति: सं० 2030 वि० पृष्ठ 110-111

तथा परिस्थितियों के दास हैं। वे स्वयं को नितान्त असहाय और असफल पाते हैं। यही उनके जीवन की विडम्बना तथा युग-चेतना की विशेषता है। - - - - उदासी और थकान, तुक और बेतुक की समूची दौड़ में उनकी अपनी कुण्ठाएं छाया-रूप में उनके साथ रहती हैं।"[1]

'प्रेत और छाया' उपन्यास की कथा का कैन्वास भी अधिक विस्तृत नहीं है। 'पारसनाथ' के जीवन में 'इडिपस ग्रंथि' के फलस्वरूप पड़ी कुण्ठा, अपने जारज होने की बात जानकर पड़ी प्रतिशोधात्मक ग्रंथि को लेकर ही सारा उपन्यास रचा गया है। जिन-जिन पात्रों के माध्यम से इस पात्र के अन्तर्मन में जमे इस कलुष को बाहर लाया गया है, वे हैं:- मंजरी, नंदिनी, हीरा। इस उपन्यास में मानव के अंतः के नरक को ही जीवन का संचालक बताया गया है:- - - - " अपने भीतर जजर डालो, वहाँ तुम्हारे ही शब्दों में भयंकर कुंभीपाक भभक रहा है और गौरव के विषैले कीड़े कुलबुला रहे हैं। बाहर तो केवल उस भीतरी नरक की अंधेरी छाया व्यक्ति को डराना चाहती है। मासूम बच्चों की तरह छाया से कतराकर असली चीज को अपने भीतर वहन करता हुआ अगर कोई आदमी सातवें स्वर्ग में भी जावे, तो निश्चय ही वह उस स्वर्ग को भी अपने भीतर के पाप-जगत् की छाया से घोर अन्धकारमय बना देगा- - और जो स्वर्ग

1- "इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व"- राजेन्द्र जैन प्रथम संस्करण सन् 1979 ई० पृष्ठ 72

नरक की यथार्थता पर स्थापित नहीं है, वह झूठा है: वह आत्मकामियों के संकीर्ण मन की मरीचिका है। नरक व्यक्ति यथार्थ है।[1]

अपनी कुण्ठा ग्रंथि के फलस्वरूप नायक पारसनाथ न केवल अविवाहिता नारियों का शील हरण करता है वरन् विवाहिता नंदिनी जैसी नारियों को अपाहिज बनाने के षड्यन्त्र रचता है। कितना विचित्र है- यह व्यवहार। नायक के मन में अपनी माँ के प्रति बनी गलत धारणा उसे अपने सम्पर्क में आने वाली नारियों के प्रतिशोध की भावना पैदा किए रहती है। सम्पूर्ण उपन्यास में कथावस्तु के नाम पर और कुछ नहीं है, सिवाय नायक के इन्हीं अन्तर्द्वन्द्वों के।

'त्याग का भोग' उपन्यास में नायक नृपेन्द्र रंजन के मन में बनी पूँजीवादी धारणाएँ अर्थात 'सामाजिक अपेक्षण का सिद्धान्त' उसके जीवन को पीस देता है और सम्पूर्ण उपन्यास की कथावस्तु नायक के इसी सिद्धान्त द्वारा परिचालित दमनकारी व्यक्तित्व के नीचे दबने और उससे उबरकर निकलने वाली नायिका मंजिया के जीवन का दिग्दर्शन कराता है। 'मंजिया' के उभार नायक पारसनाथ द्वारा किए जाने वाले अत्याचार द्वंद्व के 'सामाजिक अपेक्षण के सिद्धान्त' की पुष्टि करते हैं। इलाचन्द्र जोशी का यह कथा-नायक अंत में मंजिया के व्यक्तित्व के आगे एकदम फीका पड़ जाता है।

1- "त्याग का भोग" - इलाचन्द्र जोशी: तृतीय संस्करण सन् 1972ई० पृष्ठ 624

तभी तो जोशी जी लिखते हैं -- "---- मेरे लिए यही एक प्रलोभन है। वीर नायकों की गाथा लिखने वाले उपन्यासकारों की कमी नहीं है, पर दुर्बल स्वभाव व्यक्तियों को कथानायक बनाने का सौभाग्य अकेले मुझे ही प्राप्त है। इस संबंध में आप निश्चिन्त रहें।"[1]

इसी प्रकार जोशी जी के अन्य उपन्यासों की कथावस्तु भी सूक्ष्म ही है, अतिस्थूल नहीं। पात्रों का चयन भी पूर्णरूपेण मनोवैज्ञानिक है। अत्यन्त दुर्बल प्रकृति के पात्र ही उनके उपन्यासों में 'नायकत्व' का पद प्राप्त करते हैं, परवर्ती उपन्यास ही अपवाद स्वरूप हैं।

इलाचन्द्र जोशी के सभी उपन्यासों में फ्लैशबैक पद्धति, आत्मकथात्मक शैली में उपन्यास-सृजन की भरमार है। 'लज्जा' उपन्यास की नायिका 'लज्जा' के आत्मकथन से उपन्यास का प्रारंभ होता है। 'पूर्णा' नामक मनोमित्र उसे फ्लैशबैक में ले जाती है।[2]

'सन्यासी' उपन्यास भी आत्मकथात्मक शैली में ही प्रारंभ हुआ है और फ्लैशबैक द्वारा कथा को आगे बढ़ाया गया है।[3]

'मुक्तिपथ' और 'सुबह के भूले' उपन्यास नायिका में 'जीवन-वृत्त' की प्रधानता के फलस्वरूप उसके वृत्तात्मक चरित्र पर प्रकाश डालता है।

1-"प्रेत का मोह" - इलाचन्द्र जोशी: तृतीय संस्करण 1972ई० पृ० 624

2-देखें- "लज्जा"- इलाचन्द्र जोशी:तृतीय संस्करण सन्1982ई० पृ० 3-4-5

3-देखें- "संन्यासी"-इलाचन्द्र जोशी:सप्तम आवृत्ति सं० 2030वि० पृ० 9-10

दोनों ही उपन्यास नायिका प्रधान उपन्यास हैं और 'नारी' के मनोविश्लेषण के फलस्वरूप प्रस्तुत जटिल से जटिल होते गये व्यवहार की पुष्टि करते हैं। दोनों ही उपन्यासों में नारी-मनोविज्ञान का सफल प्रयोग हुआ है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि जोशी जी ने लगभग एक दर्जन उपन्यासों की रचना करके अन्य उपन्यासकारों के सम्मुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को लिखने का मार्ग प्रस्तुत किया। जैनेन्द्र, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, देवराज इत्यादि उपन्यासकारों के साथ चलते हुए जोशी जी के उपन्यासों ने मनोवैज्ञानिक विषयवस्तु, पात्रों की प्रधानता वाले कथानक प्रस्तुत करके मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा के पथ-प्रदर्शन का श्लाघ्य कार्य किया।

3- जोशी जी के उपन्यासों की लोकप्रियता:-

जोशी जी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास केवल व्यक्ति के अचेतन मन में दबी प्रवृत्तियों का ही विश्लेषण नहीं कराते हैं वरन् उन प्रवृत्तियों के वर्णन में वे 'अश्लीलता' का विशेष ध्यान रखते हैं। विश्लेषण की प्रक्रिया में 'सेक्स' को अपनाकर उपन्यास जगत में अपना अभीष्ट स्थान बना गये हैं।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में न केवल 'अचेतन-मन' के विकारों का विश्लेषण

किया अपितु उनका सँलेखा करके मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के मध्य शीर्ष स्थान प्राप्त किया। जोशी जी के अनुसार - "यदि मनुष्य को जीवन के नरक के अंदर स्वर्गिक चेतना की स्थापना स्थाई और सामूहिक रूप से करनी है तो वह उस नरक से कतराकर नहीं, वरन् उसकी अंतिम तह तक पैठकर ही संभव हो सकता है। उस नरक का पूर्ण रूप से मंथन करके ही स्वर्गिक चेतना का नवनीत निकाला जा सकता है।"[1]

जोशी जी के उपन्यासों की ट्रेजेडीयता के बारे में डा० शिव-बहादुर सिंह भदौरिया का कथन है - "जोशी जी के कथा-साहित्य की महानतम उपलब्धि के रूप में इस बात को स्वीकारा जा सकता है कि उन्होंने समाज के द्वारा उपेक्षित तथा समाज-विरोधित पात्रों को सहानुभूतिपूर्वक अपनी कला का विषय बनाया तथा इस प्रकार के त्याज्य कर्मों की ओर उनके मानसिक झुकाव के कारणों को मनोवैज्ञानिक प्रकाश में खोजा है।"[2]

इसी नरक का पूर्ण मंथन जोशी जी के उपन्यासों में हुआ है। 'पिरेचन सिद्धान्त' के अनुसार- यदि मनुष्य को कोई फोड़ा हो जाता है तो उसको खरोंचकर निकाल देने पर ही उसका विष शमित होकर उसे स्वास्थ्य लाभ होता है। इसी प्रकार यदि असामान्यता के फोड़े को

1-"बुनियाद" - इलाचन्द्र जोशी: तृतीय संस्करण - सन् 1965 ई० पृ०287

2-"हिन्दी उपन्यास, सृजन और प्रक्रिया" - डा० शिवबहादुरसिंह भदौरिया प्रथम संस्करण - सन् 1981 ई० पृ० 72

गला-गला कर पूर्णरूपेण निकाल दिया जाए तो सामान्यता आ जाती है यदि सड़ा-गला न निकाला जाए तो असामान्यता विनाशक हो उठती है। जोशी जी के उपन्यासों का यही उद्देश्य है। जोशी जी के उपन्यासों में विकारों, कुण्ठाओं और अहं के फोड़े जो नासूर बनकर व्यक्ति के जीवन को विषमय बनाते रहते हैं: विनोविश्लेषण के औजारों द्वारा विरेचित करके साफ कर दिये गये हैं। जोशी जी ने पात्रों को स्वास्थ्य लाभ भी कराया है। यह स्वास्थ्य लाभ 'उदात्तीकरण' के रूप में हुआ है। जोशी जी के उपन्यासों की यही महान उपलब्धि है कि उन्होंने असामान्य व्यक्ति के विकारों को दूर करके उन्हें 'उदात्तीकृत' करके स्वस्थ भी बनाया है। 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया', मुक्तिपथ', 'त्याग का भोग', 'सुबह के भूले' सभी उपन्यासों में नायक या पुरुष पात्र जोशी जी की 'उदात्तीकरण' की प्रक्रिया से होकर गुजरे हैं और अन्त में स्वास्थ्य लाभ भी प्राप्त किया है। जोशी जी के उपन्यासों की अन्य उपलब्धि है- मनोवैज्ञानिक विषय वस्तु को लेकर भी भारतीय मान्यताओं और परंपराओं पर कुण्ठाराघात नहीं करते हैं। वे 'नारी-प्रगति', नारी मुक्ति, आन्दोलन विधवा विवाह, छुआछूत, जातीय समस्या, 'स्त्री पुरुष के सम्बन्ध' जैसे प्रश्नों को भी बीच-बीच में प्रासंगिक रूप में उठाते चलते हैं।

'नारी-प्रगति' के क्षेत्र में जोशी जी के उपन्यास अग्रणी हैं। 'मुक्तिपथ', 'सुबह के भूले', 'प्रेत और छाया', और 'त्याग का भोग' उपन्यास नारी-स्वातन्त्र्य और 'नारी-प्रगति के प्रतिबिम्ब हैं। जोशी जी

के उपन्यासों के पुरुष पात्र प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में नारियों को आगे उठाने, प्रगति हेतु तैयार होने को प्रेरित करते रहते हैं। 'मुक्तपथ' की सुनन्दा राजीव द्वारा प्रेरित की जाती है- "सुनन्दा, उठ बैठो। अभी से इस तरह घबरा उठने से काम नहीं चलेगा। तुम्हारे आगे अभी जीवन-दुर्ग के उन लोह-द्वारों को खोलने का भार शेष है जिनके ताले युगों से बन्द पड़े हुए हैं। रूढ़िगत आलस्य और जड़ताओं इस कठोर कर्तव्य को टाल जाने की इच्छा न करो।"[1]

विधवा-विवाह की समस्या भी 'मुक्तपथ' नामक उपन्यास में उठाई गयी है। 'सुनन्दा' एक विधवा-नारी है। समाज के रूढ़िगत संस्कार उसे दबाये हुए हैं परन्तु जोशी जी ने इस क्षेत्र में क्रान्तिकारी कदम उठाया है। वे सुनन्दा को अपने ढंग से जीवन जीने को उकसाते हैं। यही आज की नारी सुनन्दा वर्तमान नारी की स्थिति में होने वाले परिवर्तनों का उद्योष करती है। सुनन्दा को अपने जीवन के प्रति सचेत करती हुई प्रीमला कहती है-

"तुम न अकेली हो न असहाय एक बड़ा समाज तुम्हारे साथ है। तुम्हारे लिए एक भी क्षेत्र नहीं है। जिन हजारों क्षेत्रों की बात तुम कर रही हो वे सब तुम्हारे मन के द्वारा रचे गये मकड़ी के जाले हैं जो अँधेरे में दीपे की तरह तन रहे हैं। एक बार दृढ़ निश्चय करके, पूर्ण विश्वास के साथ खड़ी हो जाओ। देखोगी, तुम्हारा पथ रोकने वाला समस्त विश्व में एक भी नहीं है।"[2]

1-"मुक्तपथ" - इलाचन्द्र जोशी: पेपरबैक संस्करण- सन् 1963ई० पृ०49-50

2-"मुक्तपथ" - इलाचन्द्र जोशी: पेपरबैक संस्करण-सन् 1963ई० पृष्ठ 96

'सुबह के भूले' उपन्यास की नायिका गुलबिया के माध्यम से भी इलाचन्द्र जोशी नारी-प्रगति का बखान करते है। एक निम्नवर्गीय परिवार की लड़की गुलबिया अपने परिश्रम और लगन द्वारा समाज के कुलीन वर्ग में अपनी शिक्षा के बल पर अपना स्थान बना लेती है।

'त्याग का भोग' उपन्यास की नारी-पात्र 'मीनिया' प्रारम्भ में आत्मकामी, पूँजीवादी पुरुष नृपेन्द्ररंजन के 'अहं' व 'सम्मोहन' के कुचक्र में फँसकर दबती जरूर है परन्तु वह पुरुष नृपेन्द्र के अत्याचार को अधिक दिन तक बर्दाश्त नहीं करती है। वह चेहरे की प्लास्टिक सर्जरी करवाकर— नये रूप उपस्थित होकर अपने पैरों पर खड़ी हो जाती है और समय आने पर नायक नृपेन्द्ररंजन के 'अहंग्रस्त मन' पर तीखी चोट करती है।[1]

'प्रेत और छाया' उपन्यास की नायिका मंजरी भी अपने प्रेम में धोखा खा जाने के बाद छः वर्ष की लम्बी अवधि में डाक्टरी का कोर्स कर लेती है और 'नारी-मुक्ति आन्दोलन' व 'नारी-स्वातन्त्र्य' का उद्योष करती है। जोशी जी लिखते हैं :- "---हमारे देश की नारी बहुत महान्-महानतम है। उसने सदियों से बहुत पीड़न सहे हैं: पुरुष-परिचालित सभ्यता के कठोर लौह-शासन से कुचले जाने पर भी उसने अपनी परतन्त्रता स्वर्गीय आभा की महिमा प्रदान की है: प्रीत के साथ सती बनकर वह चीखित अवस्था में चिता में हँस-हँसकर जल मरी है: --------- इन सब हीनताओं के कीचड़ में लोटने को विवश होने पर भी उसने अपनी मुक्त-प्रकृति की महत्ता नहीं खोयी है ---न जाने उसके भीतर किस

1-देखें -"त्याग का भोग" -इलाचन्द्र जोशी: तृतीय संस्करण सन् 1972 ई० पृष्ठ 474-475

प्रचंड आत्मशक्ति का बीज निहित रहा है। युग-युगांत की वह तापसी ऊपर से आज भी पिसी हुई: निःशक्त और पराजित मालूम होती है पर, वह दिन दूर नहीं है, जब उसके भीतर इतने दिनों से बड़े यत्न के साथ संचित अंगार-कण दहककर विश्वव्यापी ज्योतिर्मय ज्वाला में परिणत हो उठेंगे। - - - - - - - - - - - संसार के समस्त देशों की नारियाँ उसी की विजय पताका के पीछे-पीछे चलकर अपने को महिमान्वित समझेंगी।"[1]

जोशी जी के उपन्यासों का धरातल मनोवैज्ञानिक होने पर भी उन्होंने कहीं भी स्वच्छन्द यौनाचार का वर्णन नहीं किया: जबकि जैनेन्द्र और अज्ञेय आदि के उपन्यासों में यौनाचार के खुले चित्र अंकित किए गये हैं। जोशी जी के उपन्यासों के पुरुष-पात्र अत्यन्त क्रूरकामी और वासना-ग्रस्त होते हुए भी कभी भी पाठकों के चक्षुओं के सम्मुख संभोग या यौनाचार नहीं करते हैं। ये काम वे पर्दे के पीछे करते हैं। इसी कारण जोशी जी के उपन्यासों की उपादेयता अधिक है। जोशी जी के नायक यद्यपि अत्यन्त दुर्बल प्रकृति के हैं तथापि वे शारीरिक संबंधों को संभालकर चले हैं। यद्यपि जोशी जी कहते हैं - "स्त्री-पुरुष का शारीरिक मिलन प्रतिदिन के जीवन की ठोस वास्तविकता है। उसकी न तो अवज्ञा ही की जा सकती है न निराकरण।"[2]

जोशी जी के उपन्यासों में 'मनोविश्लेषण' के प्रयोग के कारण वह शुष्कता नहीं आई है जो अन्य उपन्यासकारों के उपन्यासों में। उनके उपन्यास

1-"प्रेत और छाया" - इलाचन्द्र जोशी: चतुर्थ संस्करण संवत् 2030 वि0 पृष्ठ 386-387

2-"ऋतुचक्र" - इलाचन्द्र जोशी: तृतीय संस्करण - सन् 1985 ई0 पृष्ठ 286

'सौन्दर्यानुभूति' से परे नहीं है। चूँकि जोशी अल्मोड़े जैसी प्राकृतिक स्थली की देन है अतः उनके उपन्यासों में 'सौन्दर्य तत्व' का मिलना अनिवार्य है। इनके उपन्यासों में सौन्दर्य तत्व दो रूपों में सामने आया है :-

(1) शारीरिक सौन्दर्य

(2) प्राकृतिक सौन्दर्य

जोशी जी ने शारीरिक सौन्दर्य वर्णन में न केवल नारी व पुरुष के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन किया है अपितु आन्तरिक सौन्दर्य पर भी विशेष ध्यान दिया है। "केवल नारी-सौन्दर्य ही नहीं, अपितु पुरुष सौन्दर्य भी उनकी लेखनी का विषय बना है। 'लज्जा' उपन्यास में लज्जा के भाई राज के सौन्दर्य पर[1] तो कोई भी आसक्त हुए बिना नहीं रह सकता है। स्त्री-पात्रों के बाह्य सौन्दर्य का तो वर्णन हुआ ही है, उनके आन्तरिक सौन्दर्य दया, ममता, स्नेह, प्यार, त्याग आदि के वर्णन में जोशी जी ने पीछे मुड़कर नहीं देखा है। माधवी दीदी, तुलसा, शालिनी, शारदा, गुलबिया जैसी नायिकाएँ अपने आंतरिक सौन्दर्य द्वारा पुरुषों के मन मोह लेती हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन में जोशी जी का 'बसुधरा' चिर स्मरणीय रहेगा। इसके अतिरिक्त 'मुक्तिमथ' व 'त्याग का भोग' में भी पहाड़ी- सौन्दर्य का यथा स्थलों पर चित्रण हुआ है।

शिल्प के क्षेत्र में नूतन से नूतन प्रयोगों के कारण जोशी जी के उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के मध्य धरोहर के रूप में माने जायेंगे क्योंकि

1- देखें- 'लज्जा" इलाचन्द्र जोशी: तृतीय संस्करण:सन् 1982ई० पृ० 80

नूतन विषय वस्तु, नूतन चरित्र-चित्रण और नूतन भाषा संबंधी प्रयोगों ने उनके उपन्यासों को अक्षुण्ण चारुत्व प्रदान किया है।

4- जोशी जी के उपन्यासों का मूल्यांकन :-

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास मनोविश्लेषण प्रधान व्यक्तिवादी व यथार्थवादी उपन्यास है क्योंकि "मनोविश्लेषणवाद ने जीवन के समस्त स्वीकृत मूल्यों को अस्वीकृत कर नये सिरे से, जीवन के सत्यों और मूल्यों के बारे सोचने को विवश कर दिया है। अंतर्मन की वास्तविकता पर पड़े हुए धूमिल आवरण को हटाकर मानव चरित्रों के स्वीकृत प्रतिमान को खंडित कर दिया है।"[1] अतः स्वाभाविक ही है कि उपन्यास जगत में आये परिवर्तनों को पाठक एकदम से न स्वीकार कर पायेंगे। यही कारण है कि जोशी जी उपन्यासों में सशक्तता होने पर भी दुर्बलता का दोष लगाया जाता है। उनके पात्रों पर दुर्बलता का आरोप लगाया जाता है, उनकी कथावस्तु पर रोचकत्व का आरोप लगाया जाता है, उनके संवादों पर भाषा बोली दोष लगाया जाता है: परन्तु सत्यता सर्वत्र एक सी नहीं है।

"इलाचन्द्र जोशी जी मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के कथाकार है। अतः उनके 'औपन्यासिक पात्र भी यथार्थ जगत् के प्राणी है। सभी मानवीय गुण-दोष उनमें विद्यमान है।"[2]

1- "हिन्दी उपन्यास: चिंतन और प्रक्रिया" - डा० शिवबहादुर सिंह भदौरिया प्रथम संस्करण - सन् 1981 ई० पृष्ठ 72

2-"पर्दे की रानी"- इलाचन्द्र जोशी: संस्करण - सन् 1983 ई० पृ० 1 (आमुख)

जोशी जी का मूलउद्देश्य मानव के अचेतन मन में पड़े विकारों का पर्दाफाश करना है अतः उन्होंने इसके लिए दुर्बल पात्रों को अपने उपन्यासों का उपजीव्य बनाया है। इन दुर्बल पात्रों के 'अचेतन मनत्र को उद्घाटित करने के लिए जोशी जी ने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अधिक आश्रय लिया है। यही जोशी जी के पात्रों की कमजोरी है। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के वर्णन में अधिक रम जाने के कारण जोशी जी के उपन्यासों में शुष्कता व नीरसता सी आने लगती है। महेन्द्र चतुर्वेदी लिखते हैं -"सबसे बड़ी कमजोरी यह लगती है कि उन्होंने मानव-मन के अनुभूत-ज्ञान को अपना आधार कम बनाया है और अध्ययन से अर्जित शास्त्रीय ज्ञान पर अधिक भरोसा किया है।"[1]

लेकिन यह सब जोशी जी ने प्रतिज्ञप्ता ही किया है। जोशी जी के सम्पूर्ण उपन्यासों का शिल्पगत अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उनके कुछ उपन्यास 'मनोविश्लेषण' की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है परन्तु शिल्प की दृष्टि से उतने नहीं। 'सन्यासी' उपन्यास को ही लें। इस उपन्यास का प्रधान कथा-सूत्र 'सन्यासी' और'डाक्टर कन्हैयालाल' के प्रेम-व्यापार को लेकर गति प्राप्त करता है। अन्य समस्त घटनाचक्र इसी प्रधान कथा-सूत्र के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। उपन्यास के अन्तर्गत कुछ नाटकीय परिस्थितियाँ उत्पन्न की गई है। सम्पूर्ण उपन्यास में मानव-मन की व्याख्या ही प्रधान लक्ष्य है: शिल्प की तरफ जोशी जी का ध्यान ही नहीं रमा है।

1-"देखें - "हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण" - महेन्द्र चतुर्वेदी :
प्रथम संस्करण : फरवरी 1962 ई० पृष्ठ 128

'संन्यासी' उपन्यास में भी नन्दीकेश्वर के जीवन का वृत्तान्त कथा का प्रारंभ करता है। कथा को विकसित करने के लिए जयन्ती और नन्दीकेश्वर का प्रसंग बीच में आकर ऐसी प्रतीति करवाता है जैसे यही आगे चलकर कथा का प्रधान सूत्र बनेगा लेकिन यह सूत्र बीच में ही टूट जाता है। इससे कथा की गति में अवरोध उत्पन्न होता है। जोशी जी केवल 'मनोविश्लेषण' को ही प्रधान लक्ष्य मानकर चलते है, अतः उनकी दृष्टि 'कथानक' के वैशिष्ट्य पर नहीं रमी है। उनके सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का यही हाल है। 'अचेतन-मन' के विश्लेषण के लक्ष्य के कारण 'कथा-शिल्प' पक्ष कमजोर हो गया है। "उनकी विषय वस्तु मुख्यरूप से मानसिक ग्रंथियों से उत्पन्न मानसिक अस्वास्थ्य का चित्रण करना रहा है। कथानक ऐसे मानसिक अस्वस्थ पात्रों की चित्त-वृत्ति का एक दस्तावेज है, जिसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न प्रकार के विकृत चित्र रखे गये है।"[1]

जोशी जी के 'पात्र-चयन' पर भी आलोचक आक्षेप लगाते है। जोशी जी ने समाज के स्वस्थ पात्रों को अपने उपन्यासों में स्थान नहीं दिया है। कारण, स्वस्थ-पात्रों के माध्यम से अचेतन-मन के विकारों को सरलता से बाहर नहीं लाया जा सकता है। 'सन्यासी', 'प्रेत और छाया' 'सुबह का भोला' तीनों ही प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्र दुर्बल ग्रंथियों वाले पात्र है। जोशी जी ने इन पात्रों के माध्यम से मानव-जाति के अन्दर बरसों से पड़ी दीमत ग्रंथियों का उद्घाटन करना चाहा है क्योंकि

1- "उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी मूल्यांकन" - डा० सुधीर कुमार
प्रथम संस्करण सन् 1960 ई० पृष्ठ 166

समाज की वर्तमान दशारसीमानसिक रुग्णता के कारण हुई है। आज के मानव की जटिलता का एकमात्र कारण मानव के अन्दर दबे पड़े यही मानसिक क्रिया कलाप यही ग्रंथियाँ है। यही कारण है कि जोशी जी इन ग्रंथियों को खोलकर बाहर रख देना चाहते हैं और मानव के साथ-साथ समाज में व्याप्त विषमताओं, संघोर्षों व द्वन्द्वों के कोढ़ को मिटा देना चाहते हैं। इसके लिए उन्हें दुर्बल पात्र ही चाहिए न कि देवीय। अतः इनके पात्रों पर दुर्बलता का आरोप लगाना व्यर्थ ही है।

जोशी जी के उपन्यासों में संवाद-शिल्प में सशक्तता की कमी है। मनोविज्ञान के सिद्धान्तों और अपने व्यावहारिक तथा शास्त्रीय ज्ञान को प्रदर्शित करने के चक्कर में वे संवाद-सौष्ठव को नकार गये है। जोशी जी के उपन्यासों में अन्तर्विवाद [स्वगत कथन] इतने लम्बे-लम्बे है, जैसे कोई छात्र भाषण दे रहा हो या अपनी ज्ञान की शेखी बघार रहा हो। 'संयासी' 'प्रेत और छाया', 'त्याग का भोग', और निर्वासित उपन्यास के कुछ बुद्धिजीवी पात्र ऐसे संवाद प्रस्तुत करते हैं जो लम्बे-लम्बे भाषणों के सिवा कुछ नहीं लगते है।

जोशी के उपन्यास-शिल्प पर यदि विहंगम दृष्टि डालें तो उनके उपन्यासों की कथा-वस्तुओं में लगभग एक सी समानता दिखती है। सभी उपन्यासों की कथावस्तु के मूल में 'यौन-कुण्ठाएं' विकृतियाँ ही प्रधान हैं। जोशी जी की वैयक्तिक रुचि प्रायः सर्वत्र ऐसे अवसर तलाशती रहती है, जहाँ सेवह पात्रों के मनोजगत की गहराईयों में पैठ सके। अनुकूल अवसर पाते ही उनकी लेखनी मनोवैज्ञानिक आलोक में पाठकों को चमत्कृत करती रहती है।

निष्कर्ष रूप में केवल मनोवैज्ञानिक उद्देश्य लेकर चलने के कारण जोशी जी का उपन्यास-शिल्प शिथिल हुआ है। लेकिन "जोशी व्यक्तिमन और समाजमन या संस्कारी मन का एक समन्वय प्रस्तुत करते हैं। व्यक्तिमन ऐच्छिक तृप्तिघटकों को पीता और फोड़ता चलता है पर फूटने पर पर्याप्त पछताता भी है। मध्यवर्गीय घटनमयी चेतना में पले मन का यथार्थ पूरी चुस्ती प्रवाह और कला के साथ प्रकट हुआ है। इस मन की रुग्णता, कुण्ठा, गलनशीलता भी बड़े वैभव के साथ व्यक्त हुई है। किन्तु यह सच्ची है, उसका आधार वास्तविक है। ऐसे सहस्रों मन आज भी हमारे बीच हैं, जो अन्दर से अपने यौन-यथार्थ से ही प्यार करते हैं, उसकी ही शतशः पूर्ति चाहते हैं। - - - - मध्यवर्गीय असहाय एवं आकुलमन के अनेक अन्तःप्रेरित चित्र जोशी जी में द्रष्टव्य है।"[1]

5- आगामी कथा-साहित्य पर जोशी जी का प्रभाव :-

वर्तमान बौद्धिक और यांत्रिक युग की आपाधापी, भाग-दौड़ भरे माहौल में आज का मानव व्यक्तित्व की दृष्टि से कुण्ठित हो चुका है। वह कभी भी विषमताओं का शिकार हो रहा है, तो कभी वर्जनाओं का। एक क्षण में वह बहुत भला, सभ्य दिखता है तो दूसरे क्षण में बहुत बुरा और असभ्य। डा० भदौरिया के शब्दों में - - " - उसकी आंतरिक जीवन-सत्ता को उसकी समस्त विविधता और

1- "उपन्यास: सिद्धान्त और संरचना" - रवीन्द्र कुमार जैन
प्रथम संस्करण - सन् 1972 ई० पृष्ठ 94-95

जटिलता में व्यक्त करना ही मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों का कर्तव्य है।"[1]

मनोवैज्ञानिक उपन्यास सम्राट इलाचन्द्र जोशी का अधिकांश उपन्यास-साहित्य जटिलताओं, संघर्षों व कुण्ठाओं भरे माहौल की देन है। जोशी जी ने आधुनिक, घुटन और संत्रास भरे माहौल में उपन्यास-सृजन करने वाले लेखकों के सम्मुख नूतन व उपयोगी विषयवस्तु रखकर अपना व्यापक प्रभाव छोड़ा है। जोशी जी को यथार्थ मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करने के लिए पर्याप्त निन्दा व घृणा का पात्र बनना पड़ा था। जिसका वर्णन उन्होंने विवेचना में किया है।[2] लेकिन कालान्तर में उनके यही मनोवैज्ञानिक चित्र उपन्यास-जगत् में सराहे गये और परवर्ती उपन्यासकारों के प्रेरणा-स्रोत बने।

इलाचन्द्र जोशी ने सर्वप्रथम नयी विषयवस्तु (कुण्ठाओं और विकृतियों को आधार बनाकर) को लेकर मनोवैज्ञानिक उपन्यास-धारा का सूत्रपात किया। पात्रों के आन्तरिक जीवन की झाँकी, वह भी विशुद्ध यथार्थ रूप में, सर्वप्रथम, मनोविज्ञान के आलोक में, विशेषतः मनोविश्लेषण के आलोक में, इलाचन्द्र जोशी जी ने ही रखी।

इस सबका व्यापक प्रभाव आगामी कथा-साहित्य पर पड़ा। जोशी जी के परवर्ती उपन्यासकार निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, राम-कमल चौधरी इत्यादि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के लिए ऐसी ही मनोवैज्ञानिक कथावस्तुएं, घटनाएं व कुण्ठाएं चुनीं। जोशी जी के कथानक-

---

1-"हिन्दी उपन्यास: सृजन और प्रक्रिया" - डा० विश्वम्भरनाथ सिंह मनोरमा
प्रथम संस्करण सन् 1981 ई, पृष्ठ 220

2- देखें- विवेचना- इलाचन्द्र जोशी पृष्ठ 93

'यौन-वृत्तियों' की भीषणताओं को लेकर आये थे। यही यौन-वृत्तियाँ परवर्ती उपन्यासकारों के उपन्यासों की प्रेरणा-स्रोत बनी है। चाहे वह- 'उसकी पंचवटी' हो या 'एक मछली मरी हुई, चाहे वह 'अंधेरे बन्द कमरे' हो या 'आपका बंटी' सबमें जीवन की छोटी-छोटी घटनाएं व विसंगतियाँ ही आधार बनी हैं।

नारी-स्वातन्त्र्य को लेकर रचे गये उपन्यास 'सुबह के भूले' तथा 'मुक्तिपथ' परवर्ती कथाकारों के सम्मुख आदर्श उपस्थित करते हैं। जोशी जी के उपन्यास-सृजन के समय नारी की स्थिति समाज में अधिक उन्नत नहीं थी। परन्तु जोशी जी ने संक्रान्ति के उस काल में ही नारी-स्वातन्त्र्य और 'नारी-प्रगति' का जो कॉल दिया उसका व्यापक प्रभाव परवर्ती कथाकारों पर पड़ा। नारी-समस्याओं व नारी-स्वातन्त्र्य को लेकर जोशी जी के परवर्ती उपन्यासकारों ने अनेक उपन्यास लिखे। इनमें 'कोई नहीं सीमा का' नारी-स्वातन्त्र्य का उत्कृष्ट चरण है। नारी के मन में होने वाले अंतर्द्वन्द्वों का इस उपन्यास में सूक्ष्म परिपाक, हुआ है। परवर्ती उपन्यासकारों ने नारी-समस्या' को आधार बनाकर अनेक उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सृजन किया।

अस्तु, इलाचन्द्र जोशी की परवर्ती कथा-साहित्य जोशी जी के साहित्य से अलग नहीं है। मनोविश्लेषण, आत्मविश्लेषण व अन्य हिन्दी जैसी मनोवैज्ञानिक विधियाँ अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण अचेतन मन का सूक्ष्म विश्लेषण ये सभी आज के कथासाहित्य की मुख्य विशेषताएं हैं। इन सभी को

आज के उपन्यासों में समाविष्ट कराने का श्रेय जोशी जी को है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि कुण्ठाओं और संत्रास भरे जीवन की जटिलताओं के चित्रण के लिए आगामी कथा-साहित्य के लिए जोशी जी जैसा प्रेरक आधार अन्य नहीं है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रवर्तन के क्षेत्र में वे मील के पत्थर हैं।

* *******************
****
****
****
***
*

सहायक ग्रंथों की सूची

" सहायक ग्रंथ - सूची "

1- हिन्दी ग्रंथ सूची :-

उपन्यास साहित्य :-

1- 'लज्जा' - इलाचन्द्र जोशी: तृतीय संस्करण सन् 1982ई० भारती भण्डार, इलाहाबाद

2-'सन्यासी' - इलाचन्द्र जोशी: सप्तम आवृत्ति सं० 2030वि० लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

3- 'पर्दे की रानी' - इलाचन्द्र जोशी: संशोधित संस्करण 1983ई० जीनक्क प्रकाशन, इलाहाबाद

4- 'प्रेत और छाया'- इलाचन्द्र जोशी: चतुर्थ संस्करण सं02035वि० भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

5- 'मुक्तिपथ' - इलाचन्द्र जोशी: पेपर बैक संस्करण सन् 1983ई० जीनक्क प्रकाशन, इलाहाबाद

6- 'सुबह के भूले' - इलाचन्द्र जोशी: संस्करण सन् 1984 ई० लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

7- 'त्याग का भोग'- इलाचन्द्र जोशी: तृतीय संस्करण सन् 1972ई० लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

8- 'जहाज का पंछी'- इलाचन्द्र जोशी: संस्करण सन् 1985 ई० लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

9- 'ऋतुचक्र' - इलाचन्द्र जोशी: तृतीय संस्करण सन् 1985 ई० लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

10- 'निर्वासित'- इलाचन्द्र जोशी: सप्तम आवृत्ति सं० 2022वि०
भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

11- 'कवि की प्रेयसी'-इलाचन्द्र जोशी: प्रथम संस्करण सन् 1976ई०
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

12- 'नदी के द्वीप' - अज्ञेय: संस्करण सन् 1951 ई०
सरस्वती प्रेस, दिल्ली, इलाहाबाद

13- 'शेखर एक जीवनी' -(भाग-1)- अज्ञेय: संस्करण सन् 1956ई०

14- 'शेखर एक जीवनी' -(भाग-2)- अज्ञेय: संस्करण सन्(1957 ई०

15- 'सुनंदा'- जैनेन्द्र + संस्करण सन् 1982 ई०
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

16-16- 'कल्याणी' - जैनेन्द्र : तृतीय संस्करण सन् 1953 ई०
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

17- 'त्यागपत्र' - जैनेन्द्र: संस्करण सन् 1953 ई०
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

18- 'सुनीता' - जैनेन्द्र: छठवाँ संस्करण सन् 1958 ई०
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई

19- 'परख' - जैनेन्द्र : आठवाँ संस्करण सन्
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई

20-'जयवर्धन' - जैनेन्द्र : प्रथम संस्करण
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

21- 'गुनाहों का देवता' - धर्मवीर भारती :29वाँ संस्करण 1983ई०
भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, दिल्ली

22- 'भीतर के घाव' - डा० देवराज, चतुर्थ संस्करण सन् 1975 ई०
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

23- 'दूसरा सूत्र' - डा० देवराज : प्रथम संस्करण सन् 1978 ई०
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

24- 'तितली' - जयशंकर प्रसाद: 3री संस्करण, सं० 2005 वि०
भारती भण्डार, इलाहाबाद

25- 'कंकाल' - जयशंकर प्रसाद : 3री संस्करण
भारती भण्डार, इलाहाबाद

26- 'कर्मभूमि' - प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, बनारस

27-'कायाकल्प' - प्रेमचन्द

28-'गोदान' - प्रेमचन्द, संस्करण सन् 1981 ई०
सरस्वती प्रेस, बनारस

29-' गबन' - प्रेमचन्द: 6ठां संस्करण सन् 1946 ई०
सरस्वती प्रेस, बनारस

30-'निर्मला'- प्रेमचन्द 9वां संस्करण सन् 1952 ई०
सरस्वती प्रेस, बनारस

31-'प्रतिज्ञा' - प्रेमचन्द 4थां संस्करण सन् 1933 ई०
सरस्वती प्रेस, बनारस

32-'प्रेमाश्रम' - प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, बनारस

33-'सेवासदन' - प्रेमचन्द

34-'रंगभूमि' - प्रेमचन्द

35- 'उनका गोपाल'- गोपालराय गहमरी :द्वितीय संस्करण 1946ई०

36- 'चन्द्रकान्ता'-देवकीनन्दन खत्री : 29वाँ संस्करण सन् 1956ई०

37- 'गिरती दीवारें'-उपेन्द्र नाथ अश्क

38- 'घी की बी'- उपेन्द्रनाथ अश्क

39- 'अँधेरे बन्द कमरे' - मोहन राकेश

40- 'उखड़े हुए लोग'- राजेन्द्र यादव

41- 'रुकोगी नहीं राधिका' - डॉ० धर्मवीर भारती
पेपर बैक संस्करण, सन् 1984ई०,
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

42- 'दादा कामरेड' - यशपाल

आलोचनात्मक ग्रंथ :-

43- 'अपसामान्य मनोविज्ञान'- मलीजा और मलीजा:
प्रथम संस्करण सन् 1980 ई०
प्रकाशन: लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा

44- 'अपसामान्य मनोविज्ञान'- डा० व्रजगोपाल त्रिपाठी:
सप्तम संस्करण सन् 1982 ई०
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

45- 'असुविचल' - इलाचन्द्र जोशी:प्रथम संस्करण सन् 1983 ई०
देवदार प्रकाशन, दिल्ली

46- 'आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान' - डा०प्रीतमवर्मा/डा०डी०एन०वर्मा
प्रथम संस्करण सन् 1970ई०
विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा

47-'आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान'- डा० एस०एन० शर्मा:
चतुर्थ संस्करण सन् 1984 ई०
प्रकाशन : हर प्रसाद भार्गव,आगरा

48-'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' -डा०केसराम उपाध्याय
प्रथम संस्करण, सन् 1956 ई०
साहित्य भवन प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद

49-'आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तुविधान'-डा०सरोजनी त्रिपाठी
संस्करण - मई 1973 ई०
ग्रंथम, रामबाग, कानपुर

50-'आधुनिक हिन्दी उपन्यास, 'उद्भव और विकास'- डा० बेचन:
प्रथम संस्करण सन् 1971 ई०
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली

51-'आधुनिक हिन्दी साहित्य' - विजेन्द्र स्नातक, केसवचन्द्र सुमन
संस्करण- सन् 1957 ई०
आत्माराम एण्ड सन्स: दिल्ली

52-'आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन'-डा०गंगेश्वत गौड़
संस्करण- जनवरी सन् 1965ई०
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा

53-'आज का हिन्दी उपन्यास'- इन्द्रनाथ मदान:प्रथम संस्करण 1966ई०
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

54-'इलाचन्द्र जोशी के औपन्यासिक नायक का अन्तर्द्वन्द्व'-डा०राजेन्द्रजैन
प्रथम संस्करण: सन् 1979 ई०
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली

55-'उपन्यास के पक्ष' - लेखक ई० एम० फार्स्टर, अनुवाद सरल भार्गव
प्रथम संस्करण सन् 1962 ई०
राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

56-'उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी, मूल्यांकन'- डा० सुधीर कुमार
प्रथम संस्करण सन् 1980 ई०
संजय प्रकाशन, गुलाबगला, वाराणसी

57-'उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी'- डा० कृष्ण देव झारी
संस्करण - सन् 1975 ई०
शारदा प्रकाशन- मटरोनी, नई दिल्ली

58-'उपन्यास: सिद्धान्त और संरचना'- रवीन्द्र कुमार जैन
प्रथम संस्करण 1972 ई०
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली

59-'उपन्यास: तत्व एवं रूपविधान' - श्री नारायण अग्निहोत्री
प्रथम संस्करण , सन् 1962 ई०
आचार्य शुक्ल साधना सदन, कानपुर

60-'उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन'-बलराजसंहराणा
प्रथम संस्करण - सन् 1978 ई०
संजय प्रकाशन, दिल्ली

61-'कथासाहित्य के मनोवैज्ञानिक समीक्षा सिद्धान्त'-डा०देवराजउपाध्याय
प्रथम संस्करण, सन् 1972 ई०
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

62-'कुछ विचार' - प्रेमचन्द: चतुर्थ संस्करण: सरस्वती प्रेस, बनारस

63-'जैनेन्द्र और उनका साहित्य'- डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर
प्रथम संस्करण सन् 1981 ई०
भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली

64-'जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन'-डा०देवराज उपाध्याय
प्रथम संस्करण सन् 1972 ई०
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

65-'देखा परखा' - इलाचन्द्र जोशी: प्रथम संस्करण मई 1957ई०
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

66-'जैनेन्द्र और उनके उपन्यास'- रघुनाथ शरण डालानी
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

67-'प्रेमचन्द, व्यक्तित्व और कृतित्व'- शापी रानी० गुर्टू
इण्डिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

68-' मनोविज्ञान की ऐतिहासिक रूपरेखा'- डा० सीताराम जायसवाल
संस्करण - सन् 1963 ई०

69-'मनोविश्लेषण' - फ्रॉयड,अनुवाद देवेन्द्र विद्यालंकार 5वां संस्करण1971ई०
राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली

70-'यशपाल के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण'- डा० मधु जैन
प्रथम संस्करण - सन् 1977 ई०
अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर

71-'विवेचना'- इलाचन्द्र जोशी: द्वितीय संस्करण
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

72-'विश्लेषण' - इलाचन्द्र जोशी

73-'व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में उपन्यासकार-
भगवती चरण वर्मा : डा० रमाकान्त श्रीवास्तव:प्रथम संस्करण 1977ई०
वाणी प्रकाशन, कमलानगर, दिल्ली

74-'समाज मनोविज्ञान' - ओम प्रकाश वर्मा: चतुर्थ संस्करण 1980-81ई०
विमल पुस्तक मंदिर, आगरा

75-'साहित्य का प्रेय और प्रेय'- जैनेन्द्र: संस्करण- सन् 1953ई०
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

76-'साहित्यालोचन'- डा० श्यामसुन्दर दास: संस्करण सन् 1942 ई०
इण्डिया प्रेस[पब्लि] प्रा० लि०, प्रयाग

77-'साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन'- दवराज उपाध्याय
प्रथम संस्करण सन् 1964 ई०
एस० चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली

78-'सिद्धान्त और अध्ययन' - बाबू गुलाब राय:5वांसंस्करण 1975ई०
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

79-' शिक्षा मनोविज्ञान' - डा० सुरेश भटनागर:संस्करण 1982-83
इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ

80-' हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल'-डा० रामशोभित प्रसाद सिंह
प्रथम संस्करण - सन् 1981 ई०
प्रकाशन-ऋषभचरण जैन एवं संतति, दिल्ली

81-'हिन्दी उपन्यास वार्षिकी' -1976: संपादक-सूर्यकान्त गुप्त:
प्रथम संस्करण - 5मई सन् 1979ई०
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क , दिल्ली

82-'हिन्दी उपन्यास का परियवात्मक इतिहास'- डा०प्रतापनारायण टण्डन
प्रथम संस्करण - सन् 1967 ई०
विवेक प्रकाशन, लखनऊ

83-'हिन्दी उपन्यास कला'- प्रताप नारायण टण्डन: संस्करण 1965ई०
हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ०प्र० लखनऊ

84-'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद'- डा० त्रिभुवन सिंह :
तृतीय संस्करण सम्वत् 2018 विक्रमी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

85-'हिन्दी उपन्यास:आधुनिक विचारधारायें'- डा० सुमिता त्यागी
प्रथम संस्करण, सन् 1978 ई०
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

86-' हिन्दी गद्य का इतिहास'- डा० रामचन्द्र तिवारी:
द्वितीय संस्करण, अगस्त 1968ई०
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

87-' हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण'-
डा० विमल सहायदेव
संस्करण मार्च 1974 ई०
पुस्तक संस्थान, नेहरू नगर, कानपुर

88-'हिन्दी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन'-डा०गिरधर
प्रसाद शर्मा
प्रथम संस्करण सन् 1978 ई०
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली

89-'हिन्दी उपन्यास का विकास और मौलिकता'- डा० सूरदेव शुक्ल
संस्करण- सितम्बर 1966 ई०
अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर

90-'हिन्दी उपन्यास: सृजन और प्रक्रिया' - डा० विश्वबहादुर सिंह भदौरिया
प्रथम संस्करण सन् 1981 ई०
शैलजा प्रकाशन, कानपुर

91-'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन'- डा० एस०एन० मेहरोत्रा
प्रथम संस्करण - सन् 1962 ई०
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

92-'हिन्दी उपन्यास साहित्य में चरित्र-चित्रण का विकास'- डा०रणवीर रांग्रा
संस्करण - सन् 1961 ई०
भारतीय साहित्य मंदिर, फौव्वारा

93-' हिन्दी साहित्य का इतिहास'- संपादक डा० नगेन्द्र:
संस्करण द्वितीय सन् 1962ई०
नेशनल पब्लीशिंग हाउस, नई दिल्ली

94-'हिन्दी उपन्यास,20वीं सदी'- डा० नगेन्द्र:प्रथम संस्करण 1972ई०
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

95-'हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास'-डा०श्रीमतीओम्शुक्ल
संस्करण - जुलाई सन् 1964ई०
अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर

96- 'हिन्दी उपन्यास: युग चेतना एवं पाठकीय संवेदना' -
डा० मुकुन्दीद्विवेदी
प्रथम संस्करण - सन् 1970 ई०
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

97-'हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष' - शिवदान सिंह चौहान

98-'हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली' - भाग-3
प्रथम संस्करण अगस्त 1981 ई०
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

99-'हिन्दी उपन्यास- शिवनारायण श्रीवास्तव :
प्रथम संस्करण - संवत् 2016 विक्रमी
सरस्वती मंदिर, वाराणसी

100-'हिन्दी उपन्यास, एक सर्वेक्षण' - महेन्द्र चतुर्वेदी
प्रथम संस्करण फरवरी 1962 ई०

2- अंग्रेजी ग्रंथ सूची :-

1- 'An Introduction to Social Psychology'-Mc Dougall

2- 'Behaviourism' - Watson, 1930

3- 'Beyound the Pleasure Principle' - Frued

4- 'Contemperary schools of Psychology' - Murphy

5- 'Psychodynamics of Abnormal Behaviour' - Brown

6- 'Personality and Probems of Adjustment'- Young

7-' The Stream of Consciousness in the
English Novels' - Dr D.K. Lal,
First Edition - 1968
L.N.Agrawal educational Publishers,
Agra.

8- 'The History of English Novels, Vol. III :
E. Baker
Oxford University Press- London

9- 'The Psychological Novel' - Edel

10- 'The Novel and the People' - Ralph Fox : 1924

11- ' The Art of Fiction in Literary
Criticism in America' - A.D. Wan : 1957

3- पत्र-पत्रिकाएं :-

1- 'आलोचना - राजकमल प्रकाशन,प्रा0लि0, दिल्ली
अंक 5
अंक 13
अंक 18
इतिहास विशेषांक, अक्टूबर 1951 ई0
जनवरी-1954ई0

2- 'कादम्बनी'- फरवरी 1983 ई0
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन

3- 'धर्मयुग' - 4 जनवरी से 10जनवरी 1976 ई0

4- 'परिमल' - अभिनन्दन विशेषांक (इलाचन्द्र जोशी)
सन् 1952 ई0

5- 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' - 23जनवरी से 29जनवरी 1983ई0

6- 'सारिका' - (टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन)
16 जनवरी 1979 ई0
16 मार्च 1982 ई0
1 से 15 अक्टूबर 1986 ई0
दिसम्बर 1986 ई0

****
****
****
****
**
*